

तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य

इस प्रकाशन के प्रेरणा-स्रोत
उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी

अनासक्त, अपरिग्रही और सतत ज्ञानाराधक परमपूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागरजी मुनिराज भारत की गरिमामयी श्रमण-संस्कृति, संत-परम्परा और आध्यात्मिक अवधारणाओं के जीवन्त प्रतीक हैं। उनके उदार/उदात्त चिन्तन से सहअस्तित्व की भावना को एक नई चमक मिली है।

सन् १९५८ की वैशाख शुक्ला द्वितीया को मुरैना में जन्मे उमेशकुमार की जीवन-यात्रा आत्म-बोध के साथ प्रारम्भ होकर सन् १९७६ में क्षुल्लक गुणसागर के रुप में प्रतिफलित हुई। फिर बारह वर्ष पश्चात् ३१ मार्च १९८८ को दिगम्बरी दीक्षा प्राप्त कर वे मुनि ज्ञानसागर के नाम से प्रख्यात हुए। सागर से निकलकर मुजफ्फरनगर, खेकड़ा, विनौली, शाहपुर, गया और रफीगंज आदि में भ्रमण करता हुआ, तीन वर्ष में ही बुन्देलखण्ड का यह संत पूर्वोत्तर भारत की धर्म-पिपासु जनता में बसंत बनकर छा गया।

उपाध्याय ज्ञानसागरजी की ज्ञानगंगा कहीं भी पंथों, जातियों या सम्प्रदायों की परिधि में सिमट कर नहीं बहती। वह धारा तो बिना किसी भेद-भाव के हर जाति, धर्म और आस्था वाले लोगों के बीच सरल, स्वाभाविक करुणाधारा के रुप में प्रवाहित होकर अहिंसा और विश्व-शान्ति के अंकुर उगा रही है।

भगवान महावीर की आचार्य परम्परा को रेखांकित करने वाले इस महान ग्रन्थ का यह संस्करण उन्हीं संत की प्रेरणा का सुफल है।

आवरण का चित्र -
शान्तिप्रसाद कला-संग्रहालय खुजराहो का एक शिल्प
चन्देल काल : १० वीं - ११ वीं शताब्दी ईस्वी.
छायाकार - नीरज जैन,

6612

तीर्थंकर महावीर
और
उनकी आचार्य-परम्परा

४

आचार्यतुल्य काव्यकार
एवं
लेखक

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला
बृहद्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजन - मरालैः परिचिता
महावीरस्वामी नयन - पथ - गामी भवतु नः ।।

— पण्डित भागचन्द्र, महावीराष्टक

तीर्थंकर महावीर
और
उनकी आचार्य-परम्परा

चतुर्थ खण्ड

लेखक

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य,

एम.ए. पी-एच.डी. डी. लिट

(इस भाग का मुद्रण श्री नेमीचन्द रमेशकुमार पाटनी, रामगढ़ के सौजन्य से)

आचार्य शन्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला

प्रकाशक :

प्रथम संस्करण सन् १९७४
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद

यह द्वितीय संस्करण सन् १९९२
आचार्य शन्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला,
पो.बुढ़ाना, जिला-मुजफ्फरनगर, (उत्तर प्रदेश)

प्राप्ति स्थान :

१. मंत्री-आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला
पो. बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर, (उत्तर प्रदेश)

२. डॉ. नलिन के.शास्त्री
ए-११, प्रोफेसर क्वार्टर्स,
मगध विश्वविद्यालय केम्पस,
बोध गया (बिहार) ८२४ २३४

मूल्य : पूरा सैट चारों खण्ड : चार सौ रुपया

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी महोत्सव के
पावन प्रसंग में प्रकाशित

मुद्रक :
शकुन प्रिंटर्स
पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा
दिल्ली-३२

प्रकाशकीय निवेदन

सोलह वर्ष पूर्व प्रकाशित और लगभग दस वर्ष से अनुपलब्ध यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ पुनः मुद्रित होकर आज आपके हाथ में पहुंच रहा है । प्रथमावृत्ति के प्रकाशकीय में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के मंत्री डॉ.पन्नालाल साहित्याचार्य ने इसकी पृष्ठभूमि में लिखा था –

– "भगवान महावीर के **2500** वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशनार्थ विद्वत्परिषद ने इस ग्रन्थ के लेखन का दायित्व अपने तात्कालिक उपाध्यक्ष, बहुमुखी प्रतिभा के धनी विद्वान, डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य, एम.ए., पी.-एच-डी., डी.लिट्., को सौंपा था । सम्मानीय डॉ.शास्त्री ने चार पाँच वर्ष तक अथक परिश्रम करके समय पर इसे तैयार कर दिया । "

– "इसके प्रकाशन के लिए विद्वत्परिषद के पास अर्थ की व्यवस्था नगण्य थी, परन्तु विद्वत्परिषद के अध्यक्ष डॉ. दरबारीलाल कोठिया ने ग्रन्थ के अग्रिम ग्राहक बनाकर राशि एकत्र की और लगभग सात सौ ग्राहकों से अग्रिम मूल्य प्राप्त हो जाने से यह प्रकाशन संम्भव हुआ । "इस बीच यह दुर्भाग्यपूर्ण घटित हो गया कि जनवरी १९७४ में डॉ.शास्त्री का असामयिक निधन हो गया और वे अपनी इस महान कृतिको प्रकाशित नहीं देख पाये।

इधर कई वर्षों से यह ग्रन्थ अनुपलब्ध था । इस अन्तराल में जैन साहित्य और संस्कति के इतिहास के प्रति जिज्ञासु अध्येताओं की एक नई पीढ़ी तैयार हो गई है जिसके मार्ग-दर्शन के लिए इस ग्रन्थ की महती उपयोगिता निर्विवाद है। स्व. डॉ.शास्त्री और डॉ.दरबारीलाल कोठिया के अत्यन्त स्नेहपूर्ण संबंध रहे हैं।डॉ.शास्त्री की चर्चा चलते ही, आज भी कोठियाजी की आँखें भर आती है ।कोठियाजी कई वर्षों से अपने दिवंगत मित्र के इस अवदान को पुनः प्रकाशित कराने के प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु व्यय-साध्य होने के कारण सफलता का योग लग नहीं पा रहा था।

संयोग से परम ज्ञानाराधक १०८ श्री उपाध्याय ज्ञानसागरजी मुनिराज का इस वर्ष गया में चातुर्मास हुआ । नवम्बर ९१ में वहाँ आगम वाचना हुई जिसमें अनेक विद्वानों ने भाग लिया । डॉ.कोठिया ने अपने मन का यह विकल्प वहाँ व्यक्त किया जिस पर पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से "आचार्य शन्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला बुढ़ाना " के कोष से पचास हजार की राशि ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए सहज उपलब्ध हो गई । बाद में अपने प्रवचन के बीच मैंने गया समाज से इसमें सहायक होने का अनुरोध किया तब, मेरा याचना-वाक्य पूरा होने के पूर्व ही, समाज के अध्यक्ष बाबू पदमचन्दजी ने समाज की ओर से पच्चीस हजार की स्वीकृति प्रदान कर दी । बाद में स्व.प्रेरणा से उसमें वृद्धि करके उन्होंने दूसरे भाग के मुद्रण

का दायित्व ले लिया। गया समाज की यह उदारता अन्य कर्णधारों के लिए अनुकरणीय है ।

उसी समय उपाध्यायजी के सान्निध्य में इस हेतु सात सदस्यों की एक अस्थायी समिति का गठन करके कार्यारम्भ कर दिया गया । बाद में शेष अर्थव्यवस्था के उपाय करते समय यह विकल्प सामने आया कि आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला ही शेष राशि का प्रावधान करके ग्रन्थ के प्रकाशन का भार वहन करे । स्व. डॉ शास्त्री के सुयोग्य पुत्र डॉ.नलिन के.शास्त्री ने ग्रन्थमाला को द्वितीय संस्करण का प्रकाशन अधिकार प्रदान करके इस प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त कर दिया । ग्रन्थ के दूसरे भाग के मुद्रण का सम्पूर्ण व्यय दिगम्बर जैन समाज गया ने और तीसरे भाग का व्यय दिगम्बर जैन पंचायत रफीगंज ने वहन किया है । इस चतुर्थ खण्ड का व्यय श्री नेमीचन्द रमेशकुमार जी पाटनी, रामगढ़ (राँची) द्वारा प्राप्त हुआ है । यही इस प्रकाशन की पृष्ठभूमि है ।

शान्ति सदन, सतना, २३.४.९२ — नीरज जैन

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस समिति को संतोष है कि पूज्य १०८ श्री उपाध्याय ज्ञानसागर जी के आशीर्वाद और प्रेरणा के फल-स्वरूप यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित करने में हमें सफलता मिली है । मुनिश्री के चरणों में हम नमन करते हैं। इस कालजयी कृति के सर्जनहार स्व.डॉ.नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हम यहाँ यह रेखांकित करना चाहते हैं कि उनकी यह कृति आज भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय है और आने वाली अनेक शताब्दियों तक उनके यश को जीवित रखने में समर्थ है । ग्रन्थ अपने आप में परिपूर्ण है और यह संस्करण मात्र उसका 'पुनर्मुद्रण' ही है ।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के द्वारा इसका प्रथम-प्रकाशन हुआ था अतः हम उस संस्था के आभारी हैं । द्रव्य सहयोग के लिए दातारों को, तथा त्वरित मुद्रण के लिए शकुन प्रकाशन के श्री सुभाषजी को धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है। आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला को इस सराहनीय संकल्प के लिए बधाई।

डॉ. दरबारीलाल कोठिया

डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल
डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी
रतनचन्द्र जैन, बुढ़ाना
(मंत्री-आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना)

नीरज जैन
डॉ. नलिन के. शास्त्री
पदमचन्द्र जैन, गया
(अध्यक्ष-दिगम्बर जैन समाज गया)

प्रकाशक की लेखनीसे

भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे गुरु गोपालदास बरैया-शताब्दी समारोहके प्रसंगको लेकर जब श्री बरैया-स्मृति-ग्रन्थका प्रकाशन हुआ, तब समाजके प्रबुद्धवर्गने अत्यधिक प्रसन्नता प्रकट की थी। ग्रन्थका सर्वत्र समादर हुआ और उसकी समस्त प्रतियाँ हाथों-हाथ उठ गयीं। भारतवर्षके समस्त विश्वविद्यालयोंकी लाइब्रेरियोंके लिए यह संग्रहणीय ग्रन्थ विद्वत्परिषद्की ओरसे निःशुल्क भेंट किया गया। उसके उत्तरमें विश्वविद्यालयोंके प्रबन्धकोंने जो धन्यवादपत्र दिये, उनमें उन्होंने उस ग्रन्थरत्नको प्राप्तकर बड़ा हर्ष प्रकट किया था।

वर्तमानमें चल रहे श्री १००८ भगवान् महावीरके २५०० वें निर्वाण-महोत्सवके उपलक्ष्यमें भी विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीने '**तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा**' नामक ग्रन्थ प्रकाशित करनेका निश्चय किया और इसके लेखनका भार विद्वत्परिषद्के उपाध्यक्ष और बहुमुखी प्रतिभाके धनी श्री नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्०, अध्यक्ष संस्कृत-प्राकृत विभाग एच० डी० जैन कालेज आराको दिया गया। सम्माननीय डाक्टर साहबने इस ग्रन्थके लेखनमें चार-पाँच वर्ष अकथनीय परिश्रम किया है। परन्तु खेद है कि वे अपनी इस महनीय कृतिको अपने जीवन-कालमें प्रकाशित न देख सके। गत जनवरी ७४ में उनके दिवंगत होनेका समाचार देशभरमें संतप्त हृदयसे सुना गया।

यह महान् ग्रन्थ चार भागोंमें सम्पूर्ण हुआ है। इसके प्रकाशनके लिए विद्वत्परिषद्के पास अर्थकी व्यवस्था नगण्य थी। परन्तु विद्वत्परिषद्के अध्यक्ष डॉक्टर दरबारीलालजी कोठियाने इसके अग्रिम ग्राहक बनानेकी योजना प्रस्तुत की, जिसे समाजने बड़े उत्साहके साथ स्वीकृत किया। श्री १०८ पूज्य विद्यानन्दजी महाराजने भी अपने शुभाशीर्वादसे इसके प्रकाशनका मार्ग प्रशस्त किया। यह प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि इसके सातसौ ग्राहक अग्रिम मूल्य देकर बन गये। ग्रन्थके चारों भागोंका मूल्य ८५) है। परन्तु अग्रिम ग्राहक बननेवालों-को यह ग्रन्थ ६१) में देनेका निर्णय किया गया।

ग्रन्थका आभ्यन्तर-परिचय डॉक्टर दरबारीलालजी कोठिया द्वारा लिखे आमुख तथा ग्रन्थकी विषय-सूचीसे स्पष्ट है।

इस ग्रन्थके संपादन और प्रकाशन तथा अर्थके संग्रहमें विद्वत्परिषद्के अध्यक्ष

श्रीमान् डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, एम० ए०, पी-एच०-डी०, पूर्व रीडर जैन-बौद्धदर्शनविभाग, हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसीको महान् परिश्रम करना पड़ा है, प्रेसको दौड़धूप और प्रूफका देखना आदि कार्य आपने जिस निस्पृह भाव, लगन और निष्ठासे संपन्न किये हैं वह श्लाघ्य है। आपकी इस महनीय सेवाके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजीने ग्रन्थपर आशीर्वचनके रूपमें बहुमूल्य 'आद्य मिताक्षर' लिखकर हमें कृतार्थ किया, इसके लिए हम उनके प्रति विनत हैं। सिद्धान्ताचार्य श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी वाराणसीने अपना महत्त्वपूर्ण 'प्राक्कथन' लिखनेकी कृपा की, अतः उनके भी अतिकृतज्ञ हैं।

श्री बाबूलालजी फागुल्ल, संचालक महावीर-प्रेसने बड़ी सुन्दरतासे इसका प्रकाशन किया है, इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

अग्रिम मूल्य भेजकर जिन ग्राहकोंने हमारी प्रकाशन-व्यवस्थाको सुकर बनाया है उनके प्रति मैं नम्र आभार प्रकट करता हूँ। ग्रन्थकी तैयार पाण्डुलिपिके वाचनमें श्रीमान् सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, डॉ० ज्योतिप्रसादजी लखनऊ, आदि विद्वानोंने जो समय और सुझाव दिये हैं उनके प्रति भी मैं सविनय आभार प्रकट करता हूँ।

अन्तमें प्रकाशन-सम्बन्धी अशुद्धियोंके लिए क्षमा-याचना करता हुआ आकांक्षा करता हूँ कि भगवान् महावीरके २५०० वें निर्वाण-महोत्सवकी पुण्य-वेलामें इस ग्रन्थका घर-घरमें प्रचार हो और जन-मानस भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंसे सुपरिचित हो।

विनीत
पन्नालाल जैन
मंत्री
भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्
सागर

सागर
९-७-१९७४

आद्य मिताक्षर

'परम्परा' शब्द अपना विशेष महत्त्व रखता है और विश्वके कण-कणसे सम्बन्धित है। परम्पराका इतिहास लेखबद्ध करना वैसे ही कठिन कार्य है, फिर श्रमण-परम्पराका इतिहास तो सर्वथा ही दुरूह है। प्रसंगमें जहाँ **'परम्परा'** शब्द सद्-आगम और सद्गुरुओंका बोधक है, वहाँ यह प्रामाणिकताका द्योतक भी है। परम्परागत आगम और गुरुओंको सर्वत्र प्रथम स्थान है। इसीलिए **'आचार्यगुरुभ्यो नमः'** के स्थान पर **'परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः'** का प्रचलन है। लोकमें आज भी यह परम्परा प्रचलित है। जैसे गृहस्थोंके विवाह आदि संस्कारोंमें परम्परा (गोत्रादि) का प्रश्न उठता है, वैसे ही मुनियोंके सबंधमें भी उनकी गुरु-परम्पराका ज्ञान आवश्यक है।

भारतमें मुनि-परम्परा और ऋषि-परम्परा ये दो परम्पराएँ प्राचीनकालसे रही हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रथम परम्पराका संबंध आत्मधर्मा श्रमणोंसे रहा है—श्रमणमुनि मोक्षमार्गके उपदेष्टा रहे हैं। द्वितीय परम्पराका संबंध लोक-धर्मसे रहा है—ऋषिगण गृहस्थोंके षोडश संस्कारादि सम्पन्न कराते रहे हैं। ऋषियोंको जब आत्मधर्मज्ञानकी बुभुक्षा जाग्रत हुई, वे श्रमणमुनियोंके समीप जिज्ञासाकी पूर्ति एवं मार्गदर्शनके लिए पहुँचते रहे।[1]

स्व० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा रचित ग्रन्थ **'तीर्थङ्कर महावीर और उनकी परम्परा'** में श्रमण—मुनि-परम्पराका तथ्यपूर्ण इतिहास है। वस्तुतः

---

१. वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुस्तानृषयोऽर्थमायंस्तेऽनिलाय-मचरंस्तेऽनुप्रविशुः कूष्माण्डानि तांस्तेष्वन्वविन्दन श्रद्धया च तपसा च। तानृषयो-ऽब्रुवन कया निलायं चरथेति ते ऋषीनब्रुवन्नमोवोऽस्तु भगवन्तोऽस्मिन् धाम्नि केन वः सपर्यामेति तानृषयोऽब्रुवन—पवित्रं नो ब्रूत येनोरेपसः स्यामेति त एतनि सूक्तान्यपश्यन्।'

—तैत्तिरीय आरण्यक २ प्रपाठक ७ अनुवाक, १-२

'वातरशन—श्रमण-ऋषि ऊर्ध्वमन्थी (परमात्मपदकी ओर उत्क्रमण करनेवाले) हुए। उनके समीप इतर ऋषि प्रयोजनवश (याचनार्थ) उपस्थित हुए। उन्हें देखकर वातरशन कूष्माण्डनामक मन्त्रवाक्योंमें अन्तर्हित हो गए, तब उन्हें अन्य ऋषियोंने श्रद्धा और तपसे प्राप्त कर लिया। ऋषियोंने उन वातरशन मुनियोंसे प्रश्न किया—किस विद्यासे आप अन्तर्हित हो जाते हैं? वातरशन मुनियोंने उन्हें अपने अध्यात्म धामसे आए हुए अतिथि जानकर कहा—हे मुनिजनों! आपको नमोऽस्तु है, हम आपकी सपर्या (सत्कार) किससे करें? ऋषियोंने कहा—हमें पवित्र आत्मविद्याका उपदेश दीजिए, जिससे हम निष्पाप हो जाएँ।

इतिहासकी रचनाके लिए तथ्यज्ञान आवश्यक है। यतः—

इतिहास इतीष्टं तद् इति हासीदिति श्रुतेः।
इतिवृत्तमथैतिह्यमाम्नायं चामनन्ति तत्॥

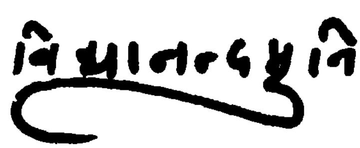
—आचार्य श्रीजिनसेन, आदिपुराण, १।२५

'इतिहास, इतिवृत्त, ऐतिह्य और आम्नाय समानार्थक शब्द हैं। 'इति ह आसीत' (निश्चय ऐसा ही था), 'इतिवृत्तम्' (ऐसा हुआ—घटित हुआ) तथा परम्परासे ऐसा ही आम्नात है—इन अर्थोंमें इतिहास है।

इतिहास दीपकतुल्य है। वस्तुके कृष्ण-श्वेतादि यथार्थ रूपको जैसे दीपक प्रकाशित करता है, वैसे इतिहास मोहके आवरणका नाशकर, भ्रान्तियोंको दूर करके—सत्य सर्वलोक द्वारा धारण की जानेवाली यथार्थताका प्रकाशन करता है। अर्थात् दीपकके प्रकाशसे पूर्व जैसे कक्षमें स्थित वस्तुएँ विद्यमान रहते हुए भी प्रकाशित नहीं होती, वैसे ही सम्पूर्ण लोक द्वारा धारण किया गया गर्भभूत सत्य इतिहासके बिना सुव्यक्त नहीं होता।[1]

प्रस्तुत ग्रन्थके अवलोकनसे स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान्की लेखनीमें बल और विचारोंमें तर्कसंगतता है। समाज इनकी अनेक कृतियोंका मूल्यांकन कर चुका है—भलीभाँति सम्मानित कर चुका है। प्रस्तुत कृतिसे जहाँ पाठकोंको स्वच्छ श्रमण-परम्पराका परिज्ञान होगा, वहाँ ग्रन्थमें दिये गये टिप्पणोंसे उनके ज्ञानमें प्रामाणिकता भी आवेगी। श्रमण-परम्पराके अतिरिक्त इस ग्रन्थमें श्रमणों-की मान्यताओं एवं जैन सिद्धान्तोंका भी सफल निरूपण किया गया है। यह ग्रन्थ सभी प्रकारसे अपनेमें परिपूर्ण एवं लेखककी ज्ञान-गरिमाको इङ्गित करनेमें समर्थ है।

यहाँ लेखकके अभिन्न मित्र डॉ० दरबारीलाल कोठियाजीके प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनमें किए गए सत्यप्रयत्नोंको भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है, जिनके द्वारा हमें प्रस्तुत ग्रन्थके लिए कुछ शब्द लिखनेका आग्रहयुक्त निवेदन प्राप्त हुआ। विद्वत्परिषद्का यह प्रकाशन-कार्य परिषद्के सर्वथा अनुरूप है। ऐसे सत्कार्य-के लिए भी हमारे शुभाशीर्वाद!



१. इतिहास-प्रदीपेन मोहावरणघातिना।
सर्वलोकधृतं गर्भं यथावत् संप्रकाशयेत्॥

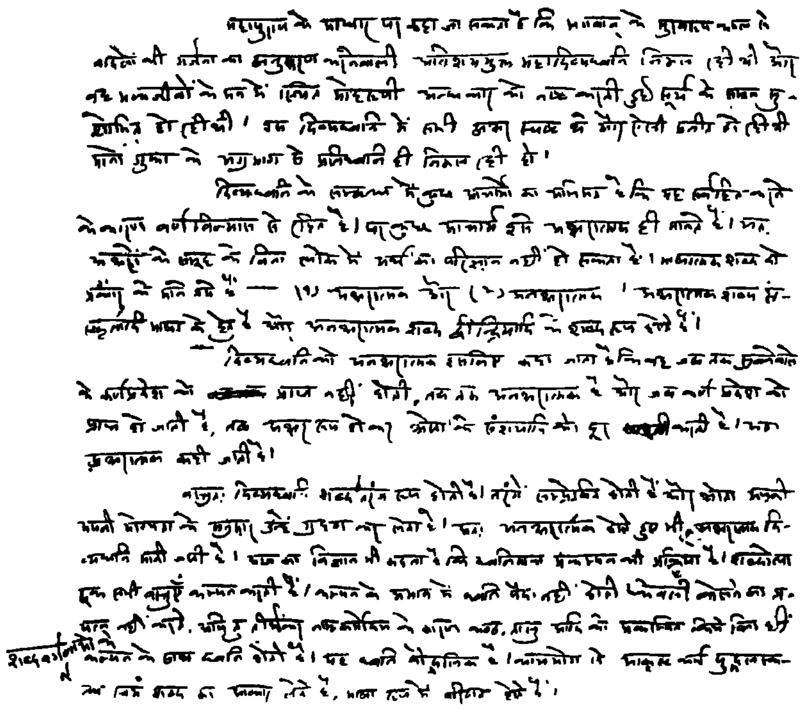
— महाभारत



डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

उदय : पौषकृष्णा १२	:	अवसान : माघ कृष्ण २
विक्रम संवत् १९७२		वि० सं० २०३०
ई० सन् १९१५		१० जनवरी, १९७४

ये सशक्त हस्ताक्षर



लेखकको प्रस्तुत कृतिकी पाण्डुलिपिका एक पृष्ठ

प्राक् कथन

भारतवर्षका क्रमबद्ध इतिहास बुद्ध और महावीरसे प्रारम्भ होता है। इनमेंसे प्रथम बौद्धधर्मके संस्थापक थे, तो द्वितीय थे जैनधर्मके अन्तिम तीर्थंकर। 'तीर्थंकर' शब्द जैनधर्मके चौबीस प्रवर्त्तकोंके लिए रूढ़ जैसा हो गया है, यद्यपि है यह यौगिक ही। धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्त्तकको ही तीर्थंकर कहते हैं। आचार्य समन्तभद्रने पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथकी स्तुतिमें उन्हें 'धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन्' पदके द्वारा धर्मतीर्थका प्रवर्त्तक कहा है। भगवान महावीर भी उसी धर्मतीर्थके अन्तिम प्रवर्त्तक थे और आदि प्रवर्त्तक थे भगवान् ऋषभदेव। यही कारण है कि हिन्दू पुराणोंमें जैनधर्मकी उत्पत्तिके प्रसंगसे एकमात्र भगवान् ऋषभदेवका ही उल्लेख मिलता है किन्तु भगवान् महावीरका संकेत तक नहीं है जब उन्हींके समकालीन बुद्धको विष्णुके अवतारोंमें स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत त्रिपिटक साहित्यमें निग्गंठनाटपुत्तका तथा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थोंका उल्लेख बहुतायतसे मिलता है। उन्हींको लक्ष्य करके स्व० डॉ० हर्मान याकोबीने अपनी जैन सूत्रोंकी प्रस्तावनामें लिखा है—'इस बातसे अब सब सहमत हैं कि नातपुत्त, जो महावीर अथवा वर्धमानके नामसे प्रसिद्ध हैं, बुद्धके समकालीन थे। बौद्धग्रन्थोंमें मिलनेवाले उल्लेख हमारे इस विचारको दृढ़ करते हैं कि नातपुत्तसे पहले भी निर्ग्रन्थोंका, जो आज जैन अथवा आर्हत नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं, अस्तित्व था। जब बौद्धधर्म उत्पन्न हुआ तब निर्ग्रन्थोंका सम्प्रदाय एक बड़े सम्प्रदायके रूपमें गिना जाता होगा। बौद्ध पिटकोंमें कुछ निर्ग्रन्थोंका बुद्ध और उनके शिष्योंके विरोधीके रूपमें और कुछका बुद्धके अनुयायी बन जानेके रूपमें वर्णन आता है। उसके ऊपरसे हम उक्त अनुमान कर सकते हैं। इसके विपरीत इन ग्रन्थोंमें किसी भी स्थानपर ऐसा कोई उल्लेख या सूचक वाक्य देखनेमें नहीं आता कि निर्ग्रन्थोंका सम्प्रदाय एक नवीन सम्प्रदाय है और नातपुत्त उसके संस्थापक हैं। इसके ऊपरसे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि बुद्धके जन्मसे पहले अति प्राचीन कालसे निर्ग्रन्थोंका अस्तित्व चला आता है।"

अन्यत्र डॉ० याकोबीने लिखा है—'इसमें कोई भी सबूत नहीं है कि पार्श्वनाथ जैनधर्मके संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवको जैन धर्मका संस्थापक माननेमें एकमत है। इस मान्यतामें ऐतिहासिक सत्यकी सम्भावना है।'

प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० राधाकृष्णन्ने अपने 'भारतीय दर्शन' में कहा है—'जैन परम्परा ऋषभदेवसे अपने धर्मकी उत्पत्ति होनेका कथन करती है, जो बहुत-सी शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दीमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी पूजा होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैनधर्म वर्धमान और पार्श्वनाथसे भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेदमें ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरोंके नामोंका निर्देश है। भागवत पुराण भी इस बातका समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैनधर्मके संस्थापक थे।'

यथार्थमें वैदिकोंकी परम्पराकी तरह श्रमणोंकी भी परम्परा अति प्राचीन कालसे इस देशमें प्रवर्तित है। इन्हीं दोनों परम्पराओंके मेलसे प्राचीन भारतीय संस्कृतिका निर्माण हुआ है। उन्हीं श्रमणोंकी परम्परामें भगवान महावीर हुए थे। बुद्धकी तरह वे भी एक क्षत्रिय राजकुमार थे। उन्होंने भी घरका परित्याग करके कठोर साधनाका मार्ग अपनाया था। यह एक विचित्र बात है कि श्रमण परम्पराके इन दो प्रवर्त्तकोंकी तरह वैदिक परम्पराके अनुयायी हिन्दूधर्ममें मान्य राम और कृष्ण भी क्षत्रिय थे। किन्तु उन्होंने गृहस्थाश्रम और राज्यासनका परित्याग नहीं किया। यही प्रमुख अन्तर इन दोनों परम्पराओंमें है। कृष्ण भी योगी कहे जाते हैं किन्तु वे कर्मयोगी थे। महावीर ज्ञानयोगी थे। कर्मयोग और ज्ञानयोगमें अन्तर है। कर्मयोगीकी प्रवृत्ति बाह्याभिमुखी होती है और ज्ञानयोगीकी आन्तराभिमुखी। कर्मयोगीको कर्ममें रस रहता है और ज्ञानयोगीको ज्ञानमें। ज्ञानमें रस रहते हुए कर्म करनेपर भी कर्मका कर्त्ता नहीं कहा जाता। और कर्ममें रस रहते हुए कर्म नहीं करनेपर भी कर्मका कर्त्ता कहलाता है। कर्म प्रवृत्तिरूप होता है और ज्ञान निवृत्तिरूप। प्रवृत्ति और निवृत्तिकी यह परम्परा साधनाकालमें मिली-जुली जैसी चलती है किन्तु ज्यों-ज्यों निवृत्ति बढ़ती जाती है प्रवृत्तिका स्वतः ह्रास होता जाता है। इसीको आत्मसाधना कहते हैं।

यथार्थमें विचार कर देखें—प्रवृत्तिके मूल मन, वचन और काय हैं। किन्तु आत्माके न मन है, न वचन है और न काय है। ये सब तो कर्मजन्य उपाधियाँ हैं। इन उपाधियोंमें जिसे रस है वह आत्मज्ञानी नहीं है। जो आत्मज्ञानी हो जाता है उसे ये उपाधियाँ व्याधियाँ ही प्रतीत होती हैं।

इनका निरोध सरल नहीं है। किन्तु इनका निरोध हुए बिना प्रवृत्तिसे छुटकारा भी सम्भव नहीं है। उसीके लिए भगवान महावीरने सब कुछ त्याग कर वनका मार्ग लिया था। संसार-मार्गियोंकी दृष्टिमें भले ही यह 'पलायनवाद' प्रतीत हो, किन्तु इस पलायनवादको अपनाये बिना निर्वाण-प्राप्तिका दूसरा

मार्ग भी नहीं है। भोगी और योगीका मार्ग एक कैसे हो सकता है। तभी तो गीतामें कहा है—

> **या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
> **यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥**

'सब प्राणियोंके लिए जो रात है उसमें संयमी जागता है और जिसमें प्राणी जागते हैं वह आत्मदर्शी मुनिकी रात है।'

इस प्रकार भोगी संसारसे योगीके दिन-रात भिन्न होते हैं। संयमी महावीर-ने भी आत्म-साधनाके द्वारा कार्तिक कृष्णा अमावस्याके प्रातः सूर्योदयसे पहले निर्वाण-लाभ किया। जैनोंके उल्लेखानुसार उसीके उपलक्षमें दीपमालिकाका आयोजन हुआ और उनके निर्वाण-लाभको पच्चीस सौ वर्ष पूर्ण हुए। उसीके उपलक्षमें विश्वमें महोत्सवका आयोजन किया गया है।

उसीके स्मृतिमें **'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा'** नामक यह बृहत्काय ग्रन्थ चार खण्डोंमें प्रकाशित हो रहा है। इसमें भगवान महावीर और उनके बादके पच्चीस-सौ वर्षोंमें हुए विविध साहित्यकारोंका परिचयादि उनकी साहित्य-साधनाका मूल्यांकन करते हुए विद्वान् लेखकने निबद्ध किया है। उन्होंने इस ग्रन्थके लेखनमें कितना श्रम किया, यह तो इस ग्रन्थको आद्योपान्त पढ़नेवाले ही जान सकेंगे। मेरे जानतेमें प्रकृत विषयसे सम्बद्ध कोई ग्रन्थ, या लेखादि उनकी दृष्टिसे ओझल नहीं रहा। तभी तो इस अपनी कृतिको समाप्त करनेके पश्चात् ही वे स्वर्गत हो गये और इसे प्रकाशमें लानेके लिए उनके अभिन्न सखा डॉ० कोठियाने कितना श्रम किया है, इसे वे देख नहीं सके। **'भगवान महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा'में लेखकने अपना जीवन उत्सर्ग करके जो श्रद्धाके सुमन चढ़ाये हैं उनका मूल्यांकन करनेकी क्षमता इन पंक्तियोंके लेखकमें नहीं है। वह तो इतना ही कह सकता है कि आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्रीने अपनी इस कृतिके द्वारा स्वयं अपनेको भी उस परम्परामें सम्मिलित कर लिया है।**

उनकी इस अध्ययनपूर्ण कृतिमें अनेक विचारणीय ऐतिहासिक प्रसंग आये हैं। भगवान महावीरके समय, माता-पिता, जन्मस्थान आदिके विषयमें तो कोई मतभेद नहीं है। किन्तु उनके निर्वाणस्थानके सम्बन्धमें कुछ समयसे विवाद खड़ा हो गया है। मध्यमा पावामें निर्वाण हुआ, यह सर्वसम्मत उल्लेख है। तदनुसार राजगृहीके पास पावा स्थानको ही निर्वाणभूमिके रूपमें माना जाता है। वहाँ एक तालाबके मध्यमें विशाल मन्दिरमें उनके चरण-

चिन्ह स्थापित हैं। यह स्थान मगधमें है। दूसरी पावा उत्तर प्रदेशके देवरिया जिलेमें कुशीनगरके समीप है। डॉ० शास्त्रीने मगधवर्ती पावाको ही निर्वाण-भूमि माना है।

बिम्बसार श्रेणिक भगवान महावीरका परम भक्त था। उसकी मृत्यु डॉ० शास्त्रीने भगवान महावीरके निर्वाणके बाद मानी है, उन्हें ऐसे उल्लेख मिले हैं। किन्तु यह ऐतिहासिक प्रसंग विचारणीय हैं।

उन्होंने जैन तत्त्व-ज्ञानका भी बहुत विस्तारसे विवेचन किया है और प्रायः सभी आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डाला है। दूसरा, तीसरा तथा चौथा खण्ड तो एक तरहसे जैनसाहित्यका इतिहास जैसा है। संक्षेपमें उनकी यह बहुमूल्य कृति अभिनन्दनीय है। आशा है इसका यथेष्ट समादर होगा।

कैलाशचन्द्र शास्त्री

आमुख

भारतोय संस्कृतिमें आर्हत संस्कृतिका प्रमुख स्थान है। इसके दर्शन, सिद्धांत, धर्म और उसके प्रवर्त्तक तीर्थंकरों तथा उनकी परम्पराका महत्त्वपूर्ण अवदान है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेवसे लेकर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर[1] और उनके उत्तरवर्ती आचार्योंने अध्यात्म-विद्याका, जिसे उपनिषद्-साहित्यमें[2] 'परा विद्या' (उत्कृष्ट विद्या) कहा गया है, सदा उपदेश दिया और भारतकी चेतनाको जागृत एवं ऊर्ध्वमुखी रखा है। आत्माको परमात्माकी ओर ले जाने तथा शाश्वत सुखकी प्राप्तिके लिए उन्होंने[3] अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, त्याग और समाधि (आत्मलीनता) का स्वयं आचारण किया और पश्चात् उनका दूसरोंको उपदेश दिया। सम्भवतः इसीसे वे अध्यात्म-शिक्षादाता और श्रमण-संस्कृतिके प्रतिष्ठाता कहे गये हैं। आज भी उनका मार्गदर्शन निष्कलुष एवं उपादेय माना जाता है।

तीर्थंकर महावीर इस संस्कृतिके प्रबुद्ध, सबल, प्रभावशाली और अन्तिम प्रचारक थे। उनका दर्शन, सिद्धान्त, धर्म और उनका प्रतिपादक वाङ्मय विपुल मात्रामें आज भी विद्यमान है तथा उसी दिशामें उसका योगदान हो रहा है।

अतएव बहुत समयसे अनुभव किया जाता रहा है कि तीर्थंकर महावीरका सर्वाङ्गपूर्ण परिचायक ग्रन्थ होना चाहिए, जिसके द्वारा सर्वसाधारणको उनके जीवनवृत्त, उपदेश और परम्पराका विशद परिज्ञान हो सके। यद्यपि भगवान् महावीरपर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दीमें लिखा पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, पर उससे सर्वसाधारणकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती।

सौभाग्यकी बात है कि राष्ट्रने तीर्थङ्कर वर्द्धमान-महावीरकी निर्वाण-रजतशती राष्ट्रीय स्तरपर मनानेका निश्चय किया है, जो आगामी कार्त्तिक कृष्णा अमावस्या वीर-निर्वाण संवत् २५०१, दिनाङ्क १३ नवम्बर १९७४ से कार्त्तिक

---

१. धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमोनमः।
ऋषभादि-महावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये॥

भट्टाकलङ्कदेव, लघीयस्त्रय, मङ्गलपद्य १।

२. मुण्डकोपनिषद् १।१।४१५।

३. स्वामी समन्तभद्र, युक्त्यनुशासन का० ६।

कृष्णा अमावस्या, वीर-निर्वाण संवत् २५०२, दिनाङ्क १३ नवम्बर १९७५ तक पूरे एक वर्ष मनायी जावेगी। यह मङ्गल-प्रसङ्ग भी उक्त ग्रन्थ-निर्माणके लिए उत्प्रेरक रहा।

अतः अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्ने पाँच वर्ष पूर्व इस महान् दुर्लभ अवसरपर तीर्थंकर महावीर और उनके दर्शनसे सम्बन्धित विशाल एवं तथ्यपूर्ण ग्रन्थके निर्माण और प्रकाशनका निश्चय तथा संकल्प किया। परिषद्ने इसके हेतु अनेक बैठकें कीं और उनमें ग्रन्थकी रूपरेखापर गम्भीरतासे ऊहापोह किया। फलतः ग्रन्थका नाम '**तीर्थंङ्कर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा**' निर्णीत हुआ और लेखनका दायित्व विद्वत्परिषद्के तत्कालीन अध्यक्ष, अनेक ग्रन्थोंके लेखक, मूर्धन्य-मनीषी, आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री आरा (बिहार) ने सहर्ष स्वीकार किया। आचार्य शास्त्रीने पाँच वर्ष लगातार कठोर परिश्रम, अद्भुत लगन और असाधारण अध्यवसायसे उसे चार खण्डों तथा लगभग २००० (दो हजार) पृष्ठोंमें सृजित करके ३० सितम्बर १९७३ को विद्वत्परिषद्को प्रकाशनार्थ दे दिया।

विचार हुआ कि समग्र ग्रन्थका एक बार वाचन कर लिया जाय। आचार्य शास्त्री स्याद्वाद महाविद्यालयकी प्रबन्धकारिणीकी बैठकमें सम्मिलत होनेके लिए ३० सितम्बर १९७३ को वाराणसी पधारे थे। और अपने साथ उक्त ग्रन्थके चारों खण्ड लेते आये थे। अतः १ अक्तूबर १९७३ से १५ अक्तूबर १९७३ तक १५ दिन वाराणसीमें ही प्रतिदिन प्रायः तीन समय तीन-तीन घण्टे ग्रन्थका वाचन हुआ। वाचनमें आचार्य शास्त्रीके अतिरिक्त सिद्धान्ताचार्य श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री पूर्व प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, डॉक्टर ज्योतिप्रसादजी लखनऊ और हम सम्मिलित रहते थे। आचार्य शास्त्री स्वयं वाचते थे और हमलोग सुनते थे। यथावसर आवश्यकता पड़ने पर सुझाव भी दे दिये जाते थे। यह वाचन १५ अक्तूबर १९७३ को समाप्त हुआ और १६ अक्तूबर १९७३ को ग्रन्थ प्रकाशनार्थ महावीर प्रेसको दे दिया गया।

ग्रन्थ-परिचय

इस विशाल एवं असामान्य ग्रन्थका यहाँ संक्षेपमें परिचय दिया जाता है, जिससे ग्रन्थ कितना महत्त्वपूर्ण है और लेखकने उसके साथ कितना अमेय परिश्रम किया है, यह सहजमें ज्ञात हो सकेगा।

यहाँ चतुर्थ खण्ड का परिचय प्रस्तुत है—

४. आचार्यतुल्य काव्यकार एवं लेखक

इस चतुर्थ भागमें उन जैन काव्यकारों एवं ग्रन्थ-लेखकोंका परिचय निबद्ध है, जो स्वयं आचार्य न होते हुए भी आचार्य जैसे प्रभावशाली ग्रन्थकार हुए। इसमें चार परिच्छेद हैं, जिनका प्रतिपाद्य-विषय अधोलिखित है :—

प्रथम परिच्छेद : संस्कृत-कवि और ग्रन्थलेखक

इसमें परमेष्ठि, धनञ्जय, असग, हरिचन्द, चामुण्डराय, अजितसेन, विजयवर्णी आदि तीस संस्कृत-कवियों एवं ग्रन्थलेखकोंका व्यक्तित्व एवं कृतित्व वर्णित है।

द्वितीय परिच्छेद : अपभ्रंश-कवि एवं लेखक

इस परिच्छेदमें चतुर्मुख स्वयंभूदेव, त्रिभुवन स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल, धवल, हरिषेण, वीर, श्रीचन्द्र, नयनन्दि, श्रीधर प्रथम, श्रीधर द्वितीय, श्रीधर तृतीय, देवसेन, अमरकीर्ति, कनकामर, सिंह, लाखू, यशःकीर्ति, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, रइधू, तारणस्वामी आदि पैंतालीस अपभ्रंश-कवियों-लेखकों और उनकी रचनाओंका संक्षिप्त परिचय निबद्ध है।

तृतीय परिच्छेद : हिन्दी तथा देशज भाषा-कवि एवं लेखक

इसमें बनारसीदास, रूपचन्द्र पाण्डेय, जगजीवन, कुंवरपाल, भूधरदास द्यानतराय, किशनसिंह, दौलतराम प्रथम, दौलतराम द्वितीय, टोडरमल्ल, भागचन्द, महाचन्द आदि पच्चीस हिन्दी-कवियों और लेखकोंका उनकी कृतियों सहित परिचय अङ्कित है। अन्य देशज भाषाओंमें कन्नड़, तमिल और मराठीके प्रमुख काव्यकारों एवं लेखकोंका भी परिचय दिया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद : पट्टावलियां

इस परिच्छेदमें प्राकृत-पट्टावलि, सेनगण-पट्टावलि, नन्दिसंघबलात्कारगण-पट्टावलि, आदि नौ पट्टावलियाँ संकलित हैं। इन पट्टावलियोंमें कितना ही इतिहास भरा हुआ है, जो राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टियोंसे बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

इस प्रकार प्रस्तुत महान् ग्रन्थसे जहाँ तीर्थंकर वर्धमान-महावीर और उनके सिद्धान्तोंका परिचय प्राप्त होगा, वहाँ उनके महान् उत्तराधिकारी इन्द्रभूति आदि गणधरों, श्रुतकेवलियों और बहुसंख्यक आचार्यों के यशस्वी योगदान—विपुल वाङ्मय-निर्माणका भी परिज्ञान होगा। यह भी अवगत होगा कि इन आचार्यों ने समय-समय पर उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी तीर्थंकर महावीरकी अमृतवाणीको अपनी साधना, तपश्चर्या, त्याग और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा अब तक सुरक्षित रखा तथा उसके भण्डारको समृद्ध बनाया है।

आभार

इस विशाल ग्रन्थके सृजन और प्रकाशनका विद्वत्परिषद्ने जो निश्चय एवं संकल्प किया था, उसकी पूर्णता पर आज हमें प्रसन्नता है। इस संकल्पमें विद्वत्परिषद्के प्रत्येक सदस्यका मानसिक या वाचिक या कायिक सहभाग है। कार्यकारिणीके सदस्योंने अनेक बैठकोंमें सम्मिलित होकर मूल्यवान् विचार-दान किया है। ग्रन्थ-वाचनमें श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री और डॉ० ज्योति प्रसादजीका तथा ग्रन्थको उत्तम बनानेमें स्थानीय विद्वान् प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला, पण्डित अमृतलालजी शास्त्री एवं पण्डित उदयचन्द्रजी बौद्धदर्शनाचार्यका भी परामर्शादि योगदान मिला है।

पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजीने '**आद्य मिताक्षर**' रूपमें आशीर्वचन प्रदान कर तथा वरिष्ठ विद्वान् श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने '**प्राक्कथन**' लिखकर अनुगृहीत किया है।

खतौली, भोपाल, बम्बई, दिल्ली, मेरठ, जबलपुर, तेंदूखेड़ा, सागर, वाराणसी, आरा आदि स्थानोंके महानुभावोंने ग्रन्थका अग्रिम ग्राहक बनकर सहायता पहुँचायी है। विद्वत्परिषद्के कर्मठ मंत्री आचार्य पण्डित पन्नालालजी सागरके साथ मैं भी इन सबका हृदयसे आभार मानता हूँ।

वीर-शासन-जयन्ती,
श्रावण कृष्णा १, वी० नि० सं० २५००,
५ जुलाई, १९७४
वाराणसी

दरबारीलाल कोठिया
अध्यक्ष
अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

संस्कृत-भाषाके काव्यकार और लेखक

द्वितीय परिच्छेद

अपभ्रंश-भाषाके कवि और लेखक

तृतीय परिच्छेद

हिन्दी कवि और लेखक

हिन्दीके अन्य चर्चित कवि

कन्नड़के जैन कवि

तमिलके जैन कवि और लेखक

मराठीके जैन कवि

मराठीके अन्य कवि और लेखक

उपसंहार

चतुर्थ परिच्छेद

पट्टावलियाँ

शेषांश पृ० ३०६
(हिन्दीके अन्य चर्चित कवि शीर्षकान्तर्गत)

परिशिष्ट

खण्ड : ४

आचार्यतुल्य काव्यकार एवं लेखक

प्रथम परिच्छेद

संस्कृत-भाषाके काव्यकार और लेखक

आस्वादयुक्त अर्थतत्त्वको प्रेषित करनेवाली महाकवियोंकी वाणी अलौकिक और स्फुरणशील प्रतिभाके वैशिष्ट्यको व्यक्त करती है। इस वाणीसे ही सहृदय रसास्वादनके साथ अनिर्वचनीय आनन्दको भी प्राप्त करते हैं। कवि और लेखक जीवनकी बिखरी अनुभूतियोंको एकत्र कर उन्हें शब्द और अर्थके माध्यमसे कलापूर्ण रूप देकर हृदयावर्जक बनाते हैं। अतएव इस परिच्छेदमें ऐसे आचार्य-परम्परा-अनुयायियोंका निर्देश किया जायेगा, जिन्होंने गृहस्थावस्थामें रहते हुए भी सरस्वतीकी साधना द्वारा तीर्थंकरकी वाणीको जन-जन तक पहुँचाया है। इस सन्दर्भमें ऐसे आचार्य भी समाविष्ट हैं, जिनका जीवन अधिक उद्दीप्त है तथा जिनका कविके रूपमें आचार्यत्व अधिक मुखरित है।

काव्य या साहित्यकी आत्मा भोग-विलास और राग-द्वेषके प्रदर्शनात्मक शृङ्गार और वीर रसोंमें नहीं है, किन्तु समाज-कल्याणकी प्रेरणा ही काव्य या साहित्यके मूलमें निहित है। दर्शन, आचार, सिद्धान्त प्रभृति विषयोंकी उद्-

भावनाके समान ही जनकल्याणकी भावना भी काव्यमें समाहित रहती है। अतएव समाजके बीच रहने वाले कवि और लेखक गार्हस्थिक जीवन व्यतीत करते हुए करुणभावकी उद्‌भावना सहज रूपमें करते हैं। एक ओर जहाँ सांसारिक सुखकी उपलब्धि और उसके उपायोंकी प्रधानता है, तो दूसरी ओर विरक्ति एवं जनकल्याणके लिये आत्मसमर्पणका लक्ष्य भी सर्वोपरि स्थापित है।

ऐसे अनेक कवि और लेखक हैं, जो श्रावकपदका अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, जातीय एवं आध्यात्मिक भावनाओंकी अभिव्यक्तिमें पूर्ण सफल हुए हैं। यद्यपि ऐसे सारस्वतोंमें आचार्यका लक्षण घटित नहीं होता, तो भी आचार्य-परम्पराका विकास और प्रसार करनेके कारण उनकी गणना आचार्यकोटिमें की जा सकती है। अतएव इस परिच्छेदमें गृहस्थावस्थामें जीवन-यापन करने वाले कवि और लेखकोंके साथ ऐसे त्यागी, मुनि और भट्टारक भी सम्मिलित हैं, जिनमें काव्य-प्रतिभाका अधिक समावेश है, तथा जिन्होंने आख्यानात्मक साहित्य लिखकर विषयमें उदात्तता, घटनाओंमें वैचित्र्यपूर्ण विन्यास, चरित्र-चित्रण, असंख्य रमणीय सुभाषित एवं मानव-क्रियाकलापोंके प्रति असाधारण अन्तर्दृष्टि प्रदर्शित की है। इस श्रेणीकी रचनाओंमें मानव-मनोवृत्तियोंका विशद और सांगोपाँग चित्रण पाया जाता है।

जैन-कवि काव्यके माध्यमसे दर्शन, ज्ञान और चरित्रकी भी अभिव्यञ्जना करते रहे हैं। वे आत्माका अमरत्व एवं जन्म-जन्मान्तरोंके संस्कारोंकी अपरिहार्यता दिखलानेके पूर्व जन्मके आख्यानोंका भी संयोजन करते रहे हैं। प्रसंगवश चार्वाक, तत्त्वोपप्लववाद प्रभृति नास्तिकवादोंका निरसन कर आत्माका अमरत्व और कर्मसंस्कारका वैशिष्टय प्रतिपादित करते रहे हैं।

जिस प्रकार एक ही नदीके जलको घट, कलश, लोटा, झारी, गिलास प्रभृति विभिन्न पात्रोंमें भर लेने पर भी जलकी एकरूपता अखण्डित रहती है, उसी प्रकार तीर्थंकरकी वाणीको सिद्धान्त, आगम, आचार, दर्शन, काव्य आदिके माध्यमसे अभिव्यक्त करने पर भी वाणीकी एकता अक्षुण्ण बनी रहती है। जिन तथ्य या सिद्धान्तोंको श्रुतधर, सारस्वत, प्रबुद्ध और परम्परापोषक आचार्योंने आगमिक शैलीमें विवेचित किया है, उन तथ्य या सिद्धान्तोंकी न्यूनाधिकरूपमें अभिव्यक्ति कवि और लेखकों द्वारा भी की गयी है। अतएव तीर्थंकर महावीरकी परम्पराके अनुयायी होनेसे कवि और लेखक भी महनीय हैं। हम यहाँ संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दीके जैन कवियोंका इतिवृत्त अंकित कर तीर्थंकर महावीरकी आचार्य-परम्परापर प्रकाश डालेंगे। हमारी दृष्टिमें साहित्य-निर्माता सभी सारस्वत तीर्थंकरकी वाणीके प्रचारकी दृष्टिसे मूल्यवान हैं।

सुविधाकी दृष्टिसे कवि और लेखकोंका भाषाक्रमानुसार इतिवृत्त उपस्थित करना अधिक वैज्ञानिक होगा। अतएव हम सर्वप्रथम संस्कृत-भाषाके कवि, लेखकोंका व्यक्तित्व और कृतित्व उपस्थित करेंगे।

संस्कृतभाषाके कवि और लेखक

संस्कृत-काव्यका प्रादुर्भाव भारतीय सभ्यताके उषाकालमें ही हुआ है। यह अपनी रूपमाधुरी और रसमयी भावधाराके कारण जनजीवनको आदिम युगसे ही प्रभावित करता आ रहा है। जब संस्कृतभाषा तार्किकोंके तीक्ष्ण तर्क-वाणोंके लिये तूणी बन चुकी थी, उस समय इस भाषाका अध्ययन-मनन न करने वालोंके लिये विचारोंकी सुरक्षा खतरेमें थी। भारतके समस्त दार्शनिकोंने दर्शनशास्त्रके गहन और गूढ़ ग्रन्थोंका प्रणयन संस्कृतभाषामें प्रारम्भ किया। जैन कवि और दार्शनिक भी इस दौड़में पीछे न रहे। उन्होंने प्राकृतके समान ही संस्कृतपर भी अधिकार कर लिया और काव्य एवं दर्शनके क्षेत्रको अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओंके द्वारा समृद्ध बनाया। यही कारण है कि जैनाचार्योंने काव्यके साथ आगम, अध्यात्म, दर्शन, आचार प्रभृति विषयोंका संस्कृतमें प्रणयन किया है। डॉ० विन्टरनित्सने जैनाचार्योंके इस सहयोगकी पर्याप्त प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है—

I was not able to do full justice to the literary achievements to the Jainas. But I hope to have shown that the jainas have contri buted their full stare to the religious ethical and scientific literature of ancient India[1].

अतएव यह कहा जा सकता है कि जैनाचार्योंने प्राकृतके समान ही संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओंमें अपने विचारोंकी अभिव्यञ्जना कर वाङ्मयकी वृद्धि की है। हम यहाँ संस्कृतके उन कवियोंके व्यक्तित्व और कृतित्वको प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने जीवनकी स्थिरताके साथ गम्भीर चिन्तन आरम्भ किया है तथा जिनकी कल्पना और भावनाने विचारोंके साथ मिलकर त्रिवेणीका रूप ग्रहण किया है। जीवनकी गतिविधियों, विभिन्न समस्याओं, आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओंका निरूपण काव्यके धरातल पर प्रतिष्ठित होकर किया है।

---

1. The Jainas in the Hisory of Indian literature by Dr. Winternitz, Edited by Jina Vijaya Muni, Ahmedabad 1949, Page 4.

कवि परमेष्ठी या परमेश्वर

त्रिषष्टिशलाकापुरुषोंके चरितका अंकन करने वाले कवि परमेष्ठी या कवि परमेश्वर हैं। इस कविकी सूचना श्री डा० ए० एन० उपाध्येने नागपुरमें सम्पन्न हुए प्राच्यविद्या-सम्मेलनके अवसर पर अपने एक निबन्ध द्वारा दी है। कवि परमेश्वर अपने समयके प्रतिभाशाली कवि और वाग्मी विद्वान् हैं। चामुण्डरायने अपने पुराणमें इनके कतिपय पद्य उपस्थित किये हैं। इन पद्योंसे कविकी प्रतिभा और काव्यक्षमताका परिचय प्राप्त होता है।

कवि परमेश्वरका स्मरण ९वीं शतीसे लेकर १३वीं शती तकके कन्नड़ कवि एवं संस्कृतके कवि करते रहे हैं। आदि पम्प (९४१ ई०), अभिनव पम्प (११०० ई०), नयसेन (१११२ ई०), अग्गल (११८९ ई०) और कमलभव इत्यादि कन्नड़कवियोंने आदरपूर्वक तार्किक कवि समन्तभद्र और वैयाकरण पूज्यपाद इन दोनोंके साथ कवि परमेष्ठीका उल्लेख किया है। आदि पम्पने इन्हें जगत-प्रसिद्ध कवि कहा है—

श्रीमत्समन्द्रभद्र—
स्वामिगल जगत्प्रसिद्ध—कविपरमेष्ठि
स्वामिगल पूज्यपाद—
स्वामिगल पदंगलीगे शाश्वत पदमं[1] ॥

आदिपुराण १-१५, मैसूर १९००

× × ×

श्रीमत्समन्तभद्र—
स्वामिगल नेगलतेवेत्त कविपरमेष्ठि—
स्वामिगल पूज्यपाद—
स्वामिगल पदंगलीगे बोधोदयमं[2] ॥

धर्मामृत १-१४, मैसूर १९२४

गुणवर्म द्वितीयने 'पुष्पदन्तपुराण' (अध्याय १, श्लोक २६) में इन्हें सरस्वतीके समान अभिनन्दनीय माना है। पार्श्व पण्डितने अपने पुराणमें गुणज्येष्ठ विशेषण द्वारा कवि परमेष्ठीका उल्लेख किया है।

कन्नड़-कवियोंके साथ आचार्य गुणभद्रने कवि परमेश्वरके गद्यकथाकाव्यका निर्देश किया है—

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १३, किरण २, पृ० ८१।

२. वही, पृ० ८२।

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम् ।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्[1] ॥

अर्थात् परमेश्वर कविके द्वारा कथित गद्यकाव्य जिसका आधार है, जो समस्त छन्दों और अलंकारोंका उदाहरण है, जिसमें सूक्ष्म अर्थ और गूढ पदोंकी रचना है, जिसने अन्य काव्योंको तिरस्कृत कर दिया है, जो श्रवण करने योग्य है, मिथ्याकवियोंके दर्पको खण्डित करनेवाला है और अत्यन्त सुन्दर है, ऐसा यह महापुराण है ।

आचार्य जिनसेनने भी कवि परमेश्वरका आदरपूर्वक स्मरण किया है । उन्होंने उनके ग्रन्थका नाम 'वागर्थसंग्रह' बतलाया है—

स पूज्यः कविभिर्लोके कवीनां परमेश्वरः ।
वागर्थसंग्रहं कृत्स्नं पुराणं यः समग्रहीत्[2] ॥

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि कवि परमेश्वर अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रामाणिक पुराणरचयिता हैं । उन्होंने त्रिषष्टिशलाकापुरुषोंके सम्बन्धमें एक पुराण लिखा था, जो गुणभद्रके कथनानुसार गद्यकाव्य है । आचार्य जिनसेनने आदिपुराणकी रचनामें कवि परमेश्वरके इस पुराणग्रन्थका उपयोग किया है। जिनसेनकी दृष्टिमें इस पुराणका नाम 'वागर्थसंग्रह' था । चामुण्डरायने भी अपने चामुण्डरायपुराणके लिखनेमें कवि परमेश्वरके पुराणग्रन्थका उपयोग किया है । अतएव यह निश्चित है कि कवि परमेश्वरका उक्त पुराण जिनसेनके पूर्व अर्थात् ई० सन् ८३७ के पहले ही प्रसिद्ध हो चुका था । कविपरमेश्वरका यह ग्रन्थ सम्भवतः चम्पूशैलीमें लिखा गया है । यतः चामुण्डरायपुराणमें इसके पद्य उपलब्ध होते हैं और गुणभद्रने इसे गद्यकाव्य कहा है । इसकी प्रसिद्धिको देखते हुए लगता है कि इस ग्रन्थकी रचना समन्तभद्र और पूज्यपादके समकालीन अथवा कुछ समय पश्चात् हुई होगी ।

डॉ० ए० एन० उपाध्येने 'चामुण्डरायपुराण' में कविपरमेश्वरके नामसे उद्धृत पद्योंको उपस्थित कर कविकी प्रतिभा और पाण्डित्यपर प्रकाश डाला है । हम यहाँ उन्हीं पद्योंमेंसे कतिपय पद्य उद्धृत करते हैं—

कविपरमेश्वरवृत्त ।

रामत्वं गणधृत्वमप्यभिमतं लोकान्तिकत्वं तथा
षट्खण्डप्रभुता सुखानुभवनं सर्वार्थसिद्ध्यादिषु ।

---

१. उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य १७ ।

२. आदिपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण १।६० ।

इन्द्रत्वं महिमादिभिश्च सहितं प्राप्तं न संसारिभिः
तत्प्राप्तो भवहेतुसंसृतिलताच्छेदे कुतः संयमः ॥

कविपरमेश्वर श्लोक ।

कषायोद्रेककालुष्यं व्रतदर्शनसत्तपः ।
दूषयत्यचिराद्राजन् ततः क्रोधादि वर्जयेत् ॥
त्यागेन लोभं क्षमया प्रकोपं
मानं मृदुत्वेन मनोहरेण ।
वृत्तेन मायामृजुनाभिवृद्धिं
नरेन्द्र हन्यात्परलोककांक्षी ॥

× × ×

तत्सुसाधुवचः सत्यं प्राणिपीडापराङ्मुखम ।
येन सावद्यकर्माणि न स्पृशन्ति भयादिव ॥
नाग्निर्दहत्युच्चशिखाकलापस्तीव्रं विषं निर्विषतामुपैति ।
शस्त्रं शतद्योतविभूषणत्वं सत्येन किं ते न भवेदभीष्टम्[1] ॥

काव्य, आचार और दर्शन इन तीनोंका समन्वय इन तीनों पद्योंमें पाया जाता है। कवि परमेश्वर पौराणिक जैनमान्यताओंसे भी सुपरिचित हैं। वास्तवमें उनके द्वारा रचित पुराणग्रन्थसे ही जैन साहित्यमें पुराण-साहित्यका प्रचार और प्रसार हुआ है और कवि परमेश्वरकी रचना ही समस्त पुराण-साहित्यका मूलाधार है।

महाकवि धनञ्जय

महाकवि धनञ्जयके जीवनवृत्तके सम्बन्धमें विशेष तथ्योंकी जानकारी उपलब्ध नहीं है। द्विसन्धानमहाकाव्यके अन्तिम पद्यकी व्याख्यामें टीकाकारने इनके पिताका नाम वसुदेव, माताका नाम श्रीदेवी और गुरुका नाम दशरथ सूचित किया है। कवि गृहस्थधर्म और गृहस्थोचित षट्कर्मोंका पालन करता था। इनके विषापहारस्तोत्रके सम्बन्धमें कहा जाता है कि कविके पुत्रको सर्पने डँस लिया था, अतः सर्पविषको दूर करनेके लिये ही इस स्तोत्रकी रचनाकी गयी है।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। इनका समय डॉ० के० बी० पाठकने ई० सन् ११२३-११४० ई० के मध्य माना है। डॉ० ए० बी०

१. जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १३, किरण २, पृ० ८५-८६।

कीथने अपने संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें धनञ्जयका समय पाठक द्वारा अभिमत ही स्वीकार किया[1] है। पर धनञ्जयका समय ई० सन् १२वीं शती नहीं है। यतः इनके द्विसन्धानकाव्यका उल्लेख अचार्य प्रभाचन्द्रने अपने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड'-में किया[2] है। प्रभाचन्द्रका समय ई० सन् ११वीं शतीका पूर्वार्द्ध है। अतएव धनञ्जय सुनिश्चितरूपसे प्रभाचन्द्रके पूर्ववर्ती हैं।

वादिराजने अपने 'पार्श्वनाथचरित' महाकाव्यमें द्विसन्धानमहाकाव्यके रचयिता धनञ्जयका निर्देश किया है और वादिराजका समय १०२५ ई० है। अतएव धनञ्जयका समय इनसे पूर्व मानना होगा। वादिराजने लिखा है—

अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।
बाणा धनञ्जयोन्मुक्ता कर्णस्येव प्रियाः कथम्॥ पार्श्व० १।२६

जल्हणने राजशेखरके नामसे सूक्तिमुक्तावलीमें धनञ्जयकी नाममालाके निम्नलिखित श्लोकको उद्धृत किया है—

द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनञ्जयः।
यथा जातं फलं तस्य स तां चक्रे धनञ्जयः॥

यह राजशेखर काव्यमीमांसाके रचयिता राजशेखर ही हैं। इनका समय १०वीं शती सुनिश्चित है। अतः धनञ्जयका समय १०वीं शतीके पूर्व होना चाहिये।

डॉ० हीरालालजीने 'षट्खण्डागम' प्रथम भागकी प्रस्तावनामें यह सूचित किया है कि जिनसेनके गुरु वीरसेन स्वामीने धवलाटीकामें[3] अनेकार्थनाममाला-का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूपमें उद्धृत किया है—

हेतावेवं प्रकाराद्यैः व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः॥

धवलाटीका वि० सं० ८०५-८७३ (ई० सन् ७४८-८१६)में समाप्त हुई थी। अतः धनञ्जयका समय ९वीं शतीके उपरान्त नहीं हो सकता।

धनञ्जयने अपनी नाममालामें 'प्रमाणमकलङ्कस्य' पद्यमें अकलंकका निर्देश किया है। अतएव वे अकलंकके पूर्ववर्ती भी नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार पर धनञ्जयका समय अकलंकदेवके पश्चात् और धवलाटीकाकार वीरसेनके पूर्व होनेसे ई० सन् की ८वीं शतीके लगभग है।

---

१. A History of Sanskrit literature by A. B. Keeth, Page 173।

२. प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ४०२, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

३. धवलाटीका, अमरावतीसंस्करण, प्रथम जिल्द, पृ० ३८७।

रचनाएँ

१. धनञ्जयनिघण्टु या नाममाला—छात्रोपयोगी २०० पद्योंका शब्दकोश है। इस छोटे-से कोशमें बड़े ही कौशलसे संस्कृत-भाषाके आवश्यक पर्याय-शब्दोंका चयनकर गागरमें सागर भरनेकी कहावत चरितार्थ की है। इस कोशमें कुल १७०० शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं। शब्दसे शब्दान्तर बनानेकी प्रक्रिया भी अद्वितीय है। यथा—पृथ्वीके आगे 'धर' शब्द या धरके पर्यायवाची शब्द जोड़ देनेसे पर्वतके नाम; 'पति' शब्द या पतिके समानार्थक स्वामिन् आदि जोड़ देनेसे राजाके नाम एवं 'रुह' शब्द जोड़ देनेसे वृक्षके नाम हो जाते हैं।

इस नाममालाके साथ ४६ श्लोक प्रमाण एक अनेकार्थनाममाला भी सम्मिलित है। इसमें एक शब्दके अनेकार्थोंका कथन किया गया है।

२. विषापहारस्तोत्र—भक्तिपूर्ण ३९ इन्द्रवज्रा वृत्तोंमें लिखा गया स्तुति-परक काव्य है। इस स्तोत्रपर वि० सं० १६वीं शतीकी लिखी पार्श्वनाथके पुत्र नागचन्द्रकी संस्कृतटीका भी है। अन्य संस्कृतटीकाएँ भी पायी जाती हैं।

३. द्विसन्धानमहाकाव्य—सन्धानशैलीका यह सर्वप्रथम संस्कृतकाव्य है। कविने आद्यन्त राम और कृष्ण चरितोंका निर्वाह सफलताके साथ किया है। इस पर विनयचन्द्रपण्डितके प्रशिष्य और देवनन्दिके शिष्य नेमिचन्द्र, रामभट्टके पुत्र देववट एवं बदरीकी संस्कृतटीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

यह महाकाव्य १८ सर्गोंमें विभक्त है। इसका दूसरा नाम राघव-पाण्डवीय भी है। एक साथ रामायण और महाभारतकी कथा कुशलतापूर्वक निबद्ध की गयी है। प्रत्येक श्लोकके दो-दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थसे रामचरित निकलता है और दूसरे अर्थसे कृष्णचरित। कविने सन्धान-विधामें भी काव्य-तत्त्वोंका समावेश आवश्यक माना है—

चिरन्तने वस्तुनि गच्छति स्पृहां विभाव्यमानोऽभिनवैर्नवप्रियः।
रसान्तरैश्चित्तहरैर्जनोऽन्धसि प्रयोगरम्यैरुपदंशकैरिव ॥३॥
स जातिमार्गो रचना च साऽऽकृतिस्तदेव सूत्रं सकलं पुरातनम्।
विवर्त्तिता केवलमक्षरैः कृतिर्न कञ्चुकश्रीरिव वर्ण्यमृच्छति ॥४॥
कवेरपार्था मधुरा न भारती कथेव कर्णान्तमुपैति भारती।
तनोति सालङ्कृतिलक्षणान्विता सतां मुदं दाशरथेर्यथा तनुः[1] ॥५॥

अर्थात् चित्तके लिये आकर्षक तथा क्रमानुसार विकसित, फलतः नवीन

१. द्विसन्धानमहाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १।३–५।

शृंगार आदि रसों, तथा शब्दालंकार और अर्थालंकारोंसे युक्त, सुन्दर वर्णों द्वारा गुम्फित रचना प्राचीन होने पर भी आनन्दप्रद होती है।

उपजाति आदि छन्द रहते हैं, पद-वाक्यविन्यास भी पूर्वपरम्परागत होता है, गद्य-पद्यमय ही आकार रहता है और सबके सब वही पुराने अलंकारनियम रहते हैं। तो भी केवल अक्षरोंके विन्यासको बदल देनेसे ही रचना सुन्दर हो जाती है।

जो वाणी अर्थयुक्त, माधुर्यादि गुणोंसे समन्वित, अलंकारशास्त्र और व्याकरणके नियमोंसे युक्त होती है, वही सज्जनोंको प्रमुदित करती है।

इस प्रकार कवि धनञ्जयने सन्धानकाव्यमें भी काव्योचित गुणोंको आवश्यक माना है और उनका प्रयोग भी किया है।

प्रस्तुत काव्यमें राम और कृष्णके साथ पाण्डवोंका भी इतिवृत्त आया है। काव्यका आरम्भ तीर्थंकरोंकी वन्दनासे हुआ है, इतिवृत्त पुराणप्रसिद्ध है, मन्त्रणा, दूतप्रेषण, युद्धवर्णन, नगरवर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, पादप, उद्यान, जलक्रीड़ा, पुष्पावचय, सुरतोत्सव आदिका चित्रण है। कथानकमें हर्ष, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि भावोंका संयोजन हुआ है। शाब्दी क्रीड़ाके रहने पर भी रसका वैशिष्ट्य वर्त्तमान है। महत्कार्य और महत्उद्देश्यका निर्वाह भी किया गया है। कविने किसी भी अस्वाभाविक घटनाको स्थान नहीं दिया है। विवाह, कुमारक्रीड़ा, युवराजावस्था, पारिवारिक कलह, दासियोंकी वाचलता आदिका भी चित्रण किया है। कविने शृंगार. वीर, भयानक और वीभत्स रसका सम्यक् परिपाक दिखलाया है। यहाँ उदाहरणार्थ भयानकरसके कुछ पद्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

> पतत्रिनादेन भुजङ्गयोषितां पपात गर्भः किल तार्क्ष्यशङ्कया।
> नभश्चरा निश्चितमन्त्रसाधना वने भयेनास्यपगारमुद्यताः॥१६॥
> समन्ततोऽप्युद्गतधूमकेतवः स्थितोर्ध्वबाला इव तत्रसुर्दिशः।
> निपेतुरुल्काः कलमाग्रपिङ्गला यमस्य लम्बाः कुटिला जटा इव[1]॥१७॥

राघव-पाण्डवराजाओंके पराक्रमपूर्ण युद्धका आतंक सर्वत्र छा गया। उनके वाणकी टंकारसे गरुडकी ध्वनिका भय हो जानेसे नागपत्नियोंके गर्भपात हो गये। खेचर भयविह्वल हो स्तब्ध हो गये। वे तलवारको म्यानसे निकाल न सके और उन्हें यह विश्वास हो गया कि वे मन्त्रबलसे ही सफल हो सकते हैं। युद्धकी भीषणतासे दशों दिशाएँ ऐसी भीत हो गयी थीं, जैसेकि चारों

१. द्विसन्धान महाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, ६।१६–१७।

ओरसे धूमकेतु छा जाने पर होता है और उनके बाल खड़े हो जाते हैं। सहस्र संघर्षसे उत्पन्न पके धान्यकी बालोंके समान धूसर रंगकी बिजलियाँ गिर रही थीं, जो यमकी लम्बी और टेढ़ी जटाके समान प्रतीत होती थीं।

कविने १।२६, १।२०, १।२२, १।२४, २।२१, ३।४०, ५।३६, ५।६०, और ६।२ में उपमाकी योजना की है। १।१५ में उत्प्रेक्षा, १।१४ में विरोधाभास, १।४८ में परिसंख्या, २।५ में वक्रोक्ति, २।१४ में आक्षेप, २।१५ में अतिशयोक्ति, ३।३४ में निश्चय और २।१० में समुच्च अलंकारकारका प्रयोग किया है। तथा वशंस्थ, वसन्ततिलका, वैश्वदेवी, उपजाति, शालिनी, पुष्पिताग्रा, मत्तमयूर हृरिणी, वैतालीय, प्रहर्षिणी, स्वागता, द्रुतविलम्बित, मालिनी, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, जलधरमाला, रथोद्धता, वंशपत्रपतित, इन्द्रवज्रा, जलोल्द्धत-गति, अनुकूला, तोटक, प्रमिताक्षरा, अउप छन्दसिक, शिखरिणी, अपटवक्त्र, प्रमुदितवदना, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, उद्‌गता और इन्द्रवंशा इस प्रकार ३१ प्रकारके छन्दोंकी योजना की है।

इस द्विसन्धानकाव्यमें व्याकरण, राजनीति, सामुद्रिकशास्त्र, लिपिशास्त्र, गणितशास्त्र एवं ज्योतिष आदि विषयोंकी चर्चाएँ भी उपलब्ध हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

पदप्रयोगे निपुणं विनामे सन्धौ विसर्गे च कृतावधानम्।
सर्वेषु शास्त्रेषु जितश्रमं तच्चापेऽपि न व्याकरणं मुमोच ॥३।३६

अर्थात् शब्द और धातुरूपोंके प्रयोगमें निपुण, षत्व-णत्वकरण, सन्धि तथा विसर्गका प्रयोग करनेमें न चूकनेवाले और समस्त शास्त्रोंके परिश्रम-पूर्वक अध्येता वैयाकरण व्याकरणके अध्ययनके समान चापविद्यामें भी बना व्याकरणको नहीं छोड़ते हैं।

विश्लेषणं वेत्ति न सन्धिकार्यं स विग्रहं नैव समस्तसंस्थाम्।
प्रागेव वेवेक्ति न तद्धितार्थं शब्दागमे प्राथमिकोऽभवद्धा ॥५।१०

व्याकरणशास्त्रका प्रारम्भिक छात्र विसन्धि—सन्धिहीन अलग-अलग पदोंका प्रयोग करता है, क्योंकि सन्धि करना नहीं जानता है। केवल विग्रह-पदोंका अर्थ करता है। कृदन्त-आदि अन्य कार्य नहीं जानता है और न तद्धित ही जानता है। आगमोंका अभ्यासी भी कार्यविशेषका विचारक बन व्यापक सामान्यको भूलता है, विवाद करता है। समन्वय नहीं सोचता है और अभ्यु-दय-निःश्रेयसके लिये प्रयत्न नहीं करता है।

धनञ्जयने व्याकरणशास्त्रका पूर्ण पाण्डित्य प्रदर्शित करनेके लिये अपवाद-सूत्र और विधिसूत्रोंका भी कथन किया है—

विशेषसूत्रैरिव पत्रिभिस्तयोः पदातिरुत्सर्ग इवाहृतोऽखिलः ॥६।१०

व्याकरणमें दो प्रकारके सूत्र हैं—अपवादसूत्र या विशेषसूत्र और उत्सर्ग-सूत्र या विधिसूत्र। विधिसूत्रों द्वारा शब्दोंका नियमन किया जाता है और अपवादसूत्रों द्वारा नियमका निषेध कर, अन्य किसी विशेषसूत्रकी प्रवृत्ति दिखलायी जाती है। व्याकरणमें धातुपाठ, गणपाठ, उणादि और लिङ्गानु-शासन ये चार खिलपाठ भी होते हैं। धातुपाठ व्याकरणका एक उपयोगी अंश हैं, सार्थ धातु-परिज्ञानके अभावमें व्याकरण अधूरा ही रहता है। जितने शब्दसमूहमें व्याकरणका एक नियम लागू होता है, उतने शब्दसमूहको गण कहते हैं। उणसूत्रका आरम्भ होनेसे उणादि कहलाते हैं। जिन शब्दोंकी सिद्धि व्याकरणके अन्य नियमोंसे नहीं होती है, वे शब्द उणादि सूत्रोंसे सिद्ध किये जाते हैं। लिङ्गानुशासन द्वारा शब्दोंके लिङ्गका निर्णय किया जाता है। इस प्रकार महाकवि धनञ्जयने व्याकरणशास्त्रके नियमोंका समावेश किया है।

सामुद्रिकशास्त्रमें भ्रू, नेत्र, नासिका, कपोल, कर्ण, ओष्ठ, स्कन्ध, बाहु, पाणि, स्तन, पार्श्व, उरु, जंघा और पाद इन १४ अंगोंमें समत्व रहना शुभ माना जाता है। धनञ्जयने महापुरुषोंके लक्षणोंमें उक्त अंगोंके समत्वकी चर्चा निम्न प्रकार की है—

चतुर्दशद्वन्द्वसमानदेहः सर्वेषु शास्त्रेषु कृतावतारः। ३।३२

अतएव द्विसन्धानमहाकाव्य शास्त्र और काव्य दोनों ही दृष्टियोंसे महत्त्व-पूर्ण है।

महाकवि असग

कवि द्वारा रचित शान्तिनाथचरितकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविके पिताका नाम पटुमति और माताका नाम वैरेति था। पिता धर्मात्मा मुनिभक्त थे। इन्हें शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त था। माता भी धर्मात्मा थी। इस दम्पतिके असग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। असगके पुत्रका नाम जिनाप था। यह भी जैन धर्ममें अनुरक्त शूरवीर, परलोकभीरू एवं द्विजातिनाथ होनेपर भी पक्षपातरहित था। इस पुण्यात्माकी व्याख्यानशीलता एवं पौराणिक श्रद्धाको देखकर कवित्वशक्तिसे हीन होनेपर भी गुरुके आग्रहसे उसके द्वारा यह प्रबन्धकाव्य लिखा गया है। प्रशस्तिमें कविने अपने गुरुका नाम नागनन्दि आचार्य लिखा है। ये व्याकरण, काव्य और जैन शास्त्रोंके ज्ञाता थे।

स्थितिकाल

महाकवि असगने श्रीनाथके राज्यकालमें चोलराज्यकी विभिन्न नगरियोंमें

आठ ग्रन्थों की रचना की है। 'वर्द्धमानचरित' की प्रशस्तिके अनुसार इस काव्य-का रचनाकाल शक संवत् ९१० (ई० ९८८) है। कविने अपने गुरुका नाम नागनन्दि बताया है। इन नागनन्दिका परिचय श्रवणबेलगोलाके अभिलेखोंमें पाया जाता है। १०८ वें अभिलेखसे अवगत होता है कि नागनन्दि नन्दिसंघके आचार्य थे, पर नन्दिसंघकी पट्टावलीमें नागनन्दिके सम्बन्धमें कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। अतएव वर्द्धमानचरितके आधारपर कविका समय ई० सन् की १०वीं शताब्दी है।

कविकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं—वर्द्धमानचरित और शान्तिनाथचरित। बर्द्धमानचरित महाकाव्यमें १८ सर्ग हैं और तीर्थंकर महावीरका जीवनवृत्त अंकित है। इस ग्रन्थका सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदासपार्श्वनाथ फड़कुलेने सन् १९३१में किया है। मारीच, विश्वनन्दि, अश्वग्रीव, त्रिपृष्ठ, सिंह, कपिष्ठ, हरिषेण, सूर्यप्रभ इत्यादि के इतिवृत्त पूर्वजन्मोंकी कथाके रूपमें अंकित किये गये हैं।

महाकवि असगने अपने इस **वर्द्धमानचरितकी** कथावस्तु उत्तरपुराणके ७४वें पर्वसे ग्रहण की है। इस पुराणमें मधुवनमें रहनेवाले पुरुरवा नामक भिल्लराजसे वर्द्धमानके पूर्वभवोंका आरम्भ किया गया है। कविने उत्तरपुराणकी कथावस्तुको काव्योचित बनानेके लिये कांट-छांट भी की हैं। असगने पुरुरवा और मरीचके आख्यानको छोड़ दिया है और श्वेतातपत्रा नगरीके राजा नन्दिवर्द्धनके आँगनमें पुत्र-जन्मोत्सवसे कथानकका प्रारम्भ किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह आरम्भस्थल बहुत रमणीय है। उत्तरपुराणकी कथावस्तुके प्रारम्भिक अंशको घटितरूपमें न दिखलाकर पूर्वभवावलिके रूपमें मुनिराजके मुखसे कहलवाया है। इस प्रकार उत्तरपुराणकी कथावस्तु अक्षुण्ण रह गयी है।

कथावस्तुके गठनमें कवि असगने इस बातकी पूर्ण चेष्टा की है कि पौराणिक कथानक काव्यके कथानक बन सकें। घटनाओंका पूर्वापर क्रमनिर्धारण, उनमें परस्पर सम्बधस्थापन एवं उपाख्यानोंका यथास्थान संयोजन मौलिक रूपमें घटित हुआ है। प्रसंगोंको व्यर्थ वर्णनविस्तार नहीं दिया है। मार्मिक प्रसंगोंके नियोजनके हेतु विश्वनन्दि और नन्दन के जीवनमें लोकव्यापक नाना सम्बन्धोंके कल्याणकारी सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जना की है। पिता-पुत्रका स्नेह नन्दिवर्द्धन और नन्दनके जीवनमें, भाईका स्नेह विश्वभूति और विशाखभूतिके जीवनमें, पति-पत्नीका स्नेह त्रिपृष्ठ और स्वयंप्रभाके जीवनमें, विविध भोगविलास हरिषेणके जीवनमें एवं वीरता और चमत्कारोंका वर्णन त्रिपृष्ठके जीवनमें अभिव्यक्त कर जीवनकी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। कथानियोजनमें योग्यता,

अवसर, सत्कार्यता और रूपाकृतिका पूरा ध्यान रखा गया है। अवान्तर कथाओंका प्रक्षेपण पूर्वभवावलिके रूपमें किया है। वर्द्धमानका जीवनविकास अनेक भवों—जन्मोंका लेखा-जोखा है। कर्मवादके भोक्ता नायक-नायिकाएँ मुनिराज द्वारा अपने विगत जीवनके इतिवृत्तको सुनकर विरक्ति धारण करते हैं। जीवनकी अनेक विषमताएँ कथावस्तुमें विकसित हुई हैं।

कविने रसानुरूप सन्दर्भ और अर्थानुरूप छन्दोंको योजना, जीवनके व्यापक अनुभवोंका विश्लेषण एवं वस्तुओंका अलंकृत चित्रण किया है। इस महाकाव्यका प्रतिनायक विशाखनन्दि है, जिसके साथ कई जन्मों तक विरोध चलता है। कवि असगने संगठित कथानकके कलेवरमें जीवनके विविध पक्षोंका उद्घाटन करनेके लिए वस्तु-व्यापार, प्रकृतिचित्रण, रसभावसंयोजन एवं अलंकारनियोजन किया है। २।४५में अनुप्रास, २।२७में यमक और ५।३५, २।७, ५।८, ६।३४, ६।६८, ७।८, ७।४१, ७।८५, ८।२६, ८।६७, ८।७५, ९।७, ९।१०, ९।२९, ९।३५, ९।३९, १०।२२, १०।२३, १०।२४, १२।१०, १२।११, १२।१६, १३।३८, १३।४५, १३।६१, १३।७३, १४।८, १४।९, १७।१५, १७।२१, एवं १८।६में श्लेषका प्रयोग हुआ है। १।४०में उपमा, ४।१०में उत्प्रेक्षा, १३।५८में रूपक, ५।३४में भ्रांतिमान, ५।११में अपह्नुति, १।४२में अतिशयोक्ति, १।४६में दृष्टान्त, १३।४६ में विभावना, १३।४४में अर्थान्तरन्यास, ५।७०में सन्देह, ५।२०में व्यतिकर, ३।९में विरोधाभास, ५।१३में परिसंख्य, १३।४में एकावली, ५।५४में स्वभावोक्ति ५।५५में सहोक्ति, ७।२१में विनोक्ति और १।६४में विशेषोक्ति अलंकार पाये जाते हैं।

छन्दोंमें उपजाति, वसन्ततिलका, शिखरिणी, वशंस्थ, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, अनुष्टुप्, मालभारिणी, मन्दाक्रान्ता, उपजाति, स्रगधरा, आख्यानकी, शालिनी, हरिणी, ललिता, रथोद्धता, स्वागता आदि प्रमुख हैं।

कविका '**शान्तिनाथचरित**' भी महाकाव्य है। इस काव्यमें १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथका जीवनवृत्त वर्णित है। कथावस्तुकी पृष्ठभूमिके रूपमें पूर्वभवावलि निबद्ध की गयी है। कथावस्तुको योजनामें कविको पूर्ण सफलता मिली है। सन्ध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, वन, सूर्य, नदी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, आदि वस्तुवर्णन सांगोपांग है। जीवनके विभिन्न व्यापार और परिस्थियोंमें प्रेम, विवाह, मिलन, स्वयंवर, सैनिक, अभियान, युद्ध, दोक्षा, नगरावरोध, विजय, उपदशसभा, राजसभा, दूतसंप्रेषण एवं जन्मोत्सवका चित्रण किया है।

रस, भाव, अलंकार और प्रकृति-चित्रणमें भी कविको सफलता मिली है। यह सत्य है कि वर्द्धमानचरितको अपेक्षा शान्तिनाथचरितमें अधिक पौराणि-

कताका समावेश हुआ है। श्रावक और श्रमण दोनों के आचारतत्त्व भी वर्णित हैं। इस काव्यका प्रकाशन मराठी अनुवाद सहित सोलापुरसे हो चुका है।

महाकवि हरिचन्द्र

महाकवि हरिचन्द्रका जन्म एक सम्पन्न परिवारमें हुआ था। इनके पिताका नाम आर्द्रदेव और माताका नाम रथ्यादेवी था। इनकी जाति कायस्थ थी, पर ये जैनधर्मावलम्बी थे। कविने स्वयं अपनेको अरहन्त भगवान्‌के चरण-कमलोंका भ्रमर लिखा है। इनके छोटे भाईका नाम लक्ष्मण था, जो इनका अत्यन्त आज्ञाकारी और भक्त था। कविने अपने धर्मशर्माभ्युदयकी प्रशस्तिमें लिखा है—

मुक्ताफलस्थितिरलंकृतिषु प्रसिद्ध—
स्तत्रार्द्रदेव इति निर्मलमूर्तिरासीत्।
कायस्थ एव निरवद्यगुणग्रहः स—
न्नेकोऽपि यः कुलमशेषमलंचकार ॥२॥
लावण्याम्बुनिधिः कलाकुलगृहं सौभाग्यसद्भाग्ययोः
क्रीडावेश्म विलासवासवलभीभूषास्पदं संपदाम्।
शौचाचारविवेकविस्मयमही प्राणप्रिया शूलिनः
शर्वाणीव पतिव्रता प्रणयिनी रथ्येति तस्याभवत् ॥३॥
अर्हत्पदाम्भोरुहचञ्चरीकस्तयोः सुतः श्रीहरिचन्द्र आसीत्।
गुरुप्रसादादमला बभूवुः सारस्वते स्रोतसि यस्य वाचः ॥४॥
भक्तेन शक्तेन च लक्ष्मणेन निर्व्याकुलो राम इवानुजेन।
यः पारमासादितबुद्धिसेतुः शास्त्राम्बुराशेः परमाससाद[1] ॥५॥

प्रसिद्ध नोमक वंशमें निर्मल मूर्तिके धारक आर्द्रदेव हुए, जो अलंकारोंमें मुक्ताफलके समान सुशोभित थे। वह कायस्थ थे। निर्दोष गुणग्राही थे और एक होकर भी समस्त कुलको अलंकृत करते थे। शिवके लिए पार्वतीके समान रथ्या नामक उनकी प्राणप्रिया थी, जो सौन्दर्यका समुद्र, कलाओंका कुलभवन, सौभाग्य और उत्तम भाग्यका क्रीड़ाभवन, विलासके रहनेकी अट्टालिका एवं सम्पदाओंके आभूषणका स्थान थी। पवित्र आचार, विवेक एवं आश्चर्यकी भूमि थी। उन दोनोंके अरहन्त भगवान्‌के चरणकमलोंका भ्रमर हरिचन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके वचन गुरुओंके प्रसादसे सरस्वतीके प्रवाहको

१. ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति—धर्मशर्माभ्युदय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३३, पृ० १७९।

समृद्ध बनाने वाले थे। उस हरिचन्दके एक लक्ष्मण नामका भाई था, जो उन्हें उतना ही प्रिय था, जितना रामको लक्ष्मण।

कविका वंश या गोत्र नोमक न होकर नेमक होना चाहिये, क्योंकि नेमक गोत्रका उल्लेख कालञ्जरके एक अभिलेखमें भी आया है—

"नेमकान्वयजेन्दकसुततेद्दुकेन भगवत्याः कारितमण्डपिका प्रसक्षेन तदभार्यया लक्ष्म्याः[1]"।

कविका उपनाम चन्द्र था। १२वीं शताब्दीमें धर्मशर्माभ्युदयका एक श्लोक जल्हणकी सूक्तिमुक्तावलीमें चन्द्रसूर्यके नामसे उपलब्ध[2] है। अतः कविका चन्द्र उपनाम सिद्ध होता है।

कविका जन्म कहाँ हुआ और उसने अपने इस ग्रन्थकी रचना कहाँ की, इसका निश्चित रूपमें परिचय प्राप्त नहीं है।

१०वीं से १२वीं शताब्दीके राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहासका अध्ययन करनेसे अवगत होता है कि गुजरात और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशोंमें चालुक्य, सोलंकी, राष्ट्रकूट, कलचुरी, शिलाहार आदि राजवंशोंका राज्य था। इनमेंसे प्रत्येकने जैनधर्मकी उन्नतिके लिये विशेष योगदान दिया। धर्मशर्माभ्युदयकी संघवी पाडा पुस्तकभंडारकी १७६ संख्यक प्रतिमें गुर्जर और विद्यापुर[3] देशका नाम आया है। विद्यापुर आधुनिक बीजापुर ही है। इस प्रतिको लिखनेवाले झंझाक हुम्बड़वंशीय थे। अतएव हरिचन्द्र बीजापुर अथवा गुजरातके पार्श्ववर्ती किसी प्रदेशके निवासी रहे होंगे।

हरिचन्द्रका व्यक्तित्व कवि और आचारशास्त्रके वेत्ताके रूपमें उपस्थित होता है। इन्होंने रघुवंश, कुमारसंभव, किरात, शिशुपालवध, चन्द्रप्रभचरित प्रभृति काव्यग्रन्थोंके साथ तत्त्वार्थसूत्र, उत्तरपुराण, रत्नकरण्डश्रावकाचार, उवासगदसा, सर्वार्थसिद्धि प्रभृति ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया था। दर्शन और काव्यके जो सिद्धान्त इनके द्वारा प्रतिपादित हैं, उनसे कविकी प्रतिभा और

---

१. एपिग्राफिक इन्डिका, पृ० २१०।

२. धर्मशर्माभ्युदयका २।४४ श्लोक जल्हण-सूक्तिमुक्तावली, पृ० १८५ में चन्द्रसूर्यके नामसे उपलब्ध है।

३. अथास्ति गुर्जरो देशो विख्यातो भुवनत्रये।
विद्यापुरं पुरं तत्र विद्याविभवसंभवम्॥ १७६ नं०की धर्मशर्माभ्युदयकी हस्तलिखित प्रति पाटणसे प्राप्त।

विद्वत्ताका अनुमान सहजमें किया जा सकता है। रस-ध्वनिको कविने सिद्धान्त-रूपमें स्वीकार किया है।

कवि भाग्यवादी है। उसे स्वप्न, निमित्त और ज्योतिषपर विश्वास है। हरिचन्द्रका अभिमत है कि कार्य प्रारम्भ करनेके पहले व्यक्तिको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। बिना विचारे कार्य करनेवाले मनुष्यका निस्सन्देह उस प्रकार नाश होता है, जिस प्रकार तक्षसर्पसे मणि ग्रहण करनेके इच्छुक मनुष्यका होता[1] है। इस कथनसे यह स्पष्ट है कि हरिचन्द्र विवेकशील और सोच-समझकर कार्य करने वाले थे। स्त्रियोंके सम्बन्धमें कविकी अच्छी धारणा नहीं है। कवि स्वाभिमानी, व्रत और चरित्रनिष्ठ है। धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पूके अध्ययनसे कविके औदार्य आदि गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है।

स्थितिकाल

महाकवि हरिचन्द्रके स्थितिकालके सम्बन्धमें कई विचारधाराएँ उपलब्ध हैं। यतः हरिचन्द्र नामके कई कवि हुए हैं। प्रथम हरिचन्द नामके कवि चरक-संहिताके टीकाकारके रूपमें उपलब्ध होते हैं। इनका समय अनुमानतः ई० प्रथम शती है। माधवनिदानकी मधुकोशी व्याख्यामें हरिचन्द्र और भट्टारक हरिचन्द्रके नाम आये हैं[2]। बाणभट्टने[3] हर्षचरितके प्रारम्भमें भट्टारक हरि-चन्द्रका उल्लेख किया है। राजशेखरकी काव्यमीमांसा[4] और[5] कर्पूरमंजरीमें भी हरिचन्द्रका नामोल्लेख मिलता है। गउडवहोमें[6] भास, कालिदास और सुबन्धुके साथ हरिचन्द्रका भी नामनिर्देश प्राप्त होता है।

स्व० पण्डित नाथूराम प्रेमीने धर्मशर्माभ्युदयकी पाटणकी एक पांडुलिपिका

---

१. धर्म० १८।२८।

२. अत्र केचित् हरिचन्द्रादिभिर्व्याख्यातं पाठान्तरं पठन्ति—मधुकोशी व्या० माधव-निदान, पृ० १७, पंक्ति १०।

३. पदबन्धोज्ज्वलोहारी रम्यवर्णपदस्थितिः।
भट्टारकहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥ हर्षचरित् १।१३, पृ० १०।

४. हरिचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालयाम।— का० मी० अ० १०, पृ० १३५ (बिहार राष्ट्रभाषा संस्करण १९५४)।

५. विदूषकः— (सक्रोधम्)—उज्जुअंता किण भणइ अम्हाणं चेडिया हरिअंद—णंदिअंद-कोट्टिसहाल्पहुदीणं वि पुरदो सुकइ त्ति ?—कर्पूरमंजरी, चौखम्बा संस्करण, १९५५ जवनिकान्तर, पृ० २९।

६. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्स रहुआरे।
सोवन्धवे अवंधम्मि हरिचंदे अ आणंदो ॥ ८००, गउडवहो, भाण्डारकर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना, १९२७ ई०।

उल्लेख किया है, जिसका प्रतिलिपिकाल वि० सं १२८७ (ई० सन् १२३०) है। प्रतिके अन्तमें लिखा है—

"१२८७ वर्षे हरिचन्द्रकविविरचितधर्मशर्माभ्युदयकाव्यपुस्तिका श्रीरत्नाकरसूरिआदेशेने कीर्त्तिचन्द्रगणिना लिखितमिति भद्रम्[1]"।

अतः इतना स्पष्ट है कि ई० सन् १२३० के पहले ही महाकवि हरिचन्द्रका धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य लिखा जा चुका था।

श्री पंडित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने अपने—'महाकवि हरिचन्दका समय'[2] शीर्षक निबन्धमें धर्मशर्माभ्युदयके ऊपर वीरनन्दिके चन्द्रप्रभचरित और हेमचन्द्रके 'योगसार' का प्रभाव बताया है। आपने लिखा है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' में भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतिचारोंमें १५ खरकर्मोंका निर्देश किया है तथा अनर्थदंडव्रतके स्वरूपमें खरकर्मोंके त्यागको स्थान दिया है। अतः हरिचन्दका समय वि० सं० १२०० के लगभग होना चाहिये।' इस कथनका समर्थन प्रो० अमृतलालजी शास्त्रीने "महाकवि हरिचन्द" (जैन सन्देश शोधांक ७) शीर्षक निबन्धमें किया है। आपने श्री पंडित कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीके प्रमाणोंको दुहराते हुए कुछ नवीन तथ्य भी प्रस्तुत किये, पर मूल तर्क दोनों महानुभावोंके समान हैं।

इस सम्बन्धमें विचारणीय यह है कि क्या खरकर्मोंका त्याग हेमचन्द्रके पूर्ववर्ती साहित्यमें भी मिलता है? 'उवासगदसा'के आनन्द अध्ययन और 'समराइच्चकहा' में भी खरकर्मोंके त्यागका विवेचन है। अतः कवि हरिचन्दने खरकर्मोंके त्यागका कथन हेमचन्द्रके आधार पर न कर 'उवासगदसा' आदि ग्रन्थोंके आधार पर किया होगा। अतएव हेमचन्द्रके पश्चात् हरिचन्द्रका समय माननेका कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है।

प्रो० के० के० हिण्डीकीने हरिचन्द्रको वादीभसिंहके पश्चात् (ई० सन् १०७५-११७५)का कवि माना[3] है, पर वादीभसिंहके समयके सम्बन्धमें पर्याप्त मतभेद है। स्व० श्रीनाथूरामजी[4] प्रेमी वादीभसिंहका काल वि० सं०की १२वीं शती; श्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री[5] अकलंकदेवके समकालीन और श्री डॉ०

१. पाटणके संघवीपाड़ाके पुस्तकभण्डारकी सूची, गायकवाड़ सीरिजसे प्रकाशित, बड़ौदा १९३७ ई०।

२. अनेकान्त, वर्ष ८, किरण ११-१२, पृ० ३७६-३८२।

३. भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित जीवन्धरचम्पूका अंग्रजी प्राक्कथन (Foreword), पृ० २३।

४. जैनसाहित्य और इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ३२१।

५. 'न्यायकुमुदचन्द्र', प्रथम भाग, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, १९३८, प्रस्ता० पृ० १११।

प्रो० दरबारीलालजी कोठिया[1] नवम शती मानते हैं। अतः श्रीहिण्डीकी द्वारा निर्णीत समय भी निर्विवाद नहीं है।

धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पूके आन्तरिक परीक्षण करनेपर कुछ तथ्य इस प्रकार उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर महाकवि हरिचन्द्रके समयका निर्णय किया जा सकता है। धर्मशर्माभ्युदय (२।४)में 'आसेचनक' शब्दका प्रयोग आया है। इस शब्दका प्रयोग बाणभट्टने भी हर्षचरितके प्रथम उच्छ्वासमें किया[2] है। 'नैषधचरित', में हंस दमयन्तीसे कहता है—सुन्दरी ! अकेला चन्द्रमा तुम्हारे नयनोंको किसी प्रकार तृप्ति नहीं दे सकता। अतः नलके मुखचन्द्रके साथ वह तुम्हारे लोचनोंका आसेचनक[3] बने। स्पष्ट है कि 'आसेचनक' शब्द हर्षचरितसे विकसित होकर धर्मशर्माभ्युदयमें आया और वहाँसे नैषधमें गया। नैषधमहाकाव्यपर धर्मशर्माभ्युदयका और भी कई तरहका प्रभाव[4] है।

'धर्मशर्माभ्युदय'का नाम सम्भवतः पार्श्वाभ्युदयके अनुकरण पर रखा गया होगा। संस्कृत-काव्योंमें अभ्युदयनामान्तवाले काव्योंमें सम्भवतः जिनसेनका पार्श्वाभ्युदय सबसे प्राचीन है। ९वीं शतीके महाकवि शिवस्वामीका 'कप्फिणाभ्युदय'[5] महाकाव्य है, जिसका कथानक बौद्धोंके अवदानोंसे ग्रहण किया गया है। १३वीं शतीमें दाक्षिणात्य कवि वेंकटनाथ वेदान्तदेशिकने २४ सर्ग प्रमाण 'यादवाभ्युदय'[6] महाकाव्य लिखा है। जिसपर अप्पय दीक्षितने (ई० १६००) एक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। महाकवि आशाधरने 'भरतेश्वराभ्युदय' नामक काव्य लिखा है। अतः यह निष्कर्ष निकालना दूरकी कौड़ी बैठाना नहीं है कि पार्श्वाभ्युदयके अनुकरण पर महाकवि हरिचन्द्रने अपने इस महाकाव्यका नामकरण किया हो।

महाकवि हरिचन्द्रके समय-निर्णयके लिये एक अन्य प्रमाण यह भी ग्रहण किया जा सकता है कि जीवन्धरचम्पूकी कथावस्तु कविने 'क्षत्रचूड़ामणि'से ग्रहण की है। श्रीकुप्पुस्वामीने अपना अभिमत प्रकट किया है कि 'जीवकचिन्ता-

---

१. स्याद्वादसिद्धि, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, सन् १९५० ई०, प्रस्तावना, पृ० २५-२७।

२. आसेचनक-दर्शनं····नप्तारम्—हर्षचरित, चौखम्बा संस्करण, प्रथम उच्छ्वास।

३. *नैषधमहाकाव्य, चौखम्बा संस्करण,* ३।११।

४. नैषधपरिशीलन, डॉ० चण्डीप्रसाद शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, सन्, १९६० ई०।

५. पंजाब विश्वविद्यालय सीरीज, संख्या २६, ई० सन् १९३७में लाहौरसे प्रकाशित।

६. संस्कृत-साहित्यका इतिहास, वाचस्पति, गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०, पृ० ८६८।

मणि'में जीवन्धरचरित मिलता है, वह 'क्षत्र-चूड़ामणि'से प्रभावित है। इस आधार पर कवि हरिचन्द्रका समय १०वीं शताब्दीके लगभग होना चाहिये।

महाकवि असग द्वारा विरचित 'वर्द्धमानचरितम्'के अध्ययनसे ऐसा प्रतीत होता है कि कविने कई सन्दर्भ और उत्प्रेक्षाएँ जीवन्धरचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय और चन्द्रप्रभचरितसे ग्रहण की हैं। उक्त काव्यग्रन्थोंके तुलनात्मक अध्ययनसे यह सहजमें ही स्पष्ट हो जाता है कि हरिचन्द्रने असगका अनुकरण नहीं किया, बल्कि महाकवि असगने ही हरिचन्द्रका अनुकरण किया है। यथा—

प्रथिता विभाति नगरी गरीयसी धुरि यत्र रम्यसुदतीमुखाम्बुजम्।
कुरुविन्दकुण्डलविभाविभावितं प्रविलोक्य कोपमिव मन्यते जनः॥

जीवन्धर०, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, ६।२५

यत्रोल्लसत्कुण्डलपद्मरागच्छायावतंसारुणिताननेन्दुः।
प्रसाद्यते किं कुपितेति कान्ता प्रियेण कामाकुलितो हि मूढः॥

वर्धमानचरितम्, सोलापुर, ई० १९३१, १।२६

सोदामिनीव जलदं नवमञ्जरीव चूतद्रुमं कुसुमसंपदिवाद्यमासम्।
ज्योत्स्नेव चन्द्रमसमच्छविमेव सूर्यं तं भूमिपालकमभूषयदायताक्षी॥

जीवन्धरचम्पू १।२७

विद्युल्लतेवाभिनवाम्बुवाहं चुतद्रुमं नूतनमञ्जरीव।
स्फुरत्प्रभेवामलपद्मरागं विभूषयामास तमायताक्षी॥

वर्धमानचरितम् १।१४

हरिचन्द्रने धर्मशर्माभ्युदयके दशम सर्गमें विन्ध्यगिरिकी प्राकृतिक सुषमाका वर्णन किया है। महाकवि असगने इस सन्दर्भके समान ही उत्प्रेक्षाओंद्वारा विजयार्द्धका वर्णन किया है। अतः वर्द्धमानचरितके रचयिता असगने हरिचन्द्रका अनुसरण कर अपने काव्यको लिखा है। इसी प्रकार 'नेमिनिर्वाण' काव्यके रचयिता वाग्भट्टने भी 'धर्मशर्माभ्युदय'का अनेक स्थानोंपर अनुसरण किया है। 'धर्मशर्माभ्युदय'के पञ्चम सर्गका नेमिनिर्वाणके द्वितीय सर्गपर पूरा प्रभाव है। असगका समय ई० सन् ९८८ है। अतः हरिचन्द्रका समय इनके पूर्व मानना चाहिये।

श्रीमती स्वप्ना[1] बनर्जीने धर्मशर्माभ्युदयकी हस्तलिखित प्रतिके लेखक विशालकीर्ति और शब्दार्णवचन्द्रिकामें आये हुए बिशालकीर्तिको एक मानकर हरिचन्दका समय १२वीं शतीका अन्तिम पाद सिद्ध किया है। पर धर्मशर्माभ्युदयके अन्तरंग अनुशीलनसे हरिचन्द्रका समय ई० सन्‌की १०वीं शती है।

१. मरुधरकेसरी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, जोधपुर, पृ० ३९५।

रचनाएँ

महाकवि हरिचन्द्रकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. धर्मशर्माभ्युदय

२. जीवन्धरचम्पू

कुछ विद्वान 'जीवन्धरचम्पू' को 'धर्मशर्माभ्युदय' के कर्त्ता हरिचन्द्रकी कृति नहीं मानते हैं, पर यह ठीक नहीं है। यतः इन दोनों रचनाओंमें भावों, कल्पनाओं और शब्दोंकी दृष्टिसे बहुत साम्य है। जीवन्धरचम्पूमें पुण्यपुरुष जीवन्धरका चरित वर्णित है। कथावस्तु ११ लम्भोंमें विभक्त है तथा कथा-वस्तुका आधार वादीभसिंहकी गद्यचिन्तामणि एवं क्षत्रचूड़ामणि ग्रन्थ हैं। यों तो इस काव्यपर उत्तरपुराणका भी प्रभाव है, पर कथावस्तुका मूलस्रोत उक्त काव्यग्रन्थ ही हैं। गद्य-पद्यमयी यह रचना काव्यगुणोंसे परिपूर्ण है। द्राक्षारसके समान मधुर काव्य-रस प्रत्येक व्यक्तिको प्रभावित करता है।

धर्मशर्माभ्युदय

इस महाकाव्यमें १५वें तीर्थंकर धर्मनाथका चरित वर्णित है। इसकी कथावस्तु २१ सर्गोंमें विभाजित है। धर्म-शर्म—धर्म और शान्तिके अभ्युदय-वर्णनका लक्ष्य होनेसे कविने प्रस्तुत महाकाव्यका यह नामकरण किया है। कविने इस महाकाव्यकी कथावस्तु उत्तरपुराणसे ग्रहण की है। इसमें महा-काव्योचित धर्मका समावेश करनेके लिये स्वयंवर, विन्ध्याचल, षड्ऋतु, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा, सन्ध्या, चन्द्रोदय एवं रतिक्रीड़ाके वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं। उत्तरपुराणमें धर्मनाथके पिताका नाम भानु बताया है, पर धर्म-शर्माभ्युदयमें महासेन। माताका नाम भी सुप्रभाके स्थान पर सुव्रता आया है। कविने कथावस्तुको पूर्वभवावलीके निरूपणसे आरम्भ न कर वर्तमान जीवनसे प्रारम्भ की है। रघुवंशके दिलीपके समान महासेन भी पुत्र-चिन्तासे आक्रान्त हैं। वे सोचते हैं कि जिसने जीवनमें पुत्रस्पर्शका अलौकिक आनन्द प्राप्त नहीं किया, उसका जन्म-धारण व्यर्थ है। अतः महासेन नगरके बाहरी उद्यान-में पधारे हुए ऋद्धिधारी प्रचेतानामक मुनिके निकट पहुँचते हैं। वे उनके समक्ष पुत्र-चिन्ता व्यक्त करते हैं। प्रसंगवश मुनिराज धर्मनाथकी पूर्वभवावली बतलाते हैं और छह महीनेके उपरान्त तीर्थंकर-पुत्र होनेकी भविष्यवाणी करते हैं। कविने धीरोदात्तनायकमें काव्योचित्त गुणोंका समावेश करनेपर भी पौराणिकताकी रक्षा की है। वनमें तीर्थंकर धर्मनाथके पहुँचते ही, षड्ऋतुओंके फल-पुष्प एकसाथ विकसित हो जाते हैं। धर्मनाथके निवासके लिये कुवेरने

सुन्दर नगरका निर्माण किया, जन्मके दश अतिशयोंको काव्यका रूप देनेका प्रयास किया है। और नायकमें अपूर्व सामर्थ्यका चित्रण करते हुए कहा है कि मार्ग चलनेके कारण क्लांत न होनेपर भी रुढ़िवश उन्होंने स्नान किया और मार्गका वेश बदला[1]। इस प्रकार कविने नायकको पौराणिकतासे ऊपर उठानेकी चेष्टा की है किन्तु तीर्थंकरत्वकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके कारण पूर्णतया उस सीमाका अतिक्रममण नहीं हो सका है।

इस महाकाव्यमें इतिवृत्त, वस्तुव्यापार, संवाद और भावाभिव्यञ्जन इन चारोंका समन्वित रूप पाया जाता है। प्रकृति-चित्रणमें भी कविको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ उदाहरणार्थ गंगाका चित्रण प्रस्तुत किया जाता है—

> तापापनोदाय सदैव भूत्रयीविहारखेदादिव पाण्डुरद्युतिम्।
> कीर्तेर्वयस्यामिव भर्तुरग्रतो विलोक्य गङ्गां बहु मेनिरे नराः ॥९।६८॥
> शम्भोर्जटाजूटदरीविवर्तनप्रवृत्तसंस्कार इव क्षितावपि।
> यस्याः प्रवाहः पयसां प्रवर्तते सुदुस्तरावर्ततरङ्गभङ्गुरः ॥९।६९॥

सभी लोग अपने समक्ष गंगानदीको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। यह नदी जगत्-संतापको दूर करनेके लिये त्रिभुवनमें विहार करनेके खेदसे ही मानों श्वेत हो रही है। यह नदी स्वामी धर्मनाथकी त्रिभुवन-व्यापिनी कीर्त्तिकी सहेली-सी जान पड़ती है। जिस गंगानदीके जलका प्रवाह पृथ्वीमें भी अत्यन्त दुस्तर आवर्तों और तरंगोंसे कुटिल होकर चलता है, मानों महादेवजीके जटाजूटरूपी गुफाओंमें संचार करते रहनेके कारण उसे वैसा संस्कार ही पड़ गया है।

वह गंगा निकटवर्ती वनोंकी वायुसे उठती हुई तरंगों द्वारा फैलाये हुए फेनसे चिह्नित है। अतः ऐसी जान पड़ती है मानों हिमालयरूपी नागराजके द्वारा छोड़ी हुई काँचुली ही हो।

इस प्रकार कविने गंगाके श्वेत जलका चित्रण विभिन्न उत्प्रेक्षाओं द्वारा सम्पन्न किया है। उसे रत्नसमूहोंसे खचित पृथ्वीकी करधनी बताया है अथवा आकाशसे गिरी हुई मोतियोंकी माला ही बताया है। इसी प्रकार कविने सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रजनी, वन आदिका भी जीवन्त चित्रण किया है। कवि रानी सुव्रताके ओष्ठका चित्रण करता हुआ कहता है—

> प्रवाल-बिम्बीफल-विद्रुमादयः समा बभूवुः प्रभयैव केवलम्।
> रसेन तस्यास्त्वधरस्य निश्चितं जगाम पीयूषरसोऽपि शिष्यताम् ॥२।५१॥

---

१. धर्मशर्माभ्युदय ११।४, ११।५।

किसलय, बिम्बीफल और विद्रुम आदि केवल वर्णकी अपेक्षा ही उसके ओष्ठके समान थे। रसकी अपेक्षा तो अमृत भी निश्चय ही उसका शिष्य बन चुका था। नासिका, कर्ण, मुख, पयोधर, कटि, भ्रू, ललाट प्रभृतिका अपूर्व चित्रण किया है। सुव्रताकी भौंहोंका निरूपण करता हुआ कवि कहता है—

> इमानालोचनगोचरां विधिर्विधाय सृष्टेः कलशार्पणोत्सुकः।
> लिलेख वक्त्रे तिलकाङ्कमध्ययोर्भ्रुवोर्मिषादोमिति मङ्गलाक्षरम् ॥२।५५॥

इस निरवद्य सुन्दरीको बनाकर विधाता मानों सृष्टिके ऊपर कलशा रखना चाहता था। इसीलिये तो उसने तिलकसे चिन्हित भौंहोंके बहाने उसके मुख पर 'ओम्' यह मंगलाक्षर लिखा था। इस प्रकार कविने प्रत्येक उत्प्रेक्षाको तर्क-संगत बनाया है।

'धर्मशर्माभ्युदय'में शृंगार और शान्तरसका अपूर्व चित्रण हुआ है। कविने भाव-सौंदर्यकी व्यापक परिधिमें कल्पना, अनुभूति, संवेग, भावना, स्थायी और संचारी भावोंका समावेश किया है। रसमें भावोंकी उमड़-घुमड़ है, पर सीमा-का अतिक्रमण नहीं। वात्सल्यभावका चित्रण भी षष्ठ सर्गमें आया है। अलं-कार-योजनाकी दृष्टिसे ७।२२, २०।१०, ७।४२, ११।१२, १४।३६, १७।७६ आदि में उपमा, १।४५ में उत्प्रेक्षा, ३।३० में अर्थान्तरन्यास, १७।८० में असंगति, ४।२० में उल्लेख, ४।२२में तद्गुण, १०।१९में भ्रान्तिमान्, २।६०में व्यतिरेक, १७।४५ में विरोधाभास और २।३०में परिसंख्या अलंकार वर्तमान हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेषकी अपेक्षा ११वां और १९वां सर्ग प्रसिद्ध है। हरिचन्द्रने १९वें सर्गमें एकाक्षर और द्व्यक्षर चित्रकी योजना की है। १९।८५ में सर्वतोभद्र, १९।९३ मुरजबन्ध, १९।७८ में गोमूत्रिका, १९।८४ में अर्द्धभ्रम, १९।९८ षोड़षदल पद्मबन्ध एवं १९।१०१ में चक्रबन्ध आये हैं। निश्चयतः यह काव्य उदात्त शैलीमें लिखा गया है और इसमें उत्कृष्ट काव्यके सभी गुण विद्यमान हैं। इस काव्यके अन्तिम सर्गमें जैनाचार और जैनदर्शनके तत्त्व वर्णित हैं।

वाग्भट्ट प्रथम

वाग्भट्टनामके कई विद्वान् हुए हैं। 'अष्टांगहृदय' नामक आयुर्वेदग्रन्थके रचयिता एक वाग्भट्ट हो चुके हैं। पर इनका कोई काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। जैन सिद्धान्त भवन आराकी विक्रम संवत् १७२७ की लिखी हुई प्रतिमें निम्न लिखित पद्य प्राप्त होता है—

> अहिच्छत्रपुरोत्पन्नप्राग्वाटकुलशालिनः।
> छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥८७॥

यह प्रशस्ति-पद्य श्रवणबेलगोलाके स्व० पं० दौर्बलिजिनदास शास्त्रीके पुस्तकालयवाली नेमिनिर्वाण-काव्यकी प्रतिमें भी प्राप्य है।[१]

प्रशस्ति-पद्यसे अवगत होता है कि वाग्भट्ट प्रथम प्राग्वाट—पोरवाड़ कुलके थे और इनके पिताका नाम छाहड़ था। इनका जन्म अहिछत्रपुरमें हुआ था। महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझाके अनुसार नागौरका पुराना नाम नागपुर या अहिछत्रपुर है।[२] महाभारतमें जिस अहिछत्रका उल्लेख है वह तो वर्तमान रामनगर (जिला बरेली उत्तरप्रदेश) माना जाता है।[३] 'नायाधम्मकहाओ'में भी अहिछत्रका निर्देश आया है,[४] पर यह अहिछत्र चम्पाके उत्तर-पूर्व अवस्थित था। विविधतीर्थंकल्पमें अहिछत्रका दूसरा नाम शंखवती नगरी आया है। इस प्रकार अहिछत्रके विभिन्न निर्देशोंके आधार पर यह निर्णय करना कठिन है कि वाग्भट्ट प्रथमने अपने जन्मसे किस अहिछत्रको सुशोभित किया था। डॉ० जगदीशचन्द्र जैनने अहिछत्रकी अवस्थिति रामनगरमें मानी है।[५] किन्तु हमें इस सम्बन्धमें ओझाजीका मत अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है और कवि वाग्भट्ट प्रथमका जन्मस्थान नागौर ही जँचता है। कवि दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है, यतः मल्लिनाथको कुमाररूपमें नमस्कार किया है।[६]

स्थितिकाल—वाग्भट्ट प्रथमने अपने काव्यमें समयके सम्बन्धमें कुछ भी निर्देश नहीं किया है। अतः अन्तरंग प्रमाणोंका साक्ष्य ही शेष रह जाता है। वाग्भटालंकारके रचयिता वाग्भट्ट द्वितीयने अपने लक्षणग्रंथमें 'नेमिनिर्वाण' काव्यके छठे सर्गके "कान्तारभूमौ" (६।४६) "जहुर्वसन्ते" (६।४७) और "नेमिविशालनयनयोः" (६।५१) पद्य ४।३५, ४।३९ और ४।३२ में उद्धृत किये हैं। नेमिनिर्वाणके सातवें सर्गका "वरणः प्रसूनविकरावरणा" २९वाँ पद्य भी वाग्भटालंकारके चतुर्थ परिच्छेदके ४०वें पद्यके रूपमें आया है। अतः नेमिनिर्वाण-काव्यकी रचना वाग्भटालंकारके पूर्व हुई है। वाग्भटालंकारके रचयिता वाग्भट्ट द्वितीयका समय जयसिंहदेवका राज्यकाल माना जाता है। प्रो० 'बूलर'ने अनहिलवाड़के चालुक्य राजवंशकी जो वंशावली अंकित की है उसके

१. जैनहितैषी, भाग ११, अंक ७-८, पृ० ४८२।

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, काशी, भाग २, पृ० ३२९।

३. महाभारत, गीताप्रेस, ५।१९।३०।

४. नायाधम्मकहाओ १५।१५८।

५. Life in Ancient India as depicted in the Jain Canons, Bombay, 1947, pp. 264–265.

६. नेमिनिर्वाण काव्य १।१९।

अनुसार जयसिंहदेवका राज्यकाल ई० सन् १०९३-११४३ ई० सिद्ध होता है। आचार्य हेमचन्द्रके द्वयाश्रय-काव्यसे सिद्ध होता है कि वाग्भट्ट चालुक्यवंशीय कर्णदेवके पुत्र जयसिंहके अमात्य थे। अतएव 'नेमिनिर्वाण'की रचना ई० ११७९के पूर्व होनी चाहिए।

'चन्द्रप्रभचरित', 'धर्मशर्माभ्युदय' और 'नेमिनिर्वाण' इन तीनों काव्योंके तुलनात्मक अध्ययनसे यह ज्ञात होता है कि 'चन्द्रप्रभचरित'का प्रभाव 'धर्मशर्माभ्युदय' पर है और 'नेमिनिर्वाण' इन दोनों काव्योंसे प्रभावित है। धर्मशर्माभ्युदयके "श्रीनाभिसूनोश्चिरमङ्घ्रियुग्मनखेन्दवः" (धर्म० १।१) का नेमिनिर्वाणके "श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः" (नेमि० १।१) पर स्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार "चन्द्रप्रभं नौमि यदीयमाला नूनं" (धर्म० १।२) से "चन्द्रप्रभाय प्रभवे त्रिसन्ध्यं तस्मै" (नेमि० १।८) पद्य भी प्रभावित है। अतएव नेमिनिर्वाणका रचनाकाल ई० सन् १०७५-११२५ होना चाहिए।

रचनाएँ

वाग्भट्ट प्रथमका व्यक्तित्व श्रद्धालु और भक्त कविका है। उन्होंने अपने महनीय व्यक्तित्व द्वारा जैनकाव्यको विशेषरूपसे प्रभावित किया है। इनके द्वारा लिखित एक ही रचना उपलब्ध है, वह है "नेमिनिर्वाणकाव्य"। यह महाकाव्य १५ सर्गोंमें विभक्त है और तीर्थंकर नेमिनाथका जीवनचरित अंकित है। चतुर्विंशति तीर्थंकरोंके नमस्कारके पश्चात् मूलकथा प्रारम्भ की गई है। कविने नेमिनाथके गर्भ, जन्म, विवाह, तपस्या, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकोंका निरूपण सीधे और सरलरूपमें किया है। कथावस्तुका आधार हरिवंशपुराण है। नेमिनाथके जीवनकी दो मर्मस्पर्शी घटनाएँ इस काव्यमें अंकित हैं। एक घटना राजुल और नेमिका रैवतक पर पारस्परिक दर्शन और दर्शनके फलस्वरूप दोनोंके हृदयमें प्रेमाकर्षणकी उत्पत्तिरूपमें है। दूसरी घटना पशुओंका करुण क्रन्दन सुन विलखती राजुल तथा आर्द्रनेत्र हाथजोड़े उग्रसेनको छोड़ मानवताकी प्रतिष्ठार्थ वनमें तपश्चरणके लिए जाना है। इन दोनों घटनाओंकी कथावस्तुको पर्याप्त सरस और मार्मिक बनाया है। कविने वसन्तवर्णन, रैवतकवर्णन, जलक्रीड़ा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सुरत, मदिरापान प्रभृति काव्यविषयोंका समावेश कथाको सरस बनानेके लिए किया है। कथावस्तुके गठनमें एकान्वितिका सफल निर्वाह हुआ है। पूर्व भवावलिके कथानकको हटा देने पर भी कथावस्तुमें छिन्न-भिन्नता नहीं आती है। यों तो यह काव्य अलंकृत शैलीका उत्कृष्ट उदाहरण है; पर कथागठनकी अपेक्षा इसमें कुछ शैथिल्य भी पाया जाता है।

कविने इस काव्यमें नगरी, पर्वत, स्त्री-पुरुष, देवमन्दिर, सरोवर आदिका सहज-ग्राह्य चित्रण किया है। रसभाव-योजनाकी दृष्टिसे भी यह काव्य सफल है। शृंगार, रौद्र, वीर और शान्त रसोंका सुन्दर निरूपण आया है। विरहकी अवस्थामें किये गये शीतलोपचार निरर्थक प्रतीत होते हैं। एकादश सर्गमें वियोग-शृंगारका अद्भुत चित्रण आया है।

अलंकारोंमें २।४२ में अनुप्रास, १।९ में यमक, १।११ में श्लेष, ३।४० और ३।४१ में उपमा, ४।५ में रूपक, १।१८ में विरोधाभास, १०।१० में उदाहरण, ८।८० में सहोक्ति, १।४२ में परिसंख्या और १।४१ में समासोक्ति प्राप्त हैं।

उपजाति, वसंततिलका, मालिनी, रुचिरा, हरिणी, पुष्पिताग्रा, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीड़ित, पृथ्वी, रथोद्धता, अनुष्टुप, वंशस्थ, द्रुतविलम्बितं, आर्या, शशिवदना, बन्धूक, विद्युन्माला, शिखरिणी, प्रमाणिका, हँसरुत, रुक्मवती, मत्ता, मणिरंग, इन्द्रवज्रा, भुजंगप्रयात, मन्दाक्रान्ता, प्रमिताक्षरा, कुसुमविचित्रा, प्रियम्बदा, शालिनी, मौक्तिकदाम, तामरस, तोटक, चन्द्रिका, मंजुभाषिला, मत्तमयूर, नन्दिनी, अशोकमालिनी, स्रग्विणी, शरमाला, अच्युत, शशिकला, सोमराजि, चण्डवृष्टि, प्रहरणकलिका, नित्यभ्रमरविलासिता, ललिता और उपजाति छन्दोंका प्रयोग किया गया है। छन्दशास्त्रकी दृष्टिसे इस काव्यका सप्तम सर्ग विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस छन्दका नामांकन किया है कविने उसी छन्दमें पद्यरचना भी प्रस्तुत की है। कवि कल्पनाका धनी है। सन्ध्याके समय दिशाएँ अन्धकारद्रव्यसे लिप्त हो गई थीं और रात्रिमें ज्योत्स्नाने उसे चन्दन-द्रव्यसे चर्चित कर दिया; पर अब नवीन सूर्यकिरणोंसे संसार कुंकुम द्वारा लीपा जा रहा है।

सन्ध्यागमे तततमोमृगनाभिपङ्कैर्नक्तं च चन्द्ररुचिचन्दनसंचयेन।
यच्चर्चितं तदधुना भुवनं नवीनभास्वत्करौघघुसृणैरुपलिप्यते स्म ॥३।१५॥
मग्नां तमःप्रसरपंकनिकायमध्याद् गामुद्धरन्सपदि पर्वततुङ्गशृङ्गाम्।
प्राप्योदयं नयति सार्थकतां स्वकीयमहसां पतिः करसहस्रमसावखिन्नः ॥३।१६॥

अन्धकाररूपी कीचड़में फँसी हुई पृथ्वीका पर्वतरूपी उन्नत शृंगोंसे उद्धार करते हुए उदयको प्राप्त सूर्यदेवने हजारों किरणोंको फैलाकर सार्थक नाम प्राप्त किया है। इस प्रकार काव्य-मूल्योंकी दृष्टिसे यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रकाशन काव्यमालासिरीजमें ५६ संख्यक ग्रंथके रूपमें हुआ है।

चामुण्डराय

चामुण्डराय 'वीरमार्त्तण्ड', 'रणरंगसिंह', 'समरधुरन्धर' और 'वैरिकुल-

कालदण्ड' होने पर भी कलाकार एवं कलाप्रिय है। बाहुबलिचरितमें इनकी माताका नाम कालिकादेवी बतलाया गया है। इनके पिता तथा पूर्वज गंग-वंशके श्रद्धाभाजन राज्याधिकारी रहे होंगे। वे महाराज मारसिंह तथा राज-मल्ल द्वितीयके प्रधानमंत्री थे। इनका वंश ब्रह्मक्षत्रियवंश बताया गया है।[1] चामुण्डरायपुराणसे यह भी अवगत होता है कि इनके गुरुका नाम अजितसेन था। अभिलेखोंसे यह भी निर्विवाद ज्ञात होता है कि चामुण्डराय जन्मना जैन थे। नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्त्तीने अपने गोम्मटसारमें—'सो अजियसेणणाहो जस्स गुरु'[2] कहकर अजितसेनको उनका दीक्षागुरु बताया है। मंत्रीवर चामुण्डरायने आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्त्तीसे भी शिक्षा प्राप्त की थी।

चामुण्डराय अपनी मातृभाषा कन्नड़के साथ संस्कृतमें भी पारंगत विद्वान् थे। वे इन दोनों भाषाओंमें साधिकार कविता एवं लेखनकार्य करते थे।

उनकी उपाधियोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि खेडगयुद्धमें बज्ज्वलदेवको हरानेसे उन्हें 'समरधुरन्धर'की उपाधि; नोलम्बयुद्धमें गोलूरके मैदानमें उन्होंने जो वीरता दिखलाई उसके उपलक्ष्यमें उन्हें 'वीरमार्त्तण्डकी उपाधि', उच्चंगीके किलेमें राजादित्यसे वीरतापूर्वक लड़नेके उपलक्ष्यमें 'रणरंगसिंह'की उपाधि; बागेयूरके किलेमें त्रिभुवनवीरको मारने और गोविन्दारको उसमें न घुसने देनेके उपलक्ष्यमें 'वैरिकुलकालदण्ड'; राजाकामके किलेमें राजवास सिवर, कुड़ामिक आदि योद्धाओंको हरानेके कारण उन्हें 'भुजविक्रम'की उपाधि; अपने छोटे भाई नागवर्माके घातक मदुराचयको मार डालनेके उपलक्ष्यमें 'समर-परशुराम'की उपाधि एवं एक कबीलेके मुखियाको पराजित करनेके उपलक्ष्यमें 'प्रतिपक्षराक्षस'की उपाधि प्राप्त हुई थी।

नैतिक दृष्टिसे 'सम्यक्त्वरत्नाकर', 'शौचाभरण', 'सत्ययुधिष्ठिर' और 'सुभटचूड़ामणि' उपाधियाँ प्राप्त थीं।

चामुण्डराय गोम्मट, गोम्मटराय, राय और अण्णके नामोंसे भी प्रसिद्ध था। संभवत: गोम्मट इनका घरेलू नाम था। इसीसे बाहुबलीकी मूर्त्ति गोम्म-टेश्वर कही जाने लगी। विन्ध्यगिरिपर्वतपर इस मूर्त्तिके अतिरिक्त उन्होंने एक त्यागद ब्रह्मदेवनामक स्तम्भ भी बनवाया था। इस पर चामुण्डरायकी एक प्रशस्ति भी अंकित है। इन्होंने चन्द्रगिरि पर एक मन्दिरका निर्माण कराया, जो चामुण्डरायवसतिके नामसे प्रसिद्ध है। चामुण्डरायपुराण एवं अन्य

१. "जगत्पवित्रब्रह्मक्षत्रियवंशभागे", चा० पु०, पृ० ५।

२. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ९६६।

प्राप्त सामग्रीसे यह भी ज्ञात होता है कि इन्हें एक पुत्र भी था, जिसका नाम जिनदेवन था। उसने बेलगोलामें जिनदेवका एक मन्दिर बनवाया था। चामुण्डरायका परिवार धर्मात्मा और श्रद्धालु था।

स्थितिकाल

चामुण्डरायने अपने 'त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराण'में कुछ प्रमुख आचार्यों और ग्रंथकारोंका निर्देश किया है तथा कुछ संस्कृत और प्राकृतके पद्य भी उद्धृत किये हैं। गृद्धपिच्छाचार्य, सिद्धसेन, समन्तभद्र, पूज्यपाद, कवि परमेश्वर, वीरसेन, गुणभद्र, धर्मसेन, कुमारसेन, नागसेन, चन्द्रसेन, आर्यनन्दि, अजितसेन, श्रीनन्दि, भूतबलि, पुष्पदन्त, गुणधर, नागहस्ती, यतिवृषभ, उच्चारणाचार्य, माघनन्दि, शामकुण्ड, तेम्बुलूराचार्य, एलाचार्य, शुभनन्दि, रविनन्दि और जिनसेन आचार्योंका उल्लेख चामुण्डरायपुराणमें पाया जाता है। इन उल्लेखोंसे चामुण्डरायके समयपर प्रकाश पड़ता है। चामुण्डरायने अपने महापुराणको शक सं० ९०० (ई० सन् ९७८) में पूर्ण किया है। इन्होंने श्रवणबेलगोलामें बाहुबलि स्वामीकी मूर्त्तिको प्रतिष्ठा ई० सन् ९८१में की है।[1]

ब्रह्मदेवस्तम्भपर ई० सन् ९७४का एक अभिलेख पाया जाता है। गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके समीप ही द्वारपालकोंकी बाँयी ओर प्राप्त एक लेखसे, जो ११८० ई० का है, मूर्त्तिके सम्बन्धमें निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :—

भगवान बाहुबलि पुरुके पुत्र थे। उनके बड़े भाई द्वन्द्वयुद्धमें उनसे हार गये। लेकिन भगवान बाहुबलि पृथ्वीका राज्य उन्हें ही सौंपकर तपस्या करने चले गये। और उन्होंने कर्मपर विजय प्राप्त की। पुरुदेवके ज्येष्ठ पुत्र भरतने पोदनपुरमें बाहुबलिकी ५२५ धनुष ऊँची एक मूर्त्ति बनवाई। कुछ कालोपरान्त उस स्थानमें, जहाँ बाहुबलिकी मूर्त्ति थी, असंख्य कुक्कुट सर्प उत्पन्न हुए। इसीलिए उस मूर्त्तिका नाम कुक्कुटेश्वर भी पड़ा। कुछ समय बाद यह स्थान साधारण मनुष्योंके लिए अगम्य हो गया। उस मूर्त्तिमें अलौकिक शक्ति थी। उसके तेजःपूर्ण नखोंको जो मनुष्य देख लेता था वह अपने पूर्व जन्मकी बातें जान जाता था। जब चामुण्डरायने लोगोंसे इस जिनमूर्त्तिके बारेमें सुना, तो उन्हें उसे देखनेकी उत्कट अभिलाषा हुई। जब वे वहाँ जानेको तैयार हुए। तो उनके गुरुओने उनसे कहा कि वह स्थान बहुत दूर और अगम्य है। इस पर चामुण्डरायने इस वर्त्तमान मूर्त्तिका निर्माण करवाया।

इस अभिलेखसे यह स्पष्ट है कि ई० सन् ११८० के पूर्व चामुण्डरायका

---

१. जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग ६, किरण ४, पृ० २६१।

यश व्याप्त हो चुका था और वे गोम्मटेशमूर्तिके प्रतिष्ठापकके रूपमें मान्य हो चुके थे। अतएव संक्षेपमें चामुण्डरायका समय ई० सन् की दशम शताब्दी है।

रचना

चामुण्डराय संस्कृत और कन्नड़ दोनों ही भाषाओंमें कविता लिखते थे। इनके द्वारा रचित चामुण्डरायपुराण और चारित्रसार ये दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। चामुण्डरायपुराणका अपर नाम त्रिषष्ठिपुराण है। यह ग्रन्थ कन्नड़गद्यका सबसे प्रथम ग्रन्थ है। यद्यपि कविपरम्परासे आगत लेखकके प्रसाद और माधुर्यकी झलक इस ग्रन्थमें पर्याप्त है तो भी स्पष्ट है कि यह कृति सर्वसाधारणके उपदेशके लिए लिखी गई है। यद्यपि इसमें पम्पका उपयुक्त शब्द-अर्थ-चयन, रण्णका लालित्य तथा बाणका शब्द-अर्थ-माधुर्य नहीं है, तो भी इसका अपना सौष्ठव निराला है। इसमें जातक कथाकी-सी झलक मिलती है। यों तो इस ग्रन्थमें ६३ शलाकापुरुषोंकी कथा निबद्ध की गई है; पर साथमें आचार और दर्शनके सिद्धान्त भी वर्णित हैं।

चारित्रसार

आचारशास्त्रका संक्षेपमें स्पष्टरूपसे वर्णन इस ग्रन्थमें गद्यरूपमें प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथका प्रकाशन माणिकचन्द्रग्रंथमालाके नवम ग्रन्थके रूपमें हुआ है। आरम्भमें सम्यक्त्व और पंचाणुव्रतोंका वर्णन है। संकल्पपूर्वक नियम करनेको व्रत कहते हैं। इसमें सभी प्रकारके सावद्योंका त्याग किया जाता है। व्रतीको निःशल्य कहा है। लिखा है—

'अभिसंधिकृतो नियमो व्रतमित्युच्यते, सर्वसावद्यनिवृत्त्यसंभवादणुव्रतं द्वीन्द्रियादीनां जंगमप्राणिनां प्रमत्तयोगेन प्राणव्यपरोपणान्मनोवाक्कायैश्च निवृत्तः। अगारीत्याद्यणुव्रतम्।'

व्रतोंके अतिचार, रात्रिभोजनत्याग व्रतका कथन भी अणुव्रतकथनप्रसंगमें आया है।

द्वितीय प्रकरणमें सप्तशीलोंका कथन आया है। साथ ही उनके अतिचार भी वर्णित हैं। अनर्थदण्डव्रतका कथन करते हुए अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिंसाप्रदान और अशुभश्रुति ये पाँच उसके भेद कहे हैं। जय, पराजय, बन्ध, बध, अगच्छेद, सर्वस्वहरण आदि किस प्रकार हो सके, इसका मनसे चिन्तन करना अपध्यान है। पापोपदेशके क्लेशवाणिज्य, तिर्यग्वाणिज्य, बधकोपदेश और आरम्भकोपदेश भेद हैं। क्लेशवाणिज्यका कथन करते हुए लिखा है कि दासी-दास आदि जिस देशमें सुलभ हों उनको वहांसे लाकर अर्थलाभके हेतु बेंचना क्लेशवाणिज्य है। गाय-भैंस आदि पशुओंको अन्यत्र ले जाकर बेचना तिर्यग्-

वाणिज्य है। पक्षीमार और शिकारियोंको किसी प्रदेशविशेषमें रहने वाले पशुपक्षियोंकी सूचना देना बधकोपदेश है। अधिक मिट्टी, जल, पवन, वनस्पति आदिके आरम्भका उपदेश देना आरम्भकोपदेश है। अनर्थदण्डव्रतका और भी अधिक विश्लेषण किया है तथा विष, शस्त्र आदिके व्यापारको अनर्थदण्डके अन्तर्गत माना है। इस प्रकार सात शीलोंका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। गृहस्थके इज्या, वार्त्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम, तप इन छः षट्कर्मोंका कथन भी आया है। इज्याका अर्थ अर्हत्पूजासे है। इसके नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, अष्टाह्निक और इन्द्रध्वज भेद हैं। वार्त्तासे अर्थ असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि आजीविकावृत्तियोंसे है। दत्तिका अर्थ दान है। इसके दयादत्ति, पात्रदत्ति, समदत्ति और सकलदत्ति ये चार भेद हैं। सात शीलोंके पश्चात् मारणान्तिक सल्लेखनाका कथन आया है।

तृतीय प्रकरणमें षोडशभावनाका निरूपण है। दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्तिकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवात्सल्य इन सोलह भावनाओंके स्वरूप हैं।

चतुर्थ प्रकरणमें अनगारधर्मका वर्णन है। आरंभमें दश धर्मोंकी व्याख्या की गयी है। अनन्तर तीन गुप्ति और पाँच समितियोंका कथन आया है। संयमी निर्ग्रंथोंके पाँच भेद बतलाये हैं—पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक। इनके स्वरूप और भेद-प्रभेद भी वर्णित हैं। परीषहजयप्रकरणमें २२ परिषहोंका उल्लेख करनेके अनन्तर किस गुणस्थानवालेको किन परिषहोंको सहन करना चाहिए, इसका वर्णन आया है। अन्तिम प्रकरण तप-वर्णनका है। इसी संदर्भमें द्वादश अनुप्रेक्षाओंका वर्णन भी आया है। तपका लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

'रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तपः। अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यत इति तपः। तद्द्विविधम्, बाह्यमाभ्यन्तरञ्च। अनशनादिबाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्परप्रत्ययलक्षणत्वाच्च बाह्यं, तत् षड्विधं, अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदात्। आभ्यन्तरमपि षड्विधं, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदात्।'[1]

इस संदर्भमें उग्र तपश्चरणसे प्राप्त ऋद्धियोंका कथन भी आया है। इस

१. चारित्रसार, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला, पृष्ठ ५९।

प्रकार चामुण्डरायने चारित्रसारग्रंथमें श्रावक और मुनि दोनोंके आचारका वर्णन किया है। चामुण्डरायका संस्कृत और कन्नड़ गद्यपर अपूर्व अधिकार है। उन्होंने ग्रंथान्तरोंके पद्य भी प्रमाणके लिये उपस्थित किये हैं।

अजितसेन

अलंकारचिन्तामणिनामक ग्रंथके रचयिता अजितसेननामके आचार्य हैं। इन्होंने इस ग्रंथके एक संदर्भमें अपने नामका अंकन निम्न प्रकार किया है—

'अत्र एकाद्यङ्कक्रमेण पठिते सति अजितसेनेन कृतश्चिन्तामणिः'[1]

डॉ० ज्योतिप्रसादजीने[2] अजितसेनका परिचय देते हुए लिखा है कि अजितसेन यतीश्वर दक्षिणदेशान्तर्गत तुलुवप्रदेशके निवासी सेनगण पोरारिगच्छके मुनि संभवतया पार्श्वसेनके प्रशिष्य और पद्मसेनके गुरु महासेनके सधर्मा या गुरु थे।

अजितसेनके नामसे शृंगारमञ्जरीनामक एक लघुकाय अलंकार-शास्त्रका ग्रंथ भी प्राप्त है। इस ग्रन्थमें तीन परिच्छेद हैं। कुछ भंडारोंकी सूचियोंमें यह ग्रंथ 'रायभूप'की कृतिके रूपमें उल्लिखित है। किन्तु स्वयं ग्रंथकी प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि इस शृंगारमंजरीकी रचना आचार्य अजितसेनने शीलविभूषणा रानी बिट्ठलदेवीके पुत्र और 'राय' नामसे विख्यात सोमवंशी जैन नरेश कामरायके पढ़नेके लिए संक्षेपमें की है।[3]

एक प्रतिके अन्तमें 'श्रीमदजितसेनाचार्यविरचिते........' तथा दूसरीके अन्तमें 'श्रीसेनगणाग्रगण्यतपोलक्ष्मीविराजितसेनदेवयतीश्वरविरचितः' लिखा है। निःसन्देह विजयवर्णीने राजा कामरायके निमित्त शृंगारार्णवचन्द्रिका ग्रंथ लिखा है। सोमवंशी कदम्बोंकी एक शाखा वंगवंशके नामसे प्रसिद्ध हुई। दक्षिण कन्नड़ जिले तुलुप्रदेशके अन्तर्गत बंगवाडिपर इस वंशका राज्य था। १२वीं-१३वीं शतीमें तुलुदेशीय जैन राजवंशोंमें यह वंश सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुए था। इस वंशके एक प्रसिद्ध नरेश वीर नरसिंहवंगराज (११५७-१२०८ ई०)के पश्चात् चन्द्रशेखरवंग और पाण्ड्यवंगने क्रमशः राज्य किया। तदनन्तर पाण्ड्यवंगकी बहन रानी बिट्ठलदेवी (१२३९-४४ ई०) राज्यकी संचालिका रही। और सन् १२४५में इस रानी बिट्ठलाम्बाका पुत्र उक्त कामराय प्रथम वंगनरेन्द्र राजा हुआ। विजयवर्णीने उसे गुणार्णव और राजेन्द्रपूजित लिखा है।

---

१. अलंकारचिन्तामणि, शोलापुर संस्करण, पृ० ४४, पंक्ति ९।

२. जैन संदेश, शोधांक २, नवम्बर २०, १९५४, पृ० ७९।

३. जैन ग्रंथ-प्रशस्ति-संग्रह, भाग १, वीरसेवा मन्दिर, दिल्ली, पृ० ८९-९१।

डॉ० ज्योतिप्रसादजीने ऐतहासिक दृष्टिसे अजितसेनके समयपर विचार किया है। उन्होंने अजितसेनको अलंकारशास्त्रका वेत्ता, कवि और चिन्तक विद्वान् बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि अजितसेन सेनसंघके आचार्य थे। शृंगारमञ्जरीके कर्त्ताने भी अपनेको सेनगण-अग्रणी कहा है। अतः इन दोनों ग्रंथोंके कर्त्ता एक ही अजितसेन प्रतीत होते हैं।

स्थितिकाल

अजितसेनने अलंकारचिन्तामणिमें समन्तभद्र, जिनसेन, हरिचन्द्र, वाग्भट्ट, अर्हद्दास आदि आचार्योंके ग्रंथोंके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। हरिचन्द्रका समय दशम शती, वाग्भट्टका ११वीं शती और अर्हद्दासका १३वीं शतीका अन्तिम चरण है। अतएव अजितसेनका समय १३वीं शती होना चाहिये। डॉ० ज्योतिप्रसादजीका कथन है कि अजितसेनने ई० सन् १२४५के लगभग शृंगारमञ्जरीकी रचना की है, जिसका अध्ययन युवकनरेश कामराय प्रथम वंगनरेन्द्रने किया। और उसे अलंकारशास्त्रके अध्ययनमें इतना रस आया कि उसने ई० सन् १२५०के लगभग विजयकीर्तिके शिष्य विजयवर्णीसे शृंगारार्णवचन्द्रिकाकी रचना कराई। आश्चर्य नहीं कि उसने अपने आदिविद्यागुरु अजितसेनको भी इसी विषयपर एक अन्य विशद ग्रंथ लिखनेको प्रेरणा की हो और उन्होंने अलंकारचिन्तामणिके द्वारा शिष्यकी इच्छा पूरी की हो।

अर्हद्दासके मुनिसुव्रतकाव्यका समय लगभग १२४० ई० है और इस काव्य ग्रंथकी रचना महाकवि पं० आशाधरके सागारधर्मामृतके बाद हुई है। आशाधरने सागरधर्मामृतको ई० सन् १२२८में पूर्ण किया है। अतएव अलंकारचिन्तामणिका रचनाकाल ई० १२५०–६०के मध्य है।

रचनाएँ

अजितसेनकी दो रचनाएँ 'शृंगारमञ्जरी' और 'अलंकारचिन्तामणि' हैं। अलंकारचिन्तामणि पाँच परिच्छेदोंमें विभाजित है। प्रथम परिच्छेदमें १०६ श्लोक हैं। इसमें कवि-शिक्षापर प्रकाश डाला गया है। कवि-शिक्षाकी दृष्टिसे यह ग्रंथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्यनिर्माताको कितने विषयोंका वर्णन किस रूपमें करना चाहिए, इसकी सम्यक् विवेचना की गई है। नदी, वन, पर्वत, सरोवर, आखेट, ऋतु आदिके वर्णनमें किन-किन तथ्योंको स्थान देना चाहिए, इसपर प्रकाश डाला गया है। काव्य आरंभ करते समय किन शब्दोंका प्रयोग करना मंगलमय है, इसपर भी विचार किया गया है। यह प्रकरण अलंकारशास्त्रकी दृष्टिसे विशेष उपादेय है।

द्वितीय परिच्छेदमें शब्दालंकारके चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमक ये चार भेद बतलाकर चित्रालंकारका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है।

तृतीय परिच्छेदमें वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमकका विस्तारसहित निरूपण आया है।

चतुर्थ परिच्छेदमें उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मृति, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान्, अपह्नव, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, अतिशय, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, व्याजोक्ति, मीलन, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण, विरोध, विशेष, अधिक, विभाव, विशेषोक्ति, असंगति, चित्र, अन्योन्य, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निर्दशना, व्यतिरेक, श्लेष, परिकर, आक्षेप, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतस्तुति, पर्यायोक्ति, प्रतीप, अनुमान, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, यथासंख्य, अर्थापत्ति, परिसंख्या, उत्तर, विकल्प, समुच्चय, समाधि, भाविक, प्रेम, रस्य, ऊर्जस्वी, प्रत्यनीक, व्याघात, पर्याय, सूक्ष्म, उदात्त, परिवृत्ति, कारणमाला, एकावली, माला, सार, संसृष्टि और संकर इन ७० अर्थालंकारोंका स्वरूप वर्णित है।

पञ्चम परिच्छेदमें नव रस, चार रीतियाँ, द्राक्षापाक और शय्यापाक शब्दका स्वरूप, शब्दके भेद—रूढ़, यौगिक और मिश्र, वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्यार्थ, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, सारोपा लक्षणा और साध्यवसाना लक्षणा, कौशिकी, आर्यभटी, सात्त्वती और भारती वृत्तियाँ, शब्दचित्र, अर्थ-चित्र, व्यंग्यार्थके परिचायक संयोगादि गुण, दोष और अन्तमें नायक-नायिका भेद-प्रभेद विस्तार-पूर्वक निरूपित हैं।

वक्रोक्ति अलंकारका कथन दो संदर्भोमें आया है तृतीय परिच्छेद और चतुर्थ परिच्छेद। इसमें पुनरुक्तिकी शंका नहीं की जा सकती है, यतः वक्रोक्ति शब्द शक्तिमूलक और अर्थशक्तिमूलक होता है। तृतीय परिच्छेदमें शब्दशक्तिमूलक और चतुर्थ परिच्छेदमें अर्थशक्तिमूलक वक्रोक्ति निरूपित है।

इस अलंकारग्रंथमें नाटकसम्बन्धी विषय और ध्वनिसम्बन्धी विषयोंको छोड़ शेष सभी अलंकारशास्त्रसम्बन्धी विषयोंका कथन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—लक्षण और लक्ष्य—उदाहरण। लक्षणसम्बन्धी सभी पद्य अजितसेनके द्वारा विरचित हैं और उदाहरणसम्बन्धी श्लोक महापुराण, जिनशतक, धर्मशर्माभ्युदय और मुनिसुव्रत-काव्य आदि ग्रन्थोंसे लिये हैं। इसकी सूचना भी ग्रन्थकारने निम्नलिखित पद्यमें दी है—

अत्रोदाहरणं पूर्वपुराणादिसुभाषितम् ।
पुण्यपूरुषसंस्तोत्रपरं स्तोत्रमिदं ततः ॥ ५ ॥

अपने मतकी पुष्टिके लिए 'वाग्भटालंकार'के लक्षण और उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। इनका निरूपण 'उक्तंच' लिखकर किया है।

शब्दालंकारोंके वर्णनकी दृष्टिसे यह ग्रंथ अद्वितीय है। विषयोंका विशद वर्णन प्रत्येक पाठकको यह अपनी ओर आकृष्ट करता है।

विजयवर्णी

विजयवर्णीने 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' नामक ग्रंथकी रचना कर अलंकार-शास्त्रके विकासमें योगदान दिया है। इनके व्यक्तिगत जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं है। ग्रन्थप्रशस्ति और पुष्पिकासे यह ज्ञात होता है कि वे मुनीन्द्र विजयकीर्त्तिके शिष्य थे। एक दिन बातचीतके क्रममें वंगवाडीके कामरायने इनसे कविताके विभिन्न पहलुओंकी व्याख्या प्रस्तुत करनेका आग्रह-किया। राजाकी प्रार्थनापर इन्होंने 'अलंकारसंग्रह' अपरनाम 'शृंगारार्णव-चन्द्रिका'की रचना की।

इस रचनामें विजयवर्णीने विभिन्न विषयोंपर विचार करते हुए अलंकार, अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण लिखे हैं। उदाहरणोंमें कामरायकी प्रशंसा की गयी है। रचनाकी प्रस्तावनामें विजयवर्णीने कर्णाटकके कवियोंकी कविताओंके संदर्भ दिये हैं। इन संदर्भोंके अध्ययनसे इस तथ्यपर पहुँचते हैं कि विजयवर्णीने गुणवर्मन आदि कवियोंकी रचनाओंका अध्ययन किया था। वे राजा कामरायके व्यक्तिगत सम्पर्कमें थे।

ग्रन्थके आरम्भमें लिखा है—

"श्रीमद्विजयकीर्तीन्दोः सूक्तिसंदोहकौमुदी।
मदीयचित्तसंतापं हृत्वानन्दं दद्यात्परम् ॥१।४॥
श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ।
मदीयचित्तकासारे स्थेयात् संशुद्धधीजले ॥१।५॥
गुणवर्मादिकर्नाटकवीनां सूक्तिसंचयः ।
वाणीविलासं देयात्ते रसिकानन्ददायिनम् ॥१।७॥"

विजयवर्णीने अपनी प्रशस्तिमें आश्रयदाता कामरायका निर्देश किया है। इन्हें स्याद्वादधर्ममें चित्त लगानेवाला और सर्वजन-उपकारक बताया है।

ई० सन् ११५७में वंगवाडीपर वीर नरसिंह शासन करता था। उसका एक भाई पाण्ड्यराज था। चन्द्रशेखर वीर नरसिंहका पुत्र था और यह १२०८

ई० में सिंहासनासीन हुआ था और उसका छोटा भाई पाण्ड्यप्प ई० सन् १२२४में राज्यपर अभिषिक्त हुआ था। उनकी बहन बिट्ठलदेवी ई० सन् १२३९में राज्यप्रतिनिधि नियुक्त की गयीं। बिट्ठलदेवीका पुत्र ही कामराय था, जो ई० सन् १२६४में राज्यासन हुआ। इतिहास बतलाता है कि सोमवंशी कदम्बोंकी एक शाखा वंगवंशके नामसे प्रसिद्ध थी और इस वंशका शासन दक्षिण कन्नड जिलेके अन्तर्गत वंगवाडीपर विद्यमान था। वीर नरसिंह वंग-राजने ई० सन् ११५७से ई० सन् १२०८ तक शासन किया। इसके पश्चात् चन्द्रशेखरवंग और पाण्ड्यवंगने ई० सन् १२३९ तक राज्य किया। पाण्ड्य-वंगकी बहन रानी बिट्ठलदेवी ई० सन् १२३९से ई० सन १२४४ तक राज्या-सीन रहीं। तत्पश्चात् रानी बिट्ठलदेवी अथवा बिट्ठलाम्बाका पुत्र कामराय वंगनरेन्द्र हुआ। 'विजयवर्णी'ने उसे गुणार्णव और 'राजेन्द्रपूजित' लिखा है। प्रशस्तिमें बताया है—

"स्याद्वादधर्मपरमामृतदत्तचित्तः
सर्वोपकारिजिननाथपदाब्जभृङ्गः।
कादम्बवंशजलराशिसुधामयूखः
श्रीरायवंगनृपतिर्जगतीह जीयात् ॥
कीर्तिस्ते विमला सदा वरगुणा वाणी जयश्रीपरा
लक्ष्मीः सर्वहिता सुखं सुरसुखं दानं विधानं महत्।
ज्ञानं पीनमिदं पराक्रमगुणस्तुङ्गो नयः कोमलो
रूपं कान्ततरं जयन्तनिभ भो श्रीरायभूमीश्वर ॥"[१]

कामरायको वर्णीने पाण्ड्यवंगका भागिनेय बताया है—

'तस्य श्रीपाण्ड्यवङ्गस्य भागिनेयो गुणार्णवः।
विट्ठलाम्बामहादेवीपुत्रो राजेन्द्रपूजितः ॥'[२]

विजयवर्णीके समयका निश्चय करनेके लिए 'शृंगारार्णवचन्द्रिका'का प्रताप-रुद्रयशोभूषण, शृंगारार्णव और अमृतनन्दिके अलंकारसंग्रहके साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' विषय और प्रति-पादनशैलीकी दृष्टिसे 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' और 'अलंकारसंग्रह'से बहुत प्रभावित है। अथवा यह भी संभव है कि इन दोनों ग्रंथोंको शृंगारार्णवचन्द्रि-काने प्रभावित किया हो। डॉ० पी० वी० काणेने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण'का

---

१. शृंगारार्णवचन्द्रिका, दशम परिच्छेद, पद्यसंख्या १९५ एवं १९७।
२. वही, प्रथम परिच्छेद, पद्यसंख्या १६।

रचनाकाल १४वीं शती माना है और श्रीबालकृष्णमूर्त्तिने अमृतानन्दिका १३वीं शती निर्धारित किया है। पर सी० कुन्हनराजा अमृतानन्द योगीका समय १४वीं शतीका प्रथम अर्द्धांश मानते हैं। इस प्रकार 'शृंगारार्णवचन्द्रिका'का रचनाकाल १३वीं शती माना जा सकता है।

वंगरायकी जैसी प्रशंसा कविने की है उससे भी यही ध्वनित होता है कि विजयवर्णी वंगनरेश कामरायका समकालीन है। कामरायके आश्रयमें रहकर उनकी प्रार्थनासे ही शृंगारार्णवचन्द्रिकाका प्रणयन किया गया है।

रचना

विजयवर्णीकी शृंगारार्णवचन्द्रिका नामक एक ही रचना प्राप्त होती है। विजयवर्णीने पूर्वशास्त्रोंका आश्रय ग्रहण कर ही इस अलंकारग्रन्थको लिखा है। उन्होंने व्याख्यात्मक एवं परिचयात्मक पद्यपंक्तियाँ मौलिकरूपमें लिखी हैं। विषयके अध्ययनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कविने परम्परासे प्राप्त अलंकारसम्बन्धी विषयोंको ग्रहण कर इस शास्त्रकी रचना की है। कविकी काव्यप्रतिभा सामान्य प्रतीत होती है। वह स्थान-स्थानपर यतिभंग दोष करता चला गया है। यद्यपि विषयवस्तुकी अपेक्षा यह ग्रंथ साहित्यदर्पणादि ग्रन्थोंकी अपेक्षा सरल और सरस है तो भी पूर्व कवियोंका ऋण इसपर स्पष्टतः झलकता है।

शृंगारार्णवचन्द्रिका दश परिच्छेदोंमें विभक्त है—

१. वर्णगणफलनिर्णय, २. काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३. रसभावनिर्णय- ४. नायकभेदनिर्णय, ५. दसगुणनिर्णय, ६. रीतिनिर्णय, ७. वृत्तिनिर्णय, ८. शय्याभागनिर्णय, ९. अलंकारनिर्णय और १०. दोषगुणनिर्णय।

प्रथम परिच्छेदमें मंगलपद्यके पश्चात् कदम्बवंशका सामान्य परिचय दिया गया है और बताया गया है कि कामरायको प्रार्थनासे विजयवर्णीने अलंकार-शास्त्रका निरूपण किया। काव्यकी परिभाषाके पश्चात् पद्य, गद्य और मिश्र ये तीनों काव्यके भेद वर्णित हैं। इस अध्यायका नाम वर्णगणफलनिर्णय है। अतः नामानुसार वर्ण और गणका फल बतलाया गया है। किस वर्णसे काव्य आरम्भ होनेपर सुखप्रद होता है और किस वर्णसे काव्य आरम्भ होनेपर दुःखप्रद होता है, इसका कथन आया है। लिखा है—

अकारादिक्षकारान्ता वर्णास्तेषु शुभावहाः।
केचित् केचिदनिष्टाख्यं वितरन्ति फलं नृणाम्॥
ददात्यवर्णः संप्रीतिमिवर्णो मुदमुद्वहेत्।
कुर्यादुवर्णो द्रविणं ततः स्वरचतुष्टयम्॥

अपख्यातिफलं दद्यादेचः सुखफलावहाः।
ङञबिन्दुविसर्गास्तु पदादौ संभवन्ति नो॥
कखगघाश्च लक्ष्मीं ते वितरन्ति फलोत्तमाम्।
दत्ते चकारोऽपख्यातिं छकारः प्रीतिसौख्यदः॥
मित्रलाभं जकारोऽयं विधत्ते भीभृतिद्वयम्।
झः करोति टठौ खेददुःखे द्वे कुरुतः क्रमात्॥

अर्थात् अकारसे छकार पर्यन्त सभी वर्ण शुभप्रद हैं; पर बीच-बीचमें कुछ वर्ण अनिष्टफलप्रद भी बताये गये हैं। अवर्णसे काव्यारम्भ करनेपर प्रीति यवर्णसे काव्य आरम्भ करनेपर आनन्द और उवर्णसे काव्यारम्भ करने पर धनकी प्राप्ति होती है। ऐच्, ए, ऐ, ओ, औ वर्णोंसे काव्यारम्भ करनेपर सुख फल प्राप्त होता है और ॠलृ ॡ वर्णोंसे काव्यारम्भ करनेपर अपकीर्त्ति होती है। ङ, ञ, ं और ः पदादिमें नहीं रहते हैं। क ख ग घ वर्णोंसे काव्यारम्भ करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। चकारसे काव्यारम्भ करनेपर अपकीर्त्ति, छकारसे काव्यारम्भ करनेपर प्रीति-सौख्य, जकारसे काव्यारम्भ करनेपर मित्रलाभ, झकारसे काव्यारम्भ करनेपर भय और ट-कार-ठकारसे काव्यारम्भ करनेपर खेद और दुःख प्राप्त होते हैं। डकारसे काव्यारम्भ करनेपर शोभाकर, ढकारसे काव्यारम्भ करनेपर अशोभाकर णकारसे काव्यारम्भ करनेपर भ्रमण और तकारसे काव्यारम्भ करनेपर सुख होता है। इस प्रकार वर्ण और गणोंका फल बताया गया है।

द्वितीय परिच्छेदमें काव्यगत शब्दार्थका निश्चय किया है। इसमें ४२ पद्य हैं। मुख्य और गौण अर्थोंके प्रतिपादनके पश्चात् शब्दके भेद बतलाये गये हैं।

तृतीय परिच्छेदमें रसभावका निश्चय किया गया है। आरम्भमें ही बताया है कि निर्दोष वर्ण और गणसे युक्त रहनेपर भी निर्मलार्थ तथा शब्दसहित काव्य नीरस होनेपर उसी प्रकार रुचिकर नहीं होता जिस प्रकार बिना लवणका व्यञ्जन। पश्चात् विजयवर्णीने स्थायीभावका स्वरूप, भेद एवं रसोंका निरूपण किया है। लिखा है—

'निरवद्यवर्णगणयुतमपि काव्यं निर्मलार्थं शब्दयुतम्।
निर्लवणशाकमिव तन्न रोचते नीरसं सतां मानसे॥३।१॥'

सात्त्विकभावका विश्लेषण भी उदाहरण सहित किया गया है। रसोंके सोदाहरणस्वरूप निरूपणके पश्चात् रसोंके विरोधी रसोंका भी कथन किया है।

चतुर्थ परिच्छेद नायकभेदनिश्चयका है। नायकमें जनानुराग, प्रियंवद,

वाग्मित्व, शौच, विनय, स्मृति, कुलीनता, स्थिरता, दृढ़ता, माधुर्य, शौर्य, नवयौवन, उत्साह, दक्षता, बुद्धि, त्याग, तेज, कला, धर्मशास्त्रज्ञता और प्रज्ञा ये नायकके गुण माने गये हैं। नायकके चार भेद हैं—धीरोदात्त, धीरललित, धीरशान्त और धीरोद्धत। क्षमा, सामर्थ्य, गांभीर्य, दया, आत्मश्लाघाशून्य आदि गुण धीरोदात्त नायकके माने गये हैं। इस प्रकार नायक, प्रतिनायक आदिके स्वरूप, भेद और उदाहरण वर्णित हैं।

पाँचवें परिच्छेदमें दस गुणोंका कथन आया है। षष्ठ परिच्छेदमें रीतिका स्वरूप और भेद, सप्तममें वृत्तिका भेद और स्वरूप बताया गया है। कैशिकी, आर्यभटी, भारती और सात्त्वती इन चारों वृत्तियोंका उदाहरणसहित निरूपण आया है।

अष्टम परिच्छेदमें शय्यापाक और द्राक्षापाकके लक्षण आये हैं। नवम परिच्छेदमें अलंकारोंका निर्णय किया गया है। उपमाके विपर्यासोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, श्लेषोपमा, सन्तानोपमा, निन्दोपमा, आचिख्यासोपमा, विरोधोपमा, प्रतिशेधोपमा, चटूपमा, तत्त्वाख्यानोपमा, असाधारणोपमा, अभूतोपमा, असंभावितोपमा, बहूपमा, विक्रियोपमा, मालोपमा, वाक्यार्थोपमा, प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगोपमा, हेतूपमा, आदि उपमाके भेदोंका सोदाहरण स्वरूप बतलाया है। रूपक अलंकारके प्रसंगमें समस्तरूपक, व्यस्तरूपक, समस्त-व्यस्तरूपक, सकलरूपक, अवयवरूपक, अयुक्तरूपक, विषमरूपक, विरुद्धरूपक, हेतुरूपक, उपमारूपक, व्यतिरेकरूपक, क्षेपरूपक, समाधानरूपक, रूपकरूपक, अपह्नुतिरूपक आदि भेदोंका विवेचन किया है। वृत्तिअलंकारके अन्तर्गत उसके भेद-प्रभेद भी वर्णित हैं। दीपक, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, आक्षेप, उदात्त, प्रेय, ऊर्जस्व, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, श्लेष, निदर्शना, व्याजस्तुति, आशीः, अवसरसार, भ्रान्तिमान्, संशय, एकावली, परिकर, परिसंख्या, प्रश्नोत्तर, संकर, आदि अलंकारोंके भेद-प्रभेदों सहित लक्षण व उदाहरणोंका विवेचन किया है।

दशम परिच्छेदमें दोष और गुणोंका विवेचन किया है। यह परिच्छेद काव्यके दोष और गुणोंको अवगत करनेके लिए विशेष उपयोगी है। इस प्रकार इस ग्रंथमें अलंकारशास्त्रका निरूपण विस्तारपूर्वक किया गया है। आचार्य विजयवर्णीने सरस शैलीमें अलंकार-विषयका समावेश किया है।

अभिनव वाग्भट्ट

अलंकारशास्त्रके रचयिताओंमें वाग्भट्टका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य, नाटक, चम्पू आदि विधाओंके मर्मज्ञ विद्वान थे।

इनके पिताका नाम नेमिकुमार था। नेमिकुमारने राहडपुरमें भगवान नेमिनाथका और नलोटपुरमें २२ देवकुलकाओं सहित आदिनाथका विशाल मंदिर निर्मित किया था। काव्यानुशासनमें लिखा है—

नाभेयचैत्यसदने दिशि दक्षिणस्यां। द्वाविंशतिर्विदधता जिनमन्दिराणि।
मन्ये निजाग्रवरप्रभुराहडस्य। पूर्णीकृतो जगति येन यशः शशांकः॥

—काव्यानुशासन पृ० ३४

नेमिकुमारके पिताका नाम मक्कलप और माताका नाम महादेवी था। इनके राहड और नेमिकुमार दो पुत्र थे, जिनमें नेमिकुमार लघु और राहड ज्येष्ठ थे। नेमिकुमार अपने ज्येष्ठ भ्राता राहडके परम भक्त थे और उन्हें श्रद्धा और प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे।

कवि वाग्भट्ट भक्तिरसके अद्वितीय प्रेमी थे। उन्होंने अपने अराध्यके चरणोंमें निवेदन करते हुए बताया है कि मैं न मुक्तिकी कामना करता हूँ और न धनवैभवकी। मैं तो निरन्तर प्रभुके चरणोंका अनुराग चाहता हूँ—

नो मुक्त्यै स्पृहयामि विभवैः कार्यं न सांसारिकैः,
किंत्वायोज्य करौ पुनरिदं त्वामीशमभ्यर्चये।
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दुःखे सुखे मंदिरे,
कान्तारे निशि वासरे च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि।

अर्थात् हे नाथ मैं मुक्तिपुरीकी कामना नहीं करता और न सांसारिक कार्योंकी पूर्त्तिके लिए धन-सम्पत्तिकी ही आकांक्षा करता हूँ; किन्तु हे स्वामिन् हाथ जोड़ मेरी यही प्रार्थना है कि स्वप्नमें, जागरणमें, स्थितिमें, चलनेमें, सुख-दुःखमें, मन्दिरमें, वन, पर्वत आदिमें, रात्रि और दिनमें आपकी ही भक्ति प्राप्त होती रहे। मैं आपके चरणकमलोंका सदा भ्रमर बना रहूँ।

कवि वाग्भट्टने अपने ग्रंथोंमें अपने सम्प्रदायका उल्लेख नहीं किया है, पर काव्यानुशासनकी वृत्तिके अध्ययनसे उनका दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी होना सूचित होता है। उन्होंने समन्तभद्रके बृहत्स्वयंभूस्तोत्रके द्वितीय पद्यको "प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः" आदि "आगमआप्तवचनं यथा" वाक्यके साथ उद्धृत किया है। इसी प्रकार पृष्ठ ५पर यह ६५वाँ पद्य भी उद्धृत है—

नयास्तवस्यात्पदसत्यलांछिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभि प्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः॥

इसी प्रकार पृष्ठ १५पर आचार्य वीरनन्दीके मंगल-पद्यको उद्धृत किया है। पृष्ठ १६पर नेमिनिर्वाण काव्यका निम्नलिखित पद्य उद्धृत है—

गुणप्रतीतिः सुजनाज्जनस्य दोषेष्ववज्ञा खलजल्पितेषु ।
अतो ध्रुवं नेह मम प्रबन्धे प्रभूतदोषेऽप्ययशोवकाशः ॥१।२७

इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर सम्प्रदायके कवि हैं। इस ग्रन्थमें 'चन्द्रप्रभ' और 'नेमिनिर्वाण'के अतिरिक्त धनञ्जयकी नाममाला और राजीमतिपरित्यागके भी उद्धरण मिलते हैं ।

स्थितिकाल

काव्यानुशासन और छन्दोनुशासनके रचयिता वाग्भट्टका समय आशाधरके पश्चात् होना चाहिए। कविने नेमिनिर्वाणके साथ राजीमतिपरित्याग या राजीमतिविप्रलंभके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। काव्यानुशासनमें आये हुए निम्नलिखित उद्धरणसे भी वाग्भट्टके समयपर प्रकाश पड़ता है—

"इति दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दशकाव्यगुणाः। वयं तु माधुर्यौजप्रसादलक्षणांस्त्रीनेव गुणा मन्यामहे, शेषास्तेष्वेवान्तर्भवन्ति। तद्यथा—माधुर्ये कान्तिः सौकुमार्यं च, ओजसि श्लेषः समाधिरुदारता च। प्रसादेऽर्थव्यक्तिः समता चान्तर्भवति।"[1]

इस अवतरणमें दण्डी, वामन और वाग्भट्टकी मान्यताओंका कथन आया है। वाग्भट्टने वाग्भटालंकारकी रचना जयसिंहके राज्यकालमें अर्थात् वि० सं० की १२वीं शताब्दिमें की है। अतएव काव्यानुशासनके रचयिता वाग्भट्टका समय १२वीं शताब्दिके पश्चात् होना चाहिए। आशाधरके 'राजीमतिविप्रलंभ' या 'राजीमतिपरित्याग' काव्यके उद्धरण आनेसे इन वाग्भट्टका समय आशाधरके पश्चात् अर्थात् वि० की १४वीं शतीका मध्यभाग होना चाहिए।

रचनाएँ

वाग्भट्ट केवल अलंकार या छन्द शास्त्रके ही ज्ञाता नहीं हैं, अपितु उनके द्वारा प्रबन्धकाव्य, नाटक और महाकाव्य भी लिखे गये हैं। काव्यानुशासनकी वृत्तिमें लिखा है—

"विनिर्मितानेकनव्यनाटकच्छन्दोऽलंकारमहाकाव्यप्रमुखमहाप्रबन्धबन्धुरोऽपारतारशास्त्रसागरसमुत्तरणतीर्थायमानशेमुषी....महाकविश्रीवाग्भटो....।"

इस अवतरणसे स्पष्ट है कि वाग्भट्टने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है; पर अभी तक उनके दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं—छन्दोनुशासन और काव्यानुशासन। छन्दोनुशासनकी पाण्डुलिपि पाटणके श्वेताम्बरीय ज्ञानभण्डारमें विद्यमान है।

१. काव्यानुशासन २।३१।

इसकी ताड़पत्रसंख्या ४२ और श्लोकसंख्या ५४० है। इसपर स्वोपज्ञवृत्ति भी पायी जाती है। मंगलपद्यमें कविने बताया है—

> विभुं नाभेयमानम्य छन्दसामनुशासनम्।
> श्रीमन्नेमिकुमारस्यात्मजोऽहं वच्मि वाग्भटः॥

यह छन्दग्रन्थ पांच अध्यायोंमें विभक्त है—१. संज्ञा, २. समवृत्ताख्य, ३. अर्द्धसमवृत्ताख्य, ४. मात्रासमक और ५. मात्राछन्दक।

काव्यानुशासनके समान इस ग्रंथमें दिये गये उदाहरणोंमें राहड और नेमिकुमारकी कीर्त्तिका खुला गान किया गया है। छन्दशास्त्रकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ उपयोगी मालूम पड़ता है।

काव्यानुशासन

यह रचना निर्णयसागर प्रेस बम्बईसे छप चुकी है। रस, अलंकार, गुण, छन्द और दोष आदिका कथन आया है। उदाहरणोंमें कविने बहुत ही सुन्दर-सुन्दर पद्योंको प्रस्तुत किया है। यथा—

> कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी हुं हुं प्रतापी प्रिये
> हुं हुं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियां।
> मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं
> इत्येवं रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः॥

अर्थात् एक समय कामदेव और रति जंगलमें विहार कर रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि ध्यानस्थ जिनेन्द्रपर पड़ी। जिनेन्द्रके सुभग शरीरको देखकर उनमें जो मनोरंजक संवाद हुआ उसीका अंकन उपर्युक्त पद्यमें किया गया है। जिनेन्द्रको मेरुवत् निश्चल ध्यानस्थ देखकर रति कामदेवसे पूछती है कि हे नाथ, यह कौन है? कामदेव उत्तर देता है—यह जिन हैं—रागद्वेष आदि कर्म-शत्रुओंको जीतने वाले। पुनः रति पूछती है कि ये तुम्हारे वशमें हुए हैं? कामदेव उत्तर देता है—प्रिये वे मेरे वशमें नहीं हुए, क्योंकि प्रतापी हैं। पुनः रति कहती है कि यदि तुम्हारे वशमें ये नहीं हैं तब तुम्हारा त्रैलोक-विजयी होनेका अभिमान व्यर्थ है। कामदेव रतिसे पुनः कहता है कि इन जिनेन्द्रने हमारे प्रभु मोहराजको जीत लिया है। अतएव जिनेन्द्रको वश करनेकी मेरी शक्ति नहीं।

इसी प्रकार कारणमालालंकारके उदाहरणमें दिया गया पद्य भी बहुत सुन्दर है—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ॥

इस प्रकार यह काव्यानुशासन काव्यशास्त्रकी शिक्षा देता है। इसमें अलंकारोंके साथ गुणदोष और रीतियोंका भी कथन आया है।

'अष्टांगहृदय'के कर्त्ता वाग्भट्ट जैनेतर मालूम पड़ते हैं।

महाकवि आशाधर

आशाधरका अध्ययन बड़ा ही विशाल था। वे जैनाचार, अध्यात्म, दर्शन, काव्य, साहित्य, कोष, राजनीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद आदि सभी विषयोंके प्रकाण्ड पण्डित थे। दिगम्बर परम्परामें उन जैसा बहुश्रुत गृहस्थ-विद्वान् ग्रन्थकार दूसरा दिखलाई नहीं पड़ता।

आशाधर माण्डलगढ़ (मेवाड़) के मूलनिवासी थे। किन्तु मेवाड़ पर मुसलमान बादशाह शहाबुद्दीन गोरीके आक्रमणोंके होनेसे त्रस्त होकर मालवाकी राजधानी धारा नगरीमें अपने परिवार सहित आकर बस गये थे। पं० आशाधर बघेरवाल जातिके श्रावक थे। इनके पिताका नाम सल्लक्षण एवं माताका नाम श्रीरत्नी था। सरस्वती इनकी पत्नी थीं, जो बहुत सुशील और सुशिक्षिता थीं। इनके एक पुत्र भी था, जिसका नाम छाहड़ था। सागारधर्मामृतके अन्तमें इन्होंने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः
काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षु-
राशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥

आशाधरजीने अपने सुयोग्य पुत्रकी स्वयं प्रशंसा की है। कहा जाता है कि इनके पिता अपनी योग्यताके कारण मालवानरेश अर्जुन वर्मदेवके सन्धिविग्रह मन्त्री थे। आशाधरजीने धारा नगरीमें व्याकरण और न्यायशास्त्रका अध्ययन किया था। इनके विद्यागुरु प्रसिद्ध विद्वान् पं० महावीर थे।

विन्ध्यवर्माका राज्य समाप्त होनेपर आशाधर नालछा-नलकच्छपुरमें रहने लगे थे। उस समय नलकच्छपुरके राजा अर्जुन वर्मदेव थे। उनके राज्यमें इन्होंने अपने जीवनके ३५ वर्ष व्यतीत किये और वहांके अत्यन्त सुन्दर नेमिचैत्यालयमें ये जैन साहित्यकी उपासना करते रहे।

आशाधरके पाण्डित्यकी प्रशंसा उस समयके सभी भट्टारक विद्वानोंने की है। उदयसेनने आपको "नयविश्वचक्षु" तथा 'कलि-कालिदास' कहा है। मदनकीर्त्ति यतिपतिने 'प्रज्ञापुञ्ज'[1] कहकर आशाधरकी प्रशंसा की है। स्वयं गृहस्थ रहनेपर भी बड़े-बड़े मुनि और भट्टारकोंने इनका शिष्यत्व स्वीकार किया है।

जैनधर्मके अतिरिक्त अन्य मतवाले विद्वान् भी आपकी विद्वत्तापर मुग्ध थे। मालवानरेश अर्जुनदेव स्वयं विद्वान् और कवि थे। अमरुकशतककी रससञ्जीवनी नामकी एक संस्कृतटीका काव्यमालामें प्रकाशित हुई है। इस टीकामें 'यदुक्तमुपाध्यायेन बालसरस्वत्यपरनाम्ना मदनेन' इस प्रकार लिखकर मदनोपाध्यायके श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये हैं और भव्यकुमुदचन्द्रिका टीकाकी प्रशस्तिके नवम श्लोकके अन्तिम पादकी टीकामें पं० आशाधरने 'आपुः प्राप्ताः बालसरस्वतिमहाकविमदनादयः' लिखा है। इससे स्पष्ट है कि अमरुकशतकमें उद्धृत उदाहरणस्वरूप श्लोक आशाधरके शिष्य महाकवि मदनके हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन लेखमालामें अर्जुन वर्मदेवका तीसरा दानपत्र प्रकाशित हुआ, जिसके अन्तमें 'रचितमिदं राजगुरुणा मदनेन' लिखा है। अतः यह स्पष्ट है कि आशाधरके शिष्य मदनोपाध्याय, जिनका दूसरा नाम बालसरस्वती था, मालवाधीश महाराज अर्जुनदेवके गुरु थे।

अमरुकशतककी टीकामें आये हुए पद्योंसे यह भी ज्ञात होता है कि मदनोपाध्यायका कोई अलंकारग्रन्थ भी था, जो अभी तक अप्राप्त है।

मदनकीर्त्तिके सिवा आशाधरके अनेक मुनि शिष्य थे। व्याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र आदि विषयोंमें उनकी असाधारण गति थी। बताया है—

> यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
> षट्तर्कीपरमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन्।
> चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
> पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के॥ ९॥

अर्थात् शुश्रूषा करनेवाले शिष्योंमेंसे ऐसे कौन हैं, जिन्हें आशाधरने व्याकरणरूपी समुद्रके पार शीघ्र ही न पहुँचा दिया हो तथा ऐसे कौन हैं, जिन्होंने आशाधरके षट्दर्शनरूपी परमशस्त्रको लेकर अपने प्रतिवादियोंके न जीता हो, तथा ऐसे कौन हैं जो आशाधरसे निर्मल जिनवाणीरूपी दीपक ग्रहण करके

---

१. इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनन्दितः प्रीत्या।
प्रज्ञापुञ्जोसीति च योऽभिहितो मदनकीर्तियतिपतिना॥

मोक्षमार्गमें प्रवृद्ध न हुए हों और ऐसे कौन शिष्य हैं जिन्होंने आशाधरसे काव्यामृतका पान करके रसिकपुरुषोंमें प्रतिष्ठा न प्राप्त की हो ?

आशाधरने अपने अन्य दो शिष्योंके नाम भी दिये हैं—वादीन्द्र विशालकीर्त्ति और भट्टारक देवचन्द्र। विशालकीर्त्तिको षड्दर्शनन्यायकी शिक्षा दी थी और देवचन्द्रको धर्मशास्त्रकी। मदनोपाध्यायको काव्यका पण्डित बनाकर अर्जुनवर्मदेव जैसे रसिक राजाका राजगुरु बनाया था। इससे स्पष्ट है कि आशाधर महान् विद्वान् थे और इनके अनेक शिष्य थे।

धारा नगरीसे दस कोसकी दूरीपर नलकच्छपुर स्थित था। यहाँ आकर आशाधरने सरस्वतीकी साधना विशेषरूपसे की।

आशाधरका व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे अनेक विषयोंके विद्वान् होनेके साथ असाधारण कवि थे। उन्होंने अष्टांगहृदय जैसे महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद ग्रन्थपर टीका लिखी। काव्यालंकार और अमरकोशकी टीकाएँ भी उनकी विद्वत्ताकी परिचायक हैं। आशाधर श्रद्धालु भक्त थे। उनके अनेक मित्र और प्रशंसक थे। उनका व्यक्तित्व इतना सरल और सहज था, जिससे मुनि और भट्टारक भी उनका शिष्यत्व स्वीकार करनेमें गौरवका अनुभव करते थे। उनकी लोकप्रियताकी सूचना उनकी उपाधियाँ ही दे रही हैं।

स्थितिकाल

महाकवि आशाधरने अपने ग्रन्थोंमें रचना-तिथिका उल्लेख किया है। उन्होंने अनगारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका कार्त्तिक शुक्ला पंचमी सोमवार वि० सं० १३०० को पूर्ण की थी। इस समय इनकी आयु ६५-७० वर्षकी रही होगी। इस प्रकार उनका जन्म वि० सं० १२३०-३५ के लगभग आता है। पं० आशाधरके तीन ग्रन्थ मुख्य हैं और सर्वत्र पाये जाते हैं। जिनयज्ञकल्प, सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत। जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्तिमें कई ग्रन्थोंके नाम आये हैं—

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः।
तर्कप्रबन्धो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहतिस्म यस्मात् ॥१०॥
सिद्ध्यङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबन्धोज्ज्वलम्
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसहं स्वश्रेयसेऽरीरचत्।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबन्धरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतम्
निर्माय व्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्रं हृदि ॥११॥
आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम्।
अष्टाङ्गहृदयोद्योतं निबन्धमसृजच्च यः ॥१२॥

अर्थात् स्याद्वादविद्याका निर्मल प्रसादस्वरूप प्रमेयरत्नाकरनामका न्याय-ग्रन्थ, जो सुन्दर पद्यरूपी अमृतसे भरा हुआ है, आशाधरके हृदय-सरोवरसे प्रवाहित हुआ। भरतेश्वराभ्युदयनामक उत्तम काव्य अपने कल्याणके लिये बनाया, जिसके प्रत्येक सर्गके अन्तमें 'सिद्ध' शब्द आया है, जो तीनों विद्याओंके जानकार कवीन्द्रोंको आनन्द देनेवाला है और स्वोपज्ञटीकासे प्रकाशित है। इनके अतिरिक्त 'धर्मामृत' शास्त्र, वाग्भट्टसंहिताकी अष्टांगहृद्रयोद्योतिनी टीका रची। मूलाराधना और इष्टोपदेशपर भी टीकाएँ लिखीं। अमरकोशपर क्रिया-कलापनामक टीका बनायी। आराधनासार और भूपालचतुर्विंशतिका आदि की टीकाएँ भी लिखीं। वि० सं० १२८५ के पूर्व रचे हुए ग्रन्थोंकी तालिका जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्तिमें पाई जाती है। इसके पश्चात् वि० सं० १२८६ से १२९६ तकके मध्यमें रचे गये ग्रन्थोंका उल्लेख सागारधर्मामृतकी टीकामें पाया जाता है। १२९६ के अनन्तर जो ग्रन्थ रचे, उनका निर्देश अनागरधर्मामृत-टीकामें पाया जाता है। इस टीकामें राजीमतिविप्रलंभनामक खण्डकाव्य, अध्यात्मरहस्य और रत्नत्रयविधान इन तीन ग्रन्थोंका निर्देश मिलता है।

आशाधरके समयकी पुष्टि अर्जुनवर्मदेवके दानपत्रोंसे भी होती है। अर्जुन-वर्मदेवके तीन दानमात्र प्राप्त हुए हैं—१. वि० सं० १२६७ का, २. वि० सं० १२७० का, ३. वि० सं० १२७२ का। इसके पश्चात् अर्जुनदेवके पुत्र देवपाल-देवके राज्यत्वकालका एक अभिलेख हरसोदामें मिला है, जो वि० सं० १२७५ का है। इससे ज्ञात होता है कि १२७२ और १२७५ के बीचमें अर्जुनदेवके राज्यका अन्त हो चुका था। अर्जुनदेवके राज्यका प्रारम्भ वि० सं० १२६७ के कुछ पहले हुआ है। वि० सं० १२५० में जब आशाधर धारामें आये थे तब विन्ध्यवर्माका राज्य था, क्योंकि विन्ध्यवर्माके मन्त्री विद्यापति विल्हणने आशाधरकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की है। यदि आशाधरके विद्याभ्यासकाल ७-८ वर्ष माना जाय, तो विन्ध्यवर्माका राज्य वि० सं० १२५७-५८ तक रहता है। विन्ध्यवर्माके पश्चात् सुभटवर्माका राज्यकाल ७-८ वर्ष माना जाय, तो अर्जुन-देवके राज्यकालका समय वि० सं० १२६५ आता है। इसी समयके लगभग आशाधर नलकच्छमें आये होंगे।

पिप्पलियाके अर्जुनदेवके दानपत्रमें[1] उनकी कुलपरम्परा निम्न प्रकार आई है—

---

१. बंगाल एशियाटिक सोसाइटीका जर्नल, जिल्द ५, पृ० ३७८ तथा भाग ७, पृ० २५ और ३२।

भोज—उदयादित्य—नरवर्मा, यशोवर्मा, अजयवर्मा, विन्ध्यवर्मा या विजयवर्मा, सुभटवर्मा और अर्जुनवर्मा। अर्जुनवर्माके कोई पुत्र नहीं था। इसलिये उसके पीछे अजयवर्माके भाई लक्ष्मीवर्माका पौत्र देवपाल और देवपालके पश्चात् उसका पुत्र जयतुंगिदेव (जयसिंह) राजा हुआ।

आशाधर जिस समय धारामें आये उस समय विन्ध्यवर्माका राज्य था और वि० सं० १२९६ में जब उन्होंने सागारधर्मामृतकी टीका लिखी तब जयतुंगिदेव राजा थे। इस प्रकार आशाधर धाराके सिंहासनपर पांच राजाओंको देख चुके थे। विन्ध्यवर्माके मन्त्री विद्यापति विल्हणने आशाधरकी विद्वत्तापर मोहित होकर लिखा—

"आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्य।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्चः॥"

इस प्रकार आशाधरका समय वि० को तेरहवीं शती निश्चित है।

रचनाएँ

आशाधरने विपुल परिमाणमें साहित्यका सृजन किया है। वे मेधावी कवि, व्याख्याता और मौलिक चिन्तक थे। अबतक उनकी निम्नलिखित रचनाओंके उल्लेख मिले हैं—

१. प्रमेयरत्नाकर, २. भरतेश्वराभ्युदय, ३. ज्ञानदीपिका, ४. राजीमतिविप्रलंभ, ५. अध्यात्मरहस्य, ६. मूलाराधनाटीका, ७. इष्टोपदेशटीका, ८. भूपालचतुर्विंशतिकाटीका, ९. आराधनासारटीका, १०. अमरकोशटीका, ११. क्रियाकलाप, १२. काव्यालंकारटीका, १३. सहस्रनामस्तवन सटीक, १४. जिनयज्ञकल्प सटीक, १५. त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र, १६. नित्यमहोद्योत, १७. रत्नत्रयविधान, १८. अष्टांगहृदयोतिनीटीका, १९. सागारधर्मामृत सटीक और २०. अनगारधर्मामृत सटीक।

अध्यात्मरहस्य

पं० आशाधरजीने अपने पिताके आदेशसे इस ग्रन्थकी रचना की। साथ ही यह भी बताया है कि यह शास्त्र प्रसन्न, गम्भीर और आरब्ध योगियोंके लिये प्रिय वस्तु है। योगसे सम्बद्ध रहनेके कारण इसका दूसरा नाम योगोद्दीपन भी है। कविने लिखा है—

"आदेशात् पितुरध्यात्म-रहस्यं नाम यो व्यधात्।
शास्त्रं प्रसन्न-गम्भीर-प्रियमारब्धयोगिनाम्॥"

अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है—

'इत्याशाधर-विरचित-धर्मामृतनाम्नि सूक्ति-संग्रहे योगोद्दीपनो नामाष्टादशोऽध्यायः ।'

इस ग्रन्थमें ७२ पद्य हैं और स्वात्मा, शुद्धात्मा, श्रुतिमति, ध्याति, दृष्टि और सद्गुरुके लक्षणादिका प्रतिपादन किया है । पश्चात् रत्नत्रयादि दूसरे विषयोंका विवेचन किया है । वस्तुतः इस अध्यात्मरहस्यमें गुण-दोष, विचार-स्मरण आदिकी शक्तिसे सम्पन्न भावमन और द्रव्यमनका बड़ा ही विशद विवेचन किया है । यह योगाभ्यासियों और अध्यात्मप्रेमियोंके लिये उपयोगी है ।

धर्मामृत

आशाधरने धर्मामृत ग्रन्थ लिखा है, जिसके दो खण्ड हैं—अनगारधर्मामृत और सागारधर्मामृत । अनगारधर्मामृतमें मुनिधर्मका वर्णन आया है तथा मुनियोंके मूलगुण और उत्तरगुणोंका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है । आशाधर विषयवस्तुके लिये मूलाचारके ऋणी हैं ।

सागारधर्मामृतमें गृहस्थधर्मका निरूपण आठ अध्यायोंमें किया है। प्रथम अध्यायमें श्रावकधर्मके ग्रहणकी पात्रता बतलाकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत तथा सल्लेखनाके आचरणको सम्पूर्ण सागरधर्म बतलाया है । उक्त १२ प्रकारके धर्मको पाक्षिक श्रावक अभ्यासरूपसे, नैष्ठिक आचरणरूपसे और साधक आत्मलीन होकर पालन करता है ।

आठ मूलगुणोंका धारण, सप्त व्यसनोंका त्याग, देवपूजा, गुरूपासना और पात्रदान आदि क्रियाओंका आचरण करना पाक्षिक आचार है । धर्मका मूल अहिंसा और पापका मूल हिंसा है । अहिंसाका पालन करनेके लिये मद्य, मांस, मधु और अभक्ष्यका त्याग अपेक्षित है । रात्रिभोजनत्याग भी अहिंसाके अन्तर्गत है ।

गृह-विरत श्रावक आरम्भिक हिंसाका पूर्ण त्याग करता है और गृह-रत श्रावक, संकल्पी हिंसाका । सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रतका धारण करना भी आवश्यक है । श्रावक गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंका पालन करता हुआ अपनी दिनचर्याको भी परिमार्जित करता है । वह एकादश प्रतिमाओंका पालन करता हुआ अंतमें सल्लेखना द्वारा प्राणोंका विसर्जन कर सद्गति लाभ करता है । इस प्रकार धर्मामृतमें श्रमण और श्रावक दोनोंकी चर्याओंका वर्णन किया है ।

जिनयज्ञकल्प

प्रतिष्ठाविधिका सम्यक् प्रतिपादन करनेके लिये आशाधरने छः अध्यायोंमें जिनयज्ञकल्पविधिको समाप्त किया है । प्रथम अध्यायमें मन्दिरके योग्य भूमि,

मूर्तिनिर्माणके लिये शुभ पाषाण, प्रतिष्ठायोग्य मूर्ति, प्रतिष्ठाचार्य, दीक्षागुरु यजमान, मण्डप-विधि, जलयात्रा, यागमण्डल-उद्धार आदि विषयोंका वर्णन है। द्वितीय अध्यायमें तीर्थजल लानेकी विधि, पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अन्य देव-पूजा, जिनयज्ञादिविधि, सकलीकरणक्रिया, यज्ञदीक्षाविधि, मण्डपप्रतिष्ठा-विधि और वेदीप्रतिष्ठाविधि वर्णित है। तृतीय अध्यायमें यागमण्डलकी पूजा-विधि और यागमण्डलमें पूज्य देवोंका कथन किया है।

चतुर्थ अध्यायमें प्रतिष्ठेय प्रतिमाका स्वरूप अर्हन्तप्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधि, गर्भकल्याणककी क्रियाओंके अनन्तर जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, नेत्रोन्मीलन, केवलज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणककी विधियोंका वर्णन आया है।

पञ्चम अध्यायमें अभिषेक-विधि, विसर्जन-विधि, जिनालय-प्रदक्षिणा पुण्याहवाचन, ध्वजारोहण-विधि एवं प्रतिष्ठाफलका कथन आया है। षष्ठ अध्यायमें सिद्ध-प्रतिमाकी प्रतिष्ठा-विधि बृहद्सिद्धचक्र और लघुसिद्धचक्रका उद्धार, आचार्य-प्रतिष्ठा-विधि, श्रुतदेवता-प्रतिष्ठा-विधि एवं यक्षादिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन है। षष्ठ अध्यायके अन्तमें ग्रन्थकर्त्ताकी प्रशस्ति अंकित है। परिशिष्टमें श्रुतपूजा, गुरुपूजा आदि संगृहीत हैं।

त्रिषष्ठि स्मृतिशास्त्र

इस ग्रन्थमें ६३ शलाका-पुरुषोंका संक्षिप्त जीवन-परिचय आया है। ४० पद्योंमें तीर्थंकर ऋषभदेवका, ७ पद्योंमें अजितनाथका, ३ पद्योंमें संभव-नाथका, ३ पद्योंमें अभिनन्दनका, ३ में सुमतिनाथका, ३ में पद्मप्रभका, ३ में सुपार्श्व जिनका, १० में चन्द्रप्रभका, ३ में पुष्पदन्तका, ४ में शीतलनाथका, १० में श्रेयांस तीर्थंकरका, ९ में वासपूज्यका, १६ में विमलनाथका, १० में अनन्त-नाथका, १७ में धर्मनाथका, २१ में शान्तिनाथका, ४ में कुन्थुनाथका, २६ में अरनाथका, १४ में मल्लिनाथका और ११ में मुनिसुव्रतका जीवनवृत्त वर्णित है। इसी संदर्भमें राम-लक्ष्मणकी कथा भी ८१ पद्योंमें वर्णित है। तदनन्तर २१ पद्योंमें कृष्ण-बलराम, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदिके जीवनवृत्त आये हैं। नेमिनाथका जीवन-वृत्त भी १०१ पद्योंमें श्रीकृष्ण आदिके साथ वर्णित है। अनन्तर ३२ पद्योंमें पार्श्वनाथका जीवन अंकित किया गया है। पश्चात् ५२ पद्योंसे महावीर-पुराण-का अंकन है। तीर्थंकरोंके कालमें होनेवाले चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदिका भी कथन आया है। ग्रन्थके अन्तमें १५ पद्योंमें प्रशस्ति अंकित है। ग्रन्थ-रचनाकालका निर्देश करते हुए लिखा है—

नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
ग्रन्थोऽयं द्विनवद्वयेकविक्रमार्कसमात्यये ॥१३॥

अर्थात् वि० सं० १२९१में इस ग्रंथकी रचना की है।

महाकवि अर्हद्दास

संस्कृत गद्य और पद्यके निर्माताके रूपमें महाकवि अर्हद्दास अद्वितीय हैं। मुनिसुव्रतकाव्य, पुरदेवचंपू और भव्यजनकंठाभरणकी प्रशस्तियोंसे यह स्पष्ट है कि महाकवि अर्हद्दास प्रतिभाशाली विद्वान् थे। कविने इन ग्रंथोंकी प्रशस्तियोंमें आशाधरका नाम बड़े आदरके साथ लिया है। अतः यह अनुमान लगाना सहज है कि इनके गुरु आशाधर थे। मुनिसुव्रतकाव्यके एक पद्यसे यह ध्वनित होता है कि अर्हद्दास पहले कुमार्गमें पड़े हुए थे, पर आशाधरके धर्मामृतके अध्ययनसे उनके परिणामोंमें परिवर्त्तन हुआ और वे जैनधर्मानुयायी हो गये। बताया है—

> धावन्कापथसंभृते भववने सन्मार्गमेकं परम्।
> त्यक्त्वा श्रांततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम्॥
> सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवचःक्षीरोदधेरादरात्।
> पायं पायमितश्रमः सुखपदं दासो भवाम्यर्हतः॥१०।६४
>
> × × ×
>
> अर्हद्दासः सभक्त्युल्लसितमवसितं भूधरे तत्र कृत्वा।
> कल्याणं तीर्थकर्तुः सुरकुलमहितः प्रापदात्मीयलोकम्॥
> अर्हद्दासोऽयमित्थं जिनपतिचरितं गौतमस्वाम्युपज्ञं।
> गुम्फित्वा काव्यबन्धं कविकुलमहितः प्रापदुच्चैः प्रमोदम्॥१०।६३

अर्थात् कुमार्गोंसे भरे हुए संसाररूपी वनमें जो एक उत्तम सन्मार्ग था, उसे छोड़कर बहुतकाल तक भटकता हुआ मैं अत्यन्त थक गया। किसी प्रकार काललब्धि वश उसे प्राप्त किया। उस सन्मार्गको पाकर जिनवचनरूपी क्षीर-समुद्रसे उद्धृत किये और सुखके स्थान समीचीन धर्मामृतको आदरपूर्वक पी-पीकर थकान रहित होता हुआ मैं अर्हन्त भगवानका दास होता हूँ।

देवताओंसे पूजित तथा अर्हद् भगवान्के दास इन्द्रदेव उस सम्मेदपर्वत पर तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रतनाथका मोक्षकल्याणक सम्पन्न कर सानन्द अपने स्वर्गलोकको लौट आये तथा कविकुलपूजित अर्हद्दासने भी गौतम स्वामीसे कहे गये श्रीजिनेन्द्रचरितको काव्यरूपमें ग्रथित कर बड़ी भारी प्रसन्नता प्राप्त की।

उपर्युक्त ६४वें पद्यमें आया हुआ 'धर्मामृत' पद आशाधरके 'धर्मामृत' ग्रन्थका सूचक है। इस पद्यसे यह अवगत होता है कि अर्हद्दास पहले कुमार्गमें पड़े

हुए थे। आशाधरके धर्मामृतने और उनकी उक्तियोंने उन्हें सुमार्गमें लगाया। बहुत संभव है कि कवि अर्हद्दास पहले जैनधर्मानुयायी न होकर अन्य धर्मानुयायी रहे हों। यही कारण है कि उन्हें ब्राह्मणधर्म और वैदिक-पुराणोंका अच्छा परिज्ञान है।

'दासो भवाम्यर्हतः' पद्यसे भी यही ध्वनित होता है। श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीका अनुमान है कि अर्हद्दास नाम न होकर विशेषण जैसा है। उन्होंने लिखा है—"चतुर्विंशतिप्रबन्धकी पूर्वोक्त कथाको पढ़नेके बाद हमारा यह कल्पना करनेको जी अवश्य होता है कि कहीं मदनकीर्त्ति ही तो कुमार्गमें ठोकरें खाते-खाते अन्तमें आशाधरकी सूक्तियोंसे अर्हद्दास न बन गये हों। पूर्वोक्त ग्रंथोंमें जो भाव व्यक्त किये गये हैं उनसे तो इस कल्पनाको बहुत पुष्टि मिलती है और फिर यह अर्हद्दास नाम भी विशेषण जैसा ही मालूम होता है। संभव है उनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो। यह नाम एक तरहकी भावुकता और विनयशीलता ही प्रकट करता है"।[1] 'प्रेमी'जीने मदनकीर्त्तिको ही विशालकीर्त्ति और आशाधरकी प्रेरणासे अर्हद्दासके रूपमें परिवर्त्तित स्वीकार किया है, पर पुष्ट प्रमाणोंके अभावमें प्रेमीजीके इस कथनको स्वीकार नहीं किया जा सकता। तथ्य जो भी हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि अर्हद्दासको आशाधरके ग्रन्थों और वचनोंसे बोध प्राप्त हुआ है।

स्थितिकाल

कवि अर्हद्दासने मुनिसुव्रतकाव्य, पुरुदेवचम्पू और भव्यकण्ठाभरणमें आशाधरका निर्देश किया है। आशाधरने वि० सं० १३००में अनगारधर्मामृतकी टीका पूर्ण की थी। अतः कवि अर्हद्दास आशाधरके पूर्ववर्त्ती नहीं हो सकते हैं। अब विचारणीय यह है कि वे आशाधरके समकालीन हैं या उनके पश्चात्वर्त्ती विद्वान् हैं। उन्होंने अपने ग्रंथोंमें आशाधरका उल्लेख जिस रूपमें किया है उससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे आशाधरके समकालीन रहे हों।

मुनिसुव्रतकाव्यकी प्रशस्ति—

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूते ॥
आशाधरोक्तिलसदंजनसंप्रयोगैरच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥१०।६५॥

अर्थात् मेरे नयन-युगल चिरकालसे मिथ्यात्वकर्मके पटलसे ढके हुए थे और मुझे कुमार्गमें ले जानेमें कारण थे। आशाधरके उक्तिरूपी उत्तम अंजनसे उनके स्वच्छ होनेपर मैंने जिनेन्द्रदेवके महान् सत्पथका आश्रय लिया।

१. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० १४२–४३।

पुरुदेवचंपूका अन्तिम पद्य—

मिथ्यात्वपंककलुषे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चंपुदंभजलजेन समुज्जजृम्भे ॥
कविप्रशस्ति

अर्थात् मेरा यह मानसरूप सरोवर मिथ्यात्वरूपी कीचड़से कलुषित था। आशाधरकी उक्तिरूपी निर्मलीके प्रभावसे जब वह निर्मल हुआ तो ऋषभदेवकी भक्तिसे प्रसन्न हुई शरद् ऋतुके द्वारा उसमेंसे चम्पूरूप कमल विकसित हुआ।

इन पद्योंसे इतना ही स्पष्ट होता है कि आशाधरकी उक्तियोंसे उनकी दृष्टि या मानस निर्मल हुआ था; पर वे आशाधरके समकालीन थे या उत्तरकालीन थे, इस पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है। भव्यजनकण्ठाभरणमें एक ऐसा पद्य आया है, जो कुछ अधिक प्रकाश देता है—

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां साहाय्या धन्याः स्युराशाधरसूरिमुख्याः ॥२३६॥

आचार्य उपाध्याय और साधुका स्वरूप बतलानेके पश्चात् ग्रन्थकार कहते हैं कि उन आचार्य आदिकी सूक्तियोंके द्वारा ही जो संसारसे भयभीत प्राणी गृहस्थाश्रममें रहते हुए आत्मधर्मका पालन करते हैं और शेष ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और साधु आश्रममें रहने वालोंकी सहायता करते हैं वे आशाधर सूरि प्रमुख श्रावक धन्य हैं।

इस पद्यमें प्रकारान्तरसे आशाधरकी प्रशंसा की गई है और बताया गया है कि गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी वे जैनधर्मका पालन करते थे तथा अन्य आश्रमवासियोंकी सहायता भी किया करते थे। इस पद्यमें आशाधरकी जिस परोपकारवृत्तिका निर्देश किया गया है उसका अनुभव कविने संभवतः प्रत्यक्ष किया है और प्रत्यक्षमें कहे जाने वाले सद्वचन भी सूक्ति कहलाते हैं। अतएव बहुत संभव है कि अर्हद्दास आशाधरके समकालीन हैं। अतएव अर्हद्दासका समय वि० सं० १३०० मानना उचित ही है। यदि अर्हद्दासको आशाधरका समकालीन न मानकर उत्तरकालीन माना जाय तो उनका समय वि० की १४वीं शतीका प्रथम चरण आता है।

रचनाएँ

अर्हद्दासकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं— १. मुनिसुव्रतकाव्य, २. पुरुदेवचम्पू और ३. भव्यजनकण्ठाभरण।

मुनिसुव्रतकाव्य

इस महाकाव्यमें २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतकी कथा वर्णित है। कविने १० सर्गोंमें काव्यको समाप्त किया है। कथा मूलतः उत्तरपुराणसे गृहीत है। कविने कथानकका मूलरूपमें ग्रहणकर प्रासंगिक और अवान्तर कथाओंकी योजना नहीं की है। काव्यमें शृंगारभावनाका आरोप किये बिना भी मानव-जीवनका सांगोपांग विश्लेषण किया है।

काव्यके इस लघु कलेवरमें विविध प्राकृतिक दृश्योंका चित्रण भी किया गया है। मगधदेशकी विशेषताओंको प्रकृतिके माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करते हुए कहा है—

नगेषु यस्योन्नतवंशजाताः सुनिर्मला विश्रुतवृत्तरूपाः।
भव्या भवन्त्याप्तगुणाभिरामा मुक्ताः सदा लोकशिरोविभूषाः॥१।२४॥
तरंगिणीनां तरुणान्वितानामतुच्छपद्मच्छदलाञ्छितानि।
पृथूनि यस्मिन्पुलिनानि रेजुः कांचीपदानीव नखाञ्चितानि॥१।२६॥

मगधके उत्तरी भागमें फैली हुई पर्वतश्रेणीपर विविध वृक्ष, मध्य भागमें लहलहाते हुए जलपूर्ण खेत और उनमें उत्पन्न रक्तकमल दर्शकोंके चित्तको सहजमें ही आकृष्ट कर लेते हैं। राजगृहके निरूपण-प्रसंगमें विविध वृक्ष-लता-कमलोंसे परिपूर्ण सरोवरोंके रेखाचित्र भी अंकित किये गये।

द्वितीय पद्यमें बताया है कि वृक्ष-पंक्तिसे युक्त नदियोंके सुन्दर विकसित कमलपत्रोंसे चिह्नित विस्तृत पुलिन नायिकाके नखक्षत जघनके समान सुशोभित होते हैं। वाटिकाओंके वृक्षों और क्रीड़ापर्वतोंपर स्नान करनेवाली रमणियोंका चित्रण करते हुए कविने लिखा है--

बहिर्वने यत्र विधाय वृक्षारोहं परिष्वज्य समर्पितास्याः॥
कृताधिकारा इव कामतंत्रे कुर्वन्ति संगं विटपैर्व्रतत्यः॥१।३८॥
आरामरामाशिरसीव केलिशैले लताकुन्तलभासि यत्र॥
सकुङ्कुमा निर्झरवारिधारा सीमन्तसिन्दूरनिभा विभाति॥१।३९॥

राजगृहके बाहरी उपवनोंमें वृक्षोंपर चढ़ी हुई लतायें काम-शास्त्रमें प्रवीण उपपतियोंका आलिंगन तथा चुम्बन करती हुई कामिनियोंके समान जान पड़ती हैं।

जिस राजगृहमें स्त्रीरूपिणी वाटिकाओंमें उनके मस्तकके समान वेणी रूपिणी लताओंसे मंडित क्रीड़ापर्वतोंपर स्त्रियोंके स्नान करनेसे कुंकुममिश्रित जलधारा—झरनेसे गिरती हुई सीमन्तके सिन्दूरके समान शोभित थी।

कविने उक्त दोनों पद्योंमें प्रकृतिका मानवीकरण कर मनोरम और मधुर रूपोंको प्रस्तुत किया है। उत्प्रेक्षाजन्य चमत्कार दोनों ही पद्योंमें वर्त्तमान है।

दशम सर्गमें जिनेन्द्र-सान्निध्यसे नीलीवनके अशोकसप्तच्छद, चम्पक, आम्र आदि वृक्षोंका क्रमशः सुन्दरी स्त्रियोंके चरणघात, चाटुवाद, छाया, कटाक्ष आदिके बिना ही पुष्पित होना वर्णित है। कविने यहाँ काव्यरूढ़ियोंका भी अतिक्रमण किया है।

आलम्बनरूपमें प्रकृतिचित्रण करते हुए कविने वर्षाकालमें मेघगर्जन, हंसशावकों और वियोगीजनोंके कम्पित होने, सर्पोंके बिलसे निकलने, मयूरोंके नृत्यमग्न होने एवं चातकोंके अधरपुटके उन्मीलित होनेके वर्णन द्वारा वर्षा-कालीन प्रकृतिका भव्यरूप उपस्थित किया है।[1]

प्रकृतिमें मानवीय व्यापारों और चेष्टाओंके भी सुन्दर उदाहरण आये हैं। हेमन्त वर्णन-प्रसंगमें प्रातःकालीन बिखरे हुए ओस-बिन्दुओंसे सुशोभित, लताओंसे लिपटे हुए और उनके गुच्छोंरूपी स्तनोंका आलिंगन किये हुए वृक्षों-पर संभोगान्तमें निस्सृत श्वेतकणोंसे युक्त युवकोंका आरोप स्वभावतः उद्दीपक है।[2]

वर्षाकालमें नायक और आकाशमें नायिकाका आरोपकर गाढ़ालिंगनका सरस वर्णन प्रस्तुत किया गया है। आकाश-नायिकाके स्तनप्रदेशपर स्थित माला टूट जाती है, जिससे उसके मोती और मूँगे इन्द्रबधूटी और ओलोंके रूपमें बिखरे हुए दीख पड़ते हैं।[3]

कविने वसुधामें वात्सल्यमयी माताका आरोप कर भावोंकी सूक्ष्म अभि-व्यञ्जना की है। माता अपने पुत्रों—वृक्षोंका अत्याचारी सूर्यसंतापसे रक्षण करनेके हेतु उसके सामने दाँत निकालकर गिड़गिड़ा रही है—

प्रासादचैत्यपरिखालतिकाद्रुमक्ष्मा जाता ध्वजद्युकुजहर्म्यगणक्ष्माश्च ।
पीठानि चेति हरसंख्यभुवस्तदंतरेकांतकेलिसदनं जिनबोधलक्ष्म्याः ।।९।१०।।

इस प्रकार इस काव्यमें कविने कल्पनाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा संदर्भांशों-को चमत्कारपूर्ण और सरस बनाया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या,

---

१. मुनिसुव्रतकाव्य ९।१३।

२. वही ९।२८।

३. वही ९।२२।

एकावली आदि अलंकार रसोत्कर्ष उत्पन्न करनेमें सहायक हैं। इस काव्यमें पौराणिक मान्यताएँ भी वर्णित हैं; पर यथार्थतः यह शास्त्रीय महाकाव्य है।

पुरुदेवचम्पू

इस चम्पूकाव्यमें आदितीर्थंकर ऋषभदेवका जीवनवृत्त वर्णित है। कथा-वस्तु १० स्तवकोंमें विभक्त है। कविने गद्य और पद्य दोनों ही प्रौढ़रूपमें लिखे हैं। मंगलपद्योंके अनन्तर जम्बूद्वीपका विस्तृत वर्णन है। अतिबलके राज्यका परिसंख्याद्वारा वर्णन करते हुए लिखा है—

'यस्मिन्महीपाले महीलोकलोकोत्तरप्रसाद शांतकुंभमयस्तंभायमानेन निज-भुजेन धरणीयेगदर्निविशेषमाविभ्राणे, बंधनस्थितिः कुसुमेषु चित्रकाव्येषु च अलंकाराश्रयता महाकविकाव्येषु कामिनीजनेषु च, घनमलिनांबरता प्रावृषेण्यदि-वसेषु कृष्णपक्षनिशासु च, परमोहप्रतिपादनं प्रमाणशास्त्रेषु युवतिजनमनोहरांगेषु च, शुभकरवालशून्यता कोदंडधारिषु कच्छपेषु च परं व्यवतिष्ठत ॥'

कविने भावात्मक विषयोंका समावेश पद्योंमें किया है और वर्णनात्मक संदर्भोंका गद्यमें। वर्णनशैली बड़ी ही रमणीय और चित्ताकर्षक है। देवांगनाएँ जन्माभिषेकके पश्चात् नृत्य करती हुई भावपूर्वक ऋषभदेवकी पूजा करती हैं—

"नटत्सुरवधूजनप्रविसरत्कटाक्षावलिं।
कपोलतलसंगतां त्रिभुवनाधिपस्यादरात् ॥
सुराधिपतिसुन्दरी स्नपनतोयशंकावशात्।
प्रमार्जयितुमुद्यता किल बभूव हासास्पदम् ॥५।१३॥"

इस प्रकार इस चम्पूमें काव्यात्मक सभी गुण वर्त्तमान हैं। इसकी गद्य-शैली तो पद्योंकी अपेक्षा अधिक प्रौढ है।

भव्यजनकण्ठाभरण

इस काव्यमें कुल २४२ पद्य हैं। इसमें आचार, नीति, दर्शन और सूक्ति इन सभीका समन्वय है। कतिपय पौराणिक मान्यताओंकी समीक्षा भी की गई है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें वैदिक-पुराणोंकी कई मान्यताएँ अंकित हैं। गणेश, कार्त्तिकेय, शिव-पार्वतीके आख्यान निर्दिष्ट कर संकेतरूपमें उनकी समीक्षा भी की गई है। प्रसंगवश इस ग्रन्थमें यापनीय-सम्प्रदाय, श्वेताम्बर-सम्प्रदाय, आदिकी भी समीक्षा की गई है। कविने बताया है कि धर्म सदा अहिंसासे होता है, हिंसासे नहीं। जिस प्रकार कमल जलसे ही उत्पन्न हो सकता है अग्नि से नहीं, उसी प्रकार इन्द्रियनिग्रह और कषायविजय अहिंसा द्वारा ही संभव है, हिंसा द्वारा नहीं—

सदाप्यहिंसाजनितोऽस्ति धर्मः स जातु हिंसाजनितः कुतः स्यात् ।
न जायते तोयजकञ्जमग्नेर्न चामृतोत्थं विषतोऽमरत्वम् ॥८१॥

अहिंसाके पालनार्थ मद्य, मांस, मधुके त्यागका और निर्मल आचरण पालन करनेका कथन किया है । कविने आप्तमें सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हुए लिखा है—

'तत्सूक्ष्मदूरान्तरिताः पदार्थाः कस्यापि पुंसो विशदा भवन्ति ।
व्रजन्ति सर्वेऽप्यनुमेयतां यदेतेऽनलाद्या भुवने यथैव ॥१२३॥'

अर्थात् संसारमें जो परमाणु इत्यादि सूक्ष्म पदार्थ हैं, राम-रावण आदि अन्तरित पदार्थ हैं और हिमवन आदि दूरवर्त्ती पदार्थ हैं वे किसीके प्रत्यक्ष अवश्य हैं क्योंकि इन सभी पदार्थोंको हम अनुमानसे जानते हैं । जो पदार्थ अनुमानसे जाना जाता है वह किसीके प्रत्यक्ष भी होता है। जैसे पर्वतमें छिपी हुई अग्निको हम दूरसे उठता हुआ धुँआ देखकर अनुमानसे जानते हैं। पश्चात् उसका प्रत्यक्षीकरण होता है ।

इस ग्रन्थपर 'समन्तभद्र'के 'रत्नकरण्डश्रावकाचार'का विशेष प्रभाव है । ग्रन्थकर्त्ताने ११६ पद्यों तक कुदेवोंकी समीक्षा की है । आप्तका स्वरूप बतलानेके अनन्तर जिनवाणीका माहात्म्य ७ पद्योंमें दिखलाया गया है। तत्पश्चात् सम्यग्दर्शनका वर्णन आया हैं। इस संदर्भमें ३ मूढ़ता, ८ मद और ८ अंगोंका स्वरूप भी दर्शाया गया है। तत्पश्चात् सम्यक्दर्शनका माहात्म्य बतलाकर सज्जाति आदि सप्त परमस्थानोंका स्वरूप भी एक एक पद्यमें अंकित किया गया है। २०६ पद्यसे २१२ पद्य तक परमस्थानोंका स्वरूप-वर्णन है। २१३वें और २१४वें पद्यमें सम्यक्ज्ञानका कथन आया है। कविने रत्नत्रयको ही वास्तविक धर्म कहा है और उसका महत्त्व २२४वें और २२५वें पद्यमें प्रदर्शित किया है। २२६वें पद्यसे २३३वें पद्य तक पञ्चपरमेष्ठीका स्वरूप वर्णित है। इस प्रकार इस लघुकाय ग्रन्थमें जैनसिद्धान्तोंका वर्णन आया है ।

पद्मनाभ कायस्थ

राजा यशोधरकी कथा जैनकवियोंको विशेष प्रिय रही है। पद्मनाभने यशोधरचरितकी रचना कर इस शृंखलामें एक और कड़ी जोड़ी है। पद्मनाभको जैनधर्मसे अत्यधिक स्नेह था और इस धर्मके सिद्धान्तोंके प्रति अपूर्व आस्था थी।

पद्मनाभका संस्कृत-भाषापर अपूर्व अधिकार था । उन्होंने भट्टारक गुणकीर्त्तिके सान्निध्यमें रहकर जैनधर्मके आचार-विचारों और सिद्धान्तोंका अध्ययन किया था । गुणकीर्त्तिके उपदेशसे ही इन्होंने यशोधरचरित या दया-

सुन्दरविधान काव्यग्रन्थ राजा वीरमदेवके राज्यकालमें लिखा है। जब कवि-का काव्य पूर्ण हो गया, तो सन्तोषनामके जयसवालने उसकी बहुत प्रशंसा की और विजयसिंह जयसवालके पुत्र पृथ्वीराजने उक्त ग्रन्थकी अनुमोदना की।

कुशराज जयसवालकुलके भूषण थे और ये वीरमदेवके मंत्री थे। इन्हींको प्रेरणासे यशोधरचरित्त लिखा गया। कुशराज राज्यकार्यमें बड़े ही निपुण थे। इनके पिताका नाम जैनपाल और माताका नाम लौणादेवी था। पितामहका नाम लण्ण और पितामहीका नाम उदितादेवी था। आपके पाँच और भाई थे, जिनमें चार बड़े और एक सबसे छोटा था। हंसराज, सैराज, रैराज, भव-राज और क्षेमराज। क्षेमराज सबसे बड़ा और भवराज सबसे छोटा था। कुशराज राजनीतिज्ञ होनेके साथ धर्मात्मा भी था। इसने ग्वालियरमें चन्द्र-प्रभजिनका एक विशाल जिनमंदिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठा करवायी थी।

कुशराजको तीन पत्नियाँ थीं—रल्हो, लक्षणश्री और कोशोरा। रल्हो गृहकार्यमें कुशल और दानशीला थी। वह नित्य जिनपूजा किया करती थी। इससे कल्याणसिंह नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही रूपवान्, दानी और श्रद्धालु था। शेष दोनों पत्नियाँ भी—धर्मात्मा और सुशीला थीं। कुशराज ने श्रुतभक्तिवश यशोधरचरितकी रचना कराई।

पद्मनाभ मेधावी कवि होनेके साथ समाजसेवी विद्वान् थे। जैन भट्टारकों और श्रावकोंके सम्पर्कसे उनका चरित्र अत्यन्त उज्जवल और श्रावकोचित था। ग्रन्थप्रशस्तिसे पद्मनाभके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है, पद्म-नाभने अपने प्रेरक कुशराजके वंशका विस्तृत परिचय दिया है।

स्थितिकाल

पद्मनाभने अपना यह काव्यग्रन्थ वीरमदेवके राज्यकालमें लिखा है। वीरमदेव बड़ा ही प्रतापी राजा तोमर-वंशका भूषण था। लोकमें उसका निर्मल यश व्याप्त था। दान, मान और विवेकमें उस समय उसकी कोई समता करनेवाला नहीं था। यह विद्वानोंके लिए विशेषरूपसे आनन्दायक था। यह ग्वालियरका शासक था। वीरमदेवके पिता उद्धरणदेव थे, जो राजनीतिमें दक्ष और सर्वगुणसम्पन्न थे। ई० सन् १४०० या उसके आस-पास ही राज्यसत्ता वीरमदेवके हाथमें आयी। ई० सन् १४०५में मल्लू एकबालखाँने ग्वालियरपर आक्रमण किया था। पर उस समय उसे निराश होकर ही लौटना पड़ा। दूसरी बार भी उसने आक्रमण किया; पर वीरमदेवने उससे सन्धि कर ली। आचार्य अमृतचन्द्रकी 'तत्त्वदीपिका'की लेखकप्रशस्तिसे वीरमदेवका राज्यकाल

वि० सं० १४६६ तक वर्तमान रहा। अतएव उनके राज्यकालकी सीमा ई० सन् १४०५-१४१५ ई० तक जान पड़ती है। इसके पश्चात् ई० सन् १४२४से पूर्व वीरमदेवके पुत्र गणपतिदेवने राज्यका संचालन किया है। इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि पद्मनाभने ई० सन् १४०५-१४२५ ई० के मध्यमें किसी समय 'यशोधरचरित'की रचना की है।

रचना

राजा यशोधर और रानी चन्द्रमतीका जीवन-परिचय इस काव्यमें अंकित है। पौराणिक कथानकको लोकप्रिय बनानेकी पूरी चेष्टा की गई है।

कथावस्तु ९ सर्गोंमें विभक्त है। नवम सर्गमें अभयरुचि आदिका स्वर्गगमन बताया गया है। कविता प्रौढ है। उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग आदि अलंकारों द्वारा काव्यको पूर्णतया लोकप्रिय बनाया गया है।

ज्ञानकीर्त्ति

ज्ञानकीर्त्ति यति वादिभूषणके शिष्य थे। इन्होंने यशोधरचरितकी रचना नानूके आग्रहसे संस्कृतभाषामें की। नानू उस समय बंगालके गवर्नर महाराजा मानसिंहके प्रधान अमात्य थे। कविने सम्मेदशिखरकी यात्रा की है और वहाँ उन्होंने जीर्णोद्धार भी कराया है। ज्ञानकीर्ति बंगालप्रान्तके अकच्छरपुर नामक नगरमें निवास करते थे।

यशोधरचरितके अन्तमें लम्बी प्रशस्ति दी गई है, जिससे अवगत होता है कि शाह श्रीनानूने यशोधरचरित लिखाकर भट्टारक श्रीचन्द्रकीर्तिके शिष्य शुभचन्द्रको भेंट किया था।

इस ग्रन्थमें रचनाकाल स्वयं अंकित किया है—

'शते षोडशएकोनषष्टिवासरके शुभे।
माघे शुक्लेऽपि पंचम्यां रचितं भृगुवासरे॥ ५॥

अर्थात् सोलहसौ उनसठ (१६५९) में माघ शुक्ल पञ्चमी शुक्रवारको ग्रन्थ समाप्त हुआ। यह काव्य मानसिंहके समयमें लिखा गया है। काव्यके अन्तकी प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

"इति श्रीयशोधरमहाराजचरिते भट्टारकश्रीवादिभूषणशिष्याचार्यश्रीज्ञानकीर्त्तिविरचिते राजाधिराजमहाराजमानसिंहप्रधानसाहश्रीनानूनामांकिते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादिदीक्षाग्रहणस्वर्गादिप्राप्तिवर्णनो नाम नवमः सर्गः॥"

स्पष्ट है कि यह यशोधरचरित भी ९ सर्गोंमें पूर्ण हुआ है। ज्ञानकीर्त्तिने अपनी पूरी पट्टावली अंकितकी है। बताया है कि मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय, सरस्वती-गच्छ और बलात्कार गणके भट्टारक वादिभूषणके पट्टधर शिष्य थे। ज्ञानकीर्त्ति पद्मकीर्त्तिके गुरुभाई भी हैं।

ज्ञानकीर्त्तिने सोमदेव, हरिषेण, वादिराज, प्रभंजन, धनञ्जय, पुष्पदन्त और वासवसेन आदि विद्वानोंके द्वारा लिखे गये यशोधर महाराजके चरितको अनुभवकर स्वल्पबुद्धिसे संक्षेपमें इसकी रचना की है। ज्ञानकीर्तिने पूर्ववर्ती आचार्योंमें उमास्वामि, समन्तभद्र, वादीभसिंह, पूज्यपाद, भट्टाकलंक और प्रभाचन्द्र आदि विद्वानोंका स्मरण किया है। ग्रन्थकी भाषाशैली प्रौढ है। यहाँ उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत किया जाता है—

दोर्दण्डचण्डबलत्रासितशत्रुलोको रत्नादिदानपरिपोषितपात्रओघः।
दीनानुवृत्तिशरणागतदीर्घशोकः पृथ्व्यां बभूव नृपतिर्वरमानसिंहः ॥१६॥

इस प्रकार ज्ञानकीर्तिका यह काव्य काव्यगुणोंसे युक्त होनेके कारण जनप्रिय है।

धर्मधर

कवि धर्मधर इक्ष्वाकुवंशमें समुत्पन्न गोलाराडान्वयी साहू महादेवके प्रपुत्र और आशपालके पुत्र थे। इनकी माताका नाम हीरादेवी था। विद्याधर और देवधर धर्मधरके दो भाई थे। पं० धर्मधरकी पत्नीका नाम नन्दिका था। नन्दिकासे दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। पुत्रोंका नाम पराशर और मनसुख था।

कविने संस्कृतमें 'नागकुमारचरित' की रचना की। इस चरित-काव्यके आरम्भमें मूलसंघ सरस्वतीगच्छके भट्टारक पद्मनन्दी, शुभचन्द्र और जिनचन्द्र-का उल्लेख किया गया है। लिखा है—

भद्रे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाभिधो गुरुः।
तदाम्नाये गणी जातः पद्मनन्दी यतीश्वरः ॥ ५ ॥
तत्पट्टे शुभचन्द्रोऽभूज्जिनचन्द्रस्ततोऽजनि।
नत्वा तान् सद्गुरून् भक्त्या करिष्ये पंचमीकथां ॥ ६ ॥
शुभां नागकुमारस्य कामदेवस्य पावनीं।
करिष्यामि समासेन कथां पूर्वानुसारतः ॥ ७ ॥

अतएव स्पष्ट है कि कवि मूलसंघ सरस्वतीगच्छका अनुयायी था।

स्थितिकाल

कविने नागकुमारचरितका रचनाकाल ग्रन्थकी प्रशस्तिमें दिया है। इस

प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि वि० सं० १५११ में श्रावणशुक्ला पूर्णिमा सोमवारके दिन इस ग्रन्थको लिखा है—

व्यतीते विक्रमादित्ये रुद्रेषु शशिनामनि ।
श्रावणे शुक्लपक्षे च पूर्णिमाचन्द्रवासरे ॥ ५३ ॥

कविने नागकुमारचरित यदुवंशी लम्बकंचुकगोत्री साहू नल्हूकी प्रेरणासे रचा है। साहू नल्हू चन्द्रपाट या चन्द्रपाड नगरके दत्तपल्लीके निवासी थे। नल्हू साहूके पिताका नाम धनेश्वर या धनपाल था, जो जिनदासके पुत्र थे। जिनेदासके चार पुत्र थे—शिवपाल, जयपाल, धनपाल, धुदूपाल। नल्हू साहूकी माताका नाम लक्षणश्री था। उस समय चौहानवंशी राजा भोजराजके पुत्र माधवचन्द्र राज्य कर रहे थे। धनपाल मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित था साहू नल्हूके भाईका नाम उदयसिंह था। साहू नल्हू भी राज्य द्वारा सम्मानित थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं—दूमा और यशोमती। तेजपाल, विजयपाल, चन्दनसिंह और नरसिंह ये चार पुत्र थे। इस प्रकार साहू नल्हू सपरिवार धर्मसाधना करते थे।

नागकुमारचरितकी प्रशस्तिमें साहू नल्हूके समान ही चौहानवंशी राजाओंका परिचय प्राप्त होता है। सारंगदेव और उनके पुत्र अभयपालका निर्देश आया है। अभयपालका पुत्र रामचन्द्र था, जिसका राज्य वि० सं० १४४८ में विद्यमान था। रामचन्द्रके पुत्र प्रतापचन्द्रके राज्यमें रइधूने ग्रन्थ-रचना की है। प्रतापचन्द्रका दूसरा भाई रणसिंह था। इनका पुत्र भोजराज हुआ। भोजराजकी पत्नीका नाम शीलादेवी था। इसके गर्भसे माधवचन्द्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इस माधवचन्द्रके कनकसिंह और नृसिंह दो भाई थे। माधवचन्द्रके राज्यकालमें ही कवि धर्मधरने नागकुमारचरितकी रचना की है। माधवचन्द्रका राज्यकाल वि० सं० की १६ वीं शती है। अतः कवि धर्मधरका समय नागकुमारकी प्रशस्तिमें उल्लिखित पुष्ट होता है।

रचनाएँ

कवि धर्मधरकी दो रचनाएँ उल्लिखित मिलती हैं—श्रीपालचरित और नागकुमारचरित। पुण्यपुरुष श्रीपालकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध रही है। इस कथाका आधार ग्रहण कर विभिन्न भाषाओंमें काव्य लिखे गये।

नागकुमार चरितकी रचना धर्मधरने अपभ्रंशके महाकवि पुष्पदन्तके 'णायकुमारचरिउ' के आधार पर की है। ग्रन्थके परिच्छेदके अन्तमें पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार मिलता है—

'इति श्रीनागकुमारकामदेवकथावतारे शुक्लपंचमीव्रतमाहात्म्ये साधुनंल्हूकारापिते पण्डिताऽशपालात्मजधर्मधरविरचिते श्रेणिकमहाराजसमवसरणप्रवेशवर्णनो नाम प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।'

नागकुमारचरित सरल और बोधगम्य शैलीमें लिखा गया काव्य है। इसका काव्य और इतिहासकी दृष्टिसे अधिक मूल्य है।

गुणभद्र द्वितीय

गुणभद्र नामके कई जैनाचार्य हुए हैं। सेनसंघी जिनसेन स्वामीके शिष्य और उत्तरपुराणके रचयिता प्रथम गुणभद्र हैं और प्रस्तुत धन्यकुमारचरितके कर्त्ता द्वितीय गुणभद्र हैं। द्वितीय गुणभद्रके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे माणिक्यसेनके प्रशिष्य और नेमिसेनके शिष्य थे। ये सिद्धान्तके विद्वान् थे। मिथ्यात्व तथा कामके विनाशक और स्याद्वादरूपी रत्नभूषणके धारक थे। इन्होंने राजा परमार्दिके राज्यकालमें विलासपुरके जैन मन्दिरमें रहकर लम्बकंचुक वंशके महामना साहू शुभचन्द्रके पुत्र वल्हणके धर्मानुरागसे धन्यकुमारचरितकी रचना की थी।

ग्रन्थकी प्रशस्तिमें परमार्दिका नाम आता है। डा० ज्योतिप्रसादजीने परमार्दिका निर्णय करते हुए लिखा है—"दसवीं-चौदहवीं शतीके बीच दक्षिण भारतमें गंग, पश्चिमी चालुक्य, कलचुरी परमार आदि अनेक वंशोंके किन्हीं-किन्हीं राजाओंका उपनाम या उपाधि पेर्माडि, पेम्र्मडि, पेर्मावडि, पेर्माडिरेव, पेम्र्मडिराय आदि किसी-न-किसी रूपमें मिलता है, किन्तु 'परमार्दिन' रूपमें कहीं नहीं मिलता। उत्तर भारतमें महोबेके चन्देलोंमें चन्देल परमाल एक प्रसिद्ध नरेश हुआ है। वह दिल्ली, अजमेरके पृथ्वीराज चौहानका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था और सन् ११८२ ई० में उसके हाथों पराजित भी हुआ था। ११६७ ई० से बुन्देलखण्डके जैन शिलालेखोंमें इस राजाका नामोल्लेख मिलने लगता है और १२०३ ई० में उसकी मृत्यु हुई मानी जाती है। यह राजा चन्देलनरेश मदन वर्मदेवका पौत्र एवं उत्तराधिकारी था। इसके पिताका नाम पृथ्वीवर्मदेव था और उसके उत्तराधिकारीका नाम त्रैलोक्यवर्मदेव था। इसके अपने शिलालेखोंमें इसका नाम 'परमार्दिदेव' या 'परमार्दि' दिया है, जो कि धन्यकुमारचरितमें उल्लिखित 'परमार्दिन' से भिन्न प्रतीत नहीं होता।"[1]

इस उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि गुणभद्रने धन्यकुमारचरितकी रचना चन्देल-परमारके राज्यमें १२ वीं या १३ वीं शतीमें की होगी। विचारके लिए जब माणिक्यसेन और नेमिसेनके सेनसंघी नामोंको लिया जाता है तो एक ही माणिकसेनके शिष्य नेमिसेन मिलते हैं, जिनका निर्देश शक सं० १५१५ के प्रतिमालेखमें पाया जाता है। सम्भवतः ये कारंजाके सेनसंघी भट्टारक थे।

१. जैन सन्देश, शोधांक ८; २८ जुलाई १९६०, पृ० २७५।

अतः धन्यकुमार चरितके रचयिता गुणभद्र और उनके गुरु प्रगुरु भट्टारक नहीं थे।

बिजौलिया-अभिलेखके रचयिता गुणभद्र भी स्वयंको महामुनि कहते हैं। ११४२ ई० के एक चालुक्य-अभिलेखमें किन्हीं वीरसेनके शिष्य एक माणिक्य-सेनका उल्लेख मिलता है। संभव है उनके कोई शिष्य नेमिसेन रहे हों, जिनके शिष्य बिजौलिया-अभिलेखके रचयिता गुणभद्र हों।

ई० सन् १३७ में रचित जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयमें अय्यपार्यने एक पूर्ववर्त्ती प्रतिष्ठाशास्त्रकारके रूपमें गुणभद्रका उल्लेख किया है। संभव है कि बिजौ-लियामें मन्दिरप्रतिष्ठा करानेवाले यह आचार्य गुणभद्र ही अय्यपार्य द्वारा अभिप्रेत हों। अतएव धन्यकुमारचरितकी रचना महोबेके चन्देलनरेश परमार्दि-देवके शासनकालमें की गई होगी। बिजौलिया-अभिलेखके रचयितासे इनकी अभिन्नता मालूम पड़ती है।

धन्यकुमारचरितकी प्रशस्ति वि० सं० १५०१ की लिखी हुई है। अतः धन्यकुमारचरितका रचनाकाल इसके पूर्व होना चाहिए।

ललितपुरके पास मदनपुरसे प्राप्त होनेवाले एक अभिलेखमें बताया गया है कि ई० सन् ११२२ वि० सं० १२३९ में महोबाके चन्देलवंशी राजा परमार्दि-देवपर सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराजने आक्रमण किया था। बहुत संभव है कि इसका राज्य विलासपुरमें रहा हो। अतएव धन्यकुमारचरितकी रचनाकाल वि० की १३वीं शती होना चाहिए।

धन्यकुमारचरितकी कथावस्तु ७ परिच्छेदों या सर्गोंमें विभक्त है। और इसमें पुण्यपुरुष धन्यकुमारके आख्यानको प्रायः अनुष्टुपछन्दोंमें लिखा है। पुष्पिकावाक्यमें लिखा है—

'इति धन्यकुमारचरिते तत्त्वार्थभावनाफलदर्शके आचार्यश्रीगुणभद्रकृते भव्य-वल्हण-नामाङ्किते धन्यकुमारशालिभदयति-सर्वार्थसिद्धिगमनो नाम सप्तमः परिच्छेदः।'

श्रीधरसेन

श्रीधरसेन कोष-साहित्यके रचयिताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इनका विश्वलोचन कोष प्राप्त है। इस कोषका दूसरा नाम मुक्तावली-कोष है। कोषके अन्तमें एक प्रशस्ति दी हुई है, जिससे श्रीधरसेनकी गुरुपरम्पराके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त होती है—

सेनान्वये सकलसत्त्वसमर्पितश्रीः
श्रीमानजायत कविर्मुनिसेननामा ।
आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या
यस्यास वादपदवी न दवीयसी स्यात् ॥ १ ॥
तस्मादभूदखिलवाङ्मयपारदृश्वा
विश्वासपात्रमवनीतलनायकानाम् ।
श्रीश्रीधरः सकलसत्कविगुम्फितत्त्व-
पीयूषपानकृतनिर्जरभारतीकः ॥ २ ॥
तस्यातिशायिनि कवेः पथि जागरूक-
धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य ।
नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशा-
नाकृष्य लोचनमिवायमदीपि कोशः ॥ ३ ॥
साहित्यकर्मकवितागमजागरूके-
रालोकितः पदविदां च पुरे निवासी ।
वर्त्मन्यधीत्य मिलितः प्रतिभान्वितानां
चेदस्ति दुर्जनवचो रहितं तदानीम् ॥ ४ ॥

अर्थात् कोशकी प्रशस्तिके अनुसार इनके गुरुका नाम मुनिसेन था, ये सेन-संघके आचार्य थे। इन्हें कवि और नैयायिक कहा गया है। श्रीधरसेन नाना शास्त्रोंके पारगामी और बड़े-बड़े राजाओं द्वारा मान्य थे। सुन्दरगणिने अपने धातुरत्नाकरमें विश्वलोचनकोशके उद्धरण दिये हैं और धातुरत्नाकरका रचनाकाल ई० १६२४ है, अतः श्रीधरसेनका समय ई० १६२४ के पहले अवश्य है। विक्रमोर्वशीय पर रंगनाथने ई० १६५६ में टीका लिखी है। इस टीकामें विश्वलोचनकोशका उल्लेख किया गया है। अतः यह सत्य है कि विश्वलोचन-की रचना १६वीं शताब्दीके पूर्व हुई होगी। शैलीकी दृष्टिसे विश्वलोचनकोश पर हैम, विश्वप्रकाश और मेदिनी इन तीनों कोशोंका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। विश्वप्रकाशका रचनाकाल ई० ११०५, मेदिनीका समय इसके कुछ वर्ष पश्चात् अर्थात् १२वीं शतीका उत्तरार्द्ध और हेमका १२वीं शतीका उत्तरार्द्ध है। अतः विश्वलोचनकोशका समय १३वीं शतीका उत्तरार्ध या १४वीं का पूर्वार्ध मानना उचित होगा।

इस कोशमें २४५३ श्लोक हैं। स्वरवर्ण और ककार आदिके वर्णक्रमसे शब्दोंका संकलन किया गया है। इस कोशकी विशेषताके संबंधमें इसके संपादक श्रीनन्दलाल शर्माने लिखा है "संस्कृतमें कई नानार्थ कोश हैं, परन्तु जहाँ तक

हम जानते हैं, कोई भी इतना बड़ा और इतने अधिक अर्थोंको बतलानेवाला नहीं है। इसमें एक-एक शब्दको लीजिये—जहाँ अमरमें इसके चार व मेदिनीमें दश अर्थ बतलाये गये हैं, वहाँ इसमें १२ अर्थ बतलाये गये हैं, यही इस कोशको विशेषता है।"

नागदेव

नागदेव संस्कृतके अच्छे कवि और गद्यकार हैं। इन्होंने 'मदनपराजय' ग्रन्थके आरम्भमें अपना परिचय दिया है। बताया है कि पृथ्वी पर पवित्र रघुकुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान चंगदेव हुआ। चंगदेव कल्पवृक्षके समान याचकोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला था। इसका पुत्र हरिदेव हुआ। हरिदेव दुर्जन कवि-हाथियोंके लिये सिंहके समान था। हरिदेवका पुत्र नागदेव हुआ, जिसकी प्रसिद्धि इस भूतलपर महान् वैद्यराजके रूपमें थी।

नागदेवके हेम और राम नामक दो पुत्र हुए। ये दोनों भाई भी अच्छे वैद्य थे। रामके प्रियंकर नामक एक पुत्र हुआ, जो अर्थियोंके लिये बड़ा प्रिय था। प्रियंकरके भी श्री मल्लुगित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्री मल्लुगित् जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलके प्रति उन्मत्त भ्रमरके समान अनुरागी था और चिकित्साशास्त्रसमुद्रमें पारंगत था।

मल्लुगित्का पुत्र मैं नागदेव हूँ। मैं अल्पज्ञ हूँ। छन्द, अलंकार, काव्य और व्याकरणशास्त्रका भी मुझे परिचय नहीं है।[1]

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि नागदेव सारस्वतकुलमें उत्पन्न हुआ था और उसके परिवारके सभी व्यक्ति चिकित्साशास्त्र या अन्य किसी शास्त्रसे परिचित थे।

---

१. यः शुद्धरामकुलपद्मविकासनार्को
जातोऽर्थिनां सुरतरुर्भुवि चङ्गदेवः।
तन्नन्दनो हरिरसत्कविनागसिंहः
तस्माद्भिषङ्जनपतिर्भुवि नागदेवः॥ २॥
तज्जावुभौ सुभिषजाविह हेमरामौ
रामात्प्रियंकर इति प्रियदोऽर्थिनां यः।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधिपारमाप्तः
श्रीमल्लुगिज्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्गः॥ ३॥
तज्जोऽहं नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः।
छन्दोऽलंकारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम्॥ ४॥

स्थितिकाल

नागदेवने 'मदनपराजय'की रचना कब की, इसका निर्देश कहीं नहीं मिलता है। 'मदनपराजय' पर आशाधरका प्रभाव दिखलाई पड़ता है तथा ग्रन्थकर्त्ताने स्वयं इस बातको स्वीकार किया है कि हरदेवने अपभ्रंशमें 'मदनपराजय' ग्रंथ लिखा है उसी ग्रन्थके आधारपर संस्कृत-भाषामें 'मदनपराजय' लिखा गया है। अतः हरदेवके पश्चात् ही नागदेवका समय होना चाहिए। हरदेवने भी 'मयणपराजउ'का रचनाकाल अंकित नहीं किया है। इस ग्रन्थकी आमेर भंडारकी पाण्डुलिपि वि० सं० १५७६ की लिखी हुई है। अतः हरदेवका समय इसके पूर्व सुनिश्चित है। साहित्य, भाषा एवं प्रतिपादन शैलीकी दृष्टिसे 'मयणपराजउ'का रचनाकाल १४ वीं शती प्रतीत होता है। अतएव नागदेवका समय १४वीं शतीके लगभग होना चाहिए। यदि आशाधरके प्रभावको नागदेवपर स्वीकार किया जाय, तो इनका समय १४वीं शतीका पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। यतः आशाधरने 'अनगारधर्मामृत'की टीका वि० सं० १३०० में समाप्त की थी। इस दृष्टिसे नागदेवका समय वि० की १४ वीं शती माना जा सकता है। नागदेवने अपने ग्रन्थमें अनेक ग्रन्थोंके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इन उद्धरणोंके अध्ययनसे भी नागदेवका समय १४ वीं शती आता है। 'मदनपराजय'की जो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं उनमें एक प्रति भट्टारक महेन्द्रकीत्तिके शास्त्रभण्डार आमेर की है। यह प्रति वि० सं० १५७३ में सूर्यसेन नरेशके राज्यकालमें लिखी गई है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें बताया है कि मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यके आम्नाय तथा सरस्वतीगच्छमें जिनेन्द्रसूरिके पट्टपर प्रभाचन्द्र भट्टारक हुए, जिनके आम्नायवर्ती नरसिंहके सुपुत्र होलाने यह प्रति लिखकर किसी व्रती पात्रके लिये समर्पित की। नरसिंह खण्डेलवासके निवासी पाम्पल्य कुलके थे। इनकी पत्नीका नाम मणिका था। दोनोंके होला नामक पुत्र था, जिसकी पत्नीका नाम वाणभू था। होलाके बाला और पर्वत नामक दो भाई थे और इस प्रतिको लिखानेमें तथा व्रतीके लिए समर्पण करनेमें इन दोनों भाइयोंका सहयोग था। इस लेखसे यह भी प्रतीत होता है कि बाला की पत्नीका नाम धान्या था। और इसके कुम्भ और बाहू नामक दो पुत्र भी थे।

इस पाण्डुलिपिके अवलोकनसे इतना स्पष्ट है कि नागदेवका समय वि० सं० १५७३ के पूर्व है। अतएव संक्षेपमें ग्रन्थके अध्ययनसे नागदेवका समय आशाधरके समकालीन या उनसे कुछ ही बाद होना चाहिए। नागदेव बड़े ही प्रतिभाशाली और सफल काव्यलेखक थे।

'मदनपराजय'के पुष्पिका-वाक्योंमें लिखा मिलता है—इति "ठाकुरमाइन्द-

देवसुतजिन (नाग) देवविरचिते स्मरपराजये संस्कृतबन्धे श्रुतावस्थानाम-प्रथमपरिच्छेदः" ।

ठाकुर माइन्ददेव और जिनदेवको किस प्रकार इस ग्रन्थका कर्त्ता बतलाया गया है । श्री जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे प्रकाशित और श्री पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ द्वारा अनूदित 'मकरध्वजपराजय'के परिच्छेदके अन्तमें भी मदनपराजयके कर्त्ताको ठाकुर माइन्ददेवसुत जिनदेव सूचित किया गया है । यों तो मदनपराजयके प्रारम्भमें ही नागदेवने अपने पिताका नाम मल्लुगित्त बताया है । नागदेवसे पूर्व छठो पीढ़ीमें हुए हरदेवने 'मदनपराजय' को अपभ्रंशमें लिखा है । श्री डा० हीरालालजीने अपने एक निबन्धमें लिखा है– "इस काव्यका ठाकुर मयन्ददेवके पुत्र जिनदेवने अपने स्मरपराजयमें परिवर्द्धन किया, ऐसा प्रतीत होता है"[1], पर जबतक 'मदनपराजय' और 'स्मरपराजय' ये दोनों रचनाएँ स्वतन्त्र रूपसे उपलब्ध नहीं होती है तब तक यह केवल अनुमानमात्र है । हमारा अनुमान है कि नागदेवने 'मदनपराजय'को ही स्मर-पराजय, मारपराजय और जिनस्तोत्रके नामसे अभिहित किया है । अतएव नागदेवका ही अपरनाम जिनदेव होना चाहिए ।

रचना

नागदेव द्वारा रचित मदनपराजय प्राप्त होता है । सम्यक्त्वकौमुदी और मदनपराजयमें भाषासाम्य, शैलीसाम्य और ग्रन्थोद्धृत पद्यसाम्य होनेसे सम्यक्त्वकौमुदीके रचयिता भी नागदेव अनुमानित किये जा सकते हैं, पर यथार्थतः नागदेवका एक ही ग्रन्थ मदनपराजय उपलब्ध है ।

'मदनपराजय'में रूपकशैली द्वारा मदनके पराजित होनेकी कथा वर्णित है । यह कथा रूपकशैलीमें लिखी गई है । बताया है कि भवनामक नगरमें मकरध्वज नामक राजा राज्य करता था । एक दिन उसकी सभामें शल्या, गारव, कर्मदण्ड, दोष और आश्रव आदि सभी योद्धा उपस्थित थे । प्रधान सचिव मोह भी वर्त्तमान था । मकरध्वजने वार्त्तालापके प्रसंगमें मोहसे किसी अपूर्व समाचार सुनानेकी बात कही । उत्तरमें उसने मकरध्वजसे कहा—राजन् आज एक ही नया समाचार है और वह यह है कि जिनराजका बहुत ही शीघ्र मुक्ति-कन्याके साथ विवाह होने जा रहा है । मकरध्वजने अबतक जिनराजका नाम नहीं सुना था और मुक्तिकन्यासे भी उसका कोई परिचय नहीं था । वह जिनराज और मुक्तिकन्याका परिचय प्राप्तकर आश्चर्यचकित हुआ ।

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५० अंक ३, ४ पृ० १२१ ।

वह मुक्ति कन्याका वर्णन सुनते ही उसपर मुग्ध हो गया और उसने विचार व्यक्त किया कि संग्रामभूमिमें जिनराजको परास्त कर वह स्वयं ही उसके साथ विवाह करेगा। मोहने नीतिकौशलसे उसे अकेले संग्रामभूमिमें उतरनेसे रोका। मकरध्वजने मोहकी बात मान ली। किन्तु उसने मोहको आज्ञा दी कि वह जिनराजपर चढ़ाई करनेके लिए शीघ्र ही अपनी समस्त सेना तैयार करके ले आये।

मकरध्वजकी रति और प्रीति नामक दो पत्नियाँ थीं। उसने रतिको मुक्ति-कन्याको मकरध्वजके साथ विवाह करानेके हेतु समझानेको भेजा। मार्गमें मोहकी रतिसे भेंट हुई। मोहने रतिको लौटा दिया और मकरध्वजको बुरा-भला कहा। मोहकी सम्मतिके अनुसार मकरध्वजने राग-द्वेष नामके दूतोंको जिनराजके पास भेजा। दूतोंने जिनराजकी सभामें जाकर मकरध्वजका संदेश सुनाया। वे कहने लगे कि मकरध्वजका आदेश है कि आप मुक्ति-कन्याके साथ विवाह न करें और आप अपने तीनों रत्न महाराज मकरध्वजको भेंट कर दें और उनकी अधीनता स्वीकार कर लें। जिनराजने मकरध्वजके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। जब राग-द्वेष बढ़-बढ़कर बातें करने लगे, तो संयमने उन्हें चाँटा लगाकर उन्हें सभामें अलग कर दिया। संयमसे अपमानित होकर राग-द्वेष मकरध्वजके पास आ गये। मकरध्वज जिनेन्द्रके समाचारको सुनकर उत्तेजित हुआ। उसने अन्यायको बुलाकर अपनी सेनाको तैयार करनेका आदेश दिया। जिनराजकी सेना संवेगकी अध्यक्षतामें तैयार होने लगी। मकरध्वजने बहिरात्माको जिनराजके पास भेजा और क्रोध, द्वेष आदिने वीरतापूर्वक संवेग, निर्वेदके साथ युद्ध किया। जिनराजने शुक्लध्यानरूपी वीरके द्वारा कर्म-धनुषको तोड़कर मुक्ति-कन्याको प्रसन्न किया। मकरध्वजकी समस्त सेना छिन्न-भिन्न हो गई और मुक्तिश्रीने जिनराजका वरण किया।

इस रूपक काव्यमें कवि नागदेवने अपनी कल्पनाका सूक्ष्म प्रयोग किया है। इस संदर्भमें कविने मुक्ति-कन्याका जैसा हृदयग्राही चित्रण किया है वैसा अन्यत्र मिलना दुष्कर है।

अलंकार, रस और भाव संयोजनकी दृष्टिसे भी यह काव्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

पंडित वामदेव

पं० वामदेव मूलसंघके भट्टारक विनयचन्द्रके शिष्य त्रैलोक्यकीर्तिके प्रशिष्य और मुनि लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे। पं० वामदेवका कुल नैगम था। नैगम ..

निगम कुल कायस्थोंका है। इससे स्पष्ट है कि पं० वामदेव कायस्थ थे। वामदेव प्रतिष्ठादि कर्मकाण्डोंके ज्ञाता और जिनभक्तिमें तत्पर थे।[1]

इन्होंने नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्तीके त्रिलोकसारको देखकर त्रैलोक्यदीपक ग्रंथकी रचना की है। इस ग्रन्थकी रचनामें प्रेरक पुरवाड वंशके कामदेव प्रसिद्ध थे। उनकी पत्नीका नाम नामदेवी था, जिसने राम-लक्ष्मणके समान जोमन और लक्ष्मण नामक दो पुत्र उत्पन्न किये थे। इनमें जोमनका पुत्र नेमिदेव नामका था, जो गुणभूषण और सम्यक्त्वसे विभूषित था। वह बड़ा उदार, न्यायी और दानी था। कामदेवकी प्रार्थनासे ही त्रैलोक्यदीपककी रचना सम्पन्न हुई है।

स्थितिकाल

पं० वामदेवका स्थितिकाल निश्चितरूपसे नहीं बतलाया जा सकता है। त्रैलोक्यदीपक ग्रन्थकी एक प्राचीन प्रति वि० सं० १४३६में फिरोजशाह तुगलकके समय योगिनीपुर (दिल्ली)में लिखी गई मिली है। यह प्रति अतिशय-क्षेत्र महावीरजीके शास्त्र-भण्डारमें विद्यमान है, जिससे इस ग्रन्थका रचनाकाल वि० सं० १४३६के बाद नहीं हो सकता है। बहुत संभव है कि पं० वामदेव वि० सं० १४३६के आस-पास जीवित रहे हों। अतएव वामदेवका समय वि० की १५वीं शती है।

रचनाएँ

पं० वामदेवकी दो रचनाएँ 'त्रैलोक्यदीपक' और 'भावसंग्रह' उपलब्ध हैं। 'भावसंग्रह'में ७८२ पद्य है। इस ग्रन्थके अन्तमें प्रशस्ति भी दी हुई है। इस प्रशस्तिके आधारपर पं० वामदेवके गुरु मुनि लक्ष्मीचन्द्र थे।

'भावसंग्रह'की रचना देवसेनके प्राकृत भावसंग्रहके आधारपर ही हुई

---

१. भूयाद्भव्यजनस्य विश्वमहितः श्रीमूलसंघः श्रिये
यत्राभूद्विनयेन्दुरद्भुतगुणः सच्छीलदुग्धार्णवः।
तच्छिष्योऽजनि भद्रमूर्तिरमलस्त्रैलोक्यकीर्तिः शशी।
येनैकान्तमहातमः प्रशमितं स्याद्वादविद्याकरैः ॥७७९॥

× × × ×

तच्छिष्यः क्षितिमण्डले विजयते लक्ष्मीन्दुनामा मुनिः ॥७८०॥
श्रीमत्सर्वज्ञपूजाकरणपरिणतस्तत्त्वचिन्तारसालो
लक्ष्मीचन्द्रांघ्रिपद्ममधुकरः श्रीवामदेवः सुधीः।
उत्पत्तिर्यस्य जाता शशिविशदकुले नैगमश्रीविशाले
सोऽयं जीव्यात्प्रकामं जगति रसलसद्भावशास्त्रप्रणेता ॥७८१॥

प्रतीत होती है। यह प्राकृत भावसंग्रहका संस्कृत अनुवाद प्रतीत होता है। यद्यपि वामदेवने स्थान-स्थानपर परिवर्त्तन, परिवर्द्धन और संशोधन भी किये हैं। पर यह स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। यह देवसेन द्वारा रचित भावसंग्रहका रूपान्तर मात्र है। वामदेवने 'उक्तं च' कहकर ग्रन्थान्तरोंके उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं। गीताके उद्धरण कई स्थलोंपर प्राप्त होते हैं। वैदिकपुराणोंसे भी उद्धरण ग्रहण किये गये हैं। नित्यैकान्त, क्षणिकैकान्त, नास्तिकवाद, वैनेयकमिथ्यात्व, अज्ञान, केवलि-भुक्ति, स्त्री-मोक्ष, सग्रंथ-मोक्षकी समीक्षाके पश्चात् १४ गुण-स्थानोंका स्वरूप और ११ प्रतिमाओंके लक्षण प्रतिपादित किये गये हैं। इज्या, दत्ति, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप आदिका कथन आया है।

भावसंग्रहके अतिरिक्त वामदेवके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ और भी मिलते हैं—

१. प्रतिष्ठासूक्तिसंग्रह
२. तत्त्वार्थसार
३. त्रैलोक्यदीपक
४. श्रुतज्ञानोद्यापन
५. त्रिलोकसारपूजा
६. मन्दिरसंस्कारपूजा

पं० मेधावी और उनकी रचना

मेधावीके गुरुका नाम जिनचन्द्र सूरि था। इन्होंने 'धर्मसंग्रह-श्रावकाचार' नामक ग्रंथकी रचना हिसार नामक नगरमें प्रारंभ की थी और उसको समाप्ति नागपुरमें हुई। उस समय नागपुर पर फिरोजशाहका शासन था। मेधावीने 'धर्मसंग्रहश्रावकचार'के अन्तमें प्रशस्ति अंकित की है, जिसमें बताया है कि कुन्द-कुन्दके आम्नायमें पवित्र गुणोंके धारक स्याद्वादविद्याके पारगामी पद्मनन्दि आचार्य हुए। इन पद्मनन्दिके पट्टपर द्रव्य और गुणोंके ज्ञाता शुभचन्द्र मुनि-राज हुए। इन शुभचन्द्र मुनिराजके पट्टपर श्रुतमुनि हुए। इन श्रुतमुनिसे मेधावीने अष्टसहस्री ग्रंथका अध्ययन किया। जिनचन्द्रके शिष्योंमें रत्नकीर्त्ति-का भी नाम आया है। मेधावी श्रावकाचारके अद्वितीय पंडित थे। इन्होंने समन्तभद्र, वसुनन्दि और आशाधर इन तीनों आचार्योंके श्रावकाचारोंका अध्ययन कर धर्मसंग्रह श्रावकाचारकी रचना की है। मेधावीने ग्रंथरचना-कालका निर्देश कर अपने समयकी सूचना स्वयं दे दी है। बताया है—

सपादलक्षे विषयेऽतिसुन्दरे
श्रिया पुरं नागपुरं समस्ति तत्।
पेरोजखानो नृपतिः प्रपाति स-
न्यायेन शौर्येण रिपून्निहन्ति च॥ १८॥

× × ×

मेधाविनाम्ना निवसन्नहं बुधः
पूर्णं व्यधां ग्रन्थमिमं तु कार्त्तिके।
चन्द्राब्धिबाणैकमितेऽत्र (१५४१) वत्सरे
कृष्णे त्रयोदश्यहनि स्वशक्तितः ॥ २१ ॥

वि० सं० १५४१ कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन धर्मसंग्रहश्रावकाचारकी समाप्ति हुई है। इस प्रकार मेधावीने ग्रंथरचनाका समय सूचित कर अपने समयका निर्देश कर दिया है। अतएव कविका समय वि० की १६वीं शती है।

कविका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है—धर्मसंग्रहश्रावकाचार। इस श्रावकाचारमें १० अधिकार हैं। प्रथम अधिकारमें श्रेणिक द्वारा गौतम गणधरसे श्रावकाचार सम्बन्धी प्रश्न पूछना और गौतमका उत्तर देना वर्णित है। इस अधिकारमें प्रधानतः राजगृहके विपुलाचल पर्वत पर तीर्थंकर महावीरके समवशरणका वर्णन आया है और उसका द्वितीय अधिकारमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मानस्तंभ, वीथियों, गोपुर, वप्र, प्राकार, तोरण आदि भी इसी अधिकारमें वर्णित हैं। तृतीय अधिकारमें श्रेणिक महाराजका समवशरणमें पहुँचकर अपने कक्षमें बैठना एवं महावीरकी दिव्यध्वनिका खिरना वर्णित है। चतुर्थ अधिकारमें सम्यग्दर्शनका निरूपण आया है। सम्यग्दर्शनको ही धर्मका मूल बतलाया है। जब तक व्यक्तिकी आस्था धर्मोन्मुख नहीं होती तब तक वह अपनी आत्माका उत्थान नहीं कर सकता। अतः मेधावीने सम्यग्दर्शनके साथ अष्टमूलगुण, द्वादश प्रतिमाएँ, सात तत्त्व, नव पदार्थ आदिका कथन किया है। इसी प्रसंगमें ३६३ मिथ्यावादियोंकी समीक्षा भी की गई है। चतुर्थ अधिकारका ८१वां पद्य आशाधरके सागारधर्मामृतके प्रथम अध्यायके १३वें पद्यसे बिल्कुल प्रभावित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेधावीने चतुर्थ अध्यायके ७७, ७८ और ७९वें पद्य भी आशाधरके सागारधर्मामृतके अध्ययनके पश्चात् ही लिखे हैं। पंचम अधिकारमें दर्शन-प्रतिमाका वर्णन किया गया है और प्रसंगवश मद्य, मांस और मधुके त्याग पर जोर दिया गया है। नवनीत, पंचउदुम्बरफल, अभक्ष्यभक्षण, द्यूतक्रीडाके त्यागका भी निर्देश किया गया है। षष्ठ अधिकारमें पंचाणुव्रतोंका स्वरूप आया है और सप्तममें सात शीलोंका वर्णन किया है। अष्टम अधिकारमें सामायिकादि दश प्रतिमाओंका वर्णन किया गया है। नवम अधिकारमें ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियोंके स्वरूपवर्णनके पश्चात् नैष्ठिक श्रावकके लिए विधेय कर्त्तव्योंपर प्रकाश डाला गया है। इस अधिकारमें संयम, दान, स्वाध्याय सल्लेखनाका भी वर्णन आया है। दशम अधिकारमें विशेष रूपसे समाधिमरणका कथन किया गया है।

जो साधक अपनी मृत्युके समयको शान्तिपूर्वक सिद्ध कर लेता है वह सद्गति लाभ करता है। इस प्रकार मेधावीने धर्मसंग्रहश्रावकाचारकी रचना कर श्रावकाचारको संक्षेपमें बतलानेका प्रयास किया है। इस ग्रन्थका प्रकाशन बाबू सूरजभान वकील देवबन्द द्वारा १९१० में हो चुका है।

रामचन्द्र मुमुक्षु

रामचन्द्र मुमुक्षुने 'पुण्यास्रव-कथाकोश'की रचना की है। इस ग्रन्थकी पुष्पिकाओंमें बताया गया है कि वे दिव्यमुनि केशवनन्दिके शिष्य थे। प्रशस्तिमें लिखा है—

"यो भव्याब्जदिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो
नानादुःखविधायिकर्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधीः।
यो योगीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्
ख्यातः केशवनन्दिदेवयतिपः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः ॥१॥
शिष्योऽभूत्तस्य भव्यः सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु-
र्ज्ञात्वा शब्दापशब्दान् सुविशदयशसः पद्मनन्द्याह्वयाद्वै।
वन्द्याद् वादीभसिंहात् परमयतिपतेः सोऽव्यधाद्भव्यहेतो-
र्ग्रन्थं पुण्यास्रवाख्यं गिरिसमितिमितै (५७) र्दिव्यपद्यैः कथार्थैः ॥२॥

अर्थात् आचार्य कुन्दकुन्दकी वंशपरम्परामें दिव्यबुद्धिके धारक केशवनन्दि नामके प्रसिद्ध यतीन्द्र हुए। वे भव्यजीवरूप कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यसमान, संयमके परिपालक, कामदेवरूप, हाथीके नष्ट करनेमें सिंहके समान पराक्रमी और अनेक दुःखोंको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी पर्वतके भेदनेके लिए कठोर वज्रके समान थे। बड़े बडे ऋषि और राजा महाराजा उनके चरणोंकी वन्दना करते थे। वे समस्त विद्याओंमें निष्णात थे।

उनका भव्य शिष्य समस्त जनोंके हितका अभिलाषी रामचन्द्र मुमुक्षु हुआ। उसने यशस्वी पद्मनन्दि नामक मुनिके पासमें शब्द और अपशब्दोंको जानकर व्याकरणशास्त्रका अध्ययन करके कथाके अभिप्रायको प्रकट करने वाले ५७ पद्यों द्वारा भव्यजीवोंके निमित्त इस पुण्यास्रव कथा ग्रन्थको रचा है। वे पद्मनन्दि मुनीन्द्र फैली हुई अतिशय निर्मल कीर्तिसे विभूषित, वन्दनीय एवं वादीरूपी हाथियोंको परास्त करनेके लिए सिंहके समान थे। कुन्दकुन्दाचार्यकी इस वंशपरम्परामें पद्मनन्दि त्रिरात्रिक हुए। वे देशीयगणमें मुख्य और संघके स्वामी थे। इसके पश्चात् माधवनन्दि पंडित हुए, जो महादेवकी उपमाको धारण करते थे। इनसे सिद्धान्तशास्त्रके पारंगत मासोपवासी गुणरत्नोंसे विभूषित, पंडितोंमें प्रधान वसुनन्दि सूरि हुए। वसुनन्दिके शिष्य मौलिनामक गणी हुए।

ये निरन्तर भव्यजीवरूप कमलोंके प्रफुल्लित करनेमें सूर्यके समान तत्पर थे। ये देवोंके द्वारा वन्दनीय थे।

उनके शिष्य मुनिसमूहके द्वारा वन्दनीय श्रीनन्दि सूरि हुए। उनकी कीर्त्ति चन्द्रमाके समान थी। वे ७२ कलाओंमे प्रवीण थे। उन्होंने अपने ज्ञानके तेजसे सभी दिशाओंको आलोकित कर दिया था। श्रीनन्दि चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य, शैव आदि दर्शनोंके विद्वान् थे।

उपर्युक्त प्रशस्तिसे यह स्पष्ट है कि केशवनन्दि अच्छे विद्वान् थे और उन्हीं-के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु थे। रामचन्द्रने महायशस्वी वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दिसे व्याकरण शास्त्रका अध्ययन किया था। कुछ विद्वानोंका अभिमत है कि प्रशस्तिके अंतिम छः पद्य पीछेसे जोड़े गये हैं। ये प्रशस्ति पद्य ग्रंथका मूल भाग प्रतीत नहीं होते। यह संभव है कि इस प्रशस्तिमें उल्लिखित पद्मनन्दि रामचन्द्रके व्याकरणगुरु रहे हों। प्रशस्तिके आधारपर, पद्मनन्दि, माधवनन्दि, वसुनन्दि, मौली या मौनी और श्रीनन्दि आचार्य हुए हैं। सिद्धान्त-शास्त्रके ज्ञाता वसुनन्दि मूलाचारटीकाके रचयिता वसुनन्दि यदि हैं तो इनका समय १२३४ ई० के पूर्व होना चाहिए।

रामचन्द्र मुमुक्षु संस्कृत-भाषाके प्रौढ़ गद्यकार हैं। उन्होंने संस्कृत और कन्नड़ दोनों भाषाओंकी रचनाओंका पुण्यास्रवकथाकोशके रचनेमें उपयोग किया है। कन्नड़ भाषाके अभिज्ञ होनेसे उन्हें दक्षिणका निवासी या प्रवासी माना जा सकता है। रामचन्द्रके इस कथाकोशसे यह स्पष्ट होता है कि रच-यिताकी कृतिमें व्याकरण-शैथिल्य है। उनकी शैली और मुहावरोंसे भी यही सिद्ध होता है।

स्थितिकाल

रामचन्द्र मुमुक्षुने अपने लेखनकालके सम्बन्धमें कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। इनके स्थितिकालका निर्णय ग्रन्थोंके उपयोगके आधारपर ही किया जा सकता है। इन्होंने हरिवंशपुराण, महापुराण और बृहद्कथाकोशका उपयोग किया है। हरिवंशपुराणका समय ई० सन् ७८३, महापुराणका समय ई० सन् ८९७ और बृहद्कथाकोशका ई० सन् ९३१-३२ है। अतएव रामचन्द्रका समय ई० सन् की १०वीं शताब्दीके पश्चात् है। रामचन्दकी कृतिके आधारसे कन्नड़ कवि नागराजने ई० सन् १३३१में कन्नड़चंपूकी रचना की है। अतएव १३३१ के पूर्व इनका समय संभाव्य है। यदि प्रशस्तिमें उल्लिखित वसुनन्दि मूला-चारकी टीकाके रचयिता सिद्ध हो जायें, तो रामचन्द्रका समय १३वीं शतीके मध्यका भाग होगा।

दूसरी बात यह है कि रत्नकरण्डके टीकाकार प्रभाचन्द्रने रामचन्द्रकी कथाएँ इस टीकामें ग्रहण की हैं तो रामचन्द्र प्रभाचन्द्रसे भी पूर्व सिद्ध होंगे।

हमारा अनुमान है कि पुण्यास्रवकथाकोशके रचयिता केशवनन्दिके शिष्य रामचन्द्र आशाधरके समकालीन या उनसे कुछ पूर्ववर्ती हैं।

रचनाएँ

रामचन्द्र मुमुक्षुकी पुण्यास्रवकथाकोशके साथ शान्तिनाथचरित कृति भी बतलायी जाती है। पद्मनन्दिके शिष्य रामचन्द्र द्वारा रचित धर्मपरीक्षा ग्रन्थ भी संभव है। पुण्यास्रव ४५०० श्लोकोंमें रचित कथा-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका सारांश कविने ५७ पद्योंमें निबद्ध किया है। आठ कथायें पूजाके फलसे; नौ कथाएँ पंचनमस्कारके फलसे; ७ कथायें श्रुतोपयोगके फलसे; ७ कथाएँ शीलके फलसे सम्बद्ध; ७ कथाएँ उपवासके फलसे और १५ कथाएँ दानके फलसे सम्बद्ध हैं। शैली वैदर्भी है, जिसे पूजा, दर्शन, स्वाध्याय आदिके फलोंको कथाओंके माध्यम द्वारा व्यक्त किया गया है।

वादिचन्द्र

बलात्कारगणकी सूरत-शाखाके भट्टारकोंमें कवि वादिचन्द्रका नाम उपलब्ध होता है। इनके गुरु प्रभाचन्द्र और दादागुरु ज्ञानभूषण थे। इनकी जाति हुंवड़ बतायी गई है। सूरत-शाखाके भट्टारकपट्टपर पद्मनन्दि, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र और वादिचन्द्रके नाम उपलब्ध होते हैं। वादिचन्द्रके पट्टपर महीचन्द्र आसीन हुए थे। वादिचन्द्र काव्यप्रतिभाकी दृष्टिसे अन्य भट्टारकोंकी अपेक्षा आगे हैं। उनकी भाषा प्रौढ है और उसमें भावगांभीर्य पाया जाता है। ग्रंथरचना करनेके साथ उन्होंने मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा भी करवाई थी। धर्म और साहित्यके प्रचारमें उनका बहुमूल्य योग रहा। मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके विद्वानोंमें इनकी गणना की गई है।

स्थितिकाल

भट्टारक वादिचन्द्र सूरिके समयमें वि० सं० १६३७ (ई० सन् १५८०)में उपाध्याय धर्मकीर्त्तिने कोदादामें श्रीपालचरितकी प्रति लिखी है। बताया है—

"संवत् १६३७ वर्षे वैशाख वदि ११ सोमे अदेह श्रीकोदादाशुभ-स्थाने श्री शीतलनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे·······भ० श्रीज्ञानभूषणदेवाः तत्पट्टे भ० श्री

प्रभाचन्द्रदेवाः तत्पट्टे भ० श्रीवादिचन्द्रः तेषां मध्ये उपाध्याय धर्मकीर्ति स्वकर्मक्षयार्थं लेखि।"[1]

वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३)में वाल्मीकिनगरमें पार्श्वपुराण[2] की रचना; वि० सं० १६५१ (ई० सन् १५९४)में श्रीपाल-आख्यान[3] एवं वि० सं० १६५७ (ई० सन् १६००)में अंकलेश्वरमें यशोधरचरितका[4] प्रणयन कवि द्वारा हुआ है। वादिचन्द्रने ज्ञानसूर्योदयनाटककी रचना माघ शुक्ला अष्टमी वि० सं० १६४८ (ई० सन् १५९१)में मधूकनगर गुजरातमें समाप्त की थी।[5]

कविकी एक अन्य रचना पवनदूतनामक खण्डकाव्य भी उपलब्ध है। पर इस काव्यमें कविने रचनाकालका निर्देश नहीं किया है। वादिचन्द्रका समय वि० सं० १६३७–१६६४ संभव है।

रचनाएँ

कवि वादिचन्द्रने खण्डकाव्य, नाटक, पुराण एवं गीतिकाव्योंका प्रणयन किया है। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं :—

१. पार्श्वपुराण—इस पौराणिक ग्रन्थमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका चरित वर्णित है। इसका परिमाण १५८० अनुष्टुप् श्लोक हैं।

२. श्रीपाल-आख्यान—गुजरातीमिश्रित हिन्दीमें यह गीतिकाव्य लिखा गया है। भाषाका नमूना निम्न प्रकार है—

प्रगट पाट त अनुक्रमे मानु ज्ञानभूषण ज्ञानवंतजी।
तस पद कमल भ्रमर अविचल जस प्रभाचन्द्र जयवंतजी॥
जगमोहन पाटे उदयो वादीचन्द्र गुणालजी।
नवरसगीते जेणे गायो चक्रवर्ति श्रीपालजी॥

३. सुभगसुलोचनाचरित—यह कथात्मक काव्य है। इसमें ९ परिच्छेद हैं। कविने अन्तिम प्रशस्तिमें उक्त काव्यकी विशेषतापर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"विहाय पद-काठिन्यं सुगमैर्वचनोत्करैः।
चकार चरितं साध्वा वादिचन्द्रोऽल्पमेधसा॥"

---

१. भट्टारक-सम्प्रदाय, शोलापुर, लेखांक ४९१।

२. शून्याब्दे रसाब्जांके वर्षे पक्षे समुज्ज्वले।
कार्त्तिके मासि पंचम्यां वाल्मीके नगरे मुदा।—पार्श्वपुराण, लेखांक–४९२।

३ "संवत सोल एकावनावर्षे कीधो ये परबंधजी।"—श्रीपाल-आख्यान, लेखांक ४९४।

४. "सप्तपंचरसाब्जांके वर्षेकारि सुशास्त्रकम्"—यशोधरचरित, लेखांक ४९५।

५. "वसुवेद रसाब्जांके वर्षे माघे सिताष्टमी दिवसे"—ज्ञानसूर्योदयनाटक, लेखांक ४९३।

स्पष्ट है कि कविने समस्यन्त कठोर पदोंको छोड़ सरल और लघु असमस्यन्त पदोंका चयन इस काव्यमें किया है।

४. ज्ञानसूर्योदय नाटक—इस नाटकके पात्र भावात्मक हैं। सूत्रधार और नटीके बीच सम्पन्न हुए वार्त्तालापमें कहा गया है लोक स्वभावत: उपशान्त है। किसी कर्मके प्रभावसे व्यक्ति भ्रान्त होते हैं और पुन: शान्ति प्राप्त करते हैं। चैतन्य-आत्माकी सुमति और कुमति नामक दो पत्नियोंसे पृथक्-पृथक् दो कुल उत्पन्न हुए हैं। सुमतिके पुत्र विवेक, प्रबोध, सन्तोष और शील हैं तथा कुमतिके मोह, मान, मार, क्रोध और लोभ हैं। कुमतिकी प्रेरणासे आत्माने मोह और काम नामक पुत्रोंको राज्य दे दिया। विवेकको यह अच्छा न लगा। अतएव वह ध्यान आदिकी सहायतासे मोह और कामको वश करता है तथा मुक्तिलाभ करता है।

५. पवनदूत इसमें १०१ पद्य हैं। यह मेघदूतकी शैलीमें लिखा गया एक स्वतंत्र काव्य है। इसमें बताया है कि उज्जयिनीमें विजयनरेश नामक राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम तारा था। अपनी रानीसे बहुत प्रेम करता था। एक दिन अशनिवेग नामका एक विद्याधर ताराको हरकर ले गया। रानीके वियोगसे राजा दु:खी रहने लगा। विरहावस्थामें वह पवनको दूत बनाकर रानीके पास भेजनेका निश्चय करता है। अपनी विरहावस्थाका चित्रण करनेके अनन्तर पवनको वह मार्ग बतलाता है। इस सन्दर्भमें वन, नदी, पर्वत, नगर और नगरोंमें निवास करनेवाली स्त्रियों तथा उनकी विलासमयी चेष्टाओंका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। पवन राजाका सन्देश लेकर अशनिवेगके नगरमें पहुँचता और अशनिवेगके महलमें जाकर ताराको उसके प्रियका सन्देश सुनाता है। तदनन्तर अशनिवेगकी सभामें जाकर उसे ताराके वापस दे देनेका परामर्श देता है। अशनिवेग विजयनरेशको युद्धकी धमकी देता है; पर उसकी माता उसे युद्ध न करनेका परामर्श देती है। और ताराको पवनके हाथ सौंप देती है। पवन ताराको लेकर वापस आ जाता है।

यह काव्य मन्दाक्रान्ता छन्दोंमें लिखा गया है। भाषा सरल, सरस और प्रसादगुणमय है। ऋतुओंका चित्रण काव्यात्मक शैलीमें किया गया है। ताराके शीलकी अभिव्यञ्जना बहुत ही सुन्दर हुई है।

६. पाण्डवपुराण—इसमें पाण्डवोंका वृत्तान्त वर्णित है।

७. यशोधरचरित—महाराज यशोधरकी लोकप्रिय कथा इसमें दी है।

८. होलिकाचरित—एक सरस चरितकाव्य है।

कवि वादिचन्द्रने अपनी रचनाशैली द्वारा लोकरुचिको तो परिष्कृत किया ही है, कोमल पदावली एवं भाषाका व्यवहार कर नई उद्भावनाएँ प्रसूत की हैं। इनके साहित्यके प्रधान तीन गुण हैं—ललित पद, सुकुमार भाव एवं अविकटाक्षर-बन्ध।

कविकी एक अन्य विशेषता रूपकात्मकताकी भी है। भावात्मक पदार्थों-काम, मोह, विवेक, सुमति, कुमति आदिका प्रयोग स्थूलपात्रके रूपमें विहित है। अतः प्रतीक काव्य लिखनेमें भी कवि किसीसे पीछे नहीं है। राजा पवनसे प्रार्थना करता हुआ कहता है—

"क्षित्यां नीरे हुतभुजि परव्योम्नि काले विशाले
त्वं लोकानां प्रथममकथि प्राणसंत्राणतत्त्वम्।
तस्माद्वातोधरचलगते तान्वियोगे हि नार्याः,
स्यान्नैवान्तर्विपुलकरुणः सत्त्वरक्षानपेक्षः॥"—पवनदूत। पद्य ३

हे पवन! हर समय प्राणकी रक्षा करनेवाले पञ्चभूतोंमें—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और कालमें तुम्हारी गणना प्रधानरूपसे की जाती है। अतएव मेरे वियोगमें जो मेरी प्रियाके प्राण निकलनेकी तैयारी कर रहे हैं उन्हें तुम जाकर रोक दो। अतः जीवके हृदयमें दयाका भाव उमड़ा रहता है वे प्राणियोंकी रक्षासे कदापि विमुख नहीं होते। पवनका महत्त्व बतलाते हुए राजा पुनः कहता है—

"एते वृक्षाः सति नवघनेऽप्यत्र सर्वत्र भूमौ
बोभूयन्ते न हि बहुफलास्त्वां विनेति प्रसिद्धिः।
तस्मात्तांस्त्वं घनफलघनान्संप्रयंच्छन्प्रकुर्याः
प्रायः प्राप्ताः पवनमतुलां पुष्टितामानयन्ति॥"—पवनदूत ४

देखो समस्त संसारमें तुम्हारे विषयमें यह प्रसिद्धि है कि नवीन वर्षाके होनेपर भी वृक्ष तुम्हारे बिना अधिक नहीं फलते। अतः तुम जाते समय इस बातकी याद रखना कि तुम्हें मार्गमें जो-जो वृक्ष मिलें उन्हें खूब फलयुक्त बनाते हुए जाना; क्योंकि पवनको प्राप्त कर प्रायः सभी पुष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार कविने विरही नायक द्वारा पवनसे विभिन्न प्रकारकी बातें कराई हैं। संक्षेपमें कवि वादिचन्द्रको अपनी रचनाओंके प्रणयनमें पर्याप्त सफलता मिली है।

दोड्डय्य

कवि दोड्डय्यने 'भुजबलिचरितम्' नामक एक ऐतिहासिक खण्डकाव्यकी रचना की है। ये आत्रेय गोत्रीय विप्रोत्तम और जैन धर्मावलम्बी थे। ये पिरिय-पट्टणके निवासी करणिकतिलक देवप्पके पुत्र थे। इनके गुरुका नाम पंडित मुनि था। कविने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

आदिब्रह्मविनिर्मितामलमहावंशाब्धिचन्द्रायमा—
नात्रेयोद्भवविप्रगोत्रतिलकः श्रीजैनविप्रोत्तमः।
दोड्डय्यः सुगुणाकरोऽस्ति पिरिराजाख्यानसत्पत्तने,
तेनासौ जिनगोम्मटेशचरितं भक्त्या मुदा निर्मितम्॥

स्थितिकाल

श्री पं० के० भुजबलि शास्त्रीने कविका समय १६वीं शताब्दी माना है। भाषा और शैलीकी दृष्टिसे भी इस कविका समय १६वीं शतीके आसपास प्रतीत होता है।

रचना और काव्यप्रतिभा

कविकी एक ही रचना 'भुजबलिचरितम्' उपलब्ध है। यह रचना जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २ में प्रकाशित है। 'भुजबलिचरितं'का नाम 'भुजवलिशतकम्' भी है। इस काव्यमें मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोलस्थ प्रसिद्ध अलौकिक एवं दिव्य गोम्मटस्वामीकी मूर्त्तिका इतिहास वर्णित है। कविने चरित आरम्भ करते ही रूपक-अलंकार द्वारा प्रशस्त भुजबलिचरितको प्रारम्भ करनेकी प्रतिज्ञा की है।

श्रीमोक्षलक्ष्मीमुखपद्मसूर्यं नाभेयपुत्रं वरदोर्बलीशम्।
नत्वादिकामं भरतानुजातं तस्य प्रशस्तां सुकथां प्रवक्ष्ये॥ १॥

कविने प्रस्तुत पद्यमें नाभेयपुत्र—भुजवलिको मोक्षलक्ष्मी मुखपद्मको विकसित करनेवाला सूर्य कहा है। इस सन्दर्भमें उपमेय और उपमानके साधर्म्यका पूरा विस्तार पाया जाता है। नाभेयपुत्रमें सूर्य साधर्म्य न होकर तादरूप्य बन गया है। अतः यहाँ तादरूप्यप्रतीतिजन्य चमत्कार पाया जाता है।

कतिपय पद्योंको पढ़नेसे कालिदासकी रचनाओंकी स्मृति हो आती है। कुमारसम्भवके "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" १।१ का स्पष्ट प्रभाव निम्नलिखित पद्यपर वर्त्तमान है—

सदुत्तरस्यां दिशि पौदनाख्यापुरी विभाति त्रिदशाधिपस्य।
पुरप्रभास्वत्प्रतिबिम्बितादर्शमिव जैनक्षितिमण्डलेऽस्मिन् ॥१६॥

कवि गोम्मटेशकी मूर्त्तिको कामधेनु, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष आदि उपमानों-से तुलना करता हुआ उसका वैशिष्ट्य निरूपित करता है—

अकृत्रिमार्हत्प्रतिमापि कायोत्सर्गेण भातीव सुकामधेनुः।
चिन्तामणिः कल्पकुंजः पुमानाकृति विधत्ते जिनबिम्बमेतत् ॥२१॥

कविकी भाषा प्रौढ है। एक-एक शब्द चुन-चुनकर रखा गया है। गोम्म-टेशके मस्तकाभिषेकका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

अष्टाधिक्यसहस्रकुम्भनिभृतैः सन्मन्त्रपूतात्मकैः
कर्पूरोत्तमकुंकुमादिविलसद्गंधच्छटामिश्रितैः।
गंगाद्युद्धजलैरशेषकलिलोत्सन्तापविच्छेदकैः
श्रीमद्दोर्बलिमस्तकाभिषवणं चक्रे नृपाग्रेसरः ॥४४॥

अभिषेकमें प्रयुक्त जलकी विशेषता और पवित्रताका मूर्त्तिमान चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

पीयूषवत्साधुकरैरनिद्यैस्चोच्चोद्भवैः सारतरैर्जलौघैः।
श्रीगुम्मटाधीश्वरमस्तकाग्रे स्नानं चकार क्षितिपाग्रगण्यः ॥४५॥

कविने भावव्यञ्जनाको स्पष्ट करनेके लिए रूपक-अलंकारको अनेक पद्योंमें सुन्दर योजना की है। हेमसेन मुनिको कुन्दकुन्दवंशरूपी समुद्रको समृद्धिके लिए चन्द्रमा, देशीयगणरूपी आकाशके लिए सूर्य, वक्रगच्छके लिए हर्म्यशेखर एवं नन्दिसंघरूपी कमलवनके लिये राजहंस कहा है—

कुन्दकुन्दवंशवार्धिपूर्णचन्द्रचारुदे—
शीगणाभ्रसूर्यवक्रगच्छहर्म्यशेखर।
नन्दिसंघपद्मषण्डराजहंस भूतले
त्वं जयात्र हेमसेनपण्डितार्य सन्मुने ॥९२॥

राजमल्ल

राजमल्लके जीवन-परिचयके सम्बन्धमें लाटीसंहिताके अन्तमें प्रशस्ति उपलब्ध है। इस प्रशस्तिसे यद्यपि सम्पूर्ण तथ्य सामने नहीं आते—केवल उससे निम्नलिखित परिचय ही प्राप्त होता है—

एतेषामस्ति मध्ये गृहनृपरुचिमान् फामनः संघनाथ-
स्तेनोच्चैः कारितेयं सदनसमुचिता संहिता नाम लाटी।

श्रेयोऽर्थं फामनीयैः प्रमुदितमनसा दानमानासनाद्यैः।
स्वोपज्ञा राजमल्लेन विदितविदुषाम्नायिना हैमचन्द्रे ॥३८॥

—लाटीसंहिता ग्रन्थकर्त्ता प्रशस्ति, पद्य ३८

इस पद्यसे ग्रन्थकर्त्ताके सम्बन्धमें इतना ही अवगत होता है कि वे हेमचन्द्रकी आम्नायके एक प्रसिद्ध विद्वान थे और उन्होंने फामनके दान, मान, आसनादिकसे प्रसन्नचित्त होकर लाटीसंहिताकी रचना की थी। यहाँ जिन हेमचन्द्रका निर्देश आया है वे काष्ठासंघी भट्टारक हेमचन्द्र हैं, जो माथुरगच्छपुष्करगणान्वयी भट्टारक कुमारसेनके पट्टशिष्य तथा पद्मनन्दि भट्टारकके पट्टगुरु थे, जिनकी कविने लाटीसंहिताके प्रथमसर्गमें बहुत प्रशंसा की है। बताया है कि वे भट्टारकोंके राजा थे। काष्ठासंघरूपी आकाशमें मिथ्या-अंधकारको दूर करनेवाले सूर्य थे और उनके नामकी स्मृतिमात्रसे दूसरे आचार्य निस्तेज हो जाते थे।

इन्हीं भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायमें ताल्हू विद्वान्‌को भी सूचित किया गया है। इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता कि कवि राजमल्ल काष्ठासंघी विद्वान् थे। इन्होंने अपनेको हेमचन्द्रका शिष्य या प्रशिष्य न लिखकर आम्नायी बताया है। और फामनके दान, मान, आसनादिकसे प्रसन्न होकर लाटीसंहिताके लिखने की सूचना दी है। इससे यह स्पष्ट है कि राजमल्ल मुनि नहीं थे। वे गृहस्थाचार्य या ब्रह्मचारी रहे होंगे।

राजमल्लका काव्य अध्यात्मशास्त्र, प्रथमानुयोग और चरणानुयोगपर आधृत है। 'जम्बूस्वामीचरित'में कविने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि मैं पदमें तो सबसे छोटा हूँ ही, वय और ज्ञान आदि गुणोंमें भी सबसे छोटा हूँ—

'सर्वेभ्योऽपि लघीयांश्च केवलं न क्रमादिह।
वयसोऽपि लघुर्बुद्धो गुणैर्ज्ञानादिभिस्तथा ॥१।१३४॥'

—जम्बूस्वामीचरित १।१३४।

स्थितिकाल

कवि राजमल्लने लाटीसंहिताकी समाप्ति वि० सं० १६४१में आश्विन दशमी रविवारके दिन की है। प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

(श्री) नृपतिविक्रमादित्यराज्ये परिणते सति।
सहैकचत्वारिंशद्भिरब्दानां शतषोडश ॥२॥

तत्रापि चाश्विनीमासे सितपक्षे शुभान्विते।
दशम्यां च दशरथे शोभने रविवासरे ॥३॥

जम्बूस्वामीचरितके रचनाकालका भी निर्देश मिलता है। यह ग्रन्थ वि० सं० १६३२ चैत्र कृष्णा अष्टमी पुनर्वसु नक्षत्रमें लिखा गया है। इस काव्यके आरम्भमें बताया गया है कि अर्गलपुर (आगरा)में बादशाह अकबरका राज्य था। कविका अकबरके प्रति जजिया कर और मद्यकी बन्दी करनेके कारण आदर भाव था। इस काव्यको अग्रवालजातिमें उत्पन्न गर्गगोत्री साहु टोडरके लिए रचा है। ये साहु टोडर अत्यन्त उदार, परोपकारी, दानशील और विनयादि गुणोंसे सम्पन्न थे। कविने इस संदर्भमें साहु टोडरके परिवारका पूरा परिचय दिया है। उन्होंने मथुराकी यात्रा की थी और वहाँ जम्बूस्वामी क्षेत्रपर अपार धनव्यय करके ५०१ स्तूपोंकी मरम्मत तथा १३ स्तूपोंका जीर्णोद्धार कराया था। इन्हींकी प्रार्थनासे राजमल्लने आगरामें निवास करते हुए जम्बूस्वामीचरितकी रचना की है। अतएव संक्षेपमें कवि राजमल्लका समय विक्रमकी १७वीं शती है। हमारा अनुमान है कि पञ्चाध्यायीकी रचना कविने लाटीसंहिताके पश्चात् वि० सं० १६५०के लगभग की होगी। श्री जुगलकिशोर मुख्तार जीने लिखा है[1]—"पञ्चाध्यायीका लिखा जाना लाटीसंहिताके बाद प्रारंभ हुआ है। अथवा पंचाध्यायीका प्रारंभ पहले हुआ हो या पीछे, इसमें सन्देह नहीं कि वह लाटीसंहिताके बाद प्रकाशमें आयी है। और उस वक्त जनताके सामने रखी गई है जबकि कवि महोदयकी यह लोकयात्रा प्रायः समाप्त हो चुकी थी। यही वजह है कि उसमें किसी सन्धि, अध्याय, प्रकरणादिक या ग्रन्थकर्त्ताके नामादिकी कोई योजना नहीं हो सकी और वह निर्माणाधीन स्थितिमें ही जनताको उपलब्ध हुई है।"

अतएव यह मानना पड़ता है कि पञ्चाध्यायी कवि राजमल्लकी अंतिम रचना है और यह अपूर्ण है।

रचनाएँ

कवि राजमल्लकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

१. लाटीसंहिता
२. जम्बूस्वामीचरित
३. अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड
४. पञ्चाध्यायी
५. पिङ्गलशास्त्र

---

१. श्री पं० जुगलकिशोर मुख्तार, वीर वर्ष ३ अंक १२-१३।

जम्बूस्वामी चरित—इस चरितकाव्यमें पुण्यपुरुष जम्बूस्वामीकी कथा वर्णित है। १३ सर्ग हैं और २४०० पद्य। कथामुखवर्णनमें आगराका बहुत ही सुन्दर वर्णन आया है। इस ग्रन्थकी रचना आगरामें ही सम्पन्न हुई है। इस काव्यकी कथावस्तुको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—पूर्वभव और वर्तमान जन्म। पूर्वभवावलीमें भावदेव और भवदेवके जीवनवृत्तोंका अंकन है। कविने विद्युच्चरचोरका आख्यान भी वर्णित किया है। आरंभके चार परिच्छेदोंमें वर्णित सभी आख्यान पूर्वभवावलीसे सम्बन्धित हैं। पञ्चम परिच्छेदसे जम्बूस्वामीका इतिवृत्त आरंभ होता है। जम्बूकुमारके पिताका नाम अर्हद्दास था। जम्बूकुमार बड़े ही पराक्रमशाली और वीर थे। इन्होंने एक मदोन्मत्त हाथीको वश किया, जिससे प्रभावित होकर चार श्रीमन्त सेठोंने अपनी कन्याओं का विवाह उनके साथ कर दिया। जम्बूकुमार एक मुनिका उपदेश सुन विरक्त हो गये और वे दीक्षा लेनेका विचार करने लगे। चारों स्त्रियोंने अपने मधुर हाव-भावों द्वारा कुमारको विषयभोगोंके लिए आकर्षित करना चाहा; पर वे मेरुके समान अडिग रहे। नवविवाहिताओंका कुमारके साथ नानाप्रकारसे रोचक वार्त्तालाप हुआ और उन्होंने कुमारको अपने वशमें करनेके लिए पूरा प्रयास किया; पर अन्तमें वे कुमारको अपने रागमें आबद्ध न कर सकीं। जम्बूकुमारने जिनदीक्षा ग्रहणकर तपश्चरण किया तथा केवलज्ञान और निर्वाण पाया।

कविने कथावस्तुको सरस बनानेका पूर्ण प्रयास किया है। युद्धक्षेत्रका वर्णन करता हुआ कवि वीरता और रौद्रताका मूर्त्तरूप ही उपस्थित कर देता है—

"प्रस्फुरत्स्फुरदस्त्रौघा भटाः संदर्शिताः परे।
औत्पातिका इवानीला सोल्का मेघाः समुत्थिताः॥
करवालं करालाग्रं करे कृत्वाऽभयोऽपरः।
पश्यन् मुखरसं तस्मिन् स्वसौन्दर्यं परिजज्ञिवान्॥
कराग्रं विधृतं खड्गं तुलयत्कोऽप्यभाद्भटः।
प्रमिमिसुरिवानेन स्वामीसत्कारगौरवम्॥"

जम्बूस्वामीचरित, ७।१०४-१०६

कविने इस संदर्भमें दृश्य-बिम्बकी योजना की है। समरमें भास्वर अस्त्र धारण किये हुए योद्धा इस प्रकारके दिखलाई पड़ते हैं जिसप्रकार उत्पातकालमें नीले मेघ उल्कासे परिपूर्ण परिलक्षित होते हैं। यह निमित्तशास्त्रका नियम है कि उत्पातकालमें टूटकर पड़नेवाली उल्काएँ अनियमित रूपसे झटित गति करती हैं और वे नीले मेघोंके साथ मिलकर एक नया रूप प्रस्तुत करती हैं। कविने इसी बिम्बको अपने मानसमें ग्रहणकर दीप्तिमान अस्त्रोंसे परिपूर्ण योद्धाओंकी

आभाका चित्रण किया है। द्वितीय पद्यमें हाथके अग्रभागमें धारण किये गये करवालमें योद्धाओंको रोषपूर्ण अपने मुखका प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। इस कल्पनाको भी कविने चमत्कृतरूपमें ग्रहण किया है। इस प्रकार जम्बूस्वामी-चरितमें बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों और रसभावोंकी सुन्दर योजना की गई है। एकादश सर्गमें सूक्तियोंका सुन्दर समावेश हुआ है।

लाटीसंहिता—लाटीसंहिताकी रचना कविने वैराट नगरके जिनालयमें की है। यह नगर जयपुरसे ४० मीलकी दूरी पर स्थित है। किसी समय यह विराट मत्स्यदेशकी राजधानी था। इस नगरकी समृद्धि इतनी अधिक थी कि यहाँ कोई दीन-दरिद्री दिखाई नहीं पड़ता। अकबर बादशाहका उस समय राज्य था। और वही इस नगरका स्वामी तथा भोक्ता था। जिस जिनालयमें बैठकर कविने इस ग्रन्थकी रचना की है वह साधु दूदाके ज्येष्ठ पुत्र और फामन के बड़े भाई 'न्योता'ने निर्माण कराया था। इस संहिताग्रंथकी रचना करनेकी प्रेरणा देने वाले साहू फामनके वंशका विस्तार सहित वर्णन है। और उससे फामनके समस्त परिवारका परिचय प्राप्त हो जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि वे लोग बहुत वैभवशाली और प्रभावशाली थे। इनकी पूर्वनिवास-भूमि 'डौकनि' नामकी नगरी थी। और ये काष्ठासंघी भट्टारकोंकी उस गद्दी-को मानते थे, जिसपर क्रमशः कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्त्ति और क्षेमकीर्त्ति नामके भट्टारक प्रतिष्ठित हुए थे। क्षेमकीर्त्तिभट्टारक उस समय वर्त्तमान थे और उनके उपदेश तथा आदेशसे उक्त जिनालयमें कितने ही चित्रों-की रचना हुई थी। इस प्रकार कवि राजमल्लने वैराटनगर, अकबर बादशाह काष्ठासंघी भट्टारक वंश, फामन कुटुम्ब, फामन एवं वैराट जिनालयका गुण-गान किया है। लाटीसंहितामें श्रावकाचारका वर्णन है और इसे ७ सर्गोंमें विभक्त किया गया है। प्रथम सर्गमें ८७ पद्य हैं और कथामुखभाग वर्णित है। द्वितीय सर्गमें अष्टमूलगुणका पालन और सप्तव्यसनत्यागका वर्णन आया है। इस सर्गमें २१९ पद्य हैं। तृतीय सर्गमें सम्यग्दर्शनका सामान्यलक्षण वर्णित है और चतुर्थ सर्गमें सम्यग्दर्शनका विशेष स्वरूप निरूपित है और इसमें ३२२ पद्य हैं। पञ्चम सर्गमें २७३ पद्योंमें त्रसहिंसाके त्यागरूप प्रथमाणुव्रतका वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्गमें सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परि-ग्रहपरिमाणाणुव्रतका २८६ पद्योंमें कथन किया गया है। इसी अध्यायमें गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंका भी अतिचार सहित वर्णन आया है। सप्तम अध्यायमें सामा-यिक आदि प्रतिमाओंका वर्णन आया है। अन्तमें ४० पद्य प्रमाण ग्रंथकर्त्ताकी प्रशस्ति दी गई है। पर इस प्रशस्तिमें कविका परिचय अंकित नहीं है।

'अध्यात्मकमलमार्तण्ड'—छोटी-सी रचना है और उसमें अध्यात्म-विषयका कथन आया है। अध्यात्मशास्त्रका अर्थ है परोपाधिके बिना मूलवस्तुका निर्देश करना। अध्यात्मरूपी कमलको विकसित करनेके लिए यह कृति सूर्यके समान है। इसपर 'समयसार' आदि ग्रंथोंका प्रभाव है। इस ग्रंथमें ४ अध्याय और १०१ पद्य हैं। प्रथम अध्यायमें निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके रत्नत्रयका, दूसरे अध्यायमें जीवादि सप्ततत्त्वोंके प्रसंगसे, द्रव्य, गुण और पर्याय तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका; तीसरे अध्यायमें जीवादि छः द्रव्योंका और चौथे अध्याय-में आस्रव आदि शेष तत्त्वोंका निरूपण किया है।

पिङ्गलशास्त्र—इसमें छन्दशास्त्रके नियम, छन्दोंके लक्षण और उनके उदाहरण आये हैं। इसकी रचना भूपाल भारमल्लके निमित्तसे हुई है। ये श्रीपाल जातिके प्रमुखपुरुष वणिक्संघके अधिपति और नागौरी तपागच्छ आम्नायके थे। इनके समयमें इस पट्ट पर हर्षकीर्त्ति अधिष्ठित थे। इसकी रचना नागौरमें हुई है। ऐसा अनुमान होता है कि कवि आगरासे नागौर चला गया था। भूपाल भारमल्ल भी वहींके रहनेवाले थे।

पञ्चाध्यायी—यह ग्रंथ अपूर्ण है; फिर भी जैनसिद्धान्तको हृदयंगत करने-के लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। जिस प्रकार अन्य ग्रंथोंके निर्माणका हेतु है उसी प्रकार पञ्चाध्यायीके निर्माणका भी कोई हेतु होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रंथकी रचना कविने दीर्घकालीन अभ्यास, मनन और अनुभवके बाद की है। मंगलाचरण प्रवचनसारके आधारपर किया गया है।

इस ग्रंथके दो ही अध्याय उपलब्ध होते हैं। प्रथम अध्यायमें सत्ताका स्वरूप, द्रव्यके अंशविभाग, द्रव्य और गुणोंका विचार, प्रत्येक द्रव्यमें संभव गुणोंका कथन, अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्यायोंका विशेष वर्णन, गुण, गुणांश, द्रव्य और द्रव्यांशका निरूपण भी पाया जाता है। द्रव्यके विविध लक्षणोंका समन्वय करने के पश्चात् गुण, गुणोंका नित्यत्व, भेद, पर्याय, अनेकान्तदृष्टिसे वस्तुविचार, सत् पदार्थ, नयोंके भेद, नयाभास, जीवद्रव्य और उसके साथ संलग्न कर्मसंस्कार-का भी कथन किया गया। दूसरे अध्यायमें सामान्यविशेषात्मक वस्तुसिद्धिके पश्चात् अमूर्त्त पदार्थोंकी सिद्धि और द्रव्योंकी क्रियावती और भाववती शक्तियों-का भी कथन आया है। स्वाभाविकी और वैभाविकी शक्तियोंके विचारके पश्चात् जीवतत्त्व, चेतना, ज्ञानीका स्वरूप, ज्ञानीके चिह्न, सम्यग्दर्शनका लक्षण, उसके प्रशमादि भेद, सप्तभय, सम्यग्दर्शनके आठ अंग, तीन मूढ़ता आदिका भी निरूपण आया है। इसी अध्यायमें औदयिकभावोंका स्वरूप, ज्ञानावरणादि कर्मोंका

विचार, मिथ्यात्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। जैन दर्शनकी प्रमुख बातों-की जानकारी इस अकेले ग्रंथसे ही संभव है।

इस प्रकार राजमल्लने उपयोगी कृतियोंका निर्माण कर श्रुतपरम्पराके विकासमें योग दिया है। काव्य प्रतिभाकी दृष्टिसे भी राजमल्ल कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

पद्मसुन्दर

वि० सं०की १७वीं शतीमें पद्मसुन्दर नामके अच्छे संस्कृत-कवि हुए हैं। पं० पद्मसुन्दर आनन्दमेरुके प्रशिष्य और पं० पद्ममेरुके शिष्य थे। कविने स्वयं अपने-को और अपने गुरुको पंडित लिखा है। इससे यह अनुमान होता है कि पं० पद्मसुन्दर गद्दीधर भट्टारकके पाण्डेय या पंडित शिष्य रहे होंगे। भट्टारकोंकी गद्दियों पर कुछ पंडित शिष्य रहते थे, जो अपने गुरु भट्टारककी मृत्युके पश्चात् भट्टारकपद तो प्राप्त नहीं करते थे। पर वे स्वयं अपनी पंडितपरम्परा चलाने लगते थे। और उनके पश्चात् उनके शिष्य-प्रतिशिष्य पंडित कहलाते थे।

पं० पद्मसुन्दरने 'भविष्यदत्तचरित'की रचना की है। और इस ग्रंथके अन्त-में जो प्रशस्ति अंकित की गई है उसमें काष्ठासंघ, माथुरान्वय और पुष्करगण-के भट्टारकों-की परम्परा भी अंकित है। कविके आश्रयदाता और ग्रंथ रचनेकी प्रेरणा करनेवाले साहू रायमल्ल इन्हीं भट्टारकोंकी आम्नायके थे।

ग्रंथ रचनेकी प्रेरणा उन्हें 'चरस्थावर' में उस समयके प्रसिद्ध धनी साहू राय-मल्लकी प्रार्थनासे प्राप्त हुई थी। यह 'चरस्थावर' मुजफ्फरनगर जिलेका वर्त्त-मान 'चरथावल' जान पड़ता है।

साहू रायमल्ल गोयलगोत्रीय अग्रवाल थे। इनके पूर्वज छाजू चौधरी देश-विदेशमें विख्यात थे। इनके पाँच पुत्र हुए, जिनमें एक नरसिंह नामका भी था। इसी नरसिंहके पौत्ररूपमें साहू रायमल्ल हुए थे। रायमल्लकी दो पत्नियाँ थीं। इनमें प्रथम पत्नी ऊधाहीसे अमीचन्द्र नामक पुत्र और मीनाहीसे उदयसिंह, शालिवाहन और अनन्तदास नामक तीन पुत्र हुए।

काष्ठासंघ माथुरान्वय पुष्करगणके उद्धरसेनदेव, देवसेन, विमलसेन, गुण-कीर्त्ति, यशःकीर्त्ति, मलयकीर्त्ति, गुणभद्र, भानुकीर्त्ति और कुमारसेन भट्टारकों-की भविष्यदत्तचरितमें नामावली आयी है। कुमारसेनके समयमें इस भविष्यदत्त-चरितकी प्रतिलिपि की गई है।

स्थितिकाल

पं० पद्मसुन्दरने अपने ग्रन्थोंमें रचनाकालका अंकन किया है। अतः इनके स्थितिकालके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करना कठिन नहीं है। प्रशस्तिके अनुसार भविष्यदत्तचरितका रचनाकाल कार्तिक शुक्ला पंचमी वि० सं० १६१४ और रायमल्लाभ्युदयका रचनाकाल ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी वि० सं० १६१५ है। अतएव पं० पद्मसुन्दरका समय वि० सं० की १७वीं शती निश्चित है।

रचनाएँ

पं० पद्मसुन्दरकी दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं—भविष्यदत्तचरित और रायमल्लाभ्युदयमहाकाव्य। भविष्यदत्तचरितमें पुण्यपुरुष भविष्यदत्तकी कथा अंकित है। श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीकी सूचनाके अनुसार फाल्गुन शुक्ला सप्तमी वि० सं० १६१५ की लिखित भविष्यदत्तचरितकी अपूर्ण प्रति बंबईके ऐलक पन्नालाल सरस्वतीभवनमें विद्यमान है। भविष्यदत्तकी कथा पांच सर्गों या परिच्छेदोंमें विभक्त है।

रायमल्लाभ्युदयमहाकाव्यमें २५ सर्ग हैं। इसमें २४ तीर्थंकरोंके जीवनवृत्त गुम्फित किये गये हैं। ग्रंथका प्रारंभिक अंश और अन्त्यप्रशस्ति इतिहासकी दृष्टिसे उपयोगी है। ग्रंथके अन्तमें पुष्पिकावाक्य निम्नप्रकार लिखा गया है—

"इति श्रीपरमाप्तपुरुषचतुर्विंशतितीर्थंकरगुणानुवादचरिते पं० श्रीपद्ममेरुविनेये पं० पद्मसुन्दरविरचिते वर्द्धमानजिनचरितमंगलकीर्त्तनं नाम पंचविंश: सर्ग: ।"

पं० जिनदास

पं० जिनदास आयुर्वेदके निष्णात पंडित थे। इनके पूर्वज हरिपतिको पद्मावतीदेवीका वर प्राप्त था। ये पेरीजशाह द्वारा सम्मानित थे। इन्हींके वंशमें पद्मनामक श्रेष्ठि हुए, जिन्होंने याचकोंको बहुत-सा दान दिया। पद्म अत्यन्त प्रभावशाली थे। अनेक सेठ, सामन्त और राजा इनका सम्मान करते थे। पद्मका पुत्र वैद्यराज बिझ था। बिझने शाह नसीरसे उत्कर्ष प्राप्त किया था। इनके दूसरे पुत्रका नाम सुहृजन था, जो विवेकी और वादिरूपी मृगराजोंके लिये सिंहके समान था। यह भट्टारक जिनचन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हुआ और इसका नाम प्रभाचन्द्र रखा गया। इसने राजाओं जैसी विभूतिका परित्याग किया था। उक्त बिझका पुत्र धर्मदास हुआ, जिसे महमूदशाहने बहुमान्यता प्रदान की थी। यह वैद्यशिरोमणि और यशस्वी था। इनकी धर्मपत्नीका नाम

धर्मश्री था, जो अद्वितीय दानी सद्दृष्टिरूपसे मन्मथविजयी और हँसमुख थी। इसका रेखा नामक पुत्र आयुर्वेदशास्त्रमें प्रवीण वैद्योंका स्वामी और लोक-प्रसिद्ध था। रेखा चिकित्सक होनेके कारण रणस्तम्भ नामक दुर्गमें बादशाह शेरशाहके द्वारा सम्मानित हुए थे। प्रस्तुत जिनदास रेखाके ही पुत्र थे। इनकी माताका नाम रेखश्री और धर्मपत्नीका नाम जिनदासी था, जो रूप-लावण्यादि गुणोंसे अलंकृत थी। पं० जिनदास रणस्तंभ दुर्गके समीपस्थ नव-लक्षपुरके निवासी थे।[1]

स्थितिकाल

जिनदासकी एक 'होलीरेणुकाचरित' रचना उपलब्ध है। इस रचनाके अन्तमें कविने इसका लेखन-काल दिया है। अत: जिनदासके समयमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है। प्रशस्तिमें लिखा है—

> वसुखकायशीतांशुमिते (१६०८) संवत्सरे तथा।
> ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां शुक्रवासरे ॥६१॥
> अकारि ग्रंथ: पूर्णोऽयं नाम्ना दृष्टिप्रबोधक:।
> श्रेयसे बहुपुण्याय मिथ्यात्वापोहहेतवे ॥६२॥

अर्थात् वि० सं० १६०८ ज्येष्ठशुक्ला दशमी शुक्रवारके दिन यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। पं० जिनदासने यह ग्रन्थ भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य भट्टारक ललित-कीर्त्तिके नामसे अंकित किया है। पुष्पिकावाक्यमें लिखा है—

'इति श्रीपंडितजिनदासविरचिते मुनिश्रीललितकीर्त्तिनामाङ्किते होली-रेणुकापर्वचरिते दर्शनप्रबोधनाम्नि धूलिपर्व-समयधर्म-प्रशस्तिवर्णनो नाम सप्तमोऽध्याय:।'

रचना

पंडित जिनदासकी एक ही रचना प्राप्त है—'होलिकारेणुचरित'। इस रचनामें पञ्चनमस्कारमंत्रका महात्म्य प्रतिपादित है। रचना सात अध्यायोंमें विभक्त है। श्लोकसंख्या ८४३ है। कविने शेरपुरके शान्तिनाथचैत्यालयमें ५१ पद्योंवाली होलीरेणुकाचरितकी प्रतिका अवलोकनकर ८४३ पद्योंमें इसे समाप्त किया है। काव्यत्वकी दृष्टिसे यह रचना सामान्य है।

ब्रह्म कृष्णदास

ब्रह्म कृष्णदास लोहपत्तन नगरके निवासी थे। इनके पिताका नाम हर्ष

---

१. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, प्रस्तावना, पृ० ३२–३३।

और माताका नाम वीरिका देवी था। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम मंगलदास था। ये दोनों भाई ब्रह्मचारी थे। ब्रह्म कृष्णदासने मुनिसुव्रतपुराणकी प्रशस्तिमें रामसेन भट्टारककी परम्परामें हुए अनेक भट्टारकोंका स्मरण किया है। ब्रह्म कृष्णदास काष्ठासंघके भट्टारक भुवनकीर्त्तिके पट्टधर भट्टारक रत्नकीर्त्तिके शिष्य थे। भट्टारक रत्नकीर्त्ति न्याय, नाटक और पुराणादिके विज्ञ थे। ब्रह्म कृष्णदासका व्यक्तित्व आत्म-साधना और ग्रन्थ-रचनाको दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

स्थितिकाल

ब्रह्म कृष्णदासने अपनी रचना मुनिसुव्रतपुराणमें उसके रचनाकालका निर्देश किया है। बताया है कि कल्पवल्ली नगरमें वि० सं० १६८१ कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन अपराह्न समयमें ग्रन्थ पूर्ण हुआ। लिखा है—

'इन्द्वष्टषट्चन्द्रमितेऽथ वर्षे (१६८१) श्रीकार्त्तिकाख्ये धवले च पक्षे।
जीवे त्रयोदश्यपरान्हया मे कृष्णेन सौख्याय विनिर्मितोऽयं ॥९६॥
लोहपत्तननिवासमहेभ्यो हर्ष एव वाणिजामिन हर्षः।
तत्सुतः कविविधिः कमनीयो भाति मंगलसहोदरकृष्णः ॥९७॥
श्रीकल्पवल्लीनगरे गरिष्ठे श्रीब्रह्मचारीश्वर एष कृष्णः।
कंठावलंब्यूर्जितपूरमल्लः प्रवर्द्धमानो हितमा [त] तान ॥९८॥'

इन प्रशस्ति-पद्योंमें कविने अपनेको ब्रह्मचारी भी कहा है तथा इनके आधार पर कविका समय वि० की १७वीं शती है।

रचना

मुनिसुव्रतपुराणमें कविने २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतका जीवन अंकित किया है। इसमें २३ सन्धि या सर्ग हैं। और ३०२५ पद्य हैं। यह रचना काव्य-गुणोंकी दृष्टिसे भी अच्छी है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, विभावना आदि अलंकारोंका प्रयोग पाया जाता है। इसकी प्रति जयपुरमें सुरक्षित है।

अभिनव चारुकीर्ति पंडिताचार्य

अभिनव चारुकीर्त्ति पंडिताचार्य द्वारा विरचित 'प्रमेयरत्नालंकार' नामक प्रमेयरत्नमालाकी टीका प्राप्त होती है। इस ग्रन्थके प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें निम्नलिखित पुष्पिकावाक्य उपलब्ध होता है—

"इति श्रीमत्स्याद्वादसिद्धान्तपारावारपारीणमानस्य देशीगणाग्रगण्यस्य श्रीमद्वेलुगुलपुरनिवासरसिकस्याभिनवचारुकीर्तिपण्डिताचार्यस्य कृतौ परीक्षामुखसूत्रव्याख्यायां प्रमेयरत्नालङ्कारसमाख्यायां प्रमाणस्वरूपपरिच्छेदः प्रथमः ।"

इससे स्पष्ट है कि अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य देशीगणके आचार्य थे और बेलुगुलुपुरके निवासी थे। स्याद्वादविद्यामें निष्णात थे। अतएव अच्छे नैयायिक और तार्किकके रूपमें उनकी ख्याति रही होगी। प्रशस्तिके अनुसार ग्रंथकार देशीगण पुस्तकगच्छ कुन्दकुन्दान्वय इंगुलेश्वरबलिके आचार्य थे। और परम्परानुसार श्रवणबेलगोल पट्टपर आसीन हुए थे। यह परम्परा ११वीं शतीमें आरंभ हुई और इसमें चारुकीर्ति नामके अनेक पट्टाधीश हुए। कभी-कभी श्रुतकीर्ति, अजितकीर्ति आदि कतिपय अन्य नामोंके भी भट्टारक हुए हैं। पर अधिकतर चारुकीर्ति नामके भट्टारक हुए हैं। परस्पर भेद बतलानेके लिए अभिनव, पंडितदेव, पंडितार्य, पंडिताचार्य आदि विशेषणोंमेंसे एक या दो विशेष प्रयुक्त होते रहे हैं।

अभिनव पंडिताचार्य चारुकीर्त्तिकी एक अन्य रचना 'गीतवीतराग' भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थमें कविने निम्न लिखित प्रशस्ति अंकित की है—

"गाङ्गेयवंशांबुधिपूर्णचन्द्रः यो देवराजोऽजनि राजपुत्रः,
तस्यानुरोधेन च गीतवीतरागप्रबन्धं मुनिपश्चकार ॥१॥
द्राविडदेशविशिष्टे सिंहपुरे लब्धशस्तजन्मासौ;
बेलुगोलपण्डितवर्यश्चक्रे श्रीवृषभनाथविरचितम् ॥२॥
स्वस्ति श्रीबेलगोले दोर्बलिजलनिकटे कुन्दकुन्दान्वयेनोऽ
भूतं स्तुत्यः पुस्तकाङ्कश्रुतगुभरः ख्यातदेशीगणार्यः,
विस्तीर्णाशेषरीतिप्रगुणरसभृतं गीतयुग्वीतरागम्
शस्ताधीशप्रबन्धं बृधनुतमतनोत् पण्डिताचार्यवर्यः ।

इति श्रीमद्रायराजगुरुभूमण्डलाचार्यवर्णमहावादवादश्वरायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिबल्लाग्रायजीवरक्षापालकृत्याद्यने कवि रुद्धालीविराजितश्रीमद्बेलुगुलसिद्धसिंहासनाधीश्वरश्रीमदभिनवचारुकीर्त्तिपण्डिताचार्यवर्यप्रणीतवीतरागाभिधानाष्टपदी समाप्ता ।"

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि अभिनव पंडिताचार्यका जन्म दक्षिण भारतके सिंहपुरमें हुआ था। जब श्रवणबेलगोलमें भट्टारक पद प्राप्त किया, तो इनका उपाधिनाम चारुकीर्त्ति हो गया। कविने गंगवंशके राजपुत्र देवराजके अनुरोध से गीतवीतरागकी रचना समाप्त की है।

इन अभिनव पंडिताचार्यका उल्लेख श्रवणबेलगोलके निम्नलिखित अभिलेखमें पाया जाता है—

'स्वस्ति श्रीमूलसङ्घदेशिय-गणपुस्तकगच्छकोण्डकुन्दान्वयद श्रीमदभिनव-चारुकीर्त्ति-पण्डिताचार्य्यर शिष्यलुसम्यक्त्वाद्यनेक-गुण-गणाभरण-भूषिते राय-पात्रचूडामणिबेलुगुलद मङ्गायि माडिसिद त्रिभुवनचूडामणियेम्ब चैत्यालयक्के मङ्गलमहा श्री श्री श्री।'[1]

इस अभिलेखसे अभिनव पण्डिताचार्यका समय शक् सं० १२४७के पूर्व होना चाहिए। इन्होंने अपने शिष्य मङ्गायसे त्रिभुवनचूड़ामणि चैत्यालयका निर्माण कराया था, जो कालान्तरमें मङ्गाय वसतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

दूसरे अभिनव पण्डिताचार्यका निर्देश शक् सं० १४६६, ई० सन् १५४४के अभिलेखमें पाया जाता है। विजयनगरनरेश देवरायकी रानी भीमादेवीसे इन अभिनवपंडिताचार्यने शान्तिनाथबसतिका निर्माण कराया था। अतः इस आधार पर अभिनव पण्डिताचार्यका समय वि० की १६वीं शती सिद्ध होता है। बताया है—

"स्वस्ति श्रीमद् राय-राज-गुरु-मण्डलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादि-पितामह सकलविद्वज्जन-चक्रवर्त्तिगल् बल्लालराय-जीवरक्षपालकाद्यनेक बिरुदावलि विराजमानरुमप्प श्रीमच्चारुकीर्त्ति-पण्डित देवरुगल प्रशिष्ठरादतच्छिष्य श्रीमदभिनव-चारुकीर्ति-पण्डित-देवरुगल प्रियशिष्यरादतस्याग्रजशिष्य श्रीमाच्चरु-कीर्तिपण्डितदेवरुगल सतीर्थ्यराद श्रीमच्छान्तिकीर्ति-देवरु (ग) लु शकवर्ष ॥"

हमारा अनुमान है कि ये द्वितीय अभिनव पण्डिताचार्य ही गीतवीतराग और प्रमेयरत्नमालालंकारके रचयिता हैं। गीतवीतराग पर ई० सन् १८४२की बोम्भरसकी कन्नड़-टीका भी प्राप्त है। गीतवीतरागकी पाण्डुलिपि ई० सन् १७५८की उपलब्ध है। अतएव अभिनव पण्डिताचार्यका समय ई० सन् की १६वीं शती होना चाहिए। डा० ए० एन० उपाध्येने इनके समयकी पूर्व सीमा १४०० ई० और उत्तर सीमा १७५८ बतलायी है। हमारा अनुमान है कि मध्यमें इनका समय ई० सन्की १६वीं शती होना चाहिए।

रचनाएँ

अभिनव पंडिताचार्यकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—गीतवीतराग और प्रमेयरत्नालंकार। गीतवीतरागमें प्रबन्धगीत लिखे गये है। कविने स्वाराध्य ऋषभ-

१. जैनशिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्ददिगम्बरजैनग्रन्थमाला, ग्रंथाङ्क, २८, अभिलेखसंख्या १३२।

देवके दश जन्मोंकी कथा गीतोंमें निबद्ध की है। कथावस्तु २४ प्रबन्धोंमें विभक्त है। प्रथम प्रबन्धमें महाबलकी प्रशंसा, द्वितीयमें महाबलका वैराग्योत्पादन, तृतीयमें ललिताङ्गका वनविहार, चतुर्थमें श्रीमतीका जातिस्मरण, पंचममें वज्रजंघका पट्टकार्थ विवरण, षष्ठमें वज्रजंघ और श्रीमतीके सौन्दर्यका चित्रण, सप्तममें श्रीमतीका विरहवर्णन, अष्टममें भोगभूमिवर्णन, नवममें आर्यका-गुरुगुण स्मरण, दशममें श्रीधरका स्वर्गवैभववर्णन, एकादशमें सुविधि पुत्रसम्बोधन, द्वादशमें अच्युतेन्द्रके दिव्य शरीरका वर्णन, त्रयोदशमें वज्र-नाभिके शारीरिक सौन्दर्यका चित्रण, चतुर्दशमें सर्वार्थसिद्धि विमानका चित्रण, पन्द्रहवेंमें मरुदेवीका निरूपण, सोलहवेंमें मरुदेवीके स्वप्न, सप्तदशमें प्रभात वर्णन, अठारहवेंमें जिनजन्माभिषेक, उन्नीसवेंमें परमौदारिक शरीर, बीसवेंमें ऋषभदेवका वैराग्य, इक्कीसवेंमें ऋषभदेवका तप, बाइसवेंमें समवशरणका वर्णन, तेइसवेंमें समवशरणभूमिका चित्रण और चौबीसवेंमें अष्टप्राति-हारियोंका कथन आया है। प्रसंगवश ललिताङ्गदेवकी कथाको पर्याप्त विस्तृत किया गया है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे यह काव्य अत्यन्त सरस और मधुर है। कवि श्रीमतीकी भावनाका चित्रण करता हुआ कहता है—

'चन्दनलिप्तसुवर्णशरीरसुधौतवसनवरधीरम्,
मन्दरशिखरनिभामलमणियुतसन्नुतमुकुटमुदारम्।
कथमिह लप्स्ये दिविजवरं माननिमन्मथकेलिपरम्॥
इन्दुरविद्वयनिभमणिकुण्डलमण्डितगण्डयगेशम्,
चन्दिरदलसमनिटिलविराजितसुन्दरतिलकसुकेशम्॥'

प्रमेयरत्नमालालंकार—यह नव्यशैलीमें लिखी गई प्रमेयरत्नमालाकी टीका है। लेखकने प्रमेयरत्नमालामें आये हुए समस्त विषयोंका स्पष्टीकरण नव्यशैलीमें किया है। प्रमाणके लक्षणकी व्याख्या करते हुए न्यायकुमुदचन्द्र, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदि ग्रन्थोंसे विषय-सामग्री ग्रहणकर आये हुए प्रमेयोंका स्पष्टीकरण किया है। प्रमाण-लक्षणमें सांख्य, प्राभाकर आदिके मतोंकी भी समीक्षा की है। इस ग्रंथकी चार विशेषताएं हैं—

१. मूल मुद्दोंका स्पष्टीकरण।

२. व्याख्यानको विस्तृत और मौलिक बनानेके हेतु ग्रन्थान्तरोंके उद्धरणों-का समावेश।

३. गूढ़ विषयोंका पद-व्याख्यानके साथ स्पष्टीकरण।

४. विषयके गांभीर्यके साथ प्रौढ़भाषाका समावेश।

इस प्रकार ग्रन्थकारने अपने इस प्रमेयरत्नमालालंकारको एक स्वतंत्र ग्रंथका स्थान दिया। यहाँ उदाहरणार्थं कुछ संदर्भांश उपस्थित किया जाता है—

ज्ञानको प्रमाण सिद्ध करते हुए बौद्धमतकी समीक्षा निम्न प्रकार की है—

"अत्राहुर्बौद्धा, अद्वैतिनश्च—ज्ञानं द्विविधं—निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति। तत्र नयनोन्मीलनान्तरं निष्प्रकारकं" वस्तुस्वरूपमात्रविषयकं ज्ञानं यज्जायते तन्निर्विकल्पकम्। उक्तं च—

कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रथमं निर्विकल्पकम्।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम्॥ इति॥

कल्पना पदवाच्यत्वं तदपोढं तदविषयकमित्यर्थः। क्षणिकपरमाणुरूप-स्वलक्षणात्मकशुद्धवस्तुविषयकं सौगतमते निर्विकल्पकम्। अपोहस्य पदवाच्यत्वेऽपि स्वलक्षणे तदभावात्, स्वलक्षणविषयके निर्विकल्पके पदवाच्यत्वस्य भानं न सम्भवति। न च स्वलक्षणस्य पदवाच्यत्वं कुतो नास्तीति वाच्यम्। पद-वाच्यत्वं हि पदसङ्केतः। स खलु व्यवहारार्थः संकेतकालमारभ्य व्यवहारकाल-पर्यन्तस्थायिनि पदार्थे युज्यते।"

प्रमेयरत्नमालालंकारमें अनेक नवीन तथ्योंका समावेश लेखकने किया है।

अरुणमणि

अरुणमणि भट्टारकश्रुतकीर्त्तिके प्रशिष्य और बुधराघवके शिष्य थे। इन्होंने ग्वालियरमें जैनमन्दिरका निर्माण कराया था। इनके ज्येष्ठ शिष्य बुधरत्नपाल थे, दूसरे वनमाली और तीसरे कानरसिंह। अरुणमणि इन्हीं कानरसिंहके पुत्र थे। इन्होंने अजितपुराणके अन्तमें अपनी प्रशस्ति अंकित की है। अरुणमणिका अपरनाम लालमणि भी है। प्रशस्तिमें बताया है कि काष्ठासंघमें स्थित माथुर-गच्छ और पुष्करगणमें लोहाचार्यके अन्वयमें होनेवाले भट्टारक धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीत्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्त्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्त्तिके शिष्य बुधराघव और उनके शिष्य बुधरत्नपाल, वनमाली और कानरसिंह हुए हैं। इनमें कानरसिंहके पुत्र अरुणमणि या लालमणि हैं।

स्थितिकाल

अजितपुराणमें ग्रन्थका रचनाकाल अंकित है, जिससे अरुणमणिका समय निर्विवाद सिद्ध होता है। प्रशस्तिमें लिखा है—

रस-वृष-यति-चन्द्रे ख्यातसंवत्सरे (१७१६) ऽस्मिन्
नियमितसितवारे वैजयंती-दशाम्यां।

अजितजिनचरित्रं बोधपात्रं बुधानां ।
रचितममलवाग्मि-रत्नरत्नेन तेन ॥४०॥
मुद्गले भूभुजां श्रेष्ठे राज्येऽवरंगसाहिके ।
जहानावाद-नगरे पार्श्वनाथजिनालये ॥४१॥

अर्थात् अरुणमणिने औरंगजेबके राज्यकालमें वि० स० १७१६ में जहानाबाद नगर वर्त्तमान नई दिल्लीके पार्श्वनाथ जिनालयमें अजितनाथपुराणकी समाप्ति की है। अतः कविका समय १८वीं शती है।

रचना

कविकी एक ही रचना अजितपुराण उपलब्ध है। इसकी पाण्डुलिपि श्री जैन सिद्धान्त भवन आरामें भी है। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथका जीवनवृत्त वर्णित है।

जगन्नाथ

जगन्नाथ संस्कृत-भाषाके अच्छे कवि हैं। ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे। इनका वंश खण्डेलवाल था और पोमराज श्रेष्ठिके सुपुत्र थे। इनका भाई वादिराज भी संस्कृत-भाषाका प्रौढ़ कवि था। इन्होंने वि० सं० १७२९ में वाग्भटालंकारकी कविचन्द्रिका नामकी टीका लिखी थी। ये तक्षक वर्त्तमान टोडा नामक नगरके निवासी थे। वादिराजके रामचन्द्र, लालजी, नेमिदास और विमलदास ये चार पुत्र थे। विमलदासके समयमें टोडामें उपद्रव हुआ था, जिसमें बहुतसे ग्रन्थ भी नष्ट हो गये थे। वादिराज राजा जयसिंहके यहाँ किसी उच्चपदपर प्रतिष्ठित थे।

कविवर जगन्नाथने कई सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं।

स्थितिकाल

जगन्नाथने वि० सं० १६९९ में चतुर्विंशतिसन्धान स्वोपज्ञटीकासहित लिखा है। इनका समय १७ वीं शतीका अन्त और अठारहवीं शतीका प्रारंभ होना चाहिए। श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह प्रथम भागकी प्रस्तावनामें कविवर जगन्नाथकी कई रचनाओंका निर्देश किया है। इनके अनुसार कविकी सात रचनाएँ हैं—

१. चतुर्विंशतिसन्धान स्वोपज्ञ
२. सुखनिधान

३. ज्ञानलोचनस्तोत्र
४. शृंगारसमुद्रकाव्य
५. श्वेताम्बर-पराजय
६. नेमिनरेन्द्रस्तोत्र
७. सुषेणचरित्र ।

चतुर्विंशतिसन्धानकाव्यमें एक ही पद्य है, जिसके २४ अर्थ कविने स्वयं किये हैं। पद्य इस प्रकार है—

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाङ्कोऽथ धर्मो
हर्यङ्कपुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोऽनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शान्तिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजाङ्को
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥"

इस पद्यमें २४ तीर्थंकरोंको नमस्कार किया गया है। कविने पृथक्-पृथक् २४ अर्थ लिखे हैं।

दूसरी कृति सुखनिधान है, जिसकी रचना कवि जगन्नाथने तमालपुरमें की है। इस ग्रन्थमें कविने अपनी एक अन्य कृतिका भी उल्लेख किया है। 'अन्यच्च अस्माभिरुक्तं 'शृंगारसमुद्रकाव्ये' वाक्यके साथ शृंगारसमुद्रकाव्यकी सूचना दी है। अतः कविकी यह रचना भी महत्त्वपूर्ण रही होगी।

एक अन्य-कृति श्वेताम्बर-पराजय है। इसमें श्वेताम्बरसम्मत केवलिभुक्तिका सयुक्तिक निराकरण किया है। इस ग्रंथमें भी एक अन्य कृतिका निर्देश मिलता है। वह कृति हैं 'स्वोपज्ञनेमिनरेन्द्रस्तोत्र'।

इस कृतिकी रचना कविने वि० सं० १७०३ में की है। लिखा है—

"वत्से गुणाभ्रवीतेन्दुयुते (१७०३) द्वीपोत्सवे दिने।
भुक्तिवादः समाप्तोयं सितम्बर-कुयुक्तिहा ॥ १ ॥

इति श्वेताम्बर-पराजये कवि-गमक-वादि-वाग्मित्वगुणालंकृतेन खांडिल्ल वंशोद्भवपोमराजश्रेष्ठिसुतेन जगन्नाथवादिना कृते केवलिभुक्तिनिराकरणं समाप्तम्।"

कविकी एक अन्य रचना 'सुषेणचरित'का भी निर्देश मिलता है। यह ग्रंथ भट्टारक महेन्द्रकीर्त्तिके आमेर-शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है।

सुखनिधानकाव्यमें श्रीपालकी कथा अंकित है। यह पाँच परिच्छेदोंमें लिखा गया है। इसका रचनाकाल वि० सं० १७०० है। कविने अन्तिम प्रशस्ति-में रचनाकाल एवं ग्रन्थके वर्ण्यविषयके सम्बन्धमें प्रकाश डाला है—

"धीरा विशुद्धमतयो मम सच्चरित्रं कुर्वन्तु शुद्धमिह यम विपर्ययोक्तं।
दीपो भवेत्किल करे न तु यस्य पुंसो दोषो न चास्ति पतने खलु तस्य लोके ॥
आचार्यपूर्णेन्दु-समस्तकीर्त्ति-सरोजकीर्त्यादिनिदेशतो मे।
कृतं चरित्रं सुपुरांतमाले श्रीपालराज्ञः शंधामनाम्ना ॥२०९॥

इस प्रकार कवि जगन्नाथ गद्य-पद्यरचनामें सिद्धहस्त दिखलाई पड़ते हैं। सुखनिधानमें विदेहक्षेत्रस्थ श्रीपालका चरित निबद्ध किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद

अपभ्रंश-भाषाके कवि और लेखक

प्राकृत और संस्कृतके साथ अपभ्रंशने काव्यभाषाके सिंहासनको अलंकृत किया। गुर्जर, प्रातिहार, पालवंश, चालुक्य, चौहान, चेदि, गहड़वाल, चन्देल, परमार आदि राजाओंके राज्यकालमें अपभ्रंशका पर्याप्त विकास हुआ। छठवीं शतीसे चौदहवीं शती तक अपभ्रंशमें अनेक मान्य आचार्य हुए, जिन्होंने अपनी लेखनीसे अपभ्रंश-साहित्यको मौलिक कृतियाँ समर्पित कीं।

अपभ्रंशका सबसे पुराना उल्लेख पतञ्जलिके महाभाष्यमें मिलता है। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें भी अपभ्रंशका निर्देश किया है। हिमवत, सिन्धु, सौवीर तथा अन्य देशोंमें उकारबहुला भाषाको अपभ्रंश कहा है।[1] भामह, दण्डी, रुद्रट आदि आचार्योंने भी अपभ्रंशको काव्यभाषा होनेका संकेत किया है। छठी शतीके बल्लभीके राजा गुहसेनके एक ताम्रलेखमें संस्कृत,

१. नाट्यशास्त्र १८।८२।

प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भाषाओंमें प्रबन्ध-रचना लिखनेके लिये नियमन किया है। ८वीं शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश-काव्यका रूप इतना विश्रुत और लोकरंजक हो चुका था कि उद्योतनसूरिने अपनी कुवलयमाला (वि० सं० ८३५) में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशकी तुलना करते हुए लिखा है—संस्कृत अपने बड़े-बड़े समासों, निपातों, उपसर्गों, विभक्तियों और लिंगोंकी दुर्गमताके कारण दुर्जन-हृदयके समान विषम है। प्राकृत समस्त कला-कलापोंके माला-रूपी जन-कल्लोलोंसे संकुल लोकवृत्तान्तरूपी महोदधि-महापुरुषोंके मुखसे निकली हुई अमृतधाराकी बिन्दु-सन्दोह एवं एक-एक क्रमसे वर्ण और पदोंके संघटनसे नानाप्रकारकी रचनाओंके योग्य होते हुए सज्जन-वचनके समान सुख-संगम है और अपभ्रंश संस्कृत, प्राकृत दोनोंके शुद्ध-अशुद्ध पदोंसे युक्त तरंगों द्वारा रंगोली चालवाले नववर्षाकालके मेघोंके प्रपातसे पूरद्वारा प्लावित नदीके समान सम और विषम होती हुई प्रणय-कुपिता प्रणयिनीके वार्तालापके समान मनोहर होती है।

राजशेखर, हेमचन्द्र आदिने भी अपभ्रंश-भाषाके काव्योचित रूपपर विचार किया है और सभीने मुक्तकण्ठसे अपभ्रंशको काव्यकी भाषा स्वीकार किया है। महाकवि कालिदासके 'विक्रमोर्वशीय' नाटकमें अपभ्रंशके अन्य प्रबन्ध-काव्योंकी अपेक्षा भाषाका सर्वाधिक समृद्ध और परिष्कृत रूप प्राप्त होता है। ८वीं शतीसे अपभ्रंशके प्रबन्ध-काव्योंको परम्परा प्राप्त होने लगी है। चउमुहु—चतुर्मुखका अबतक कोई काव्य उपलब्ध नहीं है। पर 'पउमचरिउ' को उत्थानिका एवं प्रशस्तिसे यह ध्वनित होता है कि चतुर्मुखदेवने महाभारत-की कथा लिखी थी। पञ्चमी-चरित भी उनकी कोई रचना रही है। अतएव संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि जैन लेखकोंने संस्कृत और प्राकृतके समान ही अपभ्रंश-भाषामें भी सरस काव्य-रचनाएँ लिखी हैं। इन रचनाओंमें काव्य-तत्त्वके साथ दर्शन और आचारके सिद्धान्त भी प्राप्त होते हैं। हम यहाँ अपभ्रंश-भाषाके कवियोंका इतिवृत्त अंकित करेंगे। वस्तुतः मध्यकालीन साहित्यका इतिहास ही अपभ्रंशका इतिहास है। जैनाचार्योंने इस भाषामें सहस्रों रचनाएँ लिखी हैं।

कवि चतुर्मुख

चतुर्मुख कवि अपभ्रंशके ख्यातिप्राप्त कवि हैं। स्वयंभुने अपने 'पउमचरिउ' 'रिट्ठणेमि-चरिउ' और 'स्वयंभु छन्द' में चतुर्मुख कविका उल्लेख किया है। महाकवि

पुष्पदन्तने भी अपने महापुराणमें अपने पूर्वके ग्रन्थकर्त्ताओं और कवियोंका उल्लेख करते हुए चउमुहु (चतुर्मुख) का निर्देश किया है। लिखा है—

चउमुहु सयंभु सरिहरिसु दोणु, णालोइउ कईसाणु वाणु।[1]

अर्थात् न मैंने चतुर्मुख, स्वयंभु, श्रीहर्ष और द्रोणका अवलोकन किया न कवि ईशान और बाणका ही।

कवि पुष्पदन्तने ६९वीं सन्धिमें भी रामायणका प्रारम्भ करते हुए स्वयंभु और चउमुहुका पृथक्-पृथक् निर्देश किया है—

कइराउ सयंभु महायरिउ, सो सयणसहासहिं परियरिउ।
चउमुहहु चयारि मुहाइं जहिं, सुकइत्तणु सीसउ काइं तहिं॥

अर्थात् स्वयंभु महान आचार्य हैं। उनके सहस्रों स्वजन हैं और चतुर्मुखके तो चार मुख हैं, उनके आगे सुकवित्व क्या कहा जाये।

हरिषेणने अपनी धर्म-परीक्षामें चतुर्मुखका निर्देश किया, 'रिट्ठणेमिचरिउ' में स्वयंभुने लिखा है कि पिंगलने छन्द-प्रस्तार, भामह और दण्डीने अलंकार, बाणने अक्षराडम्बर, श्रीहर्षने निपुणत्व और चतुर्मुखने छर्दनिका, द्विपदी और ध्रुवकोंसे जटित पद्धड़ियाँ दी हैं। अतएव स्पष्ट है कि चतुर्मुख स्वयंभुके पूर्ववर्ती हैं। 'पउमचरिउ'के प्रारम्भमें बताया है कि चतुर्मुखदेवके शब्दोंको स्वयंभुदेवकी मनोहर वाणीको और भद्रकविके 'गोग्रहण'को आज भी कवि नहीं पा सकते हैं। इस तरह जलक्रीड़ाके वर्णनमें स्वयंभुकी, 'गोग्रह' कथामें चतुर्मुखदेवकी और 'मत्स्यभेद' में भद्रको तुलना आज भी कवि नहीं कर सकते।

डॉ० हीरालालजी जैन और प्रो० एच० डी० वेलणकरने भी चतुर्मुखको स्वयंभुसे पृथक् और उनका पूर्ववर्ती माना है। पद्धड़िया छन्दके क्षेत्रमें चतुर्मुखका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्भवतः इनकी दो रचनाएँ रही हैं—महाभारत और पञ्चमीचरिउ। आज ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अतः इनके काव्य-सौन्दर्यके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता है।

महाकवि स्वयंभुदेव

महाकवि स्वयंभु अपभ्रंश-साहित्यके ऐसे कवि हैं, जिन्होंने लोकरुचिका सर्वाधिक ध्यान रखा है। स्वयंभुकी रचनाएँ अपभ्रंशकी आख्यानात्मक रचनाएँ हैं, जिनका प्रभाव उत्तरवर्ती समस्त कवियोंपर पड़ा है। काव्य-

१. पुष्पदन्तका महापुराण, माणिकचन्द्रग्रन्थमाला, १।५।

रचयिताके साथ स्वयंभु छन्दशास्त्र और व्याकरणके भी प्रकाण्ड पण्डित थे। छन्दचूड़ामणि, विजयपरिशेष और कविराज धवल इनके विरुद थे।

कवि स्वयंभूके पिताका नाम मारुतदेव और माताका नाम पद्मिनी था। मारुतदेव भी कवि थे। स्वयंभुने छन्दमें 'तहा य माउरदेवस्स' कहकर उनका निम्नलिखित दोहा उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है—

लद्धउ मित्त भमंतेण रअणा अरचदेण।
सो सिज्जंते सिज्जइ वि तह भरइ भरंतेण[1]॥ ४-९

स्वयंभुदेव गृहस्थ थे, मुनि नहीं। 'पउमचरिउ' से अवगत होता है कि इनकी कई पत्नियाँ थीं, जिनमेंसे दोके नाम प्रसिद्ध हैं—एक अइच्चंबा (आदित्यम्बा) और दूसरो सामिअंब्बा। ये दोनों ही पत्नियाँ सुशिक्षिता थीं। प्रथम पत्नीने अयोध्याकाण्ड और दूसरीने विद्याधरकाण्डकी प्रतिलिपि की थी। कविने उक्त दोनों काण्ड अपनी पत्नियोंसे लिखवाये थे।

स्वयंभुदेवके अनेक पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे पुत्र त्रिभुवनस्वयंभु थे। श्रीप्रेमीजीका अनुमान है कि त्रिभुवनस्वयंभुकी माताका नाम सुअव्वा था, जो स्वयंभुदेवकी तृतीया पत्नी थीं। श्रीप्रेमीजीने अपने कथनकी पुष्टिके लिये निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

सव्वे वि सुआ पंजरसुअव्व पढ़ि अक्खराइं सिक्खंति।
कइराअस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ संभूओ॥[2]

अपभ्रंशमें 'सुअ' शब्दसे सुत और शुक दोनोंका बोध होता है। इस पद्यमें कहा है कि सारे ही सुत पिंजरेके सुओंके समान पढ़े हुए ही अक्षर सीखते हैं, पर कविराजसुत त्रिभुवन 'श्रुत इव श्रुतिगर्भसम्भूत हैं'। यहाँ श्लेष द्वारा सुअव्वाके शुचि गर्भसे उत्पन्न त्रिभुवन अर्थ भी प्रकट होता है। अतएव यह अनुमान सहजमें ही किया जा सकता है कि त्रिभुवनस्वयंभुकी माताका नाम सुअव्वा था।

स्वयंभु शरीरसे बहुत दुबले-पतले और ऊँचे कदके थे। उनकी नाक चपटी और दाँत विरल थे। स्वयंभुका व्यक्तित्व प्रभावक था। वे शरीरसे क्षीण काय होने पर भी ज्ञानसे पुष्टकाय थे। स्वयंभुने अपने वंश, गोत्र आदिका निर्देश नहीं किया, पर पुष्पदन्तने अपने महापुराणमें इन्हें आपुलसंघीय बताया है। इस प्रकार ये यापनीय सम्प्रदायके अनुयायी जान पड़ते हैं।

१. अनेकान्त, वर्ष ५, किरण ८-९, पृ० २९९।

२. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३७४।

स्वयंभुने अपने जन्मसे किस स्थानको पवित्र किया, यह कहना कठिन है, पर यह अनुमान सहजमें ही लगाया जा सकता है कि वे दाक्षिणात्य थे। उनके परिवार और सम्पर्की व्यक्तियोंके नाम दाक्षिणात्य हैं। मारुतदेव, धवलइया, बन्दइया, नाग आइच्चंबा, सामिअंब्बा आदि नाम कर्नाटकी हैं। अतएव इनका दाक्षिणात्य होना अबाधित है।

स्वयंभुदेव पहले धनञ्जयके आश्रित रहे और पश्चात् धवलइयाके। 'पउमचरिउ' की रचनामें कविने धनञ्जयका और 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचनामें धवलइयाका प्रत्येक सन्धिमें उल्लेख किया है।

स्थितिकाल

कवि स्वयंभुदेवने अपने समयके सम्बन्धमें कुछ भी निर्देश नहीं किया है। पर इनके द्वारा स्मृत कवि और अन्य कवियों द्वारा इनका उल्लेख किये जानेसे इनके स्थितिकालका अनुमान किया जा सकता है। कवि स्वयंभुदेवने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ'में अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनके कुछ ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। इससे उनके समयकी पूर्वसीमा निश्चित की जा सकती है। पाँच महाकाव्य, पिंगलका छन्दशास्त्र, भरतका नाट्यशास्त्र, भामह और दण्डीके अलंकारशास्त्र, इन्द्रके व्याकरण, व्यास-बाणका अक्षराडम्बर, श्रीहर्षका निपुणत्व और रविषेणाचार्यकी रामकथा उल्लिखित है। इन समस्त उल्लेखोंमें रविषेण और उनका पद्मचरित ही अर्वाचीन है। पद्मचरितकी रचना वि० सं० ७३४ में हुई है। अतएव स्वयंभुके समयकी पूर्वावधि वि० सं० ७३४ के बाद है।

स्वयंभुका उल्लेख महाकवि पुष्पदन्तने अपने पुराणमें किया है और महापुराणकी रचना वि० सं० १०१६ में सम्पन्न हुई है। अतएव स्वयंभुके समयकी उत्तरसीमा वि० सं० १०१६ है। इस प्रकार स्वयंभुदेव वि० सं० ७३४–१०१६ वि० सं० के मध्यवर्ती हैं। श्री प्रेमीजीने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है— 'स्वयंभुदेव हरिवंशपुराण कर्त्ता जिनसेनसे कुछ पहले ही हुए होंगे, क्योंकि जिस तरह उन्होंने 'पउमचरिउ' में रविषेणका उल्लेख किया है, उसी तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ'में हरिवंशके कर्त्ता जिनसेनका भी उल्लेख अवश्य किया होता यदि वे उनसे पहले हो गये होते तो। इसी तरह आदिपुराण, उत्तरपुराणके कर्त्ता जिनसेन, गुणभद्र भी स्वयंभुदेव द्वारा स्मरण किये जाने चाहिये थे। यह बात नहीं जंचती कि वाण, श्रीहर्ष, आदि अजैन कवियोंकी तो चर्चा करते और जिनसेन आदिको छोड़ देते। इससे यही अनुमान होता है कि स्वयंभुदेव दोनों जिनसेनोंसे कुछ पहले हो चुके होंगे। हरिवंशकी रचना वि० सं० ८४० में

समाप्त हुई थी। इसलिये ७२४ से ८४० के बीच स्वयंभुका समय माना जा सकता[1] है।' डा० देवेन्द्र जैनने इनका समय ई० सन् ७८३ अनुमानित किया है। यह अनुमान ठीक सिद्ध होता है।

रचनाएँ

कविकी अभी तक कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं और तीन रचनाएँ उनके नाम पर और मानी जाती हैं—

१. पउमचरिउ
२. रिट्ठणेमिचरिउ
३. स्वयंभुछन्द
४. सोद्धयचरिउ
५. पंचमिचरिउ
६. स्वयंभुव्याकरण

१. पउमचरिउ

'पउमचरिउ' एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। रामकथाको नदीका रूप देकर कविने उक्त ग्रन्थकी विशेषता प्रदर्शित की है—

> वद्धमाण-मुहकुहर-विणिग्गय रामकहा-णइ एह कमागय
> अक्खर-वास-जलोह-मणोहर सु-अलंकार छन्द-मच्छोहर
> दीह-समास-पवाहावंकिय सक्कय-पायय पुलिणालंकिय
> देसीभाषा-उभय-तडुज्जल कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल[2]

'पउमचरिउ' का ग्रन्थप्रमाण बारह हजार श्लोक है। और इसमें सब मिलाकर ९० सन्धियाँ हैं।

विद्याधरकाण्ड २० सन्धियाँ, अयोध्याकाण्ड २२ सन्धियाँ, सुन्दरकाण्ड, १४ सन्धियाँ, युद्धकाण्ड २१ सन्धियाँ, उत्तरकाण्ड १३ सन्धियाँ।

इन नब्बे सन्धियोंमें ८३ सन्धियोंकी रचना स्वयम्भुदेवने की है। विद्याधर-काण्डमें कुलकरोंके उल्लेखके अनन्तर राक्षस और वानरवंशका विकास बतलाया गया है। अयोध्यामें सगरचक्रवर्ती उत्पन्न हुआ। उसके साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे कैलासपर्वतपर ऋषभदेवकी वन्दनाके लिये गये। वहाँ पर जिनमन्दिरोंकी सुरक्षाके लिये उन्होंने उसके चारों ओर खाई खोदना आरम्भ

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३८७।

२. पउमचरिउ, प्रथम सन्धि, कड़वक २।१–४।

किया। धरणेन्द्र कुपित हुआ और उसने सबको भस्म कर दिया, केवल भगीरथ और भीम ही शेष बचे। चक्रवर्तीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह भगीरथको राज्य देकर दीक्षित हो गया। सगर राजाका समधी सहस्राक्ष था। उसने अपने पिताकी हत्या करनेवाले पुष्यमेघ पर चढ़ाई की और उसे मार डाला। उसका पुत्र तोयदवाहन किसी प्रकार भाग कर द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथके समवशरणमें पहुँचा। सहस्राक्ष भी वहाँ आया। पर समवशरणमें प्रवेश करते ही उसका क्रोध नष्ट हो गया। इसी तोयदवाहनने लंकानगरीकी नींव डाली और यहींसे राक्षसवंश आरंभ हुआ।

सगरके बाद ६४वीं पीढ़ीमें कीर्तिधवल अयोध्याके राज्यपर आसीन हुआ। उसका साला श्रीकण्ठ सपत्नीक वहाँ आया। कीर्तिधवलने प्रसन्न होकर उसे वानरद्वीप दे दिया। श्रीकण्ठने पहाड़ीपर किष्कपुर बसाया। तदनन्तर अमरप्रभु राजा हुआ। उसने लंकाकी राजकुमारीसे विवाह किया। नववधू जब ससुरालमें आयी, तो आँगनमें बन्दरोंके सजीव चित्र देखकर भयभीत हो गयी। इसपर अमरप्रभु चित्रकारपर अप्रसन्न हो उठे। मन्त्रियोंने उसे बताया कि वानरोंसे उसके परिवारका पुराना सम्बन्ध चला आ रहा है। उसे तोड़ना ठीक नहीं। उसने वानरको अपना राजचिह्न मान लिया। लंकामें राक्षसवंशकी समृद्धि हुई और क्रमशः मालीके भाई सुमालीका पुत्र रत्नश्रव-राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे—रावण, विभीषण और कुम्भकरण। एक लड़की भी थी चन्द्रनखा। रावण अत्यन्त शूरवीर और पराक्रमी था। मन्दोदरीके सिवा उसकी छह हजार रानियाँ थीं। रावण किष्कपुरके राजा बालिको हराना चाहता था। पर उसे उल्टी हार खानी पड़ी। बालि अपने अनुज सुग्रीवको राज्य देकर तप करने चला गया। रावण बड़ा जिनभक्त था। उसने अपने पराक्रमसे यम, इन्द्र, वरुण आदि राजाओंको परास्त किया था।

अयोध्याकाण्डमें अयोध्याके राजाओंका वर्णन आया है। इस नगरीमें ऋषभदेवके वंशसे समयानुसार अनेक राजा हुए और सबने दिगम्बर दीक्षा लेकर तपस्या की और मोक्ष प्राप्त किया। इस वंशके राजा रघुके अरण्य नामक पुत्र हुआ। इसकी रानीका नाम पृथ्वीमति था। इस दम्पतिके दो पुत्र हुए—अनन्तरथ और दशरथ। राजा अरण्य अपने बड़े पुत्र सहित संसारसे विरक्त हो तपस्या करने चला गया। तथा अयोध्याका शासनभार दशरथको मिला। एक दिन दशरथकी सभामें नारद मुनि आये। उन्होंने कहा कि रावणने किसी निमित्तज्ञानीसे यह जान लिया है कि दशरथपुत्र और जनकपुत्रीके निमित्तसे उसकी मृत्यु होगी। अतः उसने विभीषणको आप दोनोंको मारनेके लिये नियुक्त

किया है। आप सावधान होकर कहीं छुप जायें। राजा दशरथ अपनी रक्षाके लिये देश-देशान्तरमें गये और मार्गमें कैकेयीसे विवाह किया। कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए और एक युद्धमें प्रसन्न होकर उन्होंने कैकेयी-को वरदान भी दिया। रामके राज्यभिषेकके समय कैकेयीने वरदान मांगा, जिससे राम, लक्ष्मण और सीता वन गये तथा महाराज दशरथने जिनदीक्षा ग्रहण की। सीताहरण हो जानेपर रामने वानरवंशी विद्याधर पवनञ्जय और अञ्जनाके पुत्र हनुमान एवं सुग्रीवसे मित्रता की। रामने सुग्रीवके शत्रु साहस-गतिका वध कर सदाके लिये सुग्रीवको अपने वश कर लिया और इन्हींके साहाय्यसे रावणका वध कर सीताको प्राप्त किया।

अयोध्या लौटकर लोकापवादके भयसे सीताका निर्वासन किया। सौभाग्य-से जिस स्थानपर जंगलमें सीताको छोड़ा गया था, वज्रजंघ राजा वहाँ आया और अपने घर ले जाकर सीताका संरक्षण करने लगा। सीताके पुत्र लवणा-कुंशने अपके पराक्रमसे अनेक देशोंको जीतकर वज्रजंघके राज्यकी वृद्धि की। जब यह वीर दिग्विजय करता हुआ अयोध्या आया, तो रामसे युद्ध हुआ तथा इसी युद्धमें पिता-पुत्र परस्परमें परिचित भी हुए। सीता अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई। वह विरक्त हो तपस्या करने चली गयी और स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मणकी मृत्यु हो जानेपर राम शोकाभिभूत हो गये। कुछ काल पश्चात् बोध प्राप्त कर दिगम्बर मुनि बन दुर्द्धर तपश्चरण कर मोक्ष प्राप्त किया।

यह सफल महाकाव्य है। इसकी आदिकालिक कथा रामकथा है। अवान्तर या प्रासंगिक कथाएँ वानरवंश और विद्याधरवंशके आख्यानके रूपमें आयी हैं। प्रासंगिक कथावस्तुमें प्रकरी और पताका दोनों ही प्रकारकी कथाएँ हैं। पताकारूपमें सुग्रीव और मारुतनन्दनकी कथाएँ आधिकारिक कथाके साथ-साथ चली हैं और प्रकरीरूपमें वालि, भामण्डल, वज्रजंघ आदि राजाओंके आख्यान हैं। कथागठनकी दृष्टिसे कार्य-अवस्थाएँ, अर्थ-प्रकृतियाँ और सन्धियाँ सभी विद्यमान हैं। नायक, रस, अलंकार, संवाद, वस्तुव्यापारवर्णन आदि सभी दृष्टियोंसे यह काव्य उत्तम कोटिका काव्य है। यहाँ कविके प्रकृतिवर्णनको उपस्थित किया जाता है। कविने इसमें उपमा और उत्प्रेक्षाओंका सुन्दर जाल बांधा है—

हसइ व रिउ-घिरु मुह्-वय बंधरु।
विद्दुममाहरु मोत्तिय-दंतरु ॥१॥
छिवइ व मत्थए मेरु-महीहरु।
तुज्झु वि मज्झु वि कवणु पईहरु ॥२॥

जं चन्द्रकन्त-सलिलाहिंसित्तु । अहिसेय-पणालुवफुसिय-चित्तु ॥ ३ ॥
जं विद्दुम-मरगय-कन्तिकाहिं । थिउ गयणुव सुरधणु-पन्तियाहिं ॥ ४ ॥
जं इन्द्रणील-माला-मसीएँ । आलिहइ वदिस-भित्तीएँ तीएँ ॥ ५ ॥
जहिं पोमराय-मणि-गणु विहाइ । थिउ अहिणव-सञ्झा-राउ-णाइँ ॥ ६ ॥

इसप्रकार यह ग्रन्थ अपभ्रंश-काव्यका मुकुटमणि है।

रिट्ठणेमिचरिउ

यह हरिवंशपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। अठारह हजार श्लोकप्रमाण है और ११२ सन्धियाँ हैं। इसमें तीन काण्ड हैं—यादव, कुरु और युद्ध। यादवमें १३, कुरुमें १९, और युद्धमें ६० सन्धियाँ हैं। सन्धियोंकी यह गणना युद्धकाण्डके अन्तमें अंकित है। यहाँ यह भी बताया गया गया कि प्रत्येक काण्ड कब लिखा गया और उसकी रचनामें कितना समय लगा। इन सन्धियोंमें ९९ सन्धि स्वंभुदेवके द्वारा लिखी गयी हैं। ९९वीं सन्धिके अन्तमें एक पद आया है, जिसमें बताया है कि पउमचरिउ या सुव्वयचरिउ बनाकर अब मैं हरिवंशकी रचनामें प्रवृत्त होता हूँ।

'रिट्ठणेमिचरिउ' अपभ्रंश-भाषाका प्रबन्धकाव्य है। रिट्ठणेमिचरिउकी रचना धवलइयाके आश्रयमें की गयी हैं। इस ग्रन्थमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण और यादवोंकी कथा अंकित है।

पंचमीचरिउ

यह ग्रन्थ पद्धड़ियाबद्ध शैलीमें लिखा गया है। अभी तक यह अप्राप्त है। इसमें नागकुमारकी कथा वर्णित है।

स्वयंभुछन्द

स्वयंभुदेवने एक छन्दग्रन्थकी रचना की है, जिसका प्रकाशन प्रो० एच० डी० वेलणकरने किया है। इस ग्रन्थके प्रारम्भके तीन अध्यायोंमें प्राकृतके वर्णवृत्तोंका और पाँच शेष अध्यायोंमें अपभ्रंशके छन्दोंका विवेचन किया है। साथ ही छन्दोंके उदाहरण भी पूर्वकवियोंके ग्रन्थोंसे चुनकर दिये गये हैं।

इस ग्रन्थके अन्तिम अध्यायमें दाहा, अडिल्ला, पद्धड़िया आदि छन्दोंके स्वोपज्ञ उदाहरण दिये गये हैं। इस ग्रन्थमें पउमचरिउ, बम्महतिलय, रअणावली आदि ग्रन्थोंके भी उदाहरण दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतके

---

१. पउमचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, ७२।३।

ब्रह्मदत्त, दिवाकर, अंगारगण, आसन्देव, हरदास, हरदत्त, धनदत्त, गुणधर, जीवदेव, विमलदेव, मूलदेव, कुमारदत्त, त्रिलोचन आदि कवियोंके नाम भी आये हैं। अपभ्रंश-कवियोंमें चतुर्मुख, धुत्त, धनदेव, छइल्ल, अज्जदेव, गोइन्द, सुद्धसील, जिणआस, विअड्ढके नाम भी आये हैं।

स्वयंभुव्याकरण

पउमचरिउके एक पद्यसे कविके अपभ्रंश-व्याकरणका भी संकेत प्राप्त होता है। बताया है कि अपभ्रंशरूप मत्तवाला हाथी तभी तक स्वच्छन्दतासे भ्रमण करता है, जब तक कि स्वयंभुव्याकरणरूप अंकुश नहीं पड़ता। परन्तु यह व्याकरणग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है। श्रीप्रेमीजीका मत है कि सुद्धय-चरिय कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है, यह सुव्वयचरिउ होना चाहिए, जो पउम-चरिउका अपर नाम है। निश्चयतः अपभ्रंशकाव्य-रचयिताओंमें स्वयंभुका महनीय स्थान है। ये काव्य और शास्त्र दोनोंके पारंगत विद्वान हैं। इनकी रचनाओंमें भक्तिकी तन्मयता और काव्यकी सरसता प्राप्त है। प्रकृतिचित्रण और निरीक्षणकी क्षमता उनमें अद्भुत थी।

त्रिभुवनस्वयंभु

स्वयंभुदेवके छोटे पुत्रका नाम त्रिभुवनस्वयंभु था। ये अपने पिताके सुयोग्य पुत्र थे और उन्हींके समान मेधावी कवि थे। कविराजचक्रवर्ती उनका विरुद था। प्रशस्तिके पद्योंसे उनकी विद्वत्ताका पूरा परिचय प्राप्त होता है। लिखा है—

तिहुवण-सयम्भु-धवलस्सा को गुणे वण्णिउं जए तरइ।
बालेण वि जेण सयम्भु-कव्व-भारो समुव्वूढो ॥५॥
वायरण-दढ-क्खन्धो आगम-अंगोपमाण-वियड-पओ।
तिहुअण-सयम्भु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्वभरं[1] ॥६॥

अर्थात् त्रिभुवनस्वयंभुने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार प्राप्त किया। उसे छोड़कर स्वयंभुके समस्त शिष्योंमें ऐसा कौन था, जो कविके काव्य भारको ग्रहण करता। त्रिभुवनस्वयंभुको धवल-वृषभकी उपमा दी गयी है। व्याकरणके अध्ययनसे मजबूत स्कन्ध, आगमोंके अध्ययनसे सुदृढ़ अंग और व्याकरणके अध्ययनसे विकटपदविन्न त्रिभुवनस्वयंभुके अतिरिक्त

---

१. पउमचरिउ, प्रशस्तिगाथा, पद्य ५,६।

अन्य व्यक्ति काव्यभारको वहन नहीं कर सकता है। निश्चयतः त्रिभुवनस्वयंभु आगम, व्याकरण, काव्य आदि विषयोंके ज्ञाता थे।

इस कथनसे स्पष्ट है कि त्रिभुवनस्वयंभु शास्त्रज्ञ पण्डित थे। जिसप्रकार स्वयंभुदेव धनञ्जय और धवलइयाके आश्रित थे, उसी तरह त्रिभुवन बन्दइयाके। ऐसा अवगत होता है कि ये तीनों ही आश्रयदाता किसी एक ही राजमान्य या धनी कुलके थे। धनञ्जयके उत्तराधिकारी धवलइया और धवलइयाके उत्तराधिकारी बन्दइया थे। एकके स्वर्गवासके पश्चात् दूसरेके और दूसरेके बाद तीसरेके आश्रयमें आये होंगे। बन्दइयाके प्रथमपुत्र गोविन्दका भी त्रिभुवनस्वयंभुने उल्लेख किया है, जिसके वात्सल्यभावसे पउमचरिउके शेष सात सर्ग रचे गये हैं।

बन्दइयाके साथ पउमचरिउके अन्तमें त्रिभुवनस्वयंभुने नाग, श्रीपाल आदि भव्यजनोंको आरोग्य, समृद्धि, शान्ति और सुखका आशीर्वाद दिया है।[1]

त्रिभुवनस्वयंभुका समय स्वयंभुके समान ही ई० सन् की नवम शताब्दी है।

त्रिभुवनस्वयंभुने पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और पञ्चमीचरिउको पूर्ण किया है। श्री डॉ० हीरालाल जैनका अभिमत है त्रिभुवनस्वयंभुने रिट्ठणेमिचरिउके अपूर्ण अंशको पूर्ण किया है। पउमचरिउ इनका पूर्ण ग्रन्थ है। डॉ० भायाणी पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और पञ्चमीचरिउ इन तीनोंको अपूर्ण मानते हैं और तीनोंकी पूर्ति त्रिभुवनस्वयंभु द्वारा की गयी बतलाते हैं। पर एक लेखककी सभी कृतियाँ अधूरी नहीं मानी जा सकती हैं, क्योंकि लेखक एक कृतिको पूर्ण कर ही दूसरी कृतिका आरम्भ करता है। अप्रत्याशितरूपसे मृत्युके आ जाने पर कोई एक ही कृति अधूरी रह सकती है। अतः प्रेमीजीके इस अनुमानसे हम सहमत हैं कि त्रिभुवनस्वयंभुने अपने पिताकी कृतियोंका परिमार्जन किया है। त्रिभुवनने रामकथाकन्याको सप्त महासर्गांगी या सात सर्गोंवाली कहा है—

सत्त-महासंगंगी ति-रयण-भूसा-सु-रामकहकण्णा।
तिहुअण-सयम्भु-जणिया परिणउ बन्दइय-मण-तणयं[2]॥

स्पष्ट है कि ८४वीं सन्धिसे ९०वीं सन्धि तक सात सन्धियाँ 'पउमचरिउ'की त्रिभुवनस्वयंभु द्वारा विरचित हैं। ८४वीं सन्धिसे ठीक सन्दर्भ घटित करनेके

---

१. पउमचरिउ, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १७,१८।

२. पउमचरिउ, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १९।

लिये उसमें भी उन्हें कुछ कड़वक जोड़ने पड़े और पुष्पिकामें अपना नामांकन किया।

हम प्रेमीजीके इस अनुमानसे पूर्णतया सहमत हैं कि स्वयंभुदेवने अपनी समझसे यह ग्रन्थ पूरा ही रचा था, पर उनके पुत्र त्रिभुवनस्वयंभुको कुछ कमी प्रतीत हुई और उस कमीको उन्होंने नयी-नयी सन्धियाँ जोड़कर पूरा किया।

'रिट्ठणेमिचरिउ' की ९९ सन्धियाँ तो स्वयंभुदेवकी हैं। ९९वीं सन्धिके अन्तमें एक पद्य आया है, जिसमें कहा है कि 'पउमचरिउ' या 'सुव्वयचरिउ' बनाकर अब मैं हरिवंशकी रचनामें प्रवृत्त होता हूँ। सरस्वतीदेवी मुझे स्थिरता प्रदान करें। इस पद्यसे यह ध्वनित होता है कि त्रिभुवनस्वयंभुने 'पउमचरिउ' के संवर्द्धनके पश्चात् हरिवंशके संवर्द्धनकी ओर ध्यान दिया और उन्होंने १०० से ११२ तककी सन्धियाँ रचीं। अन्तिम सन्धि तक पुष्पिकाओंमें त्रिभुवनस्वयंभुका नाम प्राप्त होता है। १०६, १०८, ११०, और १११वीं सन्धिकेपद्योंमें मुनि यशःकीर्तिका नाम आता है। प्रेमीजीका अभिमत है कि यशःकीर्तिने जीर्ण-शीर्ण प्रतिको ठीक-ठाक किया होगा और उसमें उन्होंने अपना नाम जोड़ दिया होगा। इस प्रकार त्रिभुवनस्वयंभुने 'सुद्धयचरिउ', 'पउमचरिउ' और 'हरिवंशचरिउ' इन तीनों ग्रन्थोंमें कुछ अंश जोड़कर इन्हें पूर्ण किया है। प्रेमीजीने सुद्धयचरिउको सुव्वयचरिउ माना है, पर यह मान्यता स्वस्थ प्रतीत नहीं होती।

निश्चयतः त्रिभुवनस्वयंभु अपने पिताके समान प्रतिभाशाली थे। काव्य-रचनामें इनकी अप्रतिहत गति थी।

महाकवि पुष्पदन्त

महाकवि स्वयम्भूकी रामकथा यदि नदी है, तो पुष्पदन्तका महापुराण समुद्र। पुष्पदन्तका काव्य अलंकृत वाणीका चरम निदर्शन है। दर्शन, शास्त्रीय ज्ञान और काव्यत्व इन तीनोंका समावेश महापुराणमें हुआ है।

पुष्पदन्तका घरेलू नाम खण्ड या खण्डू था। इनका स्वभाव उग्र और स्पष्टवादी था। भरत और बाहुबलिके कथासन्दर्भमें उन्होंने राजाको लुटेरा और चोर तक कह दिया है। कविके उपाधिनाम अभिमानमेरु कविकुल तिलक, सरस्वतीनिलय और काव्यपिसल्ल थे। महापुराणके अन्तमें कविने

जो अपना परिचय अंकित किया है उससे कविके व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है। लिखा है—

"सूने घरों और देवकुलिकाओंमें रहनेवाले कलिमें प्रबल पापपटलों से रहित, बेघरबार, पुत्र-कलत्रहीन, नदी-वापिका और सरोवरोंमें स्नान करने वाले, पुराने वल्कल और वस्त्र धारण करनेवाले, धूलधूसरित अंग, दुर्जनके संगसे रहित, पृथ्वीपर शयन करनेवाले, अपने हाथोंका तकिया लगाने वाले, पण्डितमरणकी इच्छा रखनेवाले, मान्यखेटवासी, अर्हन्तके उपासक, भरत द्वारा सम्मानित, काव्यप्रबन्धसे लोगोंको पुलकित करनेवाले, पापरूपी कीचड़-को धोनेवाले, अभिमानमेरु पुष्पदन्तने यह काव्य जिनपदकमलोंमें हाथ जोड़े हुए भक्तिपूर्वक क्रोधनसंवत्सरमें आषाढ़शुक्ला दशमीको लिखा।"

इन पंक्तियोंसे कविके व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है। कवि प्रकृतिसे अक्खड़ और निःसंग था। उसे संसारमें किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं थी। वह केवल निःस्वार्थ प्रेम चाहता था। भरतने कविको प्रेम और सम्मान प्रदान किया। पुष्पदन्त मौजी और फक्कड़ स्वभावके थे। यही कारण है कि जीवन-पर्यन्त काव्यसाधना करनेपर भी वे अपनेको 'काव्य-पिसल्ल' (काव्य-पिशाच) कहना नहीं चूके।

महाकवि पुष्पदन्त कश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम केशव भट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था। आरंभमें कवि शैव था और उसने भैरव नामक किसी शैव राजाकी प्रशसामें काव्य-रचना भी की थी; पर बादमें वह किसी जैन मुनिके उपदेशसे जैन हो गया और मान्यखेट आनेपर मंत्री भरतके अनुरोधसे जिनभक्तिसे प्रेरित होकर काव्य-रचना करने लगा था। पुष्पदन्तने संन्यासविधिसे मरण किया।

कविका जन्मस्थान कौन-सा प्रदेश है, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। मान्यखेटमें कविने अपनी अधिकांश रचनाएँ लिखी हैं। श्री नाथूराम प्रेमीने उन्हें दक्षिणमें बाहरसे आया हुआ बतलाया है। उनका कथन है कि एक तो अपभ्रंश-साहित्य उत्तरमें लिखा गया। दूसरे, पुष्पदन्तकी भाषामें द्रविड़शब्द नहीं हैं। मराठीशब्दोंका समावेश रहनेसे उन्हें विदर्भका होना चाहिए। डॉ० पी० एल० वैद्य डोड्डु, गोड्डु आदि शब्दोंको द्रविड़ समझते हैं। कविने यह तो लिखा है कि वे मान्यखेट पहुँचे; पर कहाँसे मान्यखेट पहुँचे यह नहीं बताया है। इस कालमें विदर्भ साधनाका केन्द्र था। संभव है कि वे वहीं से आये हों।

स्थितिकाल

कवि पुष्पदन्तने अपनी कृतियोंमें समयका निर्देश नहीं किया है; पर उन्होंने जिन ग्रंथों और ग्रंथकारोंका उल्लेख किया है उनसे कविके समयका निर्णय किया जा सकता है। कवि पुष्पदन्तने धवल और जयधवल ग्रंथोंका उल्लेख किया है। जयधवलाटीका वीरसेनके शिष्य जिनसेनने अमोघवर्ष प्रथम सन् ८३७के लगभग पूर्ण की है। अतएव यह निश्चित है कि पुष्पदन्त उक्त सन्‌के पश्चात् ही हुए होंगे, पहले नहीं।

हरिषेण कविकी 'धम्मपरिक्खा'में पुष्पदन्तका निर्देश आता है। धम्मपरिक्खाके रचयिता हरिषेण धक्कड़ वंशीय गोवर्द्धनके पुत्र और सिद्धसेनके शिष्य थे। वे मेवाड़देशके चित्तौड़के रहनेवाले थे और उसे छोड़कर कार्यवश अचलपुर गये थे।[१] वहाँ पर उन्होंने वि० सं० १०४४में अपना यह ग्रंथ समाप्त किया।[२]

अतएव इस आधारपर वि० सं० १०४४के पूर्व ही पुष्पदन्तका समय होना चाहिए। जयधवलाटीकाका निर्देश करनेके कारण ई० सन् ८३७के पूर्व भी पुष्पदन्त नहीं हो सकते हैं। अतएव पुष्पदन्तका समय वि० सं० ८९४-१०४४के मध्य होना चाहिए।

कविने अपने ग्रंथोंमें गेडिगु, शुभतुंग, वल्लभनरेन्द्र और कण्हरायका उल्लेख किया है। और इन सब नामोंपर ग्रन्थकी प्रतियों और टिप्पणग्रंथोंमें कृष्णराजः टिप्पणी लिखी है। इसका अर्थ यह हुआ कि ये सभी नाम एक ही राजाके हैं। वल्लभराय या वल्लभनरेन्द्र, राष्ट्रकूटराजाओंकी सामान्यपदवी थी। अतएव यह स्पष्ट है कि कृष्ण राष्ट्रकूटवंशके राजा थे।

'णायकुमारचरिउ'की प्रस्तावनामें मान्यखेट नगरीके वर्णन-प्रसंगमें कवि कहता है कि वह राजा कण्हराय—कृष्णराजकी कृपाण-जलवाहिनीसे दुर्गम है। राष्ट्रकूटवंशमें कृष्णनामके तीन राजा हुए। उनमें पहला शुभतुंग उपाधिधारी कृष्णराजा नहीं हो सकता क्योंकि उसके बाद ही अमोघवर्षने मान्यखेट को बसाया था। दूसरा कृष्णराज भी नहीं हो सकता है क्योंकि उसके समयमें गुणभद्रने उत्तरपुराणकी रचना की थी। और यह पुष्पदन्तके पूर्ववर्त्ती कवि हैं। अतः कृष्ण तृतीय ही इनका समकालीन हो सकता है। कविके द्वारा वर्णित घटनाओंके साथ इसका ठीक-ठीक मेल बैठता है। इतिहाससे यह भली-

१. सिरिचित्तउडु चएवि अचलउरहो, गउ णियकज्जें जिणहरपउरहो।
तहिं छंदालंकारपसाहिइ, धम्मपरिक्खएहतें साहिय॥

२. विक्कमणिवपरियत्तइ कालए, ववगए वरिस सहसचउतालए।

भाँति प्रकट है कि कृष्ण तृतीयने चोलदेश पर विजय प्राप्त की थी। कविने धारा-नरेश द्वारा मान्यखेटकी लूटका उल्लेख किया है।[1] यह घटना कृष्ण तृतीयके बादकी और खोट्टिगदेवके समयकी है। धनपालकी पाइयलच्छी कृतिसे भी सिद्ध है कि वि० सं० १०२९में मालवनरेशने मान्यखेटको लूटा था।[2] यह यह धारा नरेश हर्षदेव था जिसने खोट्टिगदेवसे मान्यखेट छीना था। अतः कवि पुष्पदन्तको कृष्ण तृतीयका समकालीन होना चाहिए। यहाँ एक शंका यह है कि महापुराण शक सं० ८८८में पूरा हो चुका था और यह लूट शक् सं० ८९४में हुई। तब इसका उल्लेख कैसे कर दिया गया? अतएव यह संभव है कि पुष्पदन्त द्वारा उल्लिखित संस्कृत-श्लोक प्रक्षिप्त हो। यशस्तिलकचंपूके लेखकने जिस समय अपना ग्रंथ समाप्त किया था उस समय कृष्ण तृतीय मेल-पाटीमें पड़ाव डाले हुए था। सोमदेवने भी उसे चोलविजेता कहा है। अतः पुष्पदन्त और सोमदेव समकालीन सिद्ध होते हैं। श्रीनाथूराम प्रेमीने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है—"शक् सं० ८८१में पुष्पदन्त मेलपाटीमें भरतमहा-मात्यसे मिले और उनके अतिथि हुए। इसी साल उन्होंने महापुराण शुरू करके उसे शक सं० ८८७में समाप्त किया। इसके बाद उन्होंने नागकुमार-चरित और यशोधरचरित लिखे। यशोधरचरितकी समाप्ति उस समय हुई, जब मान्यखेट लूटा जा चुका था। यह शक सं० ८९४के लगभगकी घटना है। इस तरह वे शक सं० ८८१से लेकर कम-से-कम ८९४ तक, लगभग १३ वर्ष मान्यखेटमें महामात्य भरत और नन्नके सम्मानित अतिथि होकर रहे, यह निश्चित है।"[3]

एक अन्य विचारणीय तथ्य यह है कि 'जसहरचरिउ'में तीन प्रकरण ऐसे हैं, जो पुष्पदन्त कृत नहीं है। ये प्रकरण गन्धर्वनामक कवि द्वारा प्रक्षिप्त किये गये हैं। गन्धर्वने लिखा है योगिनीपुर (दिल्ली)के वीसलसाहुने उनसे अनुरोध किया कि पुष्पदन्तकृत 'जसहरचरिउ'में 'राजा और कौलाचार्यका मिलन', 'यशोधर-विवाह' एवं 'पात्रोंके जन्म-जन्मान्तरोंका विस्तृत निरूपण' जोड़-कर इस ग्रन्थको उपादेय बना दीजिए। तदनुसार कृष्णके पुत्र गन्धर्वने वि०

---

१. धारानाथ-नरेन्द्र-कोप-शिखिना दग्धं विदग्धं प्रियं,
क्वेदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कवि।

२. विक्कमकालस्स गए अउणत्तिसुत्तरे सहस्सम्मि
मालव-नरिंद धाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि"

३. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३२८-३२९।

सं० १३६५ व्यतीत होने पर वैशाखमासमें यह रचना पूर्ण की।[1]

गन्धर्वके उक्त उल्लेखसे स्पष्ट है कि पुष्पदन्त ई० सन् १३०८से पूर्ववर्ती हैं। पुष्पदन्तके महापुराणपर एक टिप्पण प्रभाचन्द्र पण्डितने धाराके परमार नरेश जयसिंहदेवके राज्यकालमें लिखा है। जयसिंहदेवका ताम्रपत्र सं० १११२ (सन् १०५५)का प्राप्त हुआ है।

महापुराणटिप्पणकी एक अन्य प्रतिमें बताया गया है कि श्रीचन्द्र मुनिने भोजदेवके राज्यकालमें वि० सं० १०८० (सन् १०२३)में 'समुच्चयटिप्पण' लिखा[2]। सम्भवतः ये श्रीचन्द्र 'दंसण-कह-दयण-करण्ड' और 'कहाकोसु'के रचयिता हैं।[3] अतः पुष्पदन्तका समय सं० १०८०से पूर्व है। महापुराणकी कुछ प्रतियोंमें सन्धि-शीर्षक पद्य आया है, जिसमें लिखा है—"जो मान्यखेट दीन और अनाथोंका धन था एवं विद्वानोंका प्यारा था, वह धारानाथ नरेन्द्रकी कोपाग्निसे भस्म हो गया; अब पुष्पदन्त कवि कहाँ निवास करेंगे।"[4]

उक्त घटना वही है, जो 'पाइयलच्छीनाममाला' तथा परमारनरेश हर्षदेव सम्बन्धी एक शिलालेखमें उल्लिखित है धनपालने अपने कोशकी रचना सन् ९७२में की है। अतएव उक्त उल्लेखोंके प्रकाशमें यह माना जा सकता है कि मान्यखेटकी लूटके समय पुष्पदन्त जीवित थे। 'णायकुमारचरिउ' (१।१।११-१२) और महापुराणमें मान्यखेटके राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराजका निर्देश आया है।[5]

खोट्टिगदेवका शक ८९३ (सन् ९७१)के अभिलेखमें उल्लेख आया है। कवि पुष्पदन्तने महापुराणको रचना सिद्धार्थ-संवत्सरमें आरम्भ की और क्रोधन-संवत्सरमें आषाढ़शुक्ला दशमीको (महा० १०२।१४।१३) समाप्त। कृष्णराज और खोट्टिगदेवके समयकी दृष्टिसे ज्योतिषगणनानुसार क्रोधन-संवत्सर ई० सन् ९६५, ११ जूनको आता है। अतः यही समय महापुराणकी समाप्तिका है। महापुराणके पश्चात् क्रमशः 'णायकुमारचरिउ' और 'जसहरचरिउ'की रचना की गयी है। संक्षेपमें कविका समय ई० सन्‌की दशम शती है।

आश्रयदाता और समकालीन राजा

महाकवि पुष्पदन्त भरत और नन्नके आश्रयमें रहे थे। ये दोनों ही महा-

१. जसहरचरिउ, ४।३०।
२. महापुराण, प्रस्तावना, पृ० १४।
३. 'कहाकोसु' प्राकृत-ग्रन्थपरिषद्, ग्रन्थांक १३, प्रस्तावना, पृ० ४।
४. महापुराण, प्रस्तावना, पृ० २५।
५. णायकुमारचरिउ, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रस्तावना, पृ० १७।

मात्यवंशके प्रतापशाली और प्रभावशाली मंत्री थे। कविने तुडिग राजाका उल्लेख किया है। यह कृष्णका घरेलू नाम है। इसके अतिरिक्त उसने वल्लभराय, वल्लभनरेन्द्र, शुभतुंगदेवका भी निर्देश किया है। वल्लभराय राष्ट्रकूट-नरेशोंकी उपाधि थी, जो उन्होंने चालक्यनरेशोंको जीतनेके उपलक्ष्यमें ग्रहण की थी।

अमोघवर्ष तृतीय या बद्दिगके तीन पुत्र थे, तुडिग या कृष्ण तृतीय, जगतुंग और खोट्टिगदेव। कृष्ण सबसे बड़े थे, जो अपने पिताके बाद राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। जगत्तुंग छोटे थे और उनके राज्यकालमें ही स्वर्गवासी हो गये थे। अतएव तृतीय पुत्र खोट्टिगदेव गद्दी पर बैठे। कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट वंशके सबसे प्रतापी और सार्वभौम राजा थे। इनके पूर्वजोंका साम्राज्य नर्मदा-से लेकर दक्षिणमें मैसूर तक व्याप्त था। मालवा और बुन्देलखण्ड भी इनके प्रभावक्षेत्रमें थे। इस विस्तृत साम्राज्यको कृष्ण तृतीयने और भी वृद्धिगत किया था। ताम्रपत्रोंके अनुसार उसने पाण्डय और केरलको हराया, सिंहलसे कर वसूल किया और रामेश्वरम्‌में अपनी कीर्तिवल्लरीको विस्तृत किया। ये ताम्रपत्र शक सं० ८८१ के हैं।

देवलीके अभिलेखसे[१] अवगत होता है कि उसने कांचीके राजा दंतिगको और बप्पुकको मारा, पल्लवनरेश अंतिगको हराया, गुर्जरोंके आक्रमणसे मध्यभारतके कलचुरियोंकी रक्षा की और अन्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। हिमालयसे लेकर लंका और पूर्वसे लेकर पश्चिम समुद्र तकके राजा उसकी आज्ञा मानते थे। उसका साम्राज्य गंगाकी सीमाको भी पार कर गया था। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि भरत और नन्न अमात्य पुष्पदन्तके आश्रयदाता थे। नन्न कौडिण्यगोत्रीय भरतके पुत्र थे और इनकी माताका नाम कुन्दव्वा था। इन्होंने अनेक जैनमन्दिर बनवाये और जैनशासनके उद्धारका महनीय कार्य किया। इस प्रकार मन्त्री भरत और नन्नमें पिता-पुत्र सम्बन्ध घटित होता है।

रचनाएँ

पुष्पदन्त असाधारण प्रतिभाशाली महाकवि थे। इतना ही नहीं, वे विदग्ध दार्शनिक और जैन सिद्धान्तके प्रकाण्ड पण्डित भी थे। क्षीणकाय होने पर भी उनकी आत्मा अत्यन्त तेजस्वी थी। वे सरस्वती-निलय और काव्यरत्नाकर कहे जाते थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. जरनल बाम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्द १८, पृ० २३९।

१. तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार या महापुराण—यह एक विशालकाय ग्रन्थ है और दो खण्डोंमें विभक्त है—आदिपुराण एवं उत्तरपुराण। इन दोनों खण्डोंमें ६३ शलाकापुरुषोंके चरित गुम्फित हैं। प्रथम खण्डमें आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ और भरतके चरित निबद्ध किये गये हैं और दूसरे खण्डमें अजित, संभव आदि शेष २३ तीर्थंकरोंकी एवं उनके समकालीन नारायण, प्रतिनारायण एवं बलभद्र आदिकी जीवन-गाथाएँ निबद्ध हैं। उत्तरपुराणमें पद्मपुराण (रामायण) तथा हरिवंशपुराण (महाभारत) भी सम्मिलित हैं। आदिपुराणमें ८० और उत्तरपुराणमें ४२ सन्धियाँ हैं। दोनोंका श्लोकप्रमाण २०,००० है। इसकी रचनामें कविको लगभग छः वर्ष लगे थे।

इस महान् रचनाके सम्बन्धमें कविने स्वयं स्वीकार किया है कि इसमें सब कुछ है, जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है। महापुराणकी रचना महामात्य भरतकी प्रेरणा और प्रार्थनासे सम्पन्न हुई है। इसीलिए कविने इसकी प्रत्येक सन्धिके अन्तमें 'महाभव्वभरताणुमण्णिए'—'महाभव्यभरताणुमानिते' विशेषण दिया है एवं इसकी अधिकांश सन्धियोंके प्रारम्भमें भरतका विविधमुख गुण-संकीर्त्तन किया गया है।

णायकुमारचरिउ—यह एक सुन्दर महाकाव्य है। इसमें ९ सन्धियाँ हैं। और यह नन्ननामाङ्कित है। इसमें पञ्चमीके उपवासका फल प्राप्त करनेवाले नागकुमारका चरित वर्णित है। यह रचना बहुत ही प्रौढ़ एवं मनोहारिणी है। मान्यखेटमें नन्नके मन्दिरमें रहते हुए पुष्पदन्तने 'णायकुमारचरिउ'की रचना की। प्रारंभमें कहा गया है कि महोदधिके गुणवर्म एवं शोभन नामक दो शिष्योंने प्रार्थना की कि आप पञ्चमीके फल प्रतिपादन करनेवाले काव्यकी रचना कीजिये। महामात्य नन्नने भी उसे सुननेकी इच्छा प्रकट की तथा नाइल्ल और शीलभट्टने भी आग्रह किया। कविने इस ग्रंथके प्रारंभमें काव्यके तत्त्वोंका भी उल्लेख किया है। कवि कहता है—

"दुविहालंकारें विप्फुरंति लीलाकोमलइँ पयाइँ दिंति।
महकव्वणिहेलणि संचरंति बहुहावभावविब्भम धरंति।
सुपसत्थें अत्थें रिहि करंति सव्वइँ विण्णाणइँ संभरंति।
णोसेसदेसभासउ चवंति लक्खणइँ विसिट्ठइँ दक्खवंति।
अइरुंदछंदमग्गेण जंति पाणेहिँ मि दह पाणाइँ होंति।
णवहिँ मि रसेहिँ संचिज्जमाण विग्गहतएण णिरु सोहमाण।
चउदहपुव्विल्ल दुवालसंगि जिणवयणविणिग्गयसत्तभंगि।
वायरणवित्तिपायडियणाम पसियउ महु देवि मणोहिराम।"

जिस वाणीमें शब्दालंकार, अर्थालंकार, व्याकरणसम्मत कोमल पद, विविध प्रकारके हावभाव, छन्द, श्लेष, प्रसादादि रस-गुण, शृंगारादि नवरस, आचारांगादि द्वादश अंग, चौदह पूर्व, स्याद्वाद आदि सिद्धान्त समाहित रहते हैं, वही वाणी सुन्दर और सुशील विलासयुक्त नायिकके समान जनसामान्यका चित्तआकृष्ट करती है। इस प्रकार कवि पुष्पदन्तने काव्यतत्त्वोंका विवेचन बहुत सुन्दररूपमें किया है। कवि इतिवृत्त, वस्तुव्यापार-वर्णन और भावाभिव्यञ्जनमें भी सफल हुआ है। राजगृह नगरका चित्रण करते हुए उत्प्रेक्षाकी श्रेणी ही प्रस्तुत कर दी है। कवि कहता है कि वह नगर मानों कमलसरोवररूपी नेत्रोंसे देखता था, पवनद्वारा हिलाये हुए वनोंके रूपमें नृत्य कर रहा था तथा ललित लतागृहोंके द्वारा मानों लुकाछिपी खेलता था। अनेक जिनमन्दिरों द्वारा उल्लसित हो रहा था। कामदेवके विषम वाणोंसे घायल होकर मानों अनुरक्त परेवोंके स्वरसे चीख रहा था। परिखामें भरे हुए जलके द्वारा वह नगर परिधान धारण किये हुए था तथा अपने श्वेत प्रकाररूपी चीरको ओढ़े था। वह अपने ग्रहशिखरोंकी चोटियों द्वारा स्वर्गको छू रहा था। और मानों चन्द्रकी अमृतधाराको पी रहा था। कुंकुमकी छटाओंसे जान पड़ता था, जैसे वह रतिकी रंगभूमि हो और वहाँके सुखप्रसंगोंको दिखला रहा हो। वहाँ जो मोतियोंकी रंगावलियाँ रची गई थीं, उनसे प्रतीत होता था, जैसे मानों वह हार-पंक्तियोंसे विभूषित हो। वह अपनी उठी हुई ध्वजाओंसे पंचरंगा और और चारों वर्णोंके लोगोंसे अत्यन्त रमणीक हो रहा था।

जोयइ व कमलसरलोयणेहिँ णच्चइ व पवणहल्लियवणेहिँ।
ल्हिक्कइ व ललियवल्लीहरेहिँ उल्लसइ व बहुजिणवरहरेहिँ।
वणियउ व विसमवम्महसरेहिँ कणइ व रयपारावयसरेहिँ।
परिहइ व सपरिहाघरियणीरु पंगुरइ व सियपायारचीरु।
णं परसिहरग्गहिँ सग्गु छिवइ णं चंदअमिय-धाराउ पियइ।
कुंकुमछडएं ण रइहि रंग णावइ दक्खालिय-सुहपसंगु।
विरइयमोत्तियरंगावलहिँ जं भूसिउ णं हारावलीहिँ।
चिंघेहिँ धरिय णं पंचवण्णु चउवण्णजणेण वि अइसण्णु।

इसप्रकार यह महाकाव्य रस, अलंकार, प्रकृतिचित्रण आदि सभी दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है।

जसहरचरिउ—यह भी एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें पुण्यपुरुष यशोधरका चरित वर्णित है। इसमें ४ सन्धियाँ हैं। यह ग्रन्थ भरतके पुत्र और वल्लभ नरेन्द्रके गृहमंत्रीके लिए उन्हींके भवनमें निवास करते हुए लिखा गया

है। इसकी दूसरी, तीसरी और चौथी सन्धिके प्रारंभमें नन्नके गुणकीर्त्तन करने वाले तीन संस्कृत-पद्य हैं। जसहरचरिउकी प्राचीन प्रतियोंमें गन्धर्वकविके बनाये हुए कतिपय क्षेपक भी उपलब्ध हैं।

कवि पुष्पदन्त अपभ्रंशके श्रेष्ठ कवियोंमें परिगणित हैं। कोमलपद, गूढ़ कल्पना, प्रसन्न भाषा, छन्द-अलंकारयुक्तता, अर्थगंभीरता आदि सभी काव्य-तत्त्व इनके ग्रन्थोंमें प्राप्त हैं। हमारे विचारमें पुष्पदन्त नैषधकार श्रीहर्षके समान ही मेधावी कवि हैं। उन जैसा राजनीतिका आलोचक बाणके अतिरिक्त दूसरा लेखक नहीं हुआ। मेलापाटीके उस उद्यानमें हुई भरत और पुष्पदन्त-की भेंट भारतीय साहित्यकी बहुत बड़ी घटना है। यह अनुभूति और कल्पना-की वह अक्षयधारा है, जिससे अपभ्रंश-साहित्यका उपवन हरा-भरा हो उठा।

धनपाल

धनपालकी प्रतिभा आख्यान-साहित्यके सृजनमें अनुपम है। धनपालके पिताका नाम 'माएसर'—मायेश्वर और माताका नाम धनश्री था। इनका जन्म धक्कड़ वंशमें हुआ था। यह धक्कड़ वंश पश्चिमी भारतकी वैश्य जाति है। देलवाड़ामें तेजपालका वि० सं० १२८७ का एक अभिलेख है, जिसके धर-कट या धक्कड़ जातिका उल्लेख है। आबूके शिलालेखोंमें भी इसका निर्देश मिलता है। प्रारंभमें यह जाति राजस्थानकी मूल जाति थी; बादमें यह देशके अन्य भागोंमें व्याप्त हुई।

धनपाल दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी था। 'भविसयत्तकहा'के 'जेण-भंजिवि दियम्बरि लायउ'के अतिरिक्त ग्रंथके भीतर आया हुआ सैद्धान्तिक विवेचन उनका दिगम्बर मतानुयायी होना सिद्ध करता है। धनपालने अष्टमूल गुणोंका वर्णन करते हुए बताया है कि मधु, मद्य, मांस और पांच उदम्बर फलोंको किसी भी जन्ममें नहीं खाना चाहिए।[1] कविका यह कथन भावसंग्रहके कर्त्ता देवसेनके अनुसार है। सोमदेव और आशाधरकी भी यही मान्यता है।[2]

कवि धनपालने १६ स्वर्गोंका कथन भी दिगम्बर आम्नायके अनुसार ही किया है। कविने लिखा है—

---

१. महु मज्जु मंसु पंचुवराइं खज्जंति ण जम्मंतर समाइं। १६,८।

२. महुमज्जुमंसविरई चाओ पुण उंवराण पंचण्हं।
अट्ठेदे मूलगुणा हवंति फुड्ड देसविरयम्मि—भावसंग्रह, गाथा ३५६।

अप्पुणु पुणु तवचरण चरेप्पिणु अणसणि पंडियमरणि मरेप्पिणु ।
दिवि सोलहमहं पुण्णायामि हुड सुखहविज्जुप्पहु णायिं ॥
—भविसयत्तचरिउ २०,९ ।

अतएव कवि धनपाल दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है, कविने अपने जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी निर्देश नहीं किया है। केवल वंश और माता-पिताका नाम ही उपलब्ध होता है। यह निश्चित है कि कवि सरस्वतीका वरद पुत्र है। उसे कवित्व करनेको अपूर्व शक्ति प्राप्त है।

स्थितिकाल

कवि धनपालका स्थितिकाल विद्वानोंने वि० की दशवीं शती माना है। 'भविसयत्तकहा'की भाषा हरिभद्र सूरिके 'नेमिनाहचरिउ'से मिलती-जुलती है। अतः धनपालका समय हरिभद्रके पश्चात् होना चाहिए। श्री पी० वी० गुणेने निम्नलिखित कारणोंके आधार पर इनका समय दशवीं शती माना है—

१. भाषाके रूप और व्याकरणकी दृष्टिसे इसमें शिथिलता और अनेकरूपता है। अतएव यह कथाकृति उस समयकी रचना है, जब अपभ्रंश भाषा बोलचालकी थी।

२. हेमचन्द्रके समय तक अपभ्रंश-भाषा रूढ़ हो चुकी थी। उन्होंने अपने व्याकरणमें अपभ्रंशके जिन दोहोंका संकलन किया है, उनकी भाषाकी अपेक्षा 'भविसयत्तकहा'की भाषा प्राचीन है। अतः धनपालका समय हेमचन्द्रके पूर्व होना चाहिए।

३. भविसयत्तकहा और पउमचरिउके शब्दोंमें समानता दिखाते हुए प्रो० भायाणीने निर्देश किया है कि भविसयत्तकहाके आदिम कड़वकोंके निर्माणके समय धनपालके ध्यानमें 'पउमचरिउ' था। इसलिए धनपालका समय स्वयंभूके बाद और हेमचन्द्रसे पूर्व ही किसी कालमें अनुमित किया जा सकता है।[1]

४. दलाल और गुणेने भविसयत्तकहाकी भाषाके आधारपर धनपालको हेमचन्द्रका पूर्ववर्त्ती माना है। अतः धनपालका समय दशवीं शतीके लगभग होना चाहिए।

भविसयत्तकहाकी सं० १३९३ की लिपि प्रशस्तिके आधारपर श्री डा०

---

१. दि पउमचरिउ एण्ड दि भविसयत्तकहा—प्रो० भायाणी, भारतीय विद्या (अंग्रेजी) भाग ८, अंक १–२; सन १९४७, पृ० ४८–५० ।

देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने धनपालका समय वि० की १४वीं शती बतलाया है। पर यह उनका भ्रम है। श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने 'अनेकान्त' वर्ष २२, किरण १ में श्रीदेवेन्द्रकुमारजीके मतकी समीक्षा की है। और उन्होंने प्राप्त प्रशस्तिको मूलग्रंथकर्त्ताकी न मानकर लिपिकर्त्ताकी बताया है। अतः प्रशस्तिके आधारपर धनपालका समय १४वीं शती सिद्ध नहीं किया जा सकता है। जब तक पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता है तब तक धनपालका समय १०वीं शती ही माना जाना चाहिए।

धनपालका व्यक्तित्व कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। उन्हें जीवनमें विभिन्न प्रकारके अनुभव प्राप्त थे। अतः उन्होंने समुद्रयात्राका सफल वर्णन किया है। विमाताके कारण पारिवारिक कलहका चित्रण भी सुन्दर रूपमें हुआ है। कवि धनपालका मस्तिष्क उर्वर था। वे शृंगार-प्रसाधनको भी आवश्यक समझते थे। विवाह एवं मांगलिक अवसरों पर धन व्यय करना उनकी दृष्टिमें उचित था।

रचना

कविकी एक ही रचना 'भविसयत्तकहा' प्राप्त है। यह कथाकृति नगर-वर्णन, समुद्र-वर्णन, द्वीप-वर्णन, विवाह-वर्णन, युद्धयात्रा, राज-द्वार, ऋतु-चित्रण, शकुनवर्णन, रूपवर्णन आदि वस्तु-वर्णनोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध है। कविने प्रबन्धमें परिस्थितियों और घटनाओंके अनुकूल मार्मिक स्थलोंकी योजना की है। इन स्थलोंपर उसकी प्रतिभा और भावुकताका सच्चा परिचय मिलता है। भावोंके उतार-चढ़ावमें घटनाओंका बहुत कुछ योग रहता है। भविसत्तकहामें बन्धुदत्तका भविष्यदत्तको मैनाद्वीपमें अकेला छोड़ना और साथके लोगोंका संतप्त होना, माता कमलश्रीको भविष्यदत्तके न लौटनेका समाचार मिलना, बन्धुदत्तका लौटकर आगमन, कमलश्रीका विलाप और भविष्यदत्तका मिलन आदि घटनाएँ मर्मस्पर्शी हैं।

कथावस्तु—हस्तिनापुरनगरमें धनपति नामका एक व्यपारी था, जिसकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इनके भविष्यदत्त नामका एक पुत्र हुआ। धनपति सरूपानामक एक सुन्दरीसे अपना विवाह कर लेता है और परिणामस्वरूप अपनी पहली पत्नी और पुत्रकी उपेक्षा करने लगता है। धनपति और सरूपाके पुत्रका नाम बन्धुदत्त रखा जाता है। युवावस्थामें पदार्पण करने पर बन्धुदत्त व्यापारके हेतु कंचन-द्वीपके लिये प्रस्थान करता है। उसके साथ ५०० व्यापारियोंको जाते हुए देखकर भविष्यदत्त भी अपनी माताकी अनुमतिसे उनके

साथ हो लेता है। समुद्रमें यात्रा करते हुए दुर्भाग्यसे उसको नौका आँधीसे पथभ्रष्ट हो मदनाग या मैनाक द्वीप पर जा लगती है। बन्धुदत्त धोखेसे भविष्यदत्तको वहीं एक जंगलमें छोड़कर स्वयं अपने साथियोंके साथ आगे निकल जाता है। भविष्यदत्त अकेला इधर-उधर भटकता हुआ एक उजड़े हुए, किन्तु समृद्ध नगरमें पहुँचता है। वहीं एक जैनमन्दिरमें जाकर वह चन्द्रप्रभ जिनकी पूजा करता है। उसी उजड़े नगरमें वह एक दिव्य सुन्दरीको देखता है। उसीसे भविष्यदत्तको पता चलता है कि वह नगर कभी अत्यन्त समृद्ध था। एक असुरने इसे नष्ट कर दिया है। कालान्तरमें वही असुर वहाँ प्रकट होता है और भविष्यदत्तका उसी सुन्दरीसे विवाह करा देता है।

चिरकाल तक पुत्रके न लौटनेसे कमलश्री उसके कल्याणार्थ श्रुतपंचमी व्रतका अनुष्ठान करती है। उधर भविष्यदत्त सपत्नीक प्रभूत सम्पत्तिके साथ घर लौटता है। लौटते हुए उसकी बन्धुदत्तसे भेंट होती है, जो अपने साथियोंके साथ यात्रामें असफल होनेसे विपन्नावस्थाको प्राप्त था। भविष्यदत्त उसका सहर्ष स्वागत करता है। वहाँसे प्रस्थानके समय पूजाके लिये गये हुए भविष्यदत्तको फिर धोखेसे वहीं छोड़कर बन्धुदत्त उसकी पत्नी और प्रचुर धनसम्पत्तिको लेकर साथियोंके साथ नौकामें सवार हो वहाँसे चल पड़ता है। मार्गमें फिर आँधीसे उसकी नौका पथभ्रष्ट हो जाती है और वे सब जैसे-तैसे हस्तिनापुर पहुँचते हैं। घर पहुँचकर बन्धुदत्त भविष्यदत्तकी पत्नीको अपनी भावी पत्नी घोषित कर देता है। उनका विवाह निश्चित हो जाता है। कालान्तरमें दुःखी भविष्यदत्त भी एक यक्षकी सहायतासे हस्तिनापुर पहुँचता है। वहाँ पहुँचकर वह सब वृत्तान्त अपनी मातासे कहता है। इधर बन्धुदत्तके विवाहकी तैयारियाँ होने लगतीं हैं और जब विवाह-सम्पन्न होने वाला होता हैं तो राजसभामें जाकर बन्धुदत्तके विरुद्ध भविष्यदत्त शिकायत करता है और राजाको विश्वास दिला देता है कि वह सच्चा है। फलतः बन्धुदत्त दण्डित होता है और भविष्यदत्त अपने माता-पिता और पत्नीके साथ राजसम्मानपूर्वक सुखसे जीवन व्यतीत करता है। राजा भविष्यदत्तको राज्यका उत्तराधिकारी बना अपनी पुत्री सुमित्रासे उसके विवाहका वचन देता हैं।

इसी बीच पोदनपुरका राजा हस्तिनापुरके राजाके पास दूत भेजता है और कहलवाता है कि अपनी पुत्री और भविष्यदत्तकी पत्नीको दे दो या युद्ध करो। राजा पोदनपुरनरेशकी शर्तको अस्वीकार करता है और परिणामतः युद्ध होता है। भविष्यदत्तकी सहायता और वीरतासे राजा विजयी होता है। भविष्यदत्तकी वीरतासे प्रभावित हो राजा भविष्यदत्तको युवराज घोषित कर

देता है। अपनी पुत्री सुमित्राके साथ उसका विवाह भी कर देता है। भविष्यदत्त सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगता है।

भविष्यदत्तकी प्रथम पत्नीके हृदयमें अपनी जन्मभूमि मदनाग या मैनाक द्वीपको देखनेकी इच्छा जाग्रत होती है। भविष्यदत्त, उसके माता, पिता और सुमित्रा सब उस द्वीपमें जाते हैं। वहाँ उन्हें एक जैन मुनि मिलते हैं, जो उन्हें सदाचारके नियमोंका उपदेश देते हैं। कालान्तरमें वे सब लौट आते हैं।

एक दिन विमलबुद्धि नामक मुनि आते हैं। भविष्यदत्त उनके मुखसे अपने पूर्व जन्मोंकी कथा सुनकर विरक्त हो जाता है और अपने पुत्रको राजभार सौंपकर श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर लेता है। भविष्यदत्त तपश्चरण करता हुआ कर्मोंको नष्टकर निर्वाण प्राप्त करता है। श्रुतपंचमीके महात्म्यके स्मरणके साथ कथा समाप्त हो जाती है।

घटना-बाहुल्य इस कथाकाव्यमें पाया जाता है। पर घटनाओंका वैचित्र्य बहुत कम है।

कविने लौकिक आख्यानके द्वारा श्रुतपंचमीव्रतका माहात्म्य प्रदर्शित किया है। अन्तमें भी इसी व्रतके माहात्म्यका स्मरण किया गया है। धार्मिक विश्वासके साथ लौकिक घटनाओंका सम्बन्ध काव्यचमत्कारार्थ किया गया है। इस कृतिमें प्रबन्धकी संघटना सुन्दर रूपमें हुई है। कथाके विकासके साथ ही कार्य-कारणघटनाओंकी कार्य-कारणश्रृंखला प्रतिपादित है। वस्तुतः यह एक रोमांचक काव्य है। इसमें लोक-जीवनके अनेक रूप दिखलाई पड़ते हैं। करुण, श्रृंगार, वीर, रौद्र आदि रसोंका परिपाक भी सुन्दर रूपमें हुआ है। अलंकारों में उपमा, परिणाम, सन्देह, रूपक भ्रान्तिमान, उल्लेख, स्मरण, अपह्नुव उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, निदर्शना और सहोक्ति आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। छन्दोंमें पद्धड़ी, अडिल्ला, घत्ता, दुवइ, चामर, भुजंगप्रयात, शंखनारी, मरहट्ठा, प्लवंगम, कलहंस आदि छन्द प्रधान हैं। वास्तवमें धनपाल कविकी यह कृति कथानक-रूढ़ियों और काव्य-रूढ़ियोंकी भी दृष्टिसे समृद्ध है।

धवल कवि

अपभ्रंश-साहित्यके प्रबन्धकाव्य-रचयिताओंमें कवि धवलका नाम भी आदरके साथ लिया जाता है। कवि धवलके पिताका नाम सूर और माताका नाम केसुल्ल था। इनके गुरुका नाम अम्बसेन था। धवल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न

हुआ था; पर अन्तमें वह जैन धर्मावलम्बी हो गया था। कवि द्वारा निर्दिष्ट उल्लेखोंके आधारपर उसकी प्रतिभा और कवित्वशक्तिका परिज्ञान होता है। धवलने हरिवंशपुराणकी रचना की है।[1] डॉ० प्रो० हीरालाल जैनने 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज,' भाग १, सन् १९२५ में धवल कवि द्वारा रचित हरिवंशपुराणका निर्देश किया था।

स्थितिकाल

कवि धवलके निर्देशोंके आधारपर कविका समय १०वीं-११वीं शती सिद्ध होता है। कविने ग्रन्थके प्रारम्भमें अनेक कवियोंका स्मरण करते हुए लिखा है—

कवि चक्कवइ पुव्वि गुणवंतउ धीरसेणु हुँतउ णयवंतउ।
पुणु सम्मत्तइं धम्म सुरेगउ, जेण पमाण गंथु किउ चंगउ।
देवणंदि बहु गुण जस भूसिउ, जे वायरणु जिणिंदु पयासिउ।
वज्जसूउ सुपसिद्धउ मुणिवरु, जे णयमाणुगंथु किउ सुंदरु।
मुणि महसेणु सुलोयण जेणवि, पउमचरिउ मुणि रविसेणेणवि।
जिणसेणे हरिवंसु पवित्तुवि, जडिल मुणीण वरंगचरित्तु वि।
दिणयरसेणें चरिउ अणंगहु, पउमसेण आयरियइ पसंगहु।
अंधसेणु जें अमियागहणु विरइय दोस-विवज्जिय सोहणु।
जिणचंदप्पह-चरिउ मणोहरु, पावरहिउ धणमत्त समुन्दरु।
अण्णमि किय इंमाइं तुह पुत्तइ विण्हसेण रिसहेण चरित्तइं।
सीहणंदि गुरवें अणुपेहा णरदेवेणवकांतु सुणेहा।
सिद्धसेणु जें गेए आगउ, भविय विणीय पयासिउ चंगउ।
रामणंदि जे विविह पहाण जिणसासणि बहुरइय कहाणा।
असगमहाकइ जें सु मणोहरु वीरजिणिंदु-चरिउ किउ सुंदरु।
कित्तिय कहमि सुकइ गुण आयर गेय कव्व जहिं विरइय सुंदर।
सणकुमार जे विरमउ मणहरु, कय गोविंद पवरु सेयंवरू।
तह वक्खइ जिणरक्खिय सावउ जें जय धवल भुवणि विक्खाइउ।
सालिहद्दु कि कइ जीय उदेंदउ लोयइ चहुमुहुं दोणु पसिद्धउ।
इक्कहि जिणसासणि उचलियउ सेढु महाकइ जसु णिम्मलियउ।
पउमचरिउ जें भुवणि पयासिउ, साहुणरहि णरवरहि पसंसिउ।
हउ जडु तो वि किंपि अब्भासमि महियलि जे णियबुद्धि पयासमि।[1]

---

१. हरिवंशपुराण १, ३।

अर्थात् कविचक्रवर्ती धीरसेन सम्यक्त्वयुक्तप्रमाणविशेष ग्रन्थके कर्ता, देवनन्दि, वज्रसूरि प्रमाणग्रन्थके कर्त्ता, महासेनका सुलोचनाग्रन्थ, रविषेणका पद्मचरित, जिनसेनका हरिवंशपुराण, जटिल मुनिका वरांगचरित, दिनकरसेनका अनंगचरित, पद्मसेनका पार्श्वनाथचरित, अंभसेनकी अमृताराधना, धनदत्तका चन्द्रप्रभचरित, अनेक चरितग्रन्थोंके रचयिता विष्णुसेन, सिंहनन्दीकी अनुप्रेक्षा, नरदेवका णवकारमन्त्र, सिद्धसेनका भविकविनोद, रामनन्दिके अनेक कथानक, जिनरक्षित धवलादि ग्रन्थप्रख्यापक, असगका वीरचरित, गोविन्द कवि (श्वेत०) का सनत्कुमारचरित, शालिभद्रका जीव-उद्योत, चतुर्मुख, द्रोण, सेढु महाकविका पउमचरिउ आदि विद्वानों और उनकी कृतियोंका निर्देश किया है।

इनमें पद्मसेन और असग कवि दोनों ही ग्रन्थकर्त्ताओंके समयपर प्रकाश डालते हैं।

स्थितिकाल

असग कविका समय शक संवत् ९१० (ई० सन् ९८८) एवं पद्मसेनका शक सं० ९९९ समय है, जिससे स्पष्ट है कि धवल कवि शक सं० ९९९ के पश्चात् कभी भी हुआ है। पद्मकीर्त्तिकी एकमात्र रचना पार्श्वपुराण उपलब्ध है। इन दोनों रचनाओंका उल्लेख होनेसे धवलकविका समय शक सं० की ११ वीं शताब्दीका मध्यकाल आता है। वर्द्धमानचरितकी प्रशस्तिमें बताया गया है कि श्रीनाथके राज्यकालमें चोल राज्यकी विभिन्न नगरियोंमें कविने आठ ग्रन्थोंकी रचना की है—

विद्यामया प्रपठितेत्यसगाह्वयेन श्रीनाथराज्यमखिलं जनतोपकारि।
प्राप्यैव चोडविषये विरलानगर्यां ग्रंथाष्टकं च समकारि जिनोपदिष्टम्॥

—महावीरचरित, प्रशस्तिश्लोक १०५

'पासणाहचरिउ'में पद्मसेन या पद्मकीर्तिने रचनाकालका निर्देश निम्नप्रकार किया है—

णव-सय-णउआणउये कत्तियमासे अमावसी दिवसे।
रइयं पासपुराणं कइणा इह पउमणामेण॥[1]

अर्थात् सं० ९९९में कार्त्तिक मासकी अमावस्याको इस ग्रन्थकी समाप्ति हुई। यहाँ संवत्से शक या विक्रम कौन-सा संवत् ग्रहण करना चाहिए, इसपर विद्वानोंमें मतभेद है। प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदीने इसे शक-संवत् माना है और

१. पासणाहचरिउ, प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद, ग्रंथांक ८, कवि-प्रशस्ति, पद्य ४।

हरिवंश कोछड़ने विक्रम संवत् । हमारा अनुमान है कि ये दोनों ही संवत् शक संवत् हैं और धवल कविका समय शक-संवत्की १०वीं शतीका अन्तिम पाद या ११वीं शतीका प्रथम पाद संभव है।

रचना

कविका एक ही ग्रंथ हरिवंशपुराण उपलब्ध है। इस ग्रंथमें २२वें तीर्थंकर यदुवंशी नेमिनाथका जीवनवृत्त अंकित है। साथ ही महाभारतके पात्र कौरव और पाण्डव तथा श्रीकृष्ण आदि महापुरुषोंके जीवनवृत्त भी गुम्फित हैं। इस ग्रन्थमें १२२ सन्धियाँ हैं। ग्रंथकी रचना पज्झटिका और अलिल्लह छन्दमें हुई है। पद्धडिया, सोरठा, घत्ता, विलासिनी, सोमराजि प्रभृति अनेक छन्दोंका प्रयोग इस ग्रंथमें किया गया है। शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसोंका परिपाक भी सुन्दररूपमें हुआ है। कविने, नगर, वन पर्वत आदिका महत्त्व-पूर्ण चित्रण किया है। यहाँ उदाहरणार्थ मधुमासका वर्णन प्रस्तुत किया जाता है—

फग्गुणु गउ महुमासु परायउ, मयणछलिउ लोउ अणुरायउ।
वण सय कुसुमिय चारुमणोहर, बहु मयरंद मत्त बहु महुयर।
गुमुगुमंत रुणमणइं सुहावहिं, अइपपाट्ठ पेम्मुउक्कोवहिं।
केसु व वणहिं घणारुण फुल्लिय, णं विरहग्गे जाल णमिल्लिया।
घरिघरि णारिउ णिय तणु मंडहिं, हिंदोलहिं हिउहि उग्गायहिं।
वणि परपुट्ठ महुर उल्लावहिं, सिहिउलु सिहि सिहरेहिं धहावइ।

—हरिवंशपुराण १७-३

अर्थात् फाल्गुनमास समाप्त हुआ और मधुमास (चैत्र) आया। मदन उद्दीप्त होने लगा। लोक अनुरक्त हो गया। वन नाना पुष्पोंसे युक्त, सुन्दर और मनोहर हो गया। मकरन्द-पानसे मत्त मधुकर गुनगुनाते हुए सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं.........घरोंमें नारियाँ अपने शरीरको अलंकृत करती हैं, झूला झूल रहीं हैं, विहार करती हैं, वनमें गाती कोयल मधुर आलाप करती हैं। सुन्दर मयूर नृत्य कर रहे हैं।

इस काव्यमें करुण रसकी अभिव्यंजना भी बहुत सुन्दर मिलती है। कंस-वधपर परिजनोंके करुण विलापका दृश्य दर्शनीय है—

हा रहय दहय पाविट्ठ खला, पह अम्ह मणोहर किय विहला।
हा विहि णिहीण पहं काइंकिउ, णिहि दरिसिवि तक्खणि चक्खु हिउ।
हा देव या वुल्लहिं काइं तुहुं, हा सुन्दरि दरसहि किण्णु मुहु।

हा घरणिहिं सगुणणिलयट्ठहि, वर सेज्जहिं भरभवणेहिं जाहिं।
पठ विणु सुण्णउं राउल असेसु, अण्णाहिउ हुवउ दिव्व देसु।
हा गुणसायर, हा रूवघरा, हा बहरि महण सोहग्ग धरा।
घत्ता—हा महुरालावण, सोहियसंदण, अम्हहं सामिय करहिं।
दुक्खहि संतत्तउ, करुण रुवंतउ, उट्ठिवि परियणु संथवहिं ॥५६,१

कविने संसारके यथार्थरूपका भी चित्रण किया है। सबल राज्य तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। धनसे भी कुछ नहीं होता। सुख बन्धु-बान्धव, पुत्र, कलत्र, मित्र, किसके रहते हैं? वर्षाके जलबुलबुलोंके समान संसारका वैभव क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार वृक्षपर बहुतसे पक्षी आकर एकत्र हो जाते हैं और फिर प्रातःकाल होते ही अपने-अपने कार्योंसे विभिन्न स्थानोंपर चले जाते हैं, अथवा जिस प्रकार बहुतसे पथिक नदी पार करते समय नौका पर एकत्र हो जाते हैं, और फिर अपने-अपने घरोंको चले जाते हैं, उसी प्रकार क्षणिक प्रियजनोंका समागम होता है। कभी धन आता है, कभी नष्ट होता है, कभी दारिद्र्य प्राप्त होता है, भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और विलीन होती हैं, फिर भी अज्ञ मानव गर्व करता है। जिस यौवनके पीछे जरा लगी रहती है उससे कौन-सा सन्तोष हो सकता है?[1] इस प्रकार ग्रन्थकर्त्ताने संसारकी वास्तविक स्थितिका उद्घाटन किया है।

रस और अलंकारके समान ही छन्द-योजनाकी दृष्टिसे भी ग्रन्थ समृद्ध है। सामान्य छन्दोंके अतिरिक्त नागिनी, ८९।१२, सोमराजी ९०।४, जाति ९०।५, विलासिनी ९०।८ आदि छन्दोंका प्रयोग मिलता है। कड़वकोंके अन्तमें प्रयुक्त घत्ता—छन्दके अनेक रूप हैं।

हरिषेण

हरिषेण मेवाड़में स्थित चित्रकूट (चित्तौड़) के निवासी थे। इनका वंश धक्कड़ या धरकट था, जो उस समय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। इस वंशमें अनेक कवि हुए हैं। इनके पिताका नाम गोवर्द्धन और माताका नाम गुणवती था। ये किसी कारणवश चित्रकूट छोड़कर अचलपुरमें रहने लगे थे। प्रशस्ति-में बताया है—

इह मेवाड़-देसि-जण-संकुलि, सिरिउजहर णिग्गय-धक्कड-कुलि।
पाव-करिंद-कुम्भ-दारण हरि, जाउ कलाहिं कुसलु णामें हरि।

---

१. हरिवंशपुराण ९१.७।

तासु पुत्त पर-णारिसहोयरु, गुणगण-णिहि-कुल-गयण-दिवायरु।
गोवड्ढणु णामें उप्पणउ, जो सम्मत्तरयण-संपुण्णउ।
तहो गोवड्ढणासु पिय गुणवइ, जो जिणवरपय णिच्च वि पणवइ।
ताए जणिउ हरिसेणे णाम सुउ, जो संजाउ विबुह-कइ विस्सुउ।
सिरि चित्त उडु चइवि अचलउरहो, गयउ-णिय-कज्जें जिणहरपउरहो।[1]

हरिषेणने अन्य अपभ्रंश-कवियोंके समान कड़वकोंके आदि और अन्तमें अपने सम्बन्धमें बहुत-सी बातोंका समावेश किया है। उन्होंने लिखा है कि मेवाड़देशमें विविध कलाओंमें पारंगत एक हरि नामके महानुभाव थे। ये श्रीओजपुरके धक्कड़ कुलके वंशज थे। इनके एक गोवर्द्धन नामका धर्मात्मा पुत्र था। उसकी पत्नीका नाम गुणवती था, जो जैनधर्ममें प्रगाढ़ श्रद्धा रखती थी। उनके हरिषेण नामका एक पुत्र हुआ, जो विद्वान् कविके रूपमें विख्यात हुआ। उसने अपने किसी कार्यवश चित्रकूट छोड़ दिया और अचलपुर चला आया। यहाँ उसने छन्द और अलंकार शास्त्रका अध्ययन किया और धर्म-परीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की।

हरिषेणने अपने पूर्ववर्त्ती चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्तका स्मरण किया है। उन्होंने लिखा है कि चतुर्मुखका मुख सरस्वतीका आवास-मन्दिर था। स्वयंभू लोक और अलोकके जाननेवाले महान् देवता थे और पुष्पदन्त वह अलौकिक पुरुष थे, जिनका साथ सरस्वती कभी छोड़ती ही नहीं थी। कविने इन कवियोंकी तुलनामें अपनेको अत्यन्त मन्दबुद्धि कहा है।

हरिषेणने अन्तिम सन्धिमें सिद्धसेनका स्मरण किया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि हरिषेणके गुरु सिद्धसेन थे। सन्दर्भकी पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं:—

सिद्धि-पुरंधिहि कंतु सुद्धें तणु-मण-वयणें।
भत्तिए जिणु पणवेवि चिंतिउ बुह-हरिसेणें॥
मणुय-जम्मिबुद्धिए किं किज्जइ, मणहरु जाइ कव्वु ण रइज्जइ।
तं करंत अवियाणिय आरिस, हासु लहहि भउरणि गय पोरिस।
चउमुह कव्वु विरयणि सयंभुवि, पुप्फयंतु अण्णाणु णिसुंभिवि।
तिण्णि वि जोग्ग जेण तं सीसइ, चउमुह मुह थिय ताव सरासइ।
जो सयंभ सो देउ पहाणउं, अह कह लोयालोय वियाणउं।
पुप्फयंतु णउ माणुसु वुच्चइ, जो सरसइए कया विण मुच्चइ।
ते एवंविह हउ जउ माणउ, तह छंदालंकार विहोणउ।
कव्वु करंतुके मण विलज्जमि, तह विसेस णिय जण कि हरंजमि।

---

1. धम्मपरिक्खा ११-२६।

तो वि जिणिंद धम्म अणुरायइ, वुह सिरि सिद्धसेण सुपसाइं।
करमि सयं जिह णलिणि दलथिउ जलु, अणहरेइ णित्रुलु मुत्ताहलु।
घत्ता—जा जयरामें आसि विरइय णह पबंधि।
सा हम्मि धम्मपरिक्ख सा पद्धडिय बंधि।

हरिषेणके व्यक्तित्वमें नम्रता, गुणग्राहकता, धर्मके प्रति श्रद्धा एवं आत्म-सम्मानकी भावना समाविष्ट है। उनके काव्य-वर्णनसे ऐसा ध्वनित होता है कि वे पुराणशास्त्रके ज्ञाता थे और उनका अध्ययन सभी प्रकारके शास्त्रोंका था।

स्थितिकाल

कवि हरिषेणने 'धम्मपरिक्खा' के अन्तमें इस ग्रन्थका रचनाकाल अंकित किया है। लिखा है—

विक्कम-णिव-परिवत्तिय कालए, ववगए वरिस-सहसेहि चउतालए।
इय उप्पणु भविय-जण-सुहयरु, उभ-रहिय-धम्मासव-सरयरु। ११।२७

अर्थात् वि० सं० १०४४ में इस ग्रन्थकी रचना हुई है। अतः कविका समय वि० सं० की ११वीं शती है।

कविने अपनेसे पूर्व जयरामकी गाथा-छन्दोंमें विरचित प्राकृत-भाषाकी धर्म-परीक्षाका अवलोकन कर इसके आधार पर ही अपनी यह कृति अपभ्रंशमें लिखी है।

रचना

कवि हरिषेणकी एक ही रचना धर्म-परीक्षा नामकी उपलब्ध है। डा० ए० एन उपाध्ये ने दश-धर्म परोक्षाओंका निर्देश किया है। अमितगतिकी धर्म-परीक्षा वि० सं० १०७०में लिखी गई है। अर्थात् हरिषेणकी धर्म-परीक्षा अमितगतिसे २६ वर्ष पूर्व लिखी गई है। दोनोंमें पर्याप्त समानता है। अनेक कथाएँ पद्य एवं वाक्य दोनोंमें समान रूपसे मिलते हैं; पर जब तक हरिषेण द्वारा निर्दिष्ट जयरामकी धर्म-परीक्षा प्राप्त न हो तब तक इस परिणाम पर नहीं पहुँच सकते कि किसने किसको प्रभावित किया है? संभवतः दोनोंका स्रोत जयरामकी धर्म-परीक्षा ही हो।[1]

धर्म-परोक्षामें कविने ब्राह्मण-धर्म पर व्यंग्य किया है। उसके अनेक पौराणिक आख्यानों और घटनाओंको असंगत बतलाते हुए जैनधर्मके प्रति

१. डॉ० ए० एन० उपाध्ये, हरिषेणकी धम्मपरिक्खा ऐनल्स ऑफ भण्डारकर ओरि-यण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग २३ पृ० ५९२–६०८।

आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया। ग्रंथको विषय-वस्तु निम्न प्रकार है—

मंगलाचरणके पश्चात् प्राचीन कवियोंका उल्लेख करते हुए आत्म-विनय प्रदर्शित की है। तदनन्तर जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मध्य-प्रदेश वैताढ्य पर्वत और वैजयन्ती नगरीका चित्रण किया है। वैजयन्ती नगरीके राजाकी रानीका नाम वायुवेगा था। उनके मनवेग नामक एक अत्यन्त धार्मिक पुत्र हुआ। उसका मित्र पवनवेग भी धर्मात्मा और ब्राह्मणानुमोदित पौराणिक धममें आस्था रखने वाला था। पवनवेगके साथ मनवेग विद्वानोंकी सभामें कुसुमपुर गया।

तीसरी सन्धिमें अंगदेशके राजा शेखरका कथानक देकर कवि अनेक पौराणिक उपाख्यानोंका वर्णन करता है। चौथी सन्धिमें अवतारवाद पर व्यंग्य किया है। विष्णु दश जन्म लेते हैं और फिर भी कहा जाता है कि वे अजन्मा हैं; यह कैसे संभव है? स्थान-स्थानपर कविने 'तथा चोक्तं तैरेव' इत्यादि शब्दों द्वारा संस्कृतके अनेक पद्य भी उद्धृत किये हैं। इसी प्रसंगमें शिवके जाह्नवी और पार्वती प्रेम एवं गोपी-कृष्ण लीलापर भी व्यंग्य किया है।

पाँचवीं संधि में ब्राह्मण-धर्म की अनेक अविश्वसनीय और असत्य बातों की ओर निर्देश कर मनोवेग ब्राह्मणों को निरुत्तर करता है। इसी प्रसंगमें वह सीताहरण आदिके सम्बन्धमें भी प्रश्न करता है।

सातवीं सन्धिमें गान्धारीके १०० पुत्रोंकी उत्पत्ति और पाराशरका धीवरकन्यासे विवाह वर्णित है। आठवीं सन्धिमें कुन्तीसे कर्णकी उत्पत्ति और रामायणकी कथापर व्यंग्य किया है।

नवीं संधिमें मनवेग अपने मित्र पवनवेगके सामने ब्राह्मणोंसे कहता है कि एकबार मेरे सिरने धड़से अलग होकर वृक्षपर चढ़कर फल खाये। अपनी बातकी पुष्टिके लिए वह रावण और जरासन्धका उदाहरण देता है। इसी प्रसंगमें मनवेग श्राद्ध पर भी व्यंग्य करता है।

दशवीं सन्धिमें गोमेध, अश्वमेधादि यज्ञों और नियोगादिपर व्यंग किया है। इस प्रकार मनवेग अनेक पौराणिक कथाओंका निर्देशकर और उन्हें मिथ्या प्रतिपादित कर राज्यसभाको परास्त करता है। पवनवेग भी मनवेगकी युक्तियोंसे प्रभावित होता है और वह जैनधर्ममें दीक्षित हो जाता है। जैनधर्मानुकूल उपदेशों और आचरणोंके निर्देशके साथ ग्रंथ समाप्त होता है।

कविने इस ग्रन्थमें कवित्वशक्तिकाभी पूरा परिचय दिया है। प्रथम संधिके चतुर्थ कड़वकमे वैजयन्ती नगरीको सुन्दर नारीके समान मनोहारिणी बताया

है। कविने विभिन्न उपमानोंका प्रयोग करते हुए इस नगरीको सुराधिपकी नगरीसे भी श्रेष्ठ बताया है। वायुवेगारानीके चित्रणमें कविने परम्परागत उपमानोंका उपयोगकर उसके नखशिखका सौन्दर्य अभिव्यक्त किया है।

११ वीं सन्धिके प्रथम कडवकमें मेवाड़ देशका रमणीय चित्रण किया है। यहाँके उद्यान, सरोवर, भवन आदि सभी दृष्टियोंसे सुन्दर एवं मनमोहक हैं।

इस ग्रंथमें पद्धड़िया छन्दकी बहुलता है। इसके अतिरिक्त मदनावतार १।१४, विलासिनी १।१५, स्रग्विणी १।१७, पादाकुलक १।१९, भुजंगप्रयात २।६, प्रमाणिका ३।२, रणक या रजक ३।११, मत्ता ३।२१, विद्युन्माला ९।९, दोधक १०।३ आदि छन्दोंका प्रयोग किया है। छन्दोंमें वर्णवृत्त और मात्रिक वृत्त दोनों मिलते हैं।

संक्षेपमें कविने सरल और सरस भाषामें भावोंकी अभिव्यञ्जना की है।

वीर कवि

महाकवि वीरने 'जंबुसामिचरिउ'[1]में अपना परिचय दिया है। उनका जन्म मालवा देशके गुलखेड नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिता 'लाडबागड' गोत्रके महाकवि देवदत्त थे। देवदत्तने १. वरांगचरित २. शान्तिनाथराय ३. सद्धयवीर-कथा और ४. अम्बादेवीरासकी रचना की थी। महाकवि वीरने अपने पिताको स्वयं तथा पुष्पदन्तके पश्चात् तीसरा स्थान दिया है। कविने लिखा है कि स्वयंभूके होने से अपभ्रंशका प्रथम कवि, पुष्पदन्तके होनेसे अपभ्रंशका द्वितीय कवि और देवदत्तके होनेसे अपभ्रंशके तृतीय कविकी ख्याति हुई है। वीर कविने अपने समय तक तीन ही कवि अपभ्रंशके माने हैं। स्वयंभु, पुष्पदन्त और देवदत्त। इससे यह ध्वनित होता है कि कवि वीरके पिता देवदत्त भी अपभ्रंशके ख्यातिनामा कवि थे।

कविकी माँका नाम श्री सनुबा था और इनके सीहल्ल, लक्षणांक तथा जसई ये तीन भाई थे। कविकी चार पत्नियाँ थीं—१. जिनमति २. पद्मावती ३. लीलावती ४. जयादेवी। इनकी प्रथम पत्निसे नेमिचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वीर संस्कृत काव्य रचनामें भी निपुण थे; किन्तु पिताके मित्रोंकी प्रेरणा और आग्रहसे संस्कृत-काव्यरचनाको छोड़कर अपभ्रंशप्रबन्धशैलीमें जंबुसामिचरिउ की रचना की है।

कविका लाडवागड वंश इतिहास प्रसिद्ध बहुत पुराना है। इस वंशका प्रारंभ, पुन्नाट संघसे हुआ है। इस संघके आचार्य पुन्नाट-कर्नाटक प्रदेशमें विहार-

१. जंबुसामिचरिउ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन सन् १९६८; १।४-५।

करते थे। इसलिए इसका नाम पुन्नाट पड़ा। तदनन्तर इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाडबागड़-गुजरात और सागवाड़ाके आसपासका प्रदेश हुआ। इसीलिए इसका नाम लाडवागडगच्छ पड़ा। पुन्नाट संघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन प्रथम हैं जिन्होंने शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४०) में वर्धमानपुरके पार्श्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शान्तिनाथ जिनालयमें रहकर हरिवंशपुराणकी रचना की है।

धर्मरत्नाकर नामक ग्रंथके रचयिता आचार्य जयसेन लाडबागड संघके प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने वि० सं० १०५५ में कर्नाटक-कराड (बम्बई) में निवास कर उक्त ग्रंथकी रचनाको पूर्ण किया था। इसी गणमें प्रद्युम्नचरित रचयिता महासेन, हरिषेण, विजयकीर्त्ति आदि अनेक आचार्य हुए हैं।

व्यक्तित्व

महाकवि वीर काव्य, व्याकरण, तर्क, कोष, छन्दशास्त्र, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग आदि विषयोंके ज्ञाता थे। 'जंबुसामिचरिउ' में' समाविष्ट पौराणिक घटनाओंके अध्ययनसे अवगत होता है कि महाकवि वीरके वल जैन पौराणिक परम्पराके हो ज्ञाता नहीं थे अपितु बाल्मीकिरामायण, महाभारत, शिवपुराण, विष्णुपुराण, भरतनाट्यशास्त्र, सेतुबन्धकाव्य आदि ग्रंथोंके भी पंडित थे। इनके व्यक्तित्वमें नम्रता और राजनीति-दक्षताका विशेष रूपसे समावेश हुआ है। कविको अपने पूर्वजोंपर गर्व है। वह महाकाव्य रचयिताके रूपमें अपने पिताका आदरपूर्वक उल्लेख करता है।

संस्कृत भाषाका प्रौढ़ कवि और काव्य अध्येता होनेके कारण वीर कविकी रचनामें पर्याप्त प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है। वीरके 'जंबुसामिचरिउ' से यह भी स्पष्ट है कि वह धर्मका परम श्रद्धालु, भक्तव्रती और कर्मसंस्कारोंपर आस्था रखनेवाला था। उसकी प्रकृति अत्यन्त उदार और मिलनसार थी। यही कारण है कि उसने मित्रों की प्रेरणाको स्वीकारकर अपभ्रंशमें काव्यकी रचना की।

वीर कविको समाजके विभिन्न वर्गों एवं जीवन यापनके विविध साधनोंका साक्षात् अनुभव था। वह श्रद्धावान् सद्गृहस्थ था। उसने मेघवनपत्तनमें तीर्थंकर महावीरकी प्रतिमा स्थापित करवाई थी।

कविके व्यक्तित्वको हम उनके निम्नकथनसे परख सकते हैं—

देंत दरिद्दं परवसणदुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं।
कइवीरसरिसपुरिसं धरणिधरंती कयत्थासि।

हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीताण सीसे।
सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे सच्चापवित्ती ॥

दरिद्रोंको दान, दूसरेके दुःखमें दुखी, सरसकाव्यको ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोंको धारण करनेसे ही पृथ्वी कृतार्थ होती है। हाथमें धनुष, साधुचरित, महापुरुषोंके चरणोंमें प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छप्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण एवं भुजलताओंमें विक्रम, वीर पुरुषका सहज परिकर होता है।

इस कथनसे स्पष्ट है कि कविके व्यक्तित्वमें उदारता थी, वह दरिद्रोंको दान देता था और दूसरोंके दुःखमें पूर्ण सहानुभूतिका व्यवहार करता था। कवि वीरताको भी जीवनके लिए आवश्यक मानता है। यही कारण है कि उसने युद्धोंका ऐसा सजीव चित्रण किया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह युद्धभूमिमें सम्मिलित हुआ होगा।

कवियोंके चरणोंमें नतमस्तक होना भी उसका कवित्वके प्रति सद्भाव व्यक्त करता है। सत्यवचन, पवित्र हृदय, अनवरत स्वाध्याय, भुजपराक्रम और दयाभाव उसके व्यक्तित्वके प्रमुख गुण हैं।

स्थितिकाल

'जंबुसामिचरिउ'की प्रशस्तिमें कविने इस ग्रन्थका रचनाकाल वि० सं० १०७६ माघ शुक्ला दशमी बताया है। लिखा है—

"विक्कमनिवकालाओ छाहत्तरदससएसु वरिसाणं।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसम्मि दिवसम्मि संतम्मि ॥ २ ॥"

प्रस्तुत काव्यके अन्तःसाक्ष्य तथा अन्य बाह्यसाक्ष्योंसे भी प्रशस्तिमें उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। कवि वीरने महाकवि स्वयंभू, पुष्पदन्त एवं अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदन्तके उल्लेखसे ऐसा ज्ञात होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवनका उत्तरार्द्धकाल यापन कर रहा था और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्युके पाँच ही वर्ष हुए थे उस समय धारा नरेश परमारवंशीय राजा सीयक या श्री हर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी और अनुज खोट्टिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था एवं मान्यखेटपुरीको बुरी तरह लूटा तथा ध्वस्त किया था (वि० सं० १०२९)। इस समय पुष्पदन्तके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी और अभिमानमेरु महाकवि पुष्पदन्तकी ख्याति मालवा प्रान्तमें भी हो चुकी थी। इसी समय वीर कविने अपने बाल्यकालमें ही सरस्वतीके इस वरद् पुत्रकी ख्याति सुनी होगी

और इसकी रचनाओंका अध्ययन किया होगा। यतः जंबुसामिचरिउपर पुष्पदन्तकी रचनाओंका गम्भीर और व्यापक प्रभाव दिखलायी पड़ता है। अतः कविके समयकी पूर्व सीमा वि० सं० १०२५ के लगभग आती है।

इतना ही नहीं जंबुसामिचरिउपर नयनन्दिके सुदंसणचरिउ (वि० सं० ११००) का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। एक बात और विचारणीय यह है कि जंबुसामिचरिउकी पंचम, षष्ठ और सप्तम सन्धियोंमें हंसद्वीपके राजा रत्नशेखर द्वारा केरलके घेर लिये जाने और मगधराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर संकेत किया है उसमें कविने स्वयं भी एक पक्षकी ओरसे भाग लिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यह घटना परिवर्तितरूपमें मुंजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशोंपर वि० सं० १०३०-१०५० के बीच आक्रमण करके उन्हें विजित करनेकी मालूम पड़ती है।

वीर कविके पश्चात् ब्रह्मजिनदासका संस्कृत 'जम्बुस्वामिचरित' मिलता है जिसे उन्होंने वि० सं० १५२० में पूर्ण किया। यह रचना अपभ्रंश काव्यका संस्कृत रूपान्तर है। महाकवि 'रइधू'ने भी 'जंबुसामिचरिउ'का निर्देश किया है। हरिषेणको 'धम्मपरिक्खा' वि० सं० १०४४ में लिखी गई है। अतः हरिषेण और पुष्पदन्त इन दोनोंके साथ कविका सम्बन्ध रहा प्रतीत होता है। जैन ग्रन्थावलीमें 'जंबुचरिउ'का उल्लेख आया है। इस ग्रन्थकी रचना भी अपभ्रंशमें वि० सं० १०७६ में हुई है। जंबुचरिउके रचयिता सागरदत्त हैं, जो 'जंबुसामिचरिउ'के समान ही विषयवस्तुका वर्णन करते हैं। अतएव प्रशस्तिमें निर्दिष्ट जंबुसामिचरिउका रचनाकाल यथार्थ है।

रचना

महाकवि वीरकी एक ही रचना जंबुसामिचरिउ उपलब्ध है। यह अपभ्रंशका महाकाव्य है और यह रचना ११ सन्धियोंमें पूर्ण हुई है।

मंगलाचरणके अनन्तर कवि सज्जन-दुर्जन स्मरण करता है। पूर्ववर्ती कवियोंके स्मरणके अनन्तर कवि अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित करता है। मगधदेश और राजगृहका सुन्दर काव्यशैलीमें वर्णन किया गया है। तीर्थंकर महावीरका विपुलाचलपर समवशरण पहुँचता है। और श्रेणिक प्रश्न करते हैं और गौतम गणधर उन प्रश्नोंका उत्तर देते हैं।

मगध-मण्डलमें वर्धमान नामक ग्राममें सोमशर्मनामक गुणवान ब्राह्मण रहता था और जिसकी पत्नी सोमशर्मा नामक थी। उनके भवदत्त और भवदेव नामक दो पुत्र थे। जब वे क्रमशः १८ और १२ वर्षके थे तब उनके पिताका

स्वर्गवास हो गया और उनकी माता भी सती हो गई। माता-पिताके स्वर्गवास-के अनन्तर भाई भवदत्त न्यायपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। कुछ समय पश्चात् सुधर्म मुनिका उपदेश सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह संघमें दीक्षित हो गया। बारह वर्ष पश्चात् मुनि संघ विहार करता हुआ पुनः उसी गाँवमें आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आया। बड़े भाईका आगमन सुनकर वह बाहर आया उस समय भवदेवके विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं। अतएव वह नववधूको अर्द्ध-मंडित हीं छोड़कर भवदत्तके पास आया। भवदेवके आग्रहसे वहीं आहार लेकर जहाँ संघ ठहरा हुआ था वहाँ भवदत्त मुनि लौट आया। भवदेव भी भाईके साथ श्रद्धा और संकोचवश मुनि संघमें चला आया। यहाँ मुनिजनोंकी प्रेरणा तथा भाईकी अन्तरंग इच्छाके सम्मानार्थ बेमनसे भवदेवने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। तदनन्तर संघ वहाँसे विहार कर गया। भवदेव दिनरात नागवसुके ध्यानमें लीन रहता हुआ घर लौटकर पुनः उसके साथ काम भोग भोगनेके अवसरकी प्रतीक्षामें समय व्यतीत करने लगा। १२ वर्ष पश्चात् मुनि संघ पुनः उसी वधमान गाँवके निकट आकर ठहरा। भवदेव इससे बहुत उल्लसित हुआ और बहाना करके अपने घरकी ओर चल पड़ा।

गाँवके बाहर ही एक जिन चैत्यालयमें उसकी नागवसुसे भेंट हो गई। व्रतोंके पालनेसे अति कृशगात्र अस्थिपंजर मात्र शेष रहनेसे भवदेव उसे पह-चान नहीं सका। अपने कुल और पत्नीके सम्बन्धमें पूछने पर नागवसुने उसे पहचान लिया। नागवसुने उसे अपना परिचय दिया और तपः शुष्क शरीर दिखलाकर नाना प्रकारसे धर्मोपदेश दे भवदेवको प्रतिबुद्ध किया। इस प्रकार बोध प्राप्त कर भवदेवने आचार्यके पास जाकर प्रायश्चित्त लिया और पुनः दीक्षा ग्रहण कर कठोर तपश्चरण किया। और मृत्युके अनन्तर तृतीय स्वर्ग प्राप्त किया।

स्वर्गसे च्युत हो भवदत्त पूर्व विदेहमें राजा वज्रदन्त और उसकी रानी यशोधनाके गर्भसे सागरचन्द्र नामक पुत्र हुआ। और भवदेवका जीव वहाँके राजा महापद्म और वनमाला नामक पटरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। कालान्तरमें सागरचन्द्र दीक्षित हो गया। उसने भवदेवके जीव युवराज शिव-कुमारको प्रतिबोधित करनेका प्रयास किया; पर माता-पिताकी अनुज्ञा न मिलनेसे वह घरमें ही धर्म-साधन करने लगा। इस तपके प्रभावसे भवदेवने

पुनः स्वर्गमें जन्म ग्रहण किया और भवदत्तके जीव सागरचन्द्रने आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गमें जन्म प्राप्त किया।

चौथी सन्धिसे जम्बूस्वामीकी कथा आरंभ होती है। इनके पिताका नाम अर्हद्दास था। सन्धिमें जन्म, वसन्तोत्सव, जलक्रीड़ा आदिका वर्णन आया है। अनन्तर उनके द्वारा मत्त गजको परास्त करनेका कथन आया है।

पाँचवीसे सातवीं सन्धितक जम्बूस्वामीके अनेक वीरतापूर्ण कार्योंका वर्णन किया है। महर्षि सुधर्मास्वामी अपने पांच शिष्योंके साथ उपवनमें आते हैं। जम्बूस्वामी उनके दर्शन कर नमस्कार करते हैं। वे अपने पूर्वभवोंका वृत्तान्त जान कर विरक्त हो घर छोड़ना चाहते हैं। माता समझाती है। सागरदत्त श्रेष्ठिका भेजा हुआ मनुष्य आकर जम्बूका विवाह निश्चित करता है। श्रेष्ठियोंकी कमलश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री नामक चार कन्याओंसे जम्बूका विवाह होता है।

जम्बूके हृदयमें पुनः वैराग्य जाग्रत होता है। उनकी पत्नियाँ वैराग्य-विरोधी-कथाएँ कहती हैं। जम्बू महिलाओंकी निन्दा करता हुआ वैराग्य निरूपक कथानक कहता है। इस प्रकार अर्द्धरात्रि व्यतीत हो जाती है। इतनेमें ही विद्युच्चर चोर, चोरी करता हुआ वहाँ आता है। जम्बूस्वामीकी माता भी जागती थीं। उसने कहा—'चोर, जो चाहता है, ले ले'। चोरको जम्बूकी मातासे जम्बूके वैराग्य-भावकी सूचना मिलती है। विद्युच्चरने प्रतिज्ञा की कि वह या तो जम्बूको रागी बना देगा, अन्यथा स्वयं वह वैरागी बन जायगा। जम्बूकी माता उस चोरको उस समय अपना छोटा भाई कहकर जम्बूके पास ले जाती जाती है, ताकि विद्युच्चर अपने कार्यमें सफल हो।

दशवीं सन्धिमें जम्बू और विद्युच्चर एक दूसरेको प्रभावित करनेके लिए अनेक आख्यान सुनाते हैं। जम्बू वैराग्यप्रधान एवं विषय-भोगकी निस्सारता-प्रतिपादक आख्यान कहते हैं और विद्युच्चर इसके विपरीत वैराग्यकी निस्सा-रता दिखलानेवाले विषयभोग-प्रतिपादक आख्यान। जम्बूस्वामीकी अन्तमें विजय होती है। वे सुधर्मास्वामीसे दीक्षा लेते हैं और उनकी सभी पत्नियाँ भी आर्यिका हो जाती हैं। जम्बूस्वामी केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तमें निर्वाण-पद लाभ करते हैं।

विद्युच्चर भी दशविध धर्मका पालन करता हुआ तपस्या द्वारा सर्वार्थसिद्धि लाभ करता है। जम्बूचरिउके पढ़नेसे मंगल-लाभका संकेत करते हुए कृति समाप्त होती है।

इस ग्रन्थमें जम्बूस्वामीके पूर्वजन्मोंका भी वर्णन आया है। पूर्वजन्मोंमें वह शिवकुमार और भवदेव था और उसका बड़ा भाई सागरचन्द और भवदत्त। भवदेवके जीवनमें स्वाभाविकता है। भवदत्तके कारण ही भवदेवके जीवनमें उतार-चढ़ाव और अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित होते हैं। जम्बूस्वामीकी पत्नियोंके पूर्व जन्म-प्रसंग कथा-प्रवाहमें योग नहीं देते। अतः वे अनावश्यक जैसे प्रतीत होते हैं।

जम्बूस्वामीके चरित्रको कवि जिस दिशाकी ओर मोड़ना चाहता है उसी ओर वह मुड़ता गया। कविने नायकके जीवनमें किसी भी प्रकारकी अस्वाभाविकता चित्रित नहीं की है। राग और वैराग्यके मध्य जम्बूस्वामीका जीवन विकसित होता है।

'जम्बूसामिचरिउ'में शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण घटित होते हैं। सुगठित इतिवृत्तके साथ देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन, उद्यान, सरिता, ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदिका सुन्दर चित्रण आया है। रसभाव-योजनाकी दृष्टिसे यह एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य है। इस महाकाव्यका आरंभ अश्वघोष कृत 'सौन्दरनन्द' महाकाव्यके समान बड़े भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अनिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रियावियोगजन्य विप्रलम्भ शृंगारसे होता है। भवदेवके प्रेमकी प्रकर्षता और महत्ता इसमें है कि वह जैनसंघके कठोर अनुशासनमें दिगम्बर मुनिके वेशमें बड़े भाईकी देखरेखमें रहते हुए भी तथा जैन मुनिके अतिकठोर आचारका पालन करते हुए भी १२ वर्षोंका दीर्घ काल अपनी पत्नी नागवसुके रूप-चिन्तनमें व्यतीत कर देता है। और अपनी प्रियाका निशिदिन ध्यान करता रहता है। १२ वर्ष पश्चात् वह अपने गाँव लौटता है और प्रिया द्वारा ही उद्‌बोधन प्राप्त करता है। इस प्रकार काव्यकी कथावस्तु विप्रलंभ शृंगारसे आरंभ होकर शान्त रसमें समाविष्ट होती है। वीर (४।२१), रौद्र (५।३,५।१३), भयानक (१०।९), वीभत्स (१०।२६), करुण (२।५, ११।१७), अद्‌भुत (२।३, ५।२) एवं वात्सल्य (७।१३, ६।७) में रसका परिणाम आया है।

अलंकारोंमें उपमा १।६, मालोपमा ५।८, मालोत्प्रेक्षा ८।१०, फलोत्प्रेक्षा ४।१४, रूपकमाला ३।७, निदर्शना १।३, दृष्टान्त १।२, वक्रोक्ति ४।१८, विभावना ४।८, विरोधाभास ९।१२, व्यतिरेक ४।१७, सन्देह ४।१९, भ्रान्तिमान् ५।२, और अतिशयोक्ति १।१७ अलंकार पाये जाते हैं।

छन्दोंमें करिमकरभुजा (७।१०), दीपक (४।२२), पारणक (१।२), पद्धड़िया (१।८), अलिल्लह (१।६), सिंहावलोक (६।६), त्रोटनक (४।७), पादाकुलक (११।१), उर्वशी (३।४), सारीय (५।१४), स्रग्विणी (१।९, ४।१६), मदनावतार (६।१०), त्रिपदी शंखनारी (४।५), सामानिका (९।१७), भुजंगप्रयात (४।२१), दिनमणि (७।५), गाथा (९।१), उद्गाथा (७।१), दोहा (४।१४), रत्नमालिका (२।१५) मणिशेखर (५।८) मालागाहो (७।४), दण्डक (४।८) का प्रयोग कविने किया है। इस प्रकार महाकाव्यके सभी तत्त्व जंबुसामिचरिउमें पाये जाते हैं।

श्रीचन्द

श्रीचन्दका नाम 'दंसणकहरयणकरंडु'में पंडित श्रीचन्द्र भी आया है। कविने अपना परिचय 'दंसणकहरयणकरंडु'के अन्तकी प्रशस्तिमें अंकित किया है। कविने लिखा है—

देसीगणपहाणु गुणगणहरु, अवइण्णउं णावइ सइं गणहरु।

× × × ×

भव्वमणो-णलिणाण-दिणेसरु, सिरिकित्ति त्ति सुवित्ति मुणीसरु॥
तासु सीसु पंडियचूडामणि, सिरिगंगेयपमुह पउरावणि।

× × × ×

धम्मुव रिसिरूवें जसरूवउ, सिरिसुयकित्तिणामु संभूयउ।

× × × ×

सिरि चंदुज्जलजसु संजायउ, णामे सहसकित्ति विक्खायउ।

× × × ×

सिरिचंदु णामु सोहण मुणीसु, संजायउ पंडिउ पढम सीसु।
तेणेउ अणेयच्छरियधामु, दंसणकहरयणकरंडुणामु।

× × × ×

कण्णणरिंदहो रज्जेसहो सिरिसिरिमालपुरम्मि।
बुहसिरिचंदें एउ कउ णंदउ कव्वु जयम्मि॥

इस प्रशस्तिसे तथा कथाकोशकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि श्रीचन्द्रके पूर्व तीन विशेषण प्राप्त होते हैं—कवि, मुनि और पंडित। श्रीचन्द मुनि थे और ग्रन्थ-रचना करनेसे वे कवि और पंडितकी उपाधिसे अलंकृत थे। श्रीचन्द-ने प्रशस्तियोंमें अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार अंकित की है—

देशीगण, कुन्दकुन्दान्वय
|
श्रीकीर्ति
|
श्रुतकीर्ति
|
सहस्रकीर्ति
|
वीरचन्द्र
|
श्रीचन्द्र

सहस्रकीर्तिके पाँच शिष्य थे—देवचन्द्र, वासवमुनि, उदयकीर्ति, शुभचन्द्र और वीरचन्द्र। इन पाँचों शिष्योंमेंसे वीरचन्द्र अन्तिम शिष्य थे। इन्हीं वीरचन्द्रके शिष्य श्रीचन्द्र हैं।

श्रीचन्द्रने कथाकोशकी रचनाके प्रेरकोंका वंशपरिचय विस्तारपूर्वक दिया है। बताया है कि सौराष्ट्र देशके अणहिल्लपुर (पाटण) नामक नगरमें प्राग्वाट-वंशीय सज्जन नामके एक व्यक्ति हुए, जो मूलराल नरेशके धर्मस्थानके गोष्ठी-कार अर्थात् धार्मिक कथावार्त्ता सुनानेवाले थे। इनके पुत्र कृष्ण हुए, जिनकी भगिनीका नाम जयन्ती और पत्नीका नाम राणू था। उनके तीन पुत्र हुए—बीजा, साहनपाल और साढदेव तथा चार कन्याएँ—श्री, शृंगारदेवी, सुन्दू और सोखू। इनमें सुन्दू या सुन्दुका विशेषरूपसे जैनधर्मके उद्धार और प्रचारमें रुचि रखती थी। कृष्णकी इस सन्तानने अपने कर्मक्षयसे हेतु कथाकोशकी व्याख्या कराई। आगे इसी प्रशस्तिमें बताया गया है कि कर्त्ताने भव्योंकी प्रार्थनासे पूर्व आचार्यकी कृतिको अवगत कर इस सुन्दर कथाकोशकी रचना की।

इस कथनसे यह अनुमान होता है कि इस विषयपर पूर्वाचार्यकी कोई रचना श्रीचन्द्रमुनिके सम्मुख थी। प्रथम उन्होंने उसी रचनाका व्याख्यान श्रावकोंको सुनाया होगा, जो उन्हें बहुत रोचक प्रतीत हुआ। इसीसे उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि आप स्वतन्त्ररूपसे कथाकोशकी रचना कीजिये। फल-स्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन किया गया है। प्रशस्तिमें ग्रंथकारके व्याख्यातृत्व और कवित्व आदि गुणोंका विशेषरूपसे निर्देश किया गया है। अतएव यह स्पष्ट है कि सौराष्ट्र देशके अणहिल्लपुरमें कृष्ण श्रावक और उनके परिवारकी प्रेरणासे कथाकोश ग्रन्थकी रचना हुई है।

'दंसणकहरयणकरंडु' ग्रंथकी सन्धियोंके पुष्पिकावाक्योंमें 'पं० श्रीचन्द्र कृत' निर्देश मिलता है। यह निर्देश सोलहवीं सन्धि तक ही पाया जाता है।

१७वीं से २१वीं सन्धि तककी पुष्पिकाओंमें 'इय सिरिचन्दमुणीन्दकए'—(इति श्रीचन्द्रमुनिकृत) उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'दंसणकहरयणकरंडु' की १६वीं सन्धिकी रचना तक श्रीचन्द्र श्रावक थे, पर इसके पश्चात् उन्होंने मुनि-दीक्षा ग्रहण की होगी। अतएव उन्होंने 'दंसणकहरयणकरंडु' की अवशिष्ट सन्धियाँ और कथाकोशकी रचना मुनि अवस्थामें की है।

श्रीचन्द्रका व्यक्तित्व श्रावक और श्रमण दोनोंका समन्वित रूप है। कवित्वके साथ उनकी व्याख्यानशैली भी मनोहर थी। श्रीचन्द्र राजाश्रयमें भी थे। श्रीमालपुर और अणहिल्लपुरके साथ उनका निकटका सम्बन्ध था। रचनासे यह भी ज्ञात होता है कि श्रीचन्द्र मनुष्यजन्मको दुर्लभ समझ दिगम्बर दीक्षामें प्रवृत्त हुए थे। मनुष्यजन्मकी दुर्लभताके लिए उन्होंने पाशक, धान्य द्यूत, रत्नकथा, स्वप्न, चन्द्रकवेध, कूर्मकथा, युग्म और परमाणुकी दृष्टान्त-कथाएँ उपस्थित की हैं, जिससे उनका अध्यात्मप्रेमप्रकट होता है। कविके आख्यानकी इस शैलीसे यह भी ध्वनित होता है कि वे संसारमें धर्म पुरुषार्थको महत्त्व देते थे।

स्थितिकाल

कवि श्रीचन्द्रने 'दंसणकहरयणकरंडु'की प्रशस्तिमें उसके रचनाकालका निर्देश किया है। बताया है—

एयारह-तेवीसा वाससया विक्कमस्स णरवइणो।
जइया गया हु तइया समाणियं सुंदरं कव्वं ॥१॥
कण्ण-णरिंदहो रज्जेसहो सिरिसिरिमालपुरम्मि।
बुह-सिरिचंदें एउ किउ णंदउ कव्वु जयम्मि ॥२॥

अर्थात् वि० सं० ११२३ व्यतीत होनेपर कर्णनरेन्द्रके राज्यमें श्रीमालपुरमें विद्वान् श्रीचन्द्रने इस 'दंसणकहरयणकरंडु' काव्यकी रचना की। यह कर्ण सोलंकीनरेश भीमदेव प्रथमके उत्तराधिकारी थे और इन्होंने सन् १०१४से ई० सन् १०९४ तक राज्य किया है। अतएव कविने ई० सन् १०६६में उक्त ग्रंथकी रचना की है, जो कर्णके राज्यकालमें सम्पन्न हुई है।

श्रीमाल अपरनाम भीनमाल दक्षिण मारवाड़की राजधानी थी। सोलंकी-नरेश भीमदेवने सन् १०६० ई० में वहाँके परमारवंशी राजा कृष्णराजको पराजितकर बंदीगृहमें डाल दिया और भीनमालपर अधिकार कर लिया। उनका यह अधिकार उनके उत्तराधिकारी कर्णतक स्थिर रहा प्रतीत होता है।

'दंसणकहरयणकरंडु'की १६वीं सन्धि तक 'पंडित' विशेषण उपलब्ध होता है और इसके पश्चात् 'मुनि' विशेषण प्राप्त होने लगता है। कथाकोशकी रचना 'दर्शनकथारत्नकरण्ड'के पश्चात् हुई होगी। श्री डॉ० हीरालालजीने इस ग्रंथका रचनाकाल ई० सन् १०७०के लगभग माना है।[1]

कथाकोषकी प्रशस्तिसे यह स्पष्ट है कि महाश्रावक कृष्णके परिवारकी प्रेरणासे यह ग्रंथ लिखा है। इनके पिता सज्जन मूलराजनरेशके धर्मस्थानके गोष्ठीकार थे। ये मूलराज वही हैं, जिन्होंने गुजरातमें वनराज द्वारा स्थापित चावड़ावंशको च्युतकर ई० सन् ९४१में सोलंकी (चालुक्य) वंशकी स्थापना की थी। प्रशस्तिमें यह भी बताया गया है कि ग्रन्थकारके परदादागुरु श्रुतकीर्त्तिके चरणोंकी पूजा गांगेय, भोजदेव आदि बड़े-बड़े राजाओंने की थी। डॉ० हीरालालजीका अनुमान है कि गांगेय निश्चयतः डाहल (जबलपुरके आस-पासका प्रदेश) के वे ही कलचुरी नरेश गांगेयदेव होना चाहिए, जो कोक्कलके पश्चात् सन् १०१९के लगभग सिंहासनारूढ़ होकर सन् १०३८ तक राज्य करते रहे। भोजदेव धाराके वे ही परमारवंशी राजा हैं, जिन्होंने ई० सन् १००० से १०५५ तक मालवापर राज्य किया तथा जिनका गुजरातके सोलंकी राजाओंसे अनेकबार संघर्ष हुआ। अतएव श्रीचन्द्रका समय ई० सनकी ११वीं शती होना चाहिए।

रचनाएँ

श्रीचन्द्र मुनिकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—'दंसणकहरयणकरंडु' और 'कहाकोसु'।

दंसणरकहरयणकरंडु

प्रथम ग्रन्थमें २१ सन्धियाँ हैं। प्रथम सन्धिमें देव, गुरु और धर्म तथा गुण-दोषोंका वर्णन है। इसमें ३९ कड़वक हैं। उत्तमक्षमादि दश धर्म, २२ परीषह, पंचाचार, १२ तप आदिका कथन किया है। पंचास्तिकाय और षड्द्रव्यका वर्णन भी इसी सन्धिमें आया है। समस्त कर्मोंके भेद-प्रभेदका कथन भी प्राप्त होता है। कविने नामकर्मकी ४२ प्रकृतियोंका निर्देश करते हुए लिखा है—

णारय-तिरिय-णराण, तह देवाउ चउत्थउ।
णामहो णामहं भेउ, सुणु एवहिं बायालीसउ ॥३६॥
गइ जाइ णामु तणु अंगु-बंगु, णिम्माणय बंधण पाम अंगु।
संघायणामु संठाणणामु, संहणणणामु भासइ अकामु ॥
रस फास गंधु अणुपुब्विणामु, वण्णागुरुलहु उवघायणामु।
परघायातप उज्जोवणामु, उस्सास विहायगई सणामु ॥

---

१. 'कहाकोसु' प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद, अहमदाबाद, सन् १९६९, प्रस्तावना, पृ० ५।

साहारण पत्तेयंगणामु, तस थावर सुहुमासुहुमणामु ॥
सोहग्गणामु दोहग्गणामु, सुस्सर-दुस्सर सुह-असुहणामु ॥
पज्जत्त इयर थिर अथिर णामु, आदेउ तहाउणादेउणामु ॥
जसकित्ति अजसकित्तीण णामु, तित्थयरणामु सिवसोक्खधामु ।
इय पिडापिडा पयडि जणिय, चालीसदु जाहिय भेय भणिय ।
णामक्ख होंति तेणवइ भेय, विवरिज्जहिं जइ जाणहिं विणेय ।

द्वितीय सन्धिमें सुभौम चक्रवर्त्तीकी उत्पत्ति और परशुरामके मरणका वर्णन किया गया है। तृतीय सन्धिमें पद्मरथ राजाका उपसर्ग-सहन, आकाश-गमन, विद्यासाधन और अंजनचोरका निर्वाण-गमन वर्णित है। चतुर्थ सन्धिमें अनन्तमतीकी कथा आयी है। पंचम सन्धिमें निर्विचिकित्सागुणका वर्णन आया है। षष्ठ सन्धिमें अमूढ़दृष्टिगुणका वर्णन है। सप्तम सन्धिमें उपगूहन और स्थितिकरणके कथानक आये हैं। अष्टम सन्धिमें वात्सल्य-गुणकी कथा वर्णित है। नवम सन्धिमें प्रभावना अंगकी कथा आयी है। दशम सन्धिमें कौमुदी-यात्राका वर्णन है। ग्यारहवीं सन्धिमें उदितोदय सहित उपदेशदान वर्णित है। बारहवीं सन्धिमें परिवारसहित उदितोदयका तपश्चरण-ग्रहण आया है। १३वीं सन्धिमें बेतालकथानक वर्णित है। १४वीं सन्धिमें माला-कथानक आया है। १५वीं सन्धिमें सोमश्रीको कथा वर्णित है। १६वीं सन्धिमें काशीदेश, वाराणसी नगरीके वर्णनके पश्चात् भक्ति और नियमोंका वर्णन है। १७वीं सन्धिमें अनस्तमित अर्थात् रात्रिभोजनत्यागव्रतकी कथा वर्णित है। १८वीं सन्धिमें दया-धर्मके फलको प्राप्त करने वालोंकी कथा वर्णित है। १९वीं सन्धिमें नरकगतिके दुःखोंका वर्णन किया गया है। २०वीं सन्धिमें बिना जाने हुए फल-भक्षणके त्यागकी कथा वर्णित है। २१वीं सन्धिमें उदितोदय राजाओंकी परिव्रज्या और उनका स्वर्गगमन आया है। इस प्रकार इस ग्रन्थमें सम्यग्दर्शनके आठ अंग, व्रतनियम, रात्रिभोजनत्याग आदिके कथानक वर्णित हैं। कथाओंके द्वारा कविने धर्म-तत्त्वको हृदयंगम करानेका प्रयास किया है।

कथाकोश—इस ग्रन्थमें ५३ सन्धियाँ हैं और प्रत्येक सन्धिमें कम-से-कम एक कथा अवश्य आयी है। ये सभी कथाएँ धार्मिक और उपदेशप्रद है। कथाओंका उद्देश्य मनुष्यके हृदयमें निर्वेद-भाव जागृत कर वैराग्यकी ओर अग्रसर करना है। कथाकोषमें आई हुई कथाएँ तीर्थंकर महावीरके कालसे गुरुपरम्परा द्वारा निरन्तर चलती आ रही हैं। प्रथम सन्धिमें पात्रदान द्वारा धनकी सार्थकता प्रतिपादित कर स्वाध्यायसे लाभ और उसकी आवश्यकतापर जोर दिया है। इस सन्धिके अन्तमें सोमशर्मा ज्ञानसम्पादनसे निराश हो

समाधिमरण ग्रहण करता है तथा पाँच दिनोंके समाधिमरण द्वारा स्वर्गमे अवधिज्ञानी देव होता है। द्वितीय सन्धिमें सम्यक्त्वके अतिचार और शंकादि दोषोंके उदाहरण आये हैं। इन उदाहरणोंको स्पष्ट करनेके लिए आख्यानोंकी योजना की गई है। तृतीय सन्धिमें उपगूहन आदि सम्यक्त्वके चार गुण बतलाये हैं और उपगूहनका दृष्टान्त स्पष्ट करनेके लिए पुष्पपुरके राजकुमार विशाखकी कथा आई है। प्रसंगवश इस कथामें विष्णुकुमारमुनि और राजा बलिका आख्यान भी वर्णित है। चतुर्थ सन्धिमें प्रभावनाविषयक वज्रकुमारकी कथा अंकित है। पंचम सन्धिमें श्रद्धानका फल प्रतिपादित करनेके लिए हस्तिनापुरके राजा धनपाल और सेठ जिनदासकी कथा आयी है। छठी सन्धिमें श्रुतविनयका आख्यान, गुरुनिन्हवकथा, व्यंजनहीनकथा, अर्थहीनकथा, सप्तम सन्धिमें नागदत्तमुनिकथा, शूरमित्रकथा, वासुदेवकथा, कल्हासमित्रकथा और हंसकथा, अष्टम सन्धिमें हरिषेणचक्रीकथा, नवम सन्धिमे विष्णुप्रद्युम्नकथा और मनुष्यजन्मकी दुर्लभता सिद्ध करनेवाले दृष्टान्त, दशम सन्धिमें संघश्रीकथा, एकादश सन्धिमें द्रव्यदत्तका आख्यान, जिनदत्त-वसुदत्तका आख्यान, लकुचकुमारका आख्यान, पद्मरथका आख्यान, ब्रह्मदत्तचक्रवर्ती-आख्यान, जिनदास-आख्यान, रुद्रदत्त-आख्यान, द्वादश सन्धिमें श्रेणिकचरित, त्रयोदश सन्धिमें श्रेणिकका महावीरके समवशरणमें जाना और वहाँ धर्मोपदेशका श्रवण करना, पन्द्रहवीं और सोलहवीं सन्धियोंमें विविध प्रश्न और आख्यानोंका वर्णन है। सत्रहवीं और अठाहरवीं सन्धिमें करकंडुका चरित वर्णित है। १९ वीं और २० वीं सन्धिमें रोहिणीचरित वर्णित है। २१ वीं सन्धिमें भक्ति और पूजाफल सम्बन्धो आख्यान निबद्ध हैं। २२वीं सन्धिमें नमोकारमन्त्रकी अराधनाके फलको बतलानेवाले सुदर्शन आदिके आख्यान अंकित हैं। २३ वीं, २४ वीं और २५ वीं सन्धियोंमें ज्ञानोपयोगके फलसम्बन्धी कथानक अंकित हैं। २६ वीं और २७ वीं सन्धिमें दान और धर्मसम्बन्धी कथानक आये हैं। २८ वींसे लेकर ३४ वीं सन्धि तक पंच पाप और विकारसम्बन्धी तथ्योंके विश्लेषणके लिए कथानक अंकित किये गये हैं। ३५ वीं सन्धिमें प्रशंसनीय महिलाओंके आख्यान, ३६ वीं सन्धिमें श्रावकधर्म और पंचाक्षरमन्त्रके उपदेशसम्बन्धी आख्यान गुम्फित हैं। ३७ वीं सन्धिमें शकटमुनि और पाराशरकी कथा, ३८ वीं सन्धिमें सात्यकीरुद्रकथा, ३९ वीं सन्धिमें राजमुनि कथा, ४० वीं सन्धिमें अर्थकी अनर्थमूलता सूचक आख्यान वर्णित हैं। ४१ वीं सन्धिमें धनके निमित्तसे दुःख प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके आख्यान वर्णित हैं। ४२वीं सन्धिमें निदानसे सम्बन्धित कथाएँ आयी हैं। ४३वीं सन्धिमें तीनों शल्योंसे सम्बन्धित कथानक, ४४ वीं सन्धिमें स्पर्शन-इन्द्रियके अधीन रहनेवाले

तथा चारों कषायोंका सेवन करनेवाले व्यक्तियोंके कथानक आये हैं; ४५ वीं, ४६ वीं, ४७ वीं, ४८ वीं, ४९ वीं और ५० वीं सन्धियोंमें परीषहोंपर विजय करने वाले शीलसेन्द्र, सुकुमाल, सुकोशल, राजकुमार, सनत्कुमारचक्रवर्त्ती, भद्रबाहु, धर्मंघोषमुनि, वृषभसेनमुनि अग्निपुत्र, अभयघोष, विद्युच्चरमुनि, चिला-त्पुत्र, धन्यकुमार, चाणक्यमुनि और ऋषभसेनमुनिकी कथाएँ वर्णित हैं। ५१ वीं सन्धिमें प्रत्याख्यानके अखण्ड पालनपर श्रीपालकथा, प्रायश्चित्तपर राजपुत्रकथा, आहारगृद्धिपर शालिसिक्थकथा, भोजनकी लोलुपतापर सुभौम चक्रवर्त्तीकथा और संसारकी अनिष्टतापर धनदेवकथा आई है। ५२ वीं सन्धि में कर्मफलकी प्रबलतापर सुभोगनृपकथा, व्रतभंगपर धर्मसिंहमुनिकथा, ऋषभसेनमुनिकथा और आत्मघात द्वारा संघरक्षापर जयसेननृपकथा आई है। ५३ वीं सन्धिमें समाधिमरणपर शकटालमुनिकी कथा अंकित है। इस कथाग्रंथमें नगर, देश, ग्राम आदिके वर्णनके साथ यथास्थान अलंकारोंका भी प्रयोग किया गया है।

श्रीधर प्रथम

अपभ्रंश-साहित्यमें श्रीधर और विबुध श्रीधर नामके कई विद्वानोंका परिचय प्राप्त होता है। श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने संस्कृत और अपभ्रंशके सात कवियोंका परिचय दिया है।[1] श्रीधरके पूर्व 'विबुध' विशेषण भी प्राप्त होता है। श्री हरिवंश कोछड़ने 'पासणाहचरिउ', 'सुकुमालचरिउ' और 'भविसयत्तचरिउ' ग्रन्थोंका रचयिता इन्हीं श्रीधरको माना है। पर[2] पं० परमानन्दजी 'पासणाहचरिउ'के रचयिता श्रीधरको 'भवियसयत्तचरिउ' और सुकुमालचरिउके रचयिताओंसे भिन्न मानते हैं। श्री डॉ० देवेन्द्रकुमारशास्त्रीने भो भविसयत्तचरिउके रचयिता श्रीधर या विबुध श्रीधरको उक्त ग्रन्थोंके रचयिताओंसे भिन्न बतलाया है। वस्तुतः 'पासणाहचरिउ'का रचयिता श्रीधर, भविसयत्तचरिउके रचयितासे तो भिन्न है ही, पर वह सुकुमालचरिउके रचयितासे भी भिन्न है। इन तीनों ग्रन्थोंके रचयिता तीन श्रीधर हैं, एक श्रीधर नहीं।

'पासणाहचरिउ'के अन्तमें जो प्रशस्ति अंकित है उससे कविके जीवनवृत्तपर निम्न लिखित प्रकाश पड़ता है—

---

१. अनेकान्त वर्ष ८, किरण १२, पृष्ठ ४६२।

२. अपभ्रंश-साहित्य, भारती-साहित्य-मन्दिर, दिल्ली, पृ० २१०।

"सिरिअयरवालकुल-संभवेण, जणणी-विल्हा-गब्भु(ब्भ) वेण
अणवरय-विणय-पणयारुहेण, कइणा बुहगोल्हतणुरुहेण।
पयडियतिहुअणवइगुणभरेण, मणिणयसुहिसुअणेंसिरिहरेण"।

—पासणाहचरिउ, प्रशस्ति

कवि अग्रवाल कुलमें उत्पन्न हुआ था। इसकी माताका नाम वील्हादेवी और पिताका नाम बुधगोल्ह था। कविने इससे अधिक अपना परिचय नहीं दिया है। कविका एक 'पासणाहचरिउ' ही उपलब्ध है। पर ग्रन्थके प्रारंभिक भागसे उनके द्वारा चन्द्रप्रभचरितके रचे जानेका भी उल्लेख प्राप्त होता है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

"विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु, चिर-चरिय-कम्मदुक्खावहारु।
विहरंतें कोऊहलवसेण, परिहच्छिय वाससरिसरेण।"

'पासणाहचरिउ'में कविने इस ग्रंथके रचे जानेका कारण भी बतलाया है। कवि दिल्लीके पास हरियाणामें निवास करता था। उसे इस ग्रंथके रचनेकी प्रेरणा साहू नट्टलके परिवारसे प्राप्त हुई। साहू नट्टल दिल्ली (योगिनीपुर)के निवासी थे। उस समय दिल्लीमें तोमरवंशीय अनंगपाल तृतीयका शासन विद्यमान था। यह अनंगपाल अपने पूर्वज दो अनंगपालोंसे भिन्न था और यह बड़ा प्रतापी एवं वीर था। इसने हम्मीर वीरकी सहायता की थी। प्रशस्तिमें लिखा है—

जहिं असिवर तोडिय रिउ कवालु, णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु
णिरुदल वड्ढियहम्मीर वीरु, वंदियण विंदं पवियण्ण चीरु।
दुज्जण-हिय-यावणिदलणसीरु, दुण्णयणीरय-णिरसण-समीरु।
बालभर-कंपाविय-णायराउ, भामिणि-यण-मण-संजणिय-राउ।

दिल्लीकी शासन-व्यवस्था बहुत ही सुव्यवस्थित थी और सभी जातियोंके लोग वहाँ सुखपूर्वक निवास करते थे। नट्टल साहू धर्मात्मा और साहित्य-प्रेमी ही नहीं थे; अपितु उच्चकोटिके कुशल-व्यापारी भी थे। उस समय उनका व्यापार अंग, वंग, कलिंग, कर्णाटक, नेपाल, भोट्ट, पांचाल, चेदि, गौड़, ढक्क केरल, मरहट्ट, भादानक, मगध, गुर्जर, सोरठ आदि देशोंमें चल रहा था। कविको इन्हीं नट्टल साहूने 'पासणाहचरिउ'के लिखनेकी प्रेरणा दी थी।

नट्टल साहूके पिताका नाम अल्हण साहू था और इनका वंश अग्रवाल था। नट्टल साहूकी माता बड़ी ही धर्मात्मा और शीलगुण सम्पन्न थी। नट्टल साहूके दो ज्येष्ठ भाई थे—राघव और सोढल। सोढल विद्वानोंको

आनन्ददायक, गुरुभक्त और अर्हन्तके चरणोंका भ्रमर था। नट्टल साहू भी बड़ा ही धर्मात्मा और लोकप्रिय था। उसे कुलरूपी कमलोंका आकर, पाप-रूपी पांशुका नाशक, बन्दीजनोंको दान देनेवाला, तीर्थंकर मूर्त्तियोंका प्रति-ष्ठापक, परदोषोंके प्रकाशनसे विरक्त और रत्नत्रयधारी था। साहित्यिक अभिरुचिके साथ सांस्कृतिक अभिरुचि भी उसमें विद्यमान थी। उसने दिल्लीमें एक विशाल जैन-मन्दिर निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी की थी। पांचवी सन्धिके पश्चात् पासणाहचरिउमें एक संस्कृत-पद्य आया है, जिससे उपर्युक्त तथ्य निस्सृत होता है—

"येनाराध्य विशुद्धधीरमतिना देवाधिदेवं जिनं।
सत्पुण्यं समुपार्जितं निजगुणैः संतोषिता बांधवाः॥
जैनं चैत्यमकारि सुन्दरतरं जैनीं प्रतिष्ठां तथा।
स श्रीमान्विदितः सदैव जयतात्पृथ्वीतले नट्टलः॥"

अतएव स्पष्ट है कि कवि श्रीधर प्रथमको पासणाहचरिउके रचनेकी प्रेरणा नट्टल साहूसे प्राप्त हुई थी।

कविके दिल्ली-वर्णन, यमुना-वर्णन, युद्ध-वर्णन, मन्दिर-वर्णन आदिसे स्पष्ट होता है कि कवि स्वाभिमानी था। वह नाना-शास्त्रोंका ज्ञाता होनेपर भी चरित्रको महत्त्व देता था। अलंकारोंके प्रति कविकी विशेष ममता है। वह साधारण वर्णनको भी अलंकृत बनाता है। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों पर कविको अपूर्व आस्था है। उसकी दृष्टिमें कर्मठ जीवन ही महत्त्व-पूर्ण है।

स्थितिकाल

पासणाहचरिउमें उसका रचनाकाल अंकित है। अतएव कविके स्थिति-कालके सम्बन्धमें विवाद नहीं है।

विक्कमणरिंद-सुपसिद्धकालि, ढिल्ली-पट्टण-धणकण-विसालि।
सणवासी-एयारह-सएहि, परिवाडिए वरिस-परिगएहि।
कसणट्ठमीहि आगहणमासि, रविवारि समाणिउं सिसिरभासि।
सिरिपासणाह णिम्मलचरित्तु, सयलामलरयणोह-दित्तु।

अर्थात् वि० सं० ११८९ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी रविवारके दिन यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।

कविकी एक अन्य रचना 'वड्ढमाणचरिउ' भी प्राप्त है। इस रचनामें भी कविने रचनाकालका निर्देश किया है। 'वड्ढमाणचरिउ'में अंकित की गई

वंशावली पासणाहचरिउकी वंशावलीके समान है। कविने अपनेको बील्हाके गर्भसे उत्पन्न लिखा है। बताया है—

वील्हा-गब्भ-समुब्भव दोहें। सव्वयणहिं सहुँ पयडिय णेहें॥
एउ चिरज्जिय पाव-खयंकरु। वड्ढमाणचरिउ सुहंकरु॥

वड्ढमाणचरिउका रचनाकाल कविने वि० सं० ११९० ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी रविवार बताया है। लिखा है—

एयारहसएहिं परिविगयहिं। संवच्छर सएणवहिं समेयहिं।
जेट्ठ-पढम-पक्खइं पंचमिदिणे। सूरुवारे गयणंगणिठिइइणे॥

अतएव श्रीधर प्रथम या विवुध श्रीधरका समय विक्रमकी १२वीं शती निश्चित है।

रचनाएँ

विवुध श्रीधरकी दो रचनाएँ निश्चित रूपसे मानी जा सकती हैं—'पासणाहचरिउ' और 'वड्ढमाणचरिउ'। ये दोनों ही रचनाएँ पौराणिक महाकाव्य हैं। इनमें पौराणिक काव्यके सभी तत्त्व पाये जाते हैं।

पासणाहचरिउ

तीर्थंकर पार्श्वनाथका चरित अपभ्रंशके कवियोंको विशेष प्रिय रहा है। अहिंसा और ब्रह्मचर्यके सन्देशको जनसामान्य तक पहुँचानेके लिए यह चरित बहुत ही उपादेय है। कवि श्रीधर प्रथमने अपने इस चरितकाव्यमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। कथावस्तु १२ सन्धियोंमें विभक्त है और इस ग्रंथका प्रमाण २५०० पद्य है। कविने यमुनानदीका चित्रण प्रियतमके पास जाती हुई विलासिनीके रूपमें किया है।

जउणासरि सुरणय-हियय-हार, णं वार विलासिणिए उरहार।
डिंडीर पिंड उप्परिय णिल्ल, कोलिर रहंग थोव्वड थणिण्ण।
सेवाल-जाल-रोमावलिल्ल, बुहयण-मण-परिरंजणच्छइल्ल।
भमरावलिवेणीवलयलच्छि, पप्फुल्ल-पोमदलदीहअच्छि।
पवणाहयसलिलावत्त-णाहि, विणिहयजणवयतणुतावबाहि।
वणगयगलमयजलघसिणलित्त, दरफुडियसिप्पिउडदसणदित्त।
वियसंत-सरोरुह-पवर-वत्त, रयणायर-पवरपियाणुरत्त।
विउला मलपुलिणणियंव जाम, उत्तिण्णी णयणहिं दिट्ठु ताम।
हरियाणए देसे असंख गामे, गमियिणजणियअगवरयकामे।

अर्थात् सुर-नर-हृदयहार यमुना मानो वारविलासिनीका हृदयहार है। मानों उसकी फेनालि उस नारीका उपरितन वस्त्र हो। क्रीड़ारत चक्रवाक मानों उसके स्तन हों। शैवालजाल प्रबुद्ध मनको रंजन करनेवाली रोमालि, भ्रमरावलि वलय-वेणी, प्रफुल्ल पद्मदल दीर्घ नयन, पवनावलम्बित सलिल आवर्त्त, तनुतापनाशक नाभि, वन्यगजमद युक्त सलिलचन्दनलेप, ईषत् व्यक्त होते हुए शुक्तिपुट सुन्दर रद एवं विकसित कमल, सुन्दर मुख हों। रत्नाकरप्रियके प्रति अनुरक्त सरिता थी और वारविलासिनी रत्नालंकृत अपने प्रियके प्रति। उसके विपुल एवं निर्मल पुलिन मानों उसके नितम्ब थे। इस प्रकारकी सरिता कविने देखी और पार की। नदी पार कर वह हरियाणा प्रदेशके डिल्ली नामक नगरमें पहुँचा।

कवि दिल्ली पहुँचनेके साथ-साथ उसका रम्य वर्णन उपस्थित करता है। अलंकृत दिल्ली कविकी अलंकृत शैली पाकर और भी आकर्षणयुक्त बन गई है। गगनचुम्बी शालाएँ, विशाल रणशिविर (मंडप), सुरम्य मंदिर, समद गज, गतिशील तुरंग, नारीपद-नूपुरध्वनि सुन नृत्यत मयूर एवं प्रशस्त हट्टमार्ग आदिका निर्देश कविने किया है—

जहिं गयणामंडललग्गु सालु, रण-मंडवपरिमंडिउ विसालु।
गोउरसिरिकलसाहयपयंगु, जलपूरियपरिहालिंगियंगु।
जहिं जण-मण-णयणाणंदिराइं, मणियरगणमंडियमंदिराइं।
जहिं चउदिसु सोहहिं घणवणाइं, णायर-णर-खयर-सुहावणाइं।
जहिं समय-करडि घड घड हडति, पडिसद्दें दिसि-विदिसि विप्फुडंति।
जहिं पवण-गयण धाविर तुरंग, णं वारि रासि भंगुर तरंग।

× × ×

दप्पुब्भउ भउ तोणु व कणिल्लु, सविणय सीसु व वहु गोर सिल्लु।
पारावारु व वित्थरिय संखु, तिहुअणवइ-गुणणियरु व असंखु।

इस प्रकार कविने श्लिष्ट शैलीमें दिल्ली नगरकी वस्तुओंका चित्रण किया है। यह नगर नयनके समान तारक युक्त था, सरोवरके समान हारयुक्त और हार नामक जीवोंसे युक्त था, कामिनीजनके समान प्रचुर मान वाला, युद्धभूमिके समान नागसहित और न्याययुक्त, नभके समान चन्द्रसहित एवं राज-सहित था।

युद्धवर्णनमें कविने भावानुकूल शब्दों और छन्दोंकी योजना की है। इस प्रकार 'पासणाहचरिउ' काव्यगुणोंसे परिपूर्ण है।

वड्ढमाणचरिउ

वड्ढमाणचरिउके प्रेरक साहू नेमिचन्द्र हैं। इनके अनुरोधसे कविने इस ग्रंथकी रचना की है। नेमिचन्द्रका परिचय ग्रंथके प्रारम्भ और अन्तमें दिया गया है। कविने लिखा है—

> इक्कहि दिणि णरवरणंदणेण। 'सोमा-जणणी'-आणंदणेण ॥
> जिणचरणकमलइंदिदिरेण। णिम्मलयर-गुण-मणि-मंदिरेण ॥
> जायस-कुल-कमल-दिवायरेण। जिणभणियागम-विहिणायरेण ॥
> णामेण णेमिचन्देण वुत्तु। भो 'कइ-सिरिहर' सद्दत्थजुत्तु।
> जिह(ण) विरइउ चरिउ दुहोहवारि। संसारुब्भव-संताव-हारि ॥१।१॥
>
> × × × ×
>
> जायसवंस-सरोय-दिणेसहो। अणुदिणुचित्तणिहित्त जिणेसहो ॥
> णरवर-सोमइं-तणुसंभूवहो। साहु णेमिचंदहो गुणभूवहो ॥
> वयणे विरइउ सिरिहर णामें। तियरणरक्खिय असुहर गामें ॥

अन्तिम प्रशस्ति पद्य

अर्थात् नेमिचन्द्र वोदाउ नामक नगरके निवासी थे और जायस या जयसवालकुल-कमलदिवाकर थे। इनके पिताका नान साहू नरवर और माताका नाम सोमादेवी था। माता-पिता बड़े ही धर्मात्मा और साधुस्वभावके थे। साहूनेमिचन्द्रकी धर्मपत्नीका नाम 'वीवा' देवी था। इनके तीन पुत्र थे—रामचन्द्र, श्रीचन्द्र और विमलचन्द्र। एक दिन साहू नेमिचन्द्रने कवि श्रीधरसे निवेदन किया कि जिस प्रकार चन्द्रप्रभचरित और शान्तिनाथचरित रचे गये हैं उसी तरह मेरे लिए अन्तिम तीर्थंकरका चरित लिखिये। कविने प्रत्येक सन्धिके पुष्पिकावाक्यमें 'नेमिचन्द्रनामांकित' लिखा है। इतना ही नहीं, प्रत्येक सन्धिके प्रारम्भमें जो संस्कृत श्लोक दिया गया है उससे भी नेमिचन्द्रके गुणोंपर प्रकाश पड़ता है। द्वितीय सन्धिके प्रारम्भमें—

> नंदत्वत्र पवित्रनिर्म्मलसच्चारित्रभूषाधरो।
> धर्म्मध्यान-विधौ सदा-कृत-रतिर्विद्वज्जनानां प्रियः ॥
> प्राप्तान्तःकरणेप्सिताऽखिलजगद्वस्तु-व्रजो दुर्ज्जय-
> स्तत्त्वार्थ-प्रविचारणोद्यतमनाः श्रीनेमिचन्द्रश्चिरम् ॥

स्पष्ट है कि नेमिचन्द्र धर्मध्यानमें निपुण, सम्यग्दृष्टि, धीर, बुद्धिमान, लक्ष्मीपति, न्यायवान, भवभोगोंसे विरक्त और जनकल्याणकारक थे। इस प्रकार कविने रचनाप्रेरकका विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया है। ग्रंथ १० सन्धियोंमें विभक्त है

और इसमें अन्तिम तीर्थंकरमहावीरका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। प्रथम सन्धि या परिच्छेदमें नन्दिवर्धन राजाके वैराग्यका वर्णन किया है। द्वितीय सन्धिमें 'मयवइ' मृगपतिकी भवावलीका वर्णन किया गया है। तृतीय सन्धिमें बल-वासुकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है। चतुर्थ सन्धिमें सेनानिवेशका वर्णन है। इसी सन्धिमें कविने युद्धका भी चित्रण किया है। पंचम सन्धिमें त्रिविष्ट-विजयका वर्णन है। षष्ठ सन्धिमें सिंह-समाधिका चित्रण है। सप्तम सन्धिमें हरिषेणराय मुनिका स्वर्ग-गमन वर्णित है। अष्टम सन्धिमें नन्दनमुनिका प्राणत कल्पमें गमन वर्णित है। नवम सन्धिमें वीरनाथके चार कल्याणकोंका वर्णन है और दशम सन्धिमें तीर्थंकर महावीरका धर्मोपदेश, निर्वाणगमन, गुणस्थाना-रोहण एवं गुणस्थानक्रमानुसार प्रकृतियोंके क्षयका कथन आया है। इस प्रकार इस चरित-ग्रंथमें तीर्थंकर महावीरके पूर्वभव और वर्त्तमान जीवनका कथन किया है।

नगर, ग्राम, सरोवर, देश आदिका सफल चित्रण किया गया है। कविने श्वेतछत्र नगरीका चित्रण बहुत ही सुन्दररूपमें किया है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

जहि जल-खाइयहि तरंग-पंति। सोहइ पवणाहय गयणपंति।
णव-णलिणि-समुब्भव-पत्तणील। णं जंगम-महिहर माल लील॥
जहि गयणंगण-गय-गोपुराइं। रयणमय-कवाडहि सुन्दराइं।
पेखेवि नहि जंतु सुहा वि सग्गु। सिरु धुणइं मउडमंडिय णहग्गु॥
जहि निवसहि वणियण गय-पमाय। परदार-विरय परिमुक्क-माय।
सद्दत्थ-वियक्खण दाण-सील। जिणधम्मासत्त विसुद्ध-सील॥
जहि मंदिरभित्ति-विलंबमाण। णीलमणिकरो हइ धावमाण।
माऊर इंति गिह्णण-कएण। कसणो स्यालि भक्खण-रएण॥
जहि फलिह-बद्ध-महियले मुहेसु। णारी-यणाइ पडि-बिंबिएसु।
अलि पडइ कमल-लाले सनेउ। अहवा महुवहु ण हवइ विवेउ॥
जहि फलिह-भित्ति-पडिबिंबियाइं। णियरूवइ णयणहि भावियाइं।
ससवत्ति-संक गय-रय-खमाहं। जुज्झंति तियउ पिय-पिययमाहं॥१।३

अर्थात् श्वेतछत्र नगरीकी जल-परिखाओंमें पवनाहत होकर तरंग-पंक्ति ऐसी शोभित होती थी, मानों गगन-पंक्ति ही हो। नवनलिनी अपने पत्तों सहित महीधरके समान शोभित होती था, आकाशको छूने वाले गोपुर रत्नमय मंडित किवाड़ोंसे युक्त शोभित थे। उन गोपुरोंको देखनेपर स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता

था। अतएव ऐसा प्रतीत होता था, मानों मुकुटमंडित आकाश अपना सिर धुन रहा है। वहांके व्यापारी प्रमादरहित होकर निवास करते थे। और वे पर-स्त्रीसे विरक्त और छल-कपटसे रहित थे। वे शब्दार्थमें विचक्षण, दानशील और जिनधर्ममें आसक्त थे। वहांके मन्दिरोंपर नीलमणिकी झालरें लटक रही थीं। इन झालरोंको मयूर कृष्ण सर्प समझकर भक्षण करनेके लिये दौड़ते थे। जहाँ स्फटिकमणिसे घटित फर्शके ऊपर स्त्रियोंके प्रतिबिम्ब पड़ते थे, जिससे भौंरे कमल समझकर उन प्रतिबिम्बोंके ऊपर उमड़ पड़ते थे। वहांकी नारियाँ स्फटिक जटित दीवालोंमें अपने प्रतिबिम्बोंको देखकर सपत्नीकी आशंकासे ग्रसित हो झगड़ा करती थीं। इस नगरीमें नन्दिवर्धन नामका राजा मनुष्य, देव, दान-वादिको प्रसन्न करता हुआ निवास करता था।

इसी प्रकार कविने युद्ध आदिका भी सुन्दर चित्रण किया है रस-योजनाकी दृष्टिसे भी यह काव्य ग्राह्य है। इसमें शान्त, शृंगार, वीर और भयानक रसोंकी सम्यक् योजना हुई है।

तीर्थंकर महावीरका जन्म होनेपर कल्पवासी देवगण उनका जन्माभिषेक सम्पन्न करनेके लिये हर्षसे विभोर हो जाते हैं और वे नानाप्रकारसे क्रीड़ा करने लगते हैं। देवोंके इस उत्साहका वर्णन निम्न प्रकार सम्पन्न किया गया है—

कप्पवासम्मि णेऊण णाणामरा। चल्लिया चारु घोलंत सव्वामरा॥
भत्ति-पब्भार-भावेण पूल्लणणा। भूरिकीला-विणोएहिं सोक्खाणणा॥
णच्चमाणा समाणा समाणा परे। गायमाणा अमाणा-अमाणा परे॥
वायमाणा विभाणाय माणा परे। वाहणं वाह-माणा सईयं परे॥
कोवि संकोडिऊणं नन्द कीलए। कोवि गच्छेइ हंसट्ठिओ लीलए॥
देक्खिऊणं हरी कोवि आसंकए। वाहणं धावमाणं थिरो वंकए॥
कोवि देवो कराफोड़ि दावंतओ। कोवि वोमंगणे भत्ति धावंतओ॥
कोवि केणावि तं षण आवाहिओ। कोवि देवोवि देक्खेवि आवाहिओ॥९।१०

यह रचना भाषा, भाव और शैली इन तीनों ही दृष्टियोंसे उच्चकोटिकी है। वस्तु-वर्णनमें कविने महाकाव्य-रचयिताओंकी शैलीको अपनाया है।

कविकी तीसरी रचना 'चंदप्पहचरिउ' है। यह रचना अभी तक किसी भी ग्रंथागारमें उपलब्ध नहीं है। इसमें अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जीवनवृत्त अंकित है। 'पासणाहचरिउ' में इस रचनाका उल्लेख है। अतएव इसका रचनाकाल उक्त ग्रंथके रचनाकालसे कम-से-कम दो वर्ष पूर्व अवश्य है। इस प्रकार वि० संवत् ११८७ 'चंदप्पहचरिउ' का रचनाकाल सिद्ध होगा।

श्रीधर द्वितीय

श्रीधर द्वितीयको भी विबुध श्रीधर कहा गया है। इन्होंने अपभ्रंशमें 'भविसयत्तचरिउ' की रचना चन्द्रवाड़नगरमें स्थित माथुरवंशीय नारायणके पुत्र सुपट्ट साहू[1] की प्रेरणासे की है। यह काव्य नारायण साहूकी भार्या रूपिणीके निमित्त लिखा गया है।[2]

सुपट्ट साहू नारायणके पुत्र थे। उनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम वासुदेव था। कविने ग्रंथके अन्तमें सुपट्ट साहू और रूपिणीकी प्रशंसा करते हुए पूरा विवरण दिया है। साहूके पूर्वज अपने समयमें प्रसिद्ध थे। उसकी सीता नामक गृहिणी थी, जो विनय आदि निर्मल गुणोंसे भूषित थी। उनके हालनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन दोनोंके जगद्विख्यात देवचन्द नामका पुत्र हुआ। वह माथुरकुलका भूषण और गुणरत्नोंकी खान था। जैनधर्ममें उसकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। लक्ष्मीके समान उसकी माढ़ो नामकी धर्मपत्नी थी। उसके गर्भसे काञ्चनवर्ण साधारणनामके पुत्रने जन्म लिया। उसके दो पुत्र हुए। दूसरेका नाम नारायण था। इसी नारायणकी भार्या 'रूपिणी' थी, जिसने इस ग्रन्थको लिखवाया। नारायणके पाँच पुत्र हुए। सभी गुणवान और श्रद्धालु थे।

ग्रन्थके रचयिता श्रीधर द्वितीय मुनि थे। उनका व्यक्तित्व रत्नत्रयस्वरूप था। अपने प्रेरक सुपट्ट साहूकी अनन्य भक्ति, दान, पूजा, व्रत, आदि धार्मिक अनुष्ठानोंकी कविने प्रशंसा की है।

स्थितिकाल

कविने 'भविसयत्तचरिउ' के रचनाकालका निर्देश किया है—

णरणाहविक्कमाइच्चकाले, पवहृत्तए सुहयारए विसाले।
वारहसय-वरिसहिं परिगएहिं फागुण-मासम्मि बलक्खपक्खे,
दसमिहि-दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे।
रविवार समाणिउ एउ सत्थु, जिह मइं परियाणिउ सुप्पसत्थु।
भासिउ भविस्सयत्तहो चरित्तु, पंचमि उववासहो फलु पवित्तु।

---

१. सिरिचन्दवारणयरट्ठिएण, जिणधम्मकरणउक्कंठिएण।
माहुरकुलगयणतमोहरेण, विबुह-यण-सुखयामणधणहरेण।
मइवरसुपट्टणामालएण विणएण भणिसं जोडेवि पाणि।—भविष्यदत्तचरित, १,२।

२. 'इय सिरिभविसयत्तचरिए विबुहसिरिसुकइसिरिहर-विरइए साहुणरायण-भज्जा-रुप्पिणिणामांकिए'।—वही।

अर्थात् वि० सं० १२०० फाल्गुण शुक्ला दशमी, रविवारके दिन यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस रचनाकालके निर्देशसे यह स्पष्ट है कि इन विबुध श्रीधरका समय वि० की १३वीं शती है। आमेर-शास्त्रभण्डारकी प्रतिमें उक्त रचना-कालका उल्लेख हुआ है। पुष्पिकावाक्यमें कविने स्वनामके साथ अपने प्रेरक-का नाम भी अंकित किया है—

"इय सिरि-भविसयत्त-चरिए विवुह-सिरिसुकइसिरिहर-विरइए साहु-णारायण-भज्जा-रुप्पिणि-णामांकिए भविसयत्त-उप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो परि-च्छेओ समत्तो।। सन्धि १"

कवि विवुध श्रीधरने 'भविसयत्तचरिउ'की रचना कर कथा-साहित्यके विकासको एक नई मोड़ दी है। इस ग्रंथका प्रमाण १५३० श्लोक है।

कथावस्तु—तीर्थंकरोंकी वन्दनाके पश्चात् कविने कथाका आरंभ किया है। कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नामका नगर है। इस नगरमें भूपालनामका राजा राज्य करता था। राजाने नानागुण-अलंकृत धनपतिको नगरसेठके पट्टपर आसीन किया। धनपतिका विवाह धनेश्वरकी रूपवती कन्या कमलश्रीके साथ सम्पन्न हुआ। कई वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी इस दम्पतिको सन्तानलाभ न हुआ।

एक दिन उस नगरमें सुगुप्ति नामके मुनिराज पधारे। कमलश्रीने पादवंदन कर प्रश्न किया—स्वामिन्! मुझ मन्दभागिनीके पुत्र उत्पन्न होगा या नहीं? मुनिराजने उत्तरमें पुत्रलाभ होनेका आश्वासन दिया।

कुछ समय पश्चात् धनपतिको सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। बालकका वार्द्धापन-संस्कार सम्पन्न किया गया और उसका नाम भविष्यदत्त रखा गया। पाँच वर्षकी अवस्थामें भविष्यदत्तका विद्यारंभ-संस्कार सम्पन्न हुआ और आठ वर्ष-की अवस्थामें उसे उपाध्यायके यहाँ विभिन्न शास्त्रोंके अध्ययनार्थ भेज दिया।

द्वितीय परिच्छेदमें बताया है कि पूर्व जन्ममें की गई मुनिनिन्दाके फलस्वरूप धनपतिने कमलश्रीका त्याग कर दिया। कमलश्री रोती हुई अपने पिताके घर गई। धनपतिका भेजा हुआ गुणवान् पुरुष धनेश्वरके यहाँ आया और कहने लगा कि कमलश्रीमें कोई दोष नहीं है, पर पूर्वकर्मोदयके विपाक-से धनपति इससे घृणा करता है। अतएव आप इसे अपने यहाँ स्थान दीजिए।

कमलश्रीके चले जानेके पश्चात् धनपतिने अपना द्वितीय विवाह धनदत्त सेठकी पुत्री सरूपाके साथ कर लिया। इससे बन्धुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो साक्षात् कामदेवके समान था। युवा होनेपर बन्धुदत्त अपने ५०० साथियों-

के साथ व्यापारके लिए स्वर्णद्वीप जानेकी तैयारी करने लगा। जब भविष्यदत्तको स्वर्णद्वीप जानेवाले व्यापारियोंका समाचार मिला, तो वह अपनी माताकी आज्ञा लेकर अपने सौतेले भाई बन्धुदत्तसे मिला और साथ चलनेकी इच्छा व्यक्त की। सरूपाने बन्धुदत्तको सिखलाया कि अवसर हाथ आते ही तुम भविष्यदत्तको मार डालना।

शुभ मुहूर्त्तमें जलपोतों द्वारा प्रस्थान किया गया और वे मदनद्वीप पहुँचे। वहाँसे आवश्यक सामग्री लेकर और भविष्यदत्तको वहीं छोड़कर बन्धुदत्तने अपने जलपोतको आगे बढ़ा दिया। भविष्यदत्त उस जनशून्य वनमें विलाप करता हुआ भ्रमण करने लगा।

तृतीय परिच्छेदमें भविष्यदत्त जिनदेवका स्मरण करता हुआ प्रभातकालमें उठता है और चलकर तिलकपुर पहुँचता है। यहाँ भविष्यदत्तका मित्र विद्युत्प्रभ यशोधर मुनिराजसे अपनी पूर्वभवावलि जान कर अपने मित्रसे मिलनेके हेतु चल पड़ता है। विद्युत्प्रभके संकेतसे भविष्यदत्तका विवाह वहाँ रहने वाली सुन्दरी भविष्यानुरूपाके साथ हो जाता है।

इधर कमलश्री अपने पुत्रके वियोगमें क्षीण होने लगी। उसने सुव्रता नामक आर्यिकासे श्रुतपंचमीव्रत ग्रहण किया और विधिवत् उसका पालन करने लगी।

चतुर्थ परिच्छेदमें भविष्यानुरूपाका मधुर आख्यान आता है। भविष्यानुरूपा और भविष्यदत्त विपुल धन-रत्नोंके साथ समुद्रके तटपर पहुँचते हैं। संयोगसे इसी समय बंधुदत्त अपने जलपोतको लौटाता हुआ उधर आता है। वह उत्सुकतावश अपने जलपोतको तटपर खड़ा करता है। भविष्यदत्त अपने समस्त समान सहित भविष्यानुरूपाको जलपोत पर बैठा देता है। इतनेमें भविष्यानुरूपाको स्मरण आता है कि उसकी नागमुद्रा तिलकपुरकी सेजपर छूट गई है। वह अपने पतिदेवको मुद्रिका लानेके लिए भेज देती है और उधर बंधुदत्त अपने जहाजको खोल देता है। बन्धुदत्त भविष्यानुरूपाको प्रलोभन देता है और अपने अधीन करना चाहता है। भविष्यानुरूपा समुद्रमें कूद कर प्राण देना चाहती है; पर वनदेवी स्वप्नमें आकर उसे धैर्य देती है और कहती है कि तुम्हारा पति एक महीनेमें तुमसे मिलेगा, तुम चिन्ता मत करो।

बन्धुदत्तका जलपोत हस्तिनापुर लौट आता है और वह घोषित कर देता है कि भविष्यानुरूपा उसकी वाग्दत्ता पत्नी है और वह शीघ्र ही उसके साथ विवाह करेगा।

इधर भविष्यदत्त तिलकपुरके सुनसान वनमें उदास मन होकर निवास करता

है। वह चन्द्रप्रभके जिनालयमें जाकर विधिवत् भक्तिभाव करता है। इतनेमें वहाँ एक विद्याधर उपस्थित होता है और उससे कहता है कि मैं तुम्हें विमानमें बैठाकर हस्तिनापुर पहुँचानेके लिए आया हूँ। भविष्यदत्त नानाप्रकारके रत्नोंको लेकर हस्तिनापुर आता है और माँके चरणवन्दन कर आशीर्वाद लेता है। दूसरे दिन प्रातःकाल भविष्यदत्त विविध प्रकारके मणि-माणिक्योंको लेकर राजाके समक्ष उपस्थित हुआ। भविष्यदत्तके मामाने राजासे कहा कि हमारे भांजेके साथ बंधुदत्तका झगड़ा है। राजाने धनपति सेठको बुलाया; पर सेठने घरमें विवाह होनेसे इस प्रसंगको टालना चाहा। तब राजाने उसे बलात् बुलाया। कमलश्रीने जाकर राजाके समक्ष भविष्यानुरूपाकी नागमुद्रा तथा अन्य वस्त्राभूषण उपस्थित किये। राजा बन्धुदत्तकी करतूतको समझ गया और वह बन्धुदत्तको मारनेके लिये तैयार हुआ। पर भविष्यदत्तने उसके प्राणोंकी रक्षा की। राजाने भविष्यदत्तको आधा सिंहासन दिया और अपनी पुत्रीको देनेका वचन दिया। धनपतिने कमलश्रीसे अपने व्यवहारके लिए क्षमा याचना की। भविष्यदत्तका भविष्यानुरूपाके साथ पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। राजाने भी आधा राज्य देकर अपनी पुत्री सुमित्राका भविष्यदत्तके साथ विवाह कर दिया।

पंचम परिच्छेद भविष्यदत्तके राज्य करनेसे आरंभ होता है। भविष्यानुरूपाको दोहला उत्पन्न हुआ और उसने तिलकद्वीप जानेकी इच्छा प्रकट की। इतनेमें मनोवेग नामका एक विद्याधर भविष्यदत्तके पास आया और कहा कि मेरी माता तुम्हारे घरमें प्रियाके गर्भमें आई है। ऐसा मुझसे मुनिराजने कहा है। अतएव आप भविष्यानुरूपाके साथ मेरे विमानमें बैठकर तिलकद्वीपकी यात्रा कीजिये। भविष्यदत्तने भविष्यानुरूपाको तिलकद्वीपका दर्शन कराया। भविष्यानुरूपाके गर्भसे सोमप्रभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ वर्षोंके पश्चात् कंचनप्रभ नामक द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर तारा और सुतारा नामकी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। सुमित्राके गर्भसे धरणीपति नामक पुत्र और धारिणी नामकी कन्या हुई। इस प्रकार भविष्यदत्त परिवार सहित राज्य करता रहा। उसने मणिभद्रकी सहायतासे सिंहलद्वीप तक अपनी कीर्त्ति व्याप्त कर ली और अनेक राजाओंको अपने अधीन किया। एक दिन वह सपरिवार चारणऋद्धिधारी मुनिके दर्शनके लिए गया। उसने मुनिराजसे श्रावकके व्रत ग्रहण किये।

षष्ठ परिच्छेदमें भविष्यदत्तके निर्वाण-लाभका वर्णन है। कमलश्री, सुव्रताके साथ आर्यिका हो जाती है और धनपति ऐलकव्रत ग्रहण कर लेते हैं। वह कठोर तप कर दसवें स्वर्गमें इन्द्र होते हैं और कमलश्री स्त्रीलिंगका छेद कर रत्नचूल नामका देव होती है। भविष्यानुरूपा भी स्वर्गमें जाकर देव हुई और वहाँसे पृथ्वीतल पर आकर पुत्र हुई।

विवुध श्रीधरने कथाके मर्मस्पर्शी स्थलोंको पर्याप्त रसमय बनानेका प्रयास किया है। कमलश्री रात-दिन रोती है। उसकी आंखसे अश्रुधारा प्रवाहित होती है। भूखी, प्यासी और क्षीण शरीर होनेपर भी अपने मैले शरीरपर ध्यान नहीं देती। कविने लिखा है—

ता भणइं किसोयरि कमलसिरि ण करमि कमल मुहुल्लउ।
पर सुमरंति हे सुउ होइ महु फुट्ट ण मण हियउल्लउ। (३,१६)
रोवइ धुवइ णयण चुव अंसुव जलधारहिं वत्तओ।
भुक्खइं खीण देह तण्हाइय ण मुणइं मलिण गत्तओ। (४,५)

कविने प्रकृति-चित्रण भी बहुत ही मनोरम शैलीमें उपस्थित किया है। भविष्यदत्त भयानक वनमें मदजलसे भरे हुए हाथियोंको देखता है। इस वनमें कहीं पर शाखामृग निर्भय होकर डालियोंसे चिपके हुए थे; कहीं पर छोटी और कहींपर आकाशको छूने वाली बड़ी वृक्ष-शाखाओंपर लोटते हुए हरे फलोंको तोड़ते हुए वानर दिखलाई दे रहे थे। कहीं पर पुष्ट शरीर वाले सूअर, कहीं पर विकराल कालके समान वन्य-पशु दिखलाई पड़ रहे थे। उसीके पासमें झरना प्रवाहित हो रहा, था जो पहाड़की गुफाओंको अपने कल-कल शब्दसे भर रहा था।

तें बाहुडंडेण कमलसिरिपुत्तेण
दिट्ठाइं तिरियाइं बहुदुखभरियाइं
रायवरहो जंतासु मयजलविलित्तासु
कित्थुवि मयाहीसु अणुलग्गु णिरभीसु
कित्थुवि महोयाहं गयणयलविगयाहं
सहासु लोडंतु हरिफलइं तोडंतु
केत्थुवि वराहाहं वलवंतरेहाहं
महवग्घु आलग्गु रोसेण परिभग्गु
केत्थुवि विरालाइं दिट्ठइं करालाइं
केत्थुवि सियालाइं जुज्झंति थूलाइं
तहे पासे णिज्झरइ सरंतइं गिरिकन्दर-विवराइं भरंतइं।

इस ग्रन्थके संवाद भी बड़े रोचक हैं। प्रबन्ध-रचनामें कविने स्वाभाविकताके साथ काव्य-रूढ़ियोंका पालन किया है। यह ग्रन्थ कडवक-पद्धतिमें पद्धडिया-छन्दमें लिखा गया है।

श्रीधर तृतीय

अवन्तीके मुनि सुकुमालका जीवनवृत्त अंकित कर 'सुकुमालचरिउ'की

रचना इन्होंने की है। यह ग्रन्थ पद्धडियाछन्दमें लिखा गया है। कथा छः सन्धियोंमें समाप्त हुई है। और ग्रन्थका प्रमाण १२०० श्लोक है।

इस ग्रन्थकी रचना कविने बलड (अहमदाबाद, गुजरात) नगरमें राजा गोविन्दचन्द्रके समयमें की है। कविने यह ग्रन्थ साहू पीथाके पुत्र पुरवाड-वंशोत्पन्न कुमारकी प्रेरणासे लिखा है। सन्धि-पुष्पिकाओंमें आया है—

"इय सिरिसुकुमालसामि-मणोहरचरिउ, सुंदरयर-गुणरयण-नियर-भरिए विवुहसिरिसुकइसिरिहर-विरइए, साहुपीथे-पुत्र-कुमारनामांकिए...." इत्यादि

ग्रन्थकी आद्यन्त प्रशस्तिमें साहू पीथाका विस्तृत परिचय दिया गया है। बताया है कि साहू पीथाके पिताका नाम साहू रजग था और माताका नाम गल्हा देवी था। इनके सात भाई थे। महेन्द्र, मनहरु, जाल्हण, सलक्खण, सम्पुण्ण, समुद्रपाल और नेयपाल। पीथाकी धर्मपत्नीका नाम सुलक्षणा था। इसीसे कुमारनामक पुत्रका जन्म हुआ। इस कुमारकी प्रेरणासे ही कविने सुकुमालचरिउकी रचना की है।

यह चरित-काव्य वि० सं० १२०८ मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया सोमवारके दिन लिखा गया है। प्रशस्तिमें बताया है—

बारह-सयइं गयइं कय हरिसइ, अट्ठोत्तरइं महीयलि वरिसइं।
कसण-पक्खि आगहणो जायए, तिज्ज-दिवसि ससि-वासरि मायइं।

सुकुमालचरिउमें कुल २२४ कड़वक हैं। सुकुमालके पूर्वभवके साथ वर्तमान जीवनका भी चित्रण किया गया है। पूर्वजन्ममें वह कौशाम्बीमें राज-मंत्रीका पुत्र था। जिनधर्ममें अनुरक्ति होनेके कारण वह संसार विरक्त हो श्रमणधर्ममें दीक्षित हो गया। तपस्याके प्रभावसे अगले जन्ममें उज्जयिनीमें वह सुकुमाल नामका पुत्र हुआ। कवि नख-शिखवर्णनमें भी प्रवीण है। यहाँ परम्परागत उपमानों द्वारा नारी-चित्रणकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

"तहो णरवइहे घरिणि मयणावलि, पहय-कामियण-मण-गहियावलि।
दंत-पंति-णिजिय-मुत्तावलि, णं मयहो करी वाणावलि।
सयलंतेउरमज्झे पहाणी, उछ सरासण मणि सम्माणी।
जहि वयणकमलहो नउ पुज्जइ, चंदु वि अज्जु विवट्टइ खिज्जइ।
कंकेल्ली-पल्लव-सम पाणिहि, कलकल हंठि वीणणिह वाणिहि।
णियसोहग्गपरज्जिय गोरिहि, विज्जाहर-सुर-मण-धणचोरिहे।"

कुछ विद्वान् इन तीनों श्रीधरोंको एक मानते है। पर मेरे विचारसे ये तीनों भिन्न हैं।

देवसेन

देवसेन अपभ्रंश-भाषाके प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने वाल्मीकि, व्यास, श्रीहर्ष, कालिदास, वाण, मयूर, हलिय, गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदन्त, भूपाल नामक कवियोंका उल्लेख किया है। कवि देवसेन मुनि हैं। ये देवसेन गणी या गणधर कहलाते थे। ये निवडिदेवके प्रशिष्य और विमलसेन गणधरके शिष्य थे। विमलसेन शील, रत्नत्रय, उत्तमक्षमादि दशधर्म, संयम आदिसे युक्त थे। ये महान तपस्वी, पंचाचारके धारक, पंच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त मुनिगणोंके द्वारा वन्दनीय और लोकप्रसिद्ध थे। दुर्द्धर पंचमहाव्रतोंको धारण करनेके कारण मलधारीदेवके नामसे प्रसिद्ध थे। यही विमलसेन 'सुलोयणाचरिउ'के रचयिता देवसेनके गुरु थे।

देवसेनका व्यक्तित्व आत्माराधक, तपस्वी और जितेन्द्रिय साधकका व्यक्तित्व है। उन्होंने पूर्वाचार्योंसे आये हुए सुलोचनाके चरितको 'मम्मल' राजाकी नगरीमें निवास करते हुए लिखा है।

स्थितिकाल

कविने यह कृति राक्षस-संवत्सरमें श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवारके दिन पूर्ण की है। साठ संवत्सरोंमें राक्षस-संवत्सर उनचासवाँ है। ज्योतिषकी गणनाके अनुसार इस तिथि और इस दिन दो बार राक्षस-संवत्सर आता है। प्रथम बार २९ जुलाई सन् १०७५ ई० (वि० सं० ११३२ श्रावण-शुक्ला चतुर्दशी) और दूसरी बार १६ जुलाई सन् १३१५ ई० (वि० सं० १३७२ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी) में राक्षस-संवत्सर आता है। इन दोनों समयोंमें २४० वर्षोंका अन्तर है। शेष संवतोंमें श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवारका दिन नहीं पड़ता। कविने अपने पूर्ववर्त्ती जिन कवियोंका उल्लेख किया है उनमें सबसे उत्तरकालीन कवि पुष्पदन्त हैं। अतः देवसेन भी पुष्पदन्तके बाद और वि० सं० १३७२ के पूर्व उत्पन्न हुए माने जा सकते हैं।

'कुवलयमाला'के कर्त्ता 'उद्योतनसूरि'ने सुलोचनाकथाका निर्देश किया है। जिनसेन, धवल और पुष्पदन्त कवियोंने भी सुलोचनाकथा लिखी है। कवि देवसेनने अपना यह सुलोचनाचरित कुन्दकुन्दके सुलोचनाचरितके आधार पर लिखा है। कुन्दकुन्दने गाथाबद्ध शैलीमें यह चरित लिखा था और देवसेनने इसे पद्धड़ियाछन्दमें अनूदित किया है। लिखा है—

जं गाहाबंधें आसि उत्तु, सिरिकुन्दकुदगणिणा णिरुत्तु।
तं एत्थहि पद्धडियहि करेमि, परि किंपि न गूढउ अत्थु देमि।
तेण वि कवि णउ संसा लहंति, जे अत्थु देखि वसणहिं खिवंति।

समय-निर्णयके लिये जैन-साहित्यमें हुए समस्त देवसेनोंपर विचार कर लेना आवश्यक है। जैन-साहित्यमें कई देवसेन हुए हैं। एक देवसेन वह हैं, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके चन्द्रगिरिपर्वतपर अंकित शक संवत् ६२२ के शिलालेखमें आता है। दूसरे देवसेन धवलाटीकाके कर्त्ता आचार्य वीरसेनके शिष्य थे, जिनका उल्लेख आचार्य जिनसेनने जयधवलाटीकाकी प्रशस्तिके ४४वें पद्यमें किया है। तीसरे देवसेन 'दर्शनसार'के रचयिता हैं। चतुर्थ देवसेन वह हैं, जिनका उल्लेख सुभाषितरत्नसंदोह और धर्मपरीक्षादिके कर्त्ता आचार्य-अमितगतिने अपनी गुरुपरम्परामें किया है। दूबकुण्डके वि० सं० ११४५ के अभिलेखमें उल्लिखित देवसेन पंचम हैं। ये लाडवागडसंघके आचार्य थे। छठे देवसेनका उल्लेख माथुरसंघके भट्टारक गुणकीर्तिके शिष्य यशःकीर्त्तिने वि० सं० १४९७ में अपने पाण्डवपुराणमें किया है।

इन सभी देवसेनोंमें ऐसा एक भी देवसेन नहीं दिखलाई पड़ता है, जिसे विमलसेनका शिष्य माना जाय। भावसंग्रहके कर्त्ता देवसेनने अपनेको विमल-सेनका शिष्य लिखा है। अतः भावसंग्रह और सुलोचनाचरितके कर्त्ता दोनों एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं। इस प्रकार कविका समय वि० की १२वीं शती मालूम पड़ता है।

प्रथम बार राक्षस संवत्सर श्रावण शुक्ला चतुर्दशी और बुधवारका योग २९ जुलाई, सन् १०७५ में घटित होता है। अतएव सुलोचनाचरितके रचयिता कवि देवसेनका समय वि० सं० ११३२ ठीक प्रतीत होता है।

रचना

कविने 'सुलोयणाचरिउ'की रचना २८ सन्धियोंमें की है। काव्यकी दृष्टिसे यह रचना उपादेय है। कथामें बताया गया है कि भरत चक्रवर्त्तीके प्रधान सेनापति जयकुमारकी पत्नीका नाम सुलोचना था। वह राजा अकम्पन और सुप्रभाकी पुत्री थी। सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी। इसके स्वयंवरमें अनेक देशोंके बड़े-बड़े राजा सम्मिलित हुए। सुलोचनाको देखकर वे मुग्ध हो गये। उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्तिकी इच्छा करने लगे। स्वयं-वरमें सुलोचनाने जयको चुना। परिणामस्वरूप चक्रवर्ती भरतका पुत्र अर्क-कीर्त्ति क्रुद्ध हो उठा। और उसने इसमें अपना अपमान समझा। अपने अप-मानका बदला लेनेके लिये अर्ककीर्त्ति और जयमें युद्ध हुआ और अन्तमें जय विजयी हुआ।

कवि देवसेन निरभिमानी है। वह हृदय खोलकर यह स्वीकार करता है

कि चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्तने जिस सरस्वतीकी रक्षा की थी उसी सरस्वतीरूपी गौके दुग्धका पान कर कविने अपनी इस कृतिको लिखा है—

चउमुह-सयंभु-पमुहेंहि रक्खिय दुहिय जा पुप्फयंतेण।
सरसइ-सुरहीए पयं पियं सिरिदेवसेणण ॥१०।१॥

मंगल-स्तवनके अनन्तर कविने गुरु विमलसेनका स्तवन किया है। पूर्वकालीन कवियोंका उल्लेख करनेके पश्चात् सज्जन-दुर्जनका स्मरण किया गया है। काव्यमें मगध, राजगृह आदिके काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते हैं। श्रृङ्गार, वीर और भयानक रसोंका सांगोपांग चित्रण हुआ है।

युद्ध-वर्णन तो कविका अत्यन्त सजीव है। युद्धकी अनेक क्रियाओंको अभिव्यक्त करनेके लिए तदनुकूल शब्दोंकी योजना की गई है। झर-झर रुधिरका बहना, चर-चर चर्मका फटना, कड़-कड़ हड्डियोंका टूटना या मुड़ना आदि वाक्य युद्धके दृश्यका सजीव चित्र उपस्थित करते हैं—

असि णिहसण उट्ठिय सिहि जालइं, जोह मुक्क जालिय सर जालइं।
पहरि-पहरि आमिल्लिय सद्दइं, अरि वर घड थक्कय सम्मद्दइं।
झरझरंत पवहिय वहुस्तइं णं कुसंभ रय राएँ रत्तइं।
चरयरंत फाडिय चल चम्मइं, कसमसंत चरिय तणु वम्मइं।
कडयडंत मोडिय घण हड्डइं, मंस खण्ड पोसिय भेरुंडइं।
दडदडंत धाविय वहुरुंडइं, हुंकरंत धरणि वडिय मुंडइं।६।११

कविने जय और अर्ककीर्त्तिके युद्धवर्णन प्रसंगमें भुजंगप्रयातछन्द द्वारा योद्धाओंकी गतिविधिका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है—

भडो को वि खग्गेण खग्गं खलंतो, रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणंतो।
भडो को वि वाणेण वाणो दलंतो, समद्धाइउ दुद्धरो णं कयंतो।
भडो को वि कोंतेण कोंतं सरंतो, करे गीढ चक्को अरी संपहुंतो।
भडो को वि खंडेहिं खंडी कयंगो, भडंतं णमुक्को संगालो अभंगो।
भडो को वि संगामभूमी घुलंतो, विवण्णोहु गिद्धावली णीअ अंतो।
भडो को वि घाएण णिव्वट्ट सीसो, असी वावरेई अरी साण भीसो।
भडो को वि रत्तप्पवाहे तरंतो, फुरंतप्पएणं तडि सिग्घपत्तो।
भडो को वि हत्थी विसाणेहिं भिण्णे, भडो को वि कंठद्धछिण्णो णिसण्णो। ६।१२

कविने तीर्थंकर आदिनाथके साथ देखादेखी दीक्षा ग्रहण करनेवाले राजाओंके भ्रष्ट होनेपर उनके चरित्रका बहुत ही सुन्दर अंकन किया है। जो तपस्या

कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष देनेवाली है उस तपस्याका पाखण्डी लोग दुरुपयोग करते हैं और वे मनमाने ढंगसे पन्थ और सम्प्रदायोंका प्रवर्त्तन करते हैं।

कविने अपनी भाषा-शैलीको सशक्त बनानेके लिए अनुरणात्मक शब्दोंका प्रयोग किया है। इन बन्धोंके पढ़ते ही शब्दोंका रूपचित्र प्रस्तुत हो जाता है।

अठारहवीं सन्धिमें 'दोहयम' छन्दका प्रयोग किया है। तुकप्रेमके कारण दोहेके प्रथम और तृतीय चरणमें भी तुक मिलाई गयी है। यहाँ अनुरणात्मक बन्धोंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

उम उमिय उमरु वसयागहिर सद्दाइं, दों दों तिकय दिविलु उट्ठियणिणद्दाइं।
भं भंत उच्च सर भेरी धहीराइं, घण घायरुण रुणिय जय घंट साराइं।
कडरडिय करडेहिं भुवणेक्कपूराइं, घुम घुमिय मद्दलहिं वज्जियइं तूराइं।६।१०

यह 'सुलोयणाचरिउ' अपभ्रंशका शास्त्रीय महाकाव्य है। इसमें माधुर्य, प्रसाद और ओज इन तीनों गुणोंके साथ सभी प्रमुख अलङ्कारोंकी योजना की गयी है। छन्दोंमें, खंडय, जंभेट्टिया, दुवई, उवखंडय, आरणाल, गलिलय, दोहय, वस्तु, मंजरी आदि छन्द सन्धियोंके प्रारम्भमें प्रयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त पद्धडिया, पादाकुलक, समानिका, मदनावतार, भुजगप्रयात, सग्गिणी, कामिनी, विज्जुमाला, सोमराजी, सरासणी, णिसेणी, वसंतचच्चर, द्रुतमध्या, मन्दरावली, मदनशेखर आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

भावोंकी अभिव्यंजना भी सशक्त रूपमें की गयी है। युद्धके समयकी सुलोचनाकी विचारधाराका कवि वर्णन करता हुआ कहता है—

इमं जंपिऊणं पउत्तं जयेणं, तुमं एह कण्णा मनोहारवण्णा।
सुरक्खेह णूणं पुरेणेह ऊणं, तउ जोह लक्खा अणेय असंखा॥

× × × ×

पिय तत्थ रम्मोवरे चित्तकम्मे, अरंभीय चिंता सुउ हुल्लवत्ता।
णियं सोययंती इणं चिंतवंती, अहं पावयम्मा अलज्जा अधम्मा॥

इस प्रकार चिन्ता, रोष, सहानुभूति, ममता, राग, प्रेम, दया आदिकी सहज अभिव्यंजना की गयी है।

अमरकीर्त्ति गणि

अपभ्रंश-काव्यके रचयिताओंमें अमरकीर्त्ति गणिका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कविकी मुनि, गणि और सूरि उपाधियाँ थीं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे गृह-

स्थाश्रम त्यागकर दीक्षित हो गये थे। उनकी गुरुपरम्परासे अवगत होता है कि वे माथुरसंघी चन्द्रकीर्त्तिके मुनीन्द्रके शिष्य थे। गुरुपरम्परा निम्न प्रकार है—

अमितगति
|
शान्तिसेन
|
अमरसेन
|
श्रीषेण
|
चन्द्रकीर्त्ति
|
अमरकीर्त्ति

इस गुरु-परम्परासे ज्ञात होता है कि महामुनि आचार्य अमितगति इनके पूर्व पुरुष थे, जो अनेक शास्त्रोंके रचयिता, विद्वान् और कवि थे। अमरकीर्त्तिने इन्हें 'महामुनि', 'मुनिचूड़ामणि', 'शमशीलघन' और 'कीर्त्तिसमर्थ, आदि विशेषणोंसे विभूषित किया है। अमितगति अपने गुणों द्वारा नृपतिके मनको आनन्दित करनेवाले थे। ये अमितगति प्रसिद्ध आचार्य अमितगति ही हैं, जिनके द्वारा धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह और भावनाद्वात्रिंशिका जैसे ग्रंथ लिखे गये हैं।

अमितगतिने अपने सुभाषितरत्नसन्दोहमें अपनेको 'शम-दम-यम-मूर्त्ति', 'चन्द्रशुभोरुकीर्त्ति' कहा है तथा धर्मपरीक्षामें 'प्रथितविशदकीर्त्ति' विशेषण लगाया है।

अमितगतिके समयमें उज्जयिनीका राजा मुंज बड़ा गुणग्राही और साहित्य-प्रेमी था। वह अमितगतिके काव्योंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें मान्यता प्रदान की। यद्यपि अमितगति दिगम्बर मुनि थे, उन्हें राजा-महाराजाओं-की कृपाकी आवश्यकता नहीं थी; पर अमितगतिकी काव्य-प्रतिभाके वैशिष्ट्यके कारण मुंज अमितगतिका सम्मान करता था। इन्हीं अमितगतिकी पाँचवीं पीढ़ीमें लगभग १५०–१७५ वर्षोंके पश्चात् अमरकीर्त्ति हुए। अमरकीर्त्तिने शान्तिसेन गणिकी प्रशंसामें बताया है कि नरेश भी उनके चरणकमलोंमें प्रणमन करते थे। श्रीषेणसूरि वादिरूपी वनके लिए अग्नि थे। और इसी तरह चन्द्रकीर्त्ति वादिरूपी हस्तियोंके लिए सिंह थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि अमरकीर्त्तिकी परम्परामें बड़े-बड़े विद्वान् मुनि हुए हैं।

अमरकीर्त्तिका व्यक्तित्व दिगम्बर-मुनिका व्यक्तित्व है। वे संयमी, जितेन्द्रिय, शीलशिरोमणि, यशस्वी और राजमान्य थे। उनके त्याग और वैदुष्यके समक्ष बड़े-बड़े राजागण नतमस्तक होते थे। वस्तुतः अमरकीर्त्ति भी अपनी गुरु-परम्पराके अनुसार प्रसिद्ध कवि थे।

अमरकीर्त्तिने अपनी गुरु-परम्परामें हुए चन्द्रकीर्त्ति मुनिको अनुज, सहोदर और शिष्य कहा है। इससे यह ध्वनित होता है कि चन्द्रकीर्त्ति इनके सगे भाई थे।

स्थितिकाल

कविने 'षट्कर्मोपदेश' ग्रंथकी प्रशस्तिमें इस ग्रंथका रचनाकाल वि० सं० १२४७ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी गुरुवार बताया है—

> बारह-सयहं ससत्त-चयालिंहि विक्कम-संवच्छरहु विसालहिं।
> गयहिंमि भद्दवयहु पक्खंतरि गुरुवारम्मि चउद्दिसि-वासरि।
> इक्कें मासें इहु सम्मत्तिउ सहं लिहियउ आलसु अवहत्थिउ। १४।१८

कविके समयमें गोध्रामें चालुक्यवंशीय नृप वंदिग्गदेवके पुत्र कृष्णनरेन्द्रका राज्य था। इतिहाससे सिद्ध है कि इस समय गुजरातमें सोलंकीवंशका राज्य था. जिसकी राजधानी अनहिलवाड़ा थी। पर इस वंशके वंदिग्गदेव और उनके पुत्र कृष्णका कोई उल्लेख नहीं मिलता। भीम द्वितीयने अनहिलवाड़ाके सिंहासन·पर वि० सं० १२३६ से १२९९ तक राज्य किया। उनसे पूर्व वहाँ कुमारपालने सं० १२०० से १२३१, अजयपालने १२३१ से १२३४ और मूल-राज द्वितीयने १२३४ से १२३६ तक राज्य किया था।[1]

भीम द्वितीयके पश्चात् वहाँ सोलंकीवंशकी एक शाखा बाघेरवंशकी प्रतिष्ठित हुई, जिसके प्रथम नरेश विशालदेवने वि० सं० १३०० से १३१८ तक राज्य किया। अनहिलवाड़ामें वि० सं० १२२७ से ही इस वंशका बल बढ़ना आरंभ हुआ था। इस वर्षमें कुमारपालकी माताकी बहिनके पुत्र अर्णराजने अनहिलवाड़ाके निकट बाघेला ग्रामका अधिकार प्राप्त किया था। ज्ञात होता है कि चालुक्यवंशकी एक शाखा महीकांठा प्रदेशमें प्रतिष्ठित थी और गोदहरा या गोध्रा नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। कविने वहाँके कृष्ण नरेन्द्रका पर्याप्त वर्णन किया है। वे नीतिज्ञ, बाहरी और भीतरी शत्रुओंके विनाशक और

---

१. डॉ० प्रो० हीरालालजी : अमरकीर्ति गणि और उनका षट्कर्मोपदेश, जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण ३, पृ० ८३।

षड्दर्शनके सम्मानकर्त्ता थे। क्षात्रधर्मके साथ धर्म, परोपकार और दानमें उनकी प्रवृत्ति थी। उनके राज्यमें दुःख, दुर्भिक्ष और रोग कोई जानता ही न था। इस प्रकार ऐतिहासिक निर्देशोंसे भी कविका समय षट्कर्मोपदेशमें उल्लिखित समयके साथ मिल जाता है।

गुरुपरम्पराके अनुसार भी यह समय घटित हो जाता है। अमितगति आचार्यका समय वि० सं० १०५० से १०७३ तक है। इनकी पाँचवीं पीढ़ीमें अमरकीर्त्ति हुए हैं। यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय ३० वर्ष भी माना जाय, तो अमरकीर्त्तिका समय वि० सं० १२२३ के लगभग जन्मकाल आता है। षट्कर्मोपदेशकी रचनाके समय कविकी उम्र २५-३० वर्ष भी मान ली जाय, तो षट्कर्मोपदेशके रचनाकालके साथ गुरुपरम्पराका समय सिद्ध हो जाता है। अतएव कवि अमरकीर्त्तिका समय वि० की १३वीं शती सुनिश्चित है।

'षट्कर्मोपदेश' में कविकी आठ रचनाओंका उल्लेख प्राप्त होता है। लिखा है—

परमेसरपइं णवरस-भरिउ विरइयउ णेमिणाहहो चरिउ।
अण्णु वि चरित्तु सव्वत्थ सहिउ पयडत्थु महावीरहो विहिउ।
तीयउ चरित्तु जसहर णिवासु पद्धडिया-बंधें किय पयासु।
टिप्पणउ धम्मचरियहो पयडु तिह विरइउ जिह बुज्झेइ जडु।
सक्कय-सिलोय-विहि-जणियविहो गुंफियउ सुहासिय-रयण-णिहो।
धम्मोवएस-चूडामणिक्खु तह झाणपईउ जि झाणसिक्खु।
छक्कम्मुवएसें सहुं पबंध किय अट्ठ संख सइं सच्चसंध। ६।१०

अर्थात् नवरसोंसे युक्त 'णेमिणाहचरिउ', श्लेष अर्थ युक्त 'महावीरचरिउ', पद्धड़िया छन्दमें लिखित 'जसहरचरिउ', जड़ बुद्धियोंको भी बोध प्रदान करने वाला 'धर्मचरित' का टिप्पण, संस्कृत-श्लोकोंकी विधि द्वारा आनन्द उत्पन्न करनेवाला 'सुभाषितरत्ननिधि', 'धर्मोपदेशचूड़ामणि', ध्यानकी शिक्षा देनेवाला 'ध्यानप्रदीप' और षट्कर्मोंका परिज्ञान करानेवाला 'षट्कर्मोपदेश' ग्रंथ लिखे हैं। इस आधार पर कविकी निम्नलिखित रचनाएँ सिद्ध होती हैं—

१. णेमिणाहचरिउ (नेमिनाथचरित)
२. महावीर-चरिउ (महावीर-चरित)
३. जसहर-चरिउ (यशोधरचरित)
४. धर्मचरित-टिप्पण
५. सुभाषितरत्न-निधि

६. धर्मोपदेश-चूडामणि (धम्मोवएसचूडामणि)
७. ध्यान-प्रदीप (झाणपईउ)
८. छक्कम्मुवएस (षट्कर्मोपदेश)

णेमिणाहचरिउ

इस ग्रंथमें २५ सन्धियाँ है, जिनकी श्लोकसंख्या लगभग ६,८९५ है। इसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथका जीवन-चरित गुम्फित है। प्रसंगवंश कृष्ण और उनके चचेरे भाइयोंका भी जीवन-चरित पाया जाता है। इस ग्रंथको कविने वि० सं० १२४४ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको समाप्त किया है। वि० सं० १५१२ की इसकी प्रति सोनागिरके भट्टारकीय शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है।

षट्कर्मोपदेश—इस ग्रंथमें १४ सन्धियाँ और २१५ कड़वक हैं। इसका कुल प्रमाण २०५० श्लोक है। कविने इस ग्रंथमें गृहस्थोंके षट्कर्मों—१. देवपूजा, २. गुरुसेवा, ३. स्वाध्याय, ४. संयम, ५. षट्कायजीवरक्षा और ६. दानका कथन किया है। विविध कथाओंके सरस विवेचन द्वारा सात तत्त्वोंको स्पष्ट किया गया है। द्वितीय सन्धिसे ९वीं सन्धि तक देवपूजाका विवेचन आया है और उसे नूतनकथारूप दृष्टान्तोंके द्वारा सुगम तथा ग्राह्य बना दिया गया है। दशवीं सन्धिमें जिनपूजाकी कथा दी गई है। और उसकी विधि बतलाकर उद्यापनविधिका भी अंकन किया गया है। ११वीं सन्धिसे १४वीं सन्धि तक इन चार सन्धियोंमें पूजा-विधिके अतिरिक्त शेष पाँच कर्मोंका विवेचन किया गया है। षट्कर्मोपदेशकी रचनाके प्रेरक अम्बाप्रसाद बतलाये गये हैं। ये नागरकुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम गुणपाल और माताका नाम चर्चिणी था। यह ग्रंथ उन्हींको समर्पित किया गया है। प्रत्येक सन्धिके समाप्तिसूचक पुष्पिकावाक्यमें इनका नाम स्मरण किया है। कहीं-कहीं अमरकीर्तिने अम्बाप्रसादको अपना लघु बन्धु और अनुजबन्धु भी कहा है। इससे अनुमान होता है कि कवि अमरकीर्त्ति भी इसी कुलमें उत्पन्न हुए थे और अम्बाप्रसादके बड़े भाई थे।

कविने इस ग्रंथकी समाप्ति गुर्जर विषयके मध्य महीयड (महीकांठा) देशके गोदह्य (गोधा) नामक नगरके आदीश्वर चैत्यालयमें बैठकर की है। स्पष्टतः 'गुर्जर' गुजरात प्रान्तका बोधक है। अतएव 'महीयड' देश वर्त्तमान महीकांठा और 'गोदह्य' नगर वर्त्तमान गोधाका बोधक है। अम्बाप्रसाद संभवतः इसी गोधाके निवासी थे।

कविकी शेष रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

मुनि कनकामर

मुनि कनकामरने 'करकंडुचरिउ'के आदि और अन्तमें अपने गुरुका नाम पंडित या बुधमंगलदेव बताया है। अन्तिम प्रशस्तिमें कहा है कि वे ब्राह्मण वंशके चन्द्रऋषिगोत्रीय थे। जब विरक्त होकर वे दिगम्बर मुनि हो गये, तो उनका नाम कनकामर प्रसिद्ध हुआ। श्री डॉ० हीरालालजी जैनने बताया है कि पट्टावलियोंके अनुसार सुहस्तिके शिष्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध द्वारा स्थापित कोटिकगणकी वैरिशाखाका एक कुल चन्द्रनामक हुआ। चन्द्रकुलके भी अनेक अन्वय और गच्छ हुए। उत्तराध्ययनकी शिष्यहिता नामक वृत्तिके कर्त्ता शान्ति-सूरि चन्द्रकुलके काठकरान्वयसे उत्पन्न थारापद्र-गच्छके थे और सुखबोधटीका-के कर्त्ता देवेन्द्र गणि भी चन्द्रकुलके थे। किन्तु ये सब श्वेताम्बर परम्पराके भेद-प्रभेद हैं, दिगम्बर परम्पराके नहीं। मुनि कनकामर दिगम्बर मुनि थे। अतएव कनकामरका चन्द्रऋषिगोत्र देशीगणके चन्द्रकराचार्याम्नायके अन्तर्गत है। इतिहाससे यह सिद्ध है कि चन्देल नरेशोंने भी अपनेको चन्द्रात्रेयऋषि-वंशी कहा है। अतः बहुत संभव है कि चन्द्रकराचार्याम्नाय चन्देलवंशी राज-कुलमेंसे ही हुए किसी जैन मुनिने स्थापित किया हो। स्वयं कनकामर भी इसी कुलके रहे हों।

कविकी गुरुपरम्पराके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। अन्तिम प्रशस्तिमें उन्होंने अपनेको बुधमंगलदेवका शिष्य कहा है। श्री डॉ० हीरालाल जी जैनने[1] रत्नाकर या धर्मरत्नाकर नामक संस्कृत-ग्रंथके रचयिता पं० मंगल-देवको कहा है। इस ग्रंथकी पाण्डुलिपियाँ जयपुर और कारंजामें प्राप्त हैं। जयपुरकी प्रतिमें पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार है—

"सं० १६८० वर्षे काष्ठासंघे नन्दतटग्रामे भट्टारकश्रीभूषणशिष्यपंडित-मंगलकृतशास्त्ररत्नाकरनाम शास्त्र सम्पूर्ण।"

इससे डॉ० जैनने यह अनुमान लगाया है कि सं० १६८० ग्रंथ-रचनाका काल नहीं, लेखनका काल है। कारंजाके शास्त्रभंडारकी प्रतिमें उसका लेखनकाल १६६७ अंकित किया है। काष्ठासंघ और नन्दीतट ग्रामका प्राचीन-तम उल्लेख देवसेनकृत दर्शनसार गाथा ३८ में प्राप्त होता है, जहाँ वि० सं० ७५३ में नन्दितटग्राममें काष्ठासंघकी उत्पत्ति बताई गई है। यदि कनकामरके

---

१. डॉ० हीरालाल : चरिउकरकंडु, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् १९६४, प्रस्तावना पृ० १३।

कालके समीप श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेवका अस्तित्व सिद्ध हो जाय, तो उनकी परम्परा काष्ठासंघ और नन्दितट ग्रामके साथ जोड़ी जा सकती है।

'करकंडुचरिउ'की रचना 'आसाइय'नगरीमें रहकर कविने की है। कारंजा-की प्रतिमें 'आसाइय' नगरी पर 'आशापुरी' टिप्पण मिलता है, जिससे जान पड़ता है कि उस नगरीको आशापुरी भी कहते थे।

इटावासे ९ मीलकी दूरी पर आसयखेड़ा नामक ग्राम है। यह ग्राम जैनियों-का प्राचीन स्थान है। आसइ गाँव एक ऊँचे खेड़ेपर बसा हुआ है, जिसके पश्चिमी ओर विशाल खण्डहर पड़े हुए हैं। उस पर बहुत दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ बिखरी हुई मिलती हैं। यह आसाइय ग्राम अपने दुर्गके लिए प्रसिद्ध था। इसे चन्द्रपालने बनवाया था। मुनि कनकामरने आसाइय नगरीमें आकर अपने 'करकंडुचरिउ' की रचना की थी, जहाँके नरेश विजयपाल, भूपाल और कर्ण थे। अतः संभव है कि यह असाइयनगरी वर्त्तमान आसयखेड़ा ही हो।

ई० सन् १०१७में मुहम्मद तुगलकने मथुरासे कन्नौज तक आक्रमण किया था। इटावाके पास मुंजके किलेमें हिन्दुओंसे उसका जबरदस्त संघर्ष हुआ। वहाँसे सुल्तानने आसइके दुर्गपर आक्रमण किया। उस समय आसइका शासक चाण्डाल भोर था। मुसलमानलेखकोंने लिखा है कि मुहम्मद तुगलकने पाँचों किलोंको गिरवाकर मिट्टीमें मिला दिया। अतः यह संभव नहीं कि ई० सन् १०१७के पश्चात् कनकामर उसका उल्लेख नगरीके रूपमें करें।

डॉ० जैनने भोपालके समीप आसापुरीनामक ग्रामका उल्लेख किया है। वहाँ आशापुरीदेवीकी असाधारण मूर्त्ति विद्यमान है। संभवतः इसीपरसे इस ग्रामका नाम आशापुर पड़ा होगा। वहाँ एक जैन मन्दिरके भी भग्नावशेष प्राप्त हैं। उनमें एक १६ फुट ऊँची शान्तिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा भी है। डॉ० जैन इसी आशापुरीको कनकामरके द्वारा उल्लिखित आसाइय मानते हैं।

स्थितिकाल

कवि कनकामरने ग्रंथके रचनाकालका उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने अपने-से पूर्ववर्त्ती सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदन्तका उल्लेख किया है। पुष्पदन्तने अपना महापुराण ई० सन् ९६५में समाप्त किया था। अतएव करकंडुचरिउकी रचना ई० सन् ९६५के पहले नहीं हो सकती है। इस ग्रंथकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति वि० सं० १५०२को उपलब्ध है। अतः कविका समय सं० १५०२के पश्चात् भी नहीं हो सकता है।

'करकंडुचरिउ'की अन्तिम प्रशस्तिमें विजयपाल, भूपाल और कर्ण इन तीन राजाओंका उल्लेख आता है। इतिहास बतलाता है कि विश्वामित्र-गोत्रके क्षत्रीयवंशमें विजयपाल नामके एक राजा हुए, जिनके पुत्र भुवनपाल थे। उन्होंने कलचुरी, गुर्जर और दक्षिणको जीता था। एक अन्य अभिलेखसे बाँदा जिलेके अन्तर्गत चन्देलोंकी राजधानी कालिजरका निर्देश मिलता है। इसमें विजयपालके पुत्र भूमिपालका तथा दक्षिण दिशा और कर्णराजाको जीतनेका उल्लेख है। एक अन्य अभिलेख जबलपुर जिलेके अन्तर्गत तावरमें मिला है। उसमें भूमिपालके उत्पन्न होनेका उल्लेख आया है। तथा किसी सम्बन्धमें त्रिपुरी और सिंहपुरीका भी निर्देश है। यह अभिलेख ११वीं-१२वीं शताब्दीका अनुमान किया गया है। इन लेखोंके विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल या भूमिपाल तथा हमारे ग्रन्थके विजयपाल और भूमिपाल एक ही हैं। कर्ण नरेन्द्रका समावेश भी इन्हीं अभिलेखोंमें हो जाता है।

डॉ० जैनने इतिहासके आलोकमें विजयपाल, कीर्त्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण इन तीनों राजाओंका अस्तित्व ई० सन् १०४०–१०५१के आस-पास बतलाया है। अतः करकंडुचरिउका रचनाकाल ग्यारहवीं शतीका मध्यभाग सिद्ध होता है। प्रशस्तिके अनुसार पुष्पदन्तके पश्चात् अर्थात् ९६५ ई० के अनन्तर और १०५१ ई० के पूर्व कनकामरका समय होना चाहिए। वि० सं० १०९७ के लगभग कालिजरमें विजयपाल नामक राजा हुआ। यह प्रतापी कलचुरीनरेश कर्णदेवका समकालीन था। इसके पुत्र कीर्त्तिवर्माने कर्णदेवको पराजित किया था। अतएव मुनि कनकामरका समय वि० की १२वीं शताब्दी है।[१]

'करकंडुचरिउ' १० सन्धियोंमें विभक्त है। इसमें करकण्डु महाराजकी कथा वर्णित है। कथाका सारांश निम्न प्रकार है—

अंगदेशकी चम्पापुरी नगरीमें धाड़ीवाहन राजा राज्य करता था। एक बार वह कुसुमपुरको गया और वहाँ पद्मावती नामकी एक युवतीको देखकर उसपर मोहित हो गया। युवतीका संरक्षक एक माली था, जिससे बातचीत करनेपर पता लगा कि यह युवती यथार्थमें कोशाम्बीके राजा वसुपालकी पुत्री है। जन्म समयके अपशकुनके कारण पिताने उसे यमुना नदीमें प्रवाहित कर दिया था। राजपुत्री जानकर धाड़ीवाहनने उसका पाणिग्रहण कर लिया। और उसे चम्पापुरीमें ले आया। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हुई और उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि मन्द-मन्द बरसातमें वह नररूप धारण करके अपने

१. करकंडुचरिउ, प्रस्तावना पृ० ११-१२।

पतिके साथ एक हाथीपर सवार होकर नगरका परिभ्रमण करे। राजाने रानीका दोहलापूर्ण करनेके लिए वैसा ही प्रबन्ध किया, पर दुष्ट हाथी राजा-रानीको लेकर जंगलकी ओर भाग निकला। रानीने समझा-बुझाकर राजाको एक वृक्षकी डाली पकड़कर अपने प्राण बचानेके लिए राजी कर लिया। और स्वयं उस हाथीपर सवार रहकर जंगलमें पहुँची। वह हाथी एक जलाशयमें घुसा। रानीने कूदकर अपने प्राण बचाये। जब वह बनमें पहुँची, तो सूखा हुआ वह बन हरा-भरा हो गया। इस समाचारको प्राप्तकर वनमाली वहाँ आया और उसे बहन बनाकर अपने साथ ले गया। मालिनको पद्मावतीके रूपपर ईर्ष्या हुई और उसने किसी बहानेसे उसे अपने घरसे निकाल दिया। निराश होकर रानी श्मशानभूमिमें आई और वहीं उसे पुत्र उत्पन्न हुआ।

मुनिके अभिशापसे मातंग बने हुए विद्याधरने उस पुत्रको ग्रहण कर लिया और अभिशापकी बात बतलाकर रानीको उसने आश्वस्त किया। मातंगने उस बालकको शिक्षित किया। हाथमें कंडु—सूखी खुजली होनेके कारण उसका नाम 'करकंडु' पड़ गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब दन्तीपुरके राजाका परलोकवास हो गया। मन्त्रियोंने दैवी विधिसे उत्तराधिकारीका चयन करना चाहा और इस विधिमें करकंडुको राजा बना दिया गया।

करकंडुका विवाह गिरिनगरकी राजकुमारी मदनावलीसे हुआ। एक बार उसके दरबारमें चम्पाके राजाका दूत आया, जिसने उससे चम्पानरेशका आधिपत्य स्वीकार करनेकी प्रेरणा की। करकंडु क्रोधित हुआ और उसने तत्काल चम्पापर आक्रमण कर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने लगा। अन्तमें पद्मावतीने रणभूमिमें उपस्थित होकर पिता-पुत्रका सम्मेलन करा दिया। धाड़ीवाहन पुत्ररत्नको प्राप्त कर बहुत हर्षित हुआ और वह चम्पाका राज्य करकंडुको सौंप दीक्षित हो गया। एक बार करकंडुने द्रविड़ देशके चोल, चेर और पाण्ड्य नरेशोंपर आक्रमण किया। मार्गमें वह तेरापुर नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा शिवने भेंट की और आकर बताया कि वहाँसे पास ही एक पहाड़ीके चढ़ावपर एक गुफा है तथा उसी पहाड़ीके ऊपर एक भारी बामी है, जिसकी पूजा प्रतिदिन एक हाथी किया करता है। यह सुनकर करकंडु शिवराजाके साथ उस पहाड़ीपर गया। उसने गुफामें भगवान् पार्श्वनाथका दर्शन किया और ऊपर चढ़कर बामीको भी देखा। उनके समक्ष ही हाथीने आकर कमल-पुष्पोंसे उस बामीकी पूजा की। करकंडुने यह जानकर कि अवश्य ही यहाँ कोई देव-मूर्ति होगी, उस बामीको खुदवाया। उसका अनु-

मान सत्य निकला। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्त्ति निकली, जिसे बड़ी भक्तिसे उसी गुफामें ले आये। इस बार करकंडुने पुरानी प्रतिमाका अवलोकन किया। सिंहासनपर उन्हें एक गाँठ-सी दिखलाई पड़ी, जो शोभाको बिगाड़ रही थी। एक पुराने शिल्पकारसे पूछनेपर उसने कहा कि जब यह गुफा बनाई गई थी, तब वहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेके लिए ही वह गाँठ दी गई है। करकंडुको जल वाहिनीके दर्शनका कौतुल उत्पन्न हुआ और शिल्पकारको बहुत रोकने पर भी उसने उस गाँठको तोड़वा डाला। गाँठके टूटते ही वहाँ एक भयंकर जलप्रवाह निकल पड़ा, जिसे रोकना असंभव हो गया। गुफा जलसे भर गई। करकंडुको अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। निदान एक विद्याधरने आकर उसका सम्बोधन किया, उस प्रवाहको रोकनेका वचन दिया तथा उस गुफाके बननेका इतिहास भी कह सुनाया।

इस इतिहासके सुननेके अनन्तर करकंडुने वहाँ दो गुफाएँ और बनवाई। इसी बीच एक विद्याधर हाथीका रूप धरकर आया और करकंडुको भुलाकर मदनावलीको हरकर ले गया।

करकंडु सिंहलद्वीप पहुँचा और वहाँको राजपुत्री रतिवेगाका पाणिग्रहण किया। जब वह जलमार्गसे लौट रहा था, तो एक मच्छने उसकी नौकापर आक्रमण किया। वह उसे मारने समुद्रमें कूद पड़ा। मच्छ मारा गया, पर वह नावपर न आ सका। उसे एक विद्याधरपुत्री हरकर ले गयी। रतिवेगाने किनारेपर आकर, शोकसे अधीर हो पूजा-पाठ प्रारंभ किया जिससे पद्मावतीने प्रकट हो उसे आश्वासन दिया। उधर विद्याधरीने कररंडुसे विवाह कर लिया और नववधु सहित रतिवेगासे आ मिला।

करकंडुने चोल, चेर और पांड्य नरेशोंकी सम्मिलित सेनाका सामना किया और उन्हें हराकर प्रण पूरा किया। जब वह लौटकर पुनः तेरापुर आया, तो कुटिल विद्याधरने मदनावलीको लाकर सौंप दिया। वह चम्पापुरी आकर सुख-पूर्वक राज्य करने लगा।

एक दिन वनमालीने आकर सूचना दी कि नगरके उपवनमें शीलगुप्त नामक मुनिराज पधारे हैं। राजा अत्यन्त भक्तिभावसे पुरजन-परिजन सहित उनके चरणोंमें उपस्थित हुआ और अपने जीवनसम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे। राजा मुनिराजसे अपने पूर्व जन्मोंकी कथाओंको सुनकर विरक्त हो गया और अपने पुत्र वसुपालको राज्य दे मुनि बन गया। रानियाँ और माता पद्मावती भी आर्यिका हो गईं। करकंडुने घोर तपश्चरणकर मोक्ष प्राप्त किया।

चरितनायककी कथाके अतिरिक्त अवान्तर ९ कथाएँ भी आयी हैं। प्रथम-

चार कथाएँ द्वितीय सन्धिमें वर्णित हैं। इनमें क्रमशः मन्त्रशक्तिका प्रभाव, अज्ञानसे आपत्ति, नीचसंगतिका बुरा परिणाम और सत्संगतिका शुभ परिणाम दिखाया गया है। पाँचवीं कथा एक विद्याधरने मदनावलीके विरहसे व्याकुल करकंडुको यह समझानेके लिए सुनाई कि वियोगके बाद भी पति-पत्नीका सम्मिलन हो जाता है। छठी कथा पाँचवीं कथाके अन्तर्गत ही आई है। सातवीं कथा शुभ शकुनका फल बतलानेके लिये कही गई है। आठवीं कथा पद्मावतीने समुद्रमें विद्याधरी द्वारा करकंडुके हरण किये जानेपर शोकाकुला रतिवेगाको सुनाई है। नवीं कथा आठवीं कथाका प्रारंभिक भाग है, जो एक तोतेकी कथा-के रूपमें स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है।

ये कथाएँ मूलकथाके विकासमें अधिक सहायक नहीं हो पातीं। इनके आधारपर कविने कथावस्तुको रोचक बनानेका प्रयास किया है। वस्तुमें रसो-त्कर्ष, पात्रोंको चरित्रगत विशेषता और काव्योंमें प्राप्य प्राकृतिक दृश्योंके वर्णनके अभावको कविने भिन्न-भिन्न कथाओंके प्रयोग द्वारा पूरा करनेका प्रयत्न किया है।

करकंडुचरिउ धार्मिक कथा-काव्य है। इसमें अलौकिक और चमत्काकपूर्ण घटनाओंके साथ काव्यतत्त्व भी प्रचुररूपमें पाये जाते हैं।

इस काव्यमें मानव-जगत और प्राकृतिक-जगत दोनोंका वर्णन पाया जाता है। करकंडुके दन्तिपुरमें प्रवेश करनेपर नगरकी नारियोंके हृदयकी व्यग्रता विचित्र हो जाती है। यह वर्णन काव्यकी दृष्टिसे बहुत ही सरस और आक-र्षक है—

तहिँ पुरवरि खुहियउ रमणियाउ झाणट्ठिय-मुणि-मण-दमणियाउ।
क वि रहसइँ तरलिय चलिय णारि, विहुउप्फउ संठिय का वि दारि।
क वि धावइ णवणिव णेहलुद्ध परिहाणु ण गलियउ गणइ मुद्ध।
क वि कज्जलु बलहउ अहरे देइ णयणुल्लएँ लक्खारसु करेइ।
णिग्गंथवित्ति क वि अणुसरेइ विवरीउ डिंभु क वि कडिहिँ लेइ।
क वि णेउरु करयलि करइ बाल, सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णिय-णंदणु मण्णिवि क वि वराय मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।
क वि धावइ णवणिउ मणे धरंति विहलंघल मोहइ घर सरंति।
घत्ता—क वि माणमहल्ली मयणभर करकंडुहो समुहिय चलिय।
थिर-थोर-पओहरि मयणयण उत्तत्त-कणयच्छवि उज्जलिय॥२॥

अर्थात् करकंडुके आगमनपर ध्यानावस्थित मुनियोंके मनको विचलित

करनेवाली सुन्दरियाँ भी विक्षुब्ध हो उठीं। कोई स्त्री आवेगसे चंचल हो चल पड़ी, कोई विह्वल हो द्वार पर खड़ी हो गई, कोई मुग्धा प्रेमलुब्ध हो दौड़ पड़ी, किसीने गिरते हुए वस्त्रको भी परवाह न की, कोई अधरों पर काजल भरने लगी, कोई आँखोंमें लाक्षारस लगाने लगी, कोई दिगम्बरोंके समान आचरण करने लगी, किसीने बच्चेको उल्टा ही गोदमें ले लिया, किसीने नूपुरको हाथमें पहना, किसीने सिरके स्थानपर कटिप्रदेशपर माला डाल ली और कोई बेचारी बिल्लीके बच्चेको अपना पुत्र समझ सप्रेम छोड़ना नहीं चाहती।········ कोई स्थिर और स्थूल पयोधर वाली, तप्त कनकच्छविके समान उज्ज्वल वर्ण वाली, मृगनयनी, मानिनी कामाकुल हो करकंडुके सामने चल पड़ी।

शीलगुप्त मुनिराजके आगमनपर पुरनारियोंके हृदयमें जैसा उत्साह दिखलाई पड़ता है वैसा अन्यत्र संभव नहीं। कविने लिखा है कि कोई सुन्दरी मानिनी मुनिके चरणकमलमें अनुरक्त हो चल दी, कोई नूपुर-शब्दोंसे झनझन करती हुई मानों मुनिगुणगान करती हुई चल पड़ी। कोई मुनिदर्शनोंका हृदयमें ध्यान धरती हुई जाते हुए पतिका भी विचार नहीं करती। कोई थालमें अक्षत और धूप भरकर बच्चेको ले वेगसे चल पड़ी। कोई सुगन्धयुक्त जाती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, मानों विद्याधरी पृथ्वी पर शोभित हो रही हो।[1]

कवि देश, नगर, ग्राम, प्रासाद, द्वीप, श्मशान आदिके वर्णनमें भी अत्यन्त पटु है। अंगदेशका चित्रण करते समय उसने उस देशको पृथ्वीरूपी नारीके रूपमें अनुभव किया है। इस प्रसंगमें सरोवर, धान्यसे भरे खेत, कृषक बालाएँ, पथिक, विकसित कमल आदिका भी चित्रण किया गया है।[2]

कनकामरने शृंगार, वीर और भयानक रसका अद्भुत चित्रण किया है। नारीरूप-वर्णनमें कविने परम्पराका आश्रय लिया है और परम्पराभुक्त उपमानोंका प्रयोग कर नारीके नख-शिखका चित्रण किया है। पद्मावतीके रूप-चित्रणमें अधरोंकी रक्तिमाका कारण आगे उठी हुई नासिकाको उन्नतिपर अधरोंका कोप कल्पित किया गया है।

रतिवेगाके विलापमें कविने ऊहात्मक प्रसंगोंका प्रयोग किया है। वर्णनमें संवेदनाका बाहुल्य है। इसी प्रकार मदनावलीके विलुप्त होनेपर करकंडुका विलाप भी पाषाणको पिघला देने वाला है।

---

१. करकंडुचरिउ ९।२, ३–७।

२. वही १।३–४–१०।

संसारकी नश्वरता और अस्थिरताका चित्रण करते हुए कविने बताया है कि कालके प्रभावसे कोई नहीं बचता। युवा, वृद्ध, बालक, चक्रवर्त्ती, विद्याधर, किन्नर, खेचर, सुर, अमरपति सब कालके वशवर्त्ती हैं।[1] प्रत्येक प्राणी अपने कर्मोंके लिए उत्तरदायी, वह अकेला ही संसारमें जन्म ग्रहण करता है, अकेला ही दुःख भोगता है और अकेला ही मृत्यु प्राप्त करता है।[2]

करकंडुको प्रयाण करते समय गंगा नदी मिलती है। कविने गंगाका वर्णन जीवन्त रूपमें प्रस्तुत किया है—

गंगापएसु संपत्तएण गंगाणइ दिट्ठी जंतएण।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलवंति, णं सेयभुवंगहो महिल जंति।
दूराउ वहंती अइविहाई, हिमवंत-गिरिंदहो कित्ति णाइँ।
विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हंतएहिँ आइच्चहो जलु परिदितिएहिँ।
दब्भंकियउड्ढहिँ करयलेहिँ णइ भणइ णाइँ एयहिँ छलेहिँ।
हउँ सुद्धिय णियमग्गेण जामि मा रूसहि अम्महो उवरि सामि।

शुभ्र जलयुक्त, कुटिल प्रवाहवाली गंगा ऐसी शोभित हो रही थी, मानों शेषनागकी स्त्री जा रही हो। दूरसे बहती हुई गंगा ऐसी दिखलाई पड़ती थी, जैसे वह हिमवंत गिरीन्द्रकी कीर्त्ति हो। दोनों कूलों पर नहाते हुए और आदित्यको जल चढ़ाते हुए, दर्भसे युक्त ऊँचे उठाये हुए करतलों सहित लोगोंके द्वारा मानों इसी बहानेसे नदी कह रही है "मैं शुद्ध हूँ और अपने मार्गसे जाती हूँ। हे स्वामी! मेरे ऊपर रुष्ट मत होइये।" कविके वर्णनमें स्वाभाविकता है।

कविने भाषाको प्रभावोत्पादक बनानेके लिए भावानुरूप शब्दोंका प्रयोग किया है। पद-योजनामें छन्दप्रवाह भी सहायता प्रदान करता है। ध्वन्यात्मक शब्दोंका प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। कविने विभिन्न प्रकारके छन्द और अलंकारोंकी योजना द्वारा इस काव्यको सरस बनाया है।

महाकवि सिंह

महाकवि सिंह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशीभाषाके प्रकांड विद्वान थे। इनके पिताका नाम रल्हण पंडित था, जो संस्कृत और प्राकृत भाषाके

१. करकंडुचरिउ ९।५।१–१०।
२. वही ९।६।

प्रकाण्ड पण्डित थे। ये गुर्जर कुलमें उत्पन्न हुए थे। कविका परिचय-सूचक पद्य 'पज्जुण्णचरिउ'की १३वीं सन्धिके प्रारंभमें पाया जाता है—

जातः श्रीजिनधर्मकर्म्मनिरतः शास्त्रार्थसर्वप्रियो,
भाषाभिः प्रवणश्चतुर्भिरभवच्छ्रीसिंहनामा कविः।
पुत्रो रल्हण-पण्डितस्य मतिमान् श्रीगूर्जरागोमिह,
दृष्टि-ज्ञान-चरित्रभूषिततनुर्वंशे विशालेऽवनौ॥

इस संस्कृत-पद्यसे स्पष्ट है कि कवि सिंह संस्कृत-भाषाका भी अच्छा कवि था। कविकी माताका नाम जिनमती बताया गया है। कविने इसीकी प्रेरणासे 'पज्जुण्णचरिउ'की रचना की है। कविने काव्यके आरंभमें विनय प्रदर्शित करते हुए अपनेको छन्द-लक्षण, समास-सन्धि आदिके ज्ञानसे रहित बताया है, तो भी कवि स्वभावसे अभिमानी प्रतीत होता है। उसे अपनी काव्य-प्रतिभाका गर्व है। १४वीं सन्धिके अन्तमें दिये गये एक संस्कृत-पद्यसे यह बात स्पष्ट होती है—

साहाय्यं समवाप्य नाम सुकवेः प्रद्युम्नकाव्यस्य यः।
कर्त्ताऽभूद् भवभेदनैकचतुरः श्रीसिंहनामा शमी॥
साम्यं तस्य कवित्वगर्व्वसहितः को नाम जातोऽवनौ।
श्रीमज्जैनमतप्रणीतसुपथे सार्थः प्रवृत्तेः क्षमः॥

कविने अपने सम्प्रदायके सम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं किया। पर ग्रंथके अन्तःपरीक्षण और गुरुपरम्परापर विचार करनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि दिगम्बर सम्प्रदायका था। ग्रंथकी उत्थानिका और कथनशैली भी उक्त सम्प्रदायके काव्यों जैसी ही है। लिखा है—

विउलगिरिहि जिह हयभवकंदहो, समवसरणु, सिरिवीरजिणिंदहो।
णरवरखयरामरसमवाए, गणहरु-पुच्छिउ सेणियराए।
मयरद्धयहो विणिज्जयमारहो, कहहि चरिउ पज्जुण्णकुमारहो।
तं णिसुणेवि भणइ गणेसरु, णिसुणइ सेणिउ मगहणरेसरु॥

कविका वंश गुर्जर था और अपनेको उसने उस गुर्जरकुलरूपी आकाशको प्रकाशित करनेवाला सूर्य लिखा है। कविने अपने पिताका नाम बुध रल्हण या रल्हण बताया है। बुध रल्हणकी शीलादि गुणोंसे अलंकृत जिनमती नामकी पत्नी थी, जिसके गर्भसे कवि सिंहका जन्म हुआ था। कविके तीन भाई थे, जिनमें प्रथमका नाम शुभंकर, द्वितीयका गुणप्रवर और तृतीयका साधारण था। ये तीनों ही भाई धर्मात्मा और सुन्दर थे। ग्रन्थमें बताया है—

तह पय-रउ णिरु उण्णय अमइयमाणु, गुज्जरकुल-णह-उज्जोय-भाणु ।
जो उहयपवरवाणीविलासु, एयंविह विउसहो रल्हणासु ।
तहो पणइणि जिणमइ सुहय-सील, सम्मत्तवंत णं धम्मलील ।
कइ सीहु ताहि गब्भंतरंमि, संभविउ कमलु जह सुर-सरंमि ।
जणवच्छलु सज्जणु जणियहरिसु, सुइवंत तिविह वइरायसरिसु ।
उप्पणु सहोयरु तासु अवरु, नामेण सुहंकरु गुणहंपवरु ।
साहारण लघुवउ तासु जाउ, धम्माणुरत्तु अइदिव्वकाउ ।

कवि सिंहके गुरु मुनिपुंगव भट्टारक अमृतचन्द्र थे । ये तप-तेजरूपी दिवाकर और व्रत, नियम तथा शीलके समुद्र थे । अमृतचन्द्रके गुरु माधवचन्द्र थे । इनकी 'मलधारी' उपाधि थी । यह उपाधि उसी व्यक्तिको प्राप्त होती थी, जो दुर्द्धर परीषहों, विविध उपसर्गों और शीत-उष्णादिकी बाधाओंको सहन करता था । कवि देवसेनने भी अपने गुरु विमलदेवको 'मलधारी' सूचित किया है ।

कवि सिंहका व्यक्तित्व स्वाभिमानी कविका व्यक्तित्व है । वह चार भाषाओंका विद्वान् और आशुकवि था । उसे सरस्वतीका पूर्ण प्रसाद प्राप्त था । वह सत्कवियोंमें अग्रणी, मान्य और मनस्वी था । उसे हिताहितका पूर्ण विवेक था और समस्त विषयोंका विज्ञ होनेके कारण काव्यरचनामें पटु था ।

'पज्जुण्णचरिउ'में सन्धियोंकी पुष्पिकाओमें सिद्ध और सिंह दोनों नाम मिलते हैं । प्रथम आठ सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें सिद्ध और अन्य सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें सिंह नाम मिलता है । अतः यह कल्पना की गई कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्तिके नाम थे । वह कहीं अपनेको सिंह और कहीं सिद्ध कहता है । दूसरी यह कल्पना भी सम्भव है कि सिंह और सिद्ध नामक दो कवियोंने इस काव्यकी रचना की हो, क्योंकि काव्यके प्रारम्भमें सिंहके माता-पिताका नाम और आगे सिद्धके पिताका नाम भिन्न मिलता है । पं० परमानन्दजी शास्त्रीका अनुमान है कि सिद्ध कविने प्रद्युम्नचरितका निर्माण किया था । कालवश यह ग्रन्थ नष्ट हो गया और सिंहने खण्डितरूपसे प्राप्त इस ग्रन्थका पुनरुद्धार किया ।[1]

प्रो० डॉ० हीरालालजी जैनका भी यही विचार है ।[2] ग्रन्थकी प्रशस्तिमें कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि कवि सिद्धकी रचनाके विनष्ट होने और कर्मवशात् प्राप्त होनेकी बात कही गई है—

---

१. महाकवि सिंह और प्रद्युम्नचरित, अनेकान्त, वर्ष ८, किरण १०-११, पृ० ३९१ ।
२. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३ ।

कइ सिद्धहो विरयंतहो विणासु,
संपत्तउ कम्मवसेण तासु,

साथ ही अन्तिम प्रशस्तिके 'परकज्जं परकव्वं विहडंतं जेहि उद्धरियं'से भी उक्त आशयकी सिद्धि होती है। श्री हरिवंश कोछड़ने भी इसी तथ्यको स्वीकार किया है।[1]

स्थितिकाल

कवि सिंहने 'पज्जुण्णचरिउ'के रचनाकालका निर्देश नहीं किया है। पर ग्रन्थ-प्रशस्तिमें बह्मणवाड नगरका वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय वहाँ रणधोरी या रणधीरका पुत्र वल्लाल था, जो अर्णोराजको क्षय करनेके लिये कालस्वरूप था और जिसका माण्डलिकभृत्य गुहिलवंशीय क्षत्रिय भुल्लण बह्मणवाडका शासक था। प्रशस्तिमें लिखा है—

सरि-सर-णंदण-वण-संछण्णउ,
मठ-विहार-जिण-भवण-खण्णउ।
बम्हणवाडउणामें पट्टणु,
अरिणरणाह - सेणदलवट्टणु ।
जो भुंजइ अरिणखयकालहो,
रणधोरियहो सुअहो बल्लालहो।
जासु भिच्चु दुज्जण-मणसल्लणु,
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहि भुल्लणु।

—प्रद्युम्नचरित, प्रशस्ति।

पर इस उल्लेखपरसे राजाओंके राज्यकालको ज्ञातकर कुछ निष्कर्ष निकाल सकना कठिन है।

मन्त्री तेजपाल द्वारा आबूके लूणवसतिचैत्यमें वि० सं० १२८७ के लेखमें मालवाके राजा बल्लालको यशोधवलके द्वारा मारे जानेका उल्लेख आया है। यह यशोधवल विक्रमसिंहका भतीजा था और उसके कैद हो जानेके पश्चात् राजगद्दीपर आसीन हुआ था। यह कुमारपालका माण्डलिक सामन्त अथवा भृत्य था। इस कथनकी पुष्टि अंचलेश्वर मन्दिरके शिलालेखसे भी होती है।

जब कुमारपाल गुजरातकी गद्दीपर आसीन हुआ था, तब मालवाका राजा बल्लाल, चन्द्रावतीका परमार विक्रमसिंह और सपादलक्षसामरका चौहान

१. अपभ्रंश-साहित्य, दिल्ली प्रकाशन, पृ० २२१।

अर्णोराज इन तीनोंने मिलकर कुमारपालके विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। पर उनका प्रयत्न सफल नहीं हो सका। कुमारपालने विक्रमसिंहका राज्य उसके भतीजे यशोधवलको दे दिया, जिसने बल्लालको मारा था। इस प्रकार मालवा-को गुजरातमें मिलानेका यत्न किया गया।[1]

कुमारपालका राज्यकाल वि० सं० ११९९ से १२२९ तक रहा है। अतः बल्लालकी मृत्यु ११५१ ई० (वि० सं० १२०८) से पूर्व हुई है।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि कुमारपाल, यशोधवल, बल्लाल और अर्णोराज ये सब समकालीन हैं। अतः ग्रंथ-प्रशस्तिगत कथनको दृष्टिमें रखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रद्युम्नचरितकी रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी। अतएव कवि सिंहका समय विक्रमकी १२ वीं शतीका अन्तिम पाद या विक्रमकी १३ वीं शतीका प्रारम्भिक भाग है। डॉ० हीरालालजी जैनने 'पज्जुण्णचरिउ'का रचनाकाल ई० सन्‌की १२ वीं शतीका पूर्वार्द्ध माना है। पं० परमानन्दजी और डा० जैनके तथ्योंपर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करनेपर डॉ० जैन द्वारा दिये गये तथ्य अधिक प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

रचना

कविकी एकमात्र रचना प्रद्युम्नचरित है। इसमें २४ कामदेवोंमेंसे २१ वें कामदेव कृष्णपुत्र प्रद्युम्नका चरित निबद्ध किया है। यह १५ सन्धियोंमें विभक्त है। रुक्मिणीसे उत्पन्न होते ही प्रद्युम्नको एक राक्षस उठाकर ले जाता है। प्रद्युम्न वहीं बड़े होते हैं। और फिर १२ वर्ष पश्चात् कृष्णसे आकर मिलते हैं। कविने परम्परानुसार जिनवन्दन, सरस्वतीवन्दनके अनन्तर आत्मविनय प्रदर्शित की है। वह सज्जन-दुर्जनका स्मरण करना भी नहीं भूलता। कविने परिसंख्यालंकार द्वारा सौराष्ट्र देशका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। लिखा है—

मय संगु करिणि जहिं वेए कंडु, खरदंडु सरोरुहु ससि सखंडु।
जहिं कव्वे बंधु विग्गहु सरीरु, धम्माणुरत्तु जणु पावभीरु।
थदृत्तणु मलणु वि मणहराहं, वरतरुणी पीणघण थण हराहं।
हय हिंसणि रायणि हेलणेसु, खलि विगयणेहु तिल-पीलणेसु।
मज्झण्णयाले गुणगणहराहँ, परयारगमणु जहिं मुणिवराहं।
पिय विरहु वि जहिं कइु वउकसाउ, कुडिल विज्जुव इहिं कुंतलकलाउ॥१-९॥

वस्तु-वर्णनमें कवि पटु है। उसने ग्राम, नगर, ऋतु, सरोवर, उपवन, पर्वत

1. Epigraphica Indica V. LVIII P. 200।

आदिके चित्रणके साथ पात्रोंकी भावनाओंका भी अंकन किया है। प्रद्युम्नका अपहरण होनेपर रुक्मिणी विलाप करती है। कविने इस संदर्भमें करुण रसका अपूर्व चित्रण किया है। प्रद्युम्न लौट आनेपर सत्यभामा और रुक्मिणीसे मिलते हैं। रुक्मिणीके समक्ष वे अपनी बाल-क्रीड़ाओंका प्रदर्शन करते हैं। इस संदर्भमें कविने भावाभिव्यंजनपर पूरा ध्यान रखा है। काव्यके आरंभमें कवि कृष्ण और सत्यभामाका वस्तुरूपात्मक चित्रण करता हुआ कहता है—

घत्ता—

चाणउर विमद्दणु, देवइ-णंदणु, संख-चक्क-सारंगधरु।
रणि कंस-खयंकरु, असुर-भयंकरु, वसुह-तिखंडहं गहियकरु ॥१-१२

रजो दाणव माणव दलइ दप्पु, जिणि गहिउ असुर-णर-खयर-कप्पु।
णव-णव-जोव्वण सुमणोहराइं, चक्कल-घण पीणपउउंहराइं।
छण इंदंविवसम वयणियाहं, कुवलय-दल-दीहर-णयणियाहं।
केऊर-हार-कुंडल-धराहं, कण-कण-कणंत कंकण कराहं।
कयरं खोलिर पयणेउराहं, सोलह सहसइं अंतेउराहं।
तह मज्झि सरस ताम रस मुहिय, जा विज्जाहरहंसु केउ दुहिय।
सइं सव्वसुलक्खणसुस्सहाव, णामेण पसिद्धिय सच्चहाव।
दाडिमकुसुमाहरसुद्धसाम, अइवियउर मणणिरु मज्झ खाम।
ता अग्गमहिसि तहो सुंदरासु, इंदाणि व सग्गि पुरंदरासु। १-१३

इस काव्यमें रस-अलंकार आदिका भी समुचित समावेश हुआ है।

लाखू

पं० लाखू द्वारा विरचित 'जिनदत्तकथा' अपभ्रंशके कथा-काव्योंमें उत्तम रचना है। कविने अपने लिए 'लक्खण' शब्दका प्रयोग किया है। पर लक्ष्मण रत्नदेवके पुत्र हैं और पुरवाडवंशमें उत्पन्न हुए हैं। किन्तु लाखूका जन्म जायसवंशमें हुआ है। अतएव लक्ष्मण और लाखू दोनों भिन्न कालके भिन्न कवि हैं।

कवि लाखू जायस या जयसवालवंशमें हुए थे। इनके प्रपितामहका नाम कोशवाल था, जो जायसवंशके प्रधान तथा अत्यन्त प्रसिद्ध नरनाथ थे। कविने उनका निवास त्रिभुवनगिरि कहा है। यह त्रिभुवनगढ़ या तिहुनगढ़ भरतपुर जिलेमें बयानाके निकट १५ मील पश्चिम-दक्षिणमें करौली राज्यका प्रसिद्ध ताहनगढ़ है। इस दुर्गका निर्माण और नामकरण परमभट्टारक महाराजाधिराज त्रिभुवनपाल या तिहुणपालने[1] किया था। इसीलिए यह तिहुनगढ़

१. डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, जैन सन्देश, शोधांक २, १८ दिसम्बर १९५८, पृ० ८१।

या त्रिभुवनगिरि कहलाया है। इसका निर्देश कवि बुलाकीचन्दके वचनकोश में भी मिलता है।[1]

लाखू तिहुणगढ़से आकर बिलरामपुरमें बस गये थे। कविने स्वयं लिखा है—

सो तिहुवणगिरिभग्गउजवेण, घित्तउ बलेण मिच्छाहिवेण।
लक्खणु सव्वाउ समाणु साउ विच्छोयउ विहिणा जयिण राउ।
सो इत्त तत्थ हिंडंतु पत्तु पुरे विल्लरामे लक्खणु सुपत्तु।

—प्रशस्तिका अंतिमभाग

इससे स्पष्ट है कि लाखू तिहुनगढ़से चलकर बिलरामपुरमें बस गये थे।

ग्रन्थकी प्रशस्तिसे यह भी स्पष्ट होता है कि कोसवाल राजा थे और उनका यश चारों ओर व्याप्त था। कविके पिता भी कहींके राजा थे। कविके पिता-का नाम साहुल और माताका नाम जयता था। 'अणुव्रतरत्नप्रदीप'की प्रशस्तिसे भी यही सिद्ध होता है।

कविका जन्म कब और कहाँ हुआ, यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता है। पर त्रिभुवनगिरिके बसाये जाने और विध्वंस किये जाने वाली घटनाओं तथा दूबकुंडके अभिलेख और मदनसागर (अहारक्षेत्र, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश) में प्राप्त मूर्तिलेखोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि ११वीं शताब्दीमें जयसवाल अपने मूलस्थानको छोड़ कर कई स्थानोंमें बस गये थे। संभवतः तभी कविके पूर्वज त्रिभुवनगिरिमें आकर बस गये होंगे।

'अणुव्रतरत्नप्रदीप'में लिखा है कि यमुना नदीके तट पर रायबद्दिय नामकी महानगरी थी। वहाँ आहवमल्लदेव नामके राजा राज्य करते थे। वे चौहान वंशके भूषण थे। उन्होंने हम्मीरवीरके मनके शूलको नष्ट किया था। उनकी पट्टरानीका नाम ईसरदे था। इस नगरमें कविकुलमंडल प्रसिद्ध कवि लक्खण रहते थे। एक दिन रात्रिके समय उनके मनमें विचार आया कि उत्तम कवित्व-शक्ति, विद्याविलास और पाण्डित्य ये सभी गुण व्यर्थ जा रहे हैं। इसी विचारमें मग्न कविको निद्रा आ गई और स्वप्नमें उसने शासन-देवताके दर्शन किये। शासन-देवताने स्वप्नमें बताया कि अब कवित्वशक्ति प्रकाशित होगी।

प्रातःकाल जागने पर कविने स्वप्नदर्शनके सम्बन्धमें विचार किया और उसने देवीकी प्रेरणा समझ कर काव्य-रचना करनेका संकल्प किया। और फलतः कवि महामंत्री कण्हसे मिला। कण्हने कविसे भक्तिभावसहित सागारधर्म-

---

१. अगरचंद नाहटा, कवि बुलाकीचन्दरचित वचनकोश और जयसवालजाति, जैन संदेश, शोधांक २, १८ दि० १९५७, पृ० ७०।

के निरूपण करनेका अनुरोध किया।

इससे यह सिद्ध होता है कि कवि त्रिभुवनगिरिसे आकर रायबड्डिय नगरीमें रहने लगा था। यह रायबड्डिय आगरा और बाँदीकुईके बीचमें विद्यमान है।[1] इससे ज्ञात होता है कि कविका वंश रायबड्डियमें भी रहा है। श्री डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने लिखा है कि "यदि जिनदत्तकथा बिल्लरामपुरवासी जिनधरके पुत्र श्रीधरके अनुरोध और सुख-सुविधा प्रदान करने पर लिखी गई, तो अणुव्रतरत्न प्रदीप आहवमल्लके मन्त्री कृष्णके आश्रयमें तथा उन्हींके अनुरोधसे चन्द्रवाडनगरमें रचा गया। आहवमल्लकी वंश-परम्परा भी चन्द्रवाड नगरसे बतलायी गयी है। इससे स्पष्ट है कि सं० १२७५ में कवि सपरिवार बिल्लरामपुरमें था और सं० १३१३ में चन्द्रवाडनगर (फिरोजाबादके) पासमें। यदि हम कविका जन्म तिहनगढ़में भी मान लें तो फिर रायवड्डियमें वह कब रहा होगा। हमारे विचारमें लाखूके बाबा रायवड्डियके रहने वाले होंगे। किसी समय तिहनगढ़ अत्यन्त समृद्ध नगर रहा होगा। इसलिए उससे आकर्षित हो वहाँ जाकर बस गये होंगे। किन्तु तिहनगढ़के भग्न ही जाने पर वे सपरिवार बिल्लरामपुरमें पहुँच कर रहने लगे होंगे। संभवतः वहीं लाखूका जन्म हुआ होगा। और श्रीधरसे गाढ़ी मित्रता कर सुखसे समय बिताने लगे होंगे। परन्तु श्रीधरके देहावसान पर तथा राज्याश्रयके आकर्षणसे चन्द्रवाडनगरीमें बस गये होंगे।"[2]

उपर्युक्त उद्धरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि लक्खणने अणुव्रतरत्नप्रदीपकी रचना रायवड्डिय नगरीमें की और 'जिनदत्तकथा'की रचना बिल्लरामपुरमें की होगी।

कवि अपने समयका प्रतिभाशाली और लोकप्रिय कवि रहा है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त स्निग्ध और मिलनसार था। यही कारण है कि श्रीधर जैसे व्यक्तियोंसे उसकी गाढ़ी मित्रता थी। जिनदत्तकथाके वर्णनोंसे यह भी प्रतीत होता है कि कवि गृहस्थ रहा है। प्रभुचरणोंका भक्त रहने पर भी वह कर्मसिद्धान्तके प्रति अटूट विश्वास रखता है। शील-संयम उसके जीवनके विशेष गुण हैं।

स्थिति-काल

कविने 'अणुव्रतरत्न-प्रदीप'में उसके रचना-कालका उल्लेख किया है—

१. अणुव्रतरत्नप्रदीप, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ६, किरण ३, पृ० १५५-१६०।

२. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य, डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ० २१२।

तेरह-सय-तेरह-उत्तराले, परिगलिय-विक्कमाइच्चकाले ।
संवेयरइह सव्वहं समक्ख, कत्तिय-मासम्मि असेय-पक्खे ।
सत्तमि-दिणे गुरुवारे समोए, अट्ठमि-रिक्खे साहिज्ज-जोए ।
नव-मास रयतें पायडत्थु, सम्मत्तउ कमे कमे एहु सत्थु ।
—'अणुव्रतरत्नप्रदीप', अन्तिम प्रशस्ति ।

वि० सं० १३१३ कार्त्तिक कृष्ण सप्तमी गुरुवार, पुष्य नक्षत्र, साध्य योग में नौ महीनेमें यह ग्रन्थ लिखा गया ।

कविने 'जिणयत्तकहा' में रचनाकालका उल्लेख करते हुए लिखा है—

वारहसयं सत्तरयं पंचुत्तरयं विक्कमकाल-विइत्तउ ।
पढमपक्ख रविवारए छट्ठि सहारए, पूसमासि संमत्तिउ ॥

अर्थात् वि० सं० १२७५ पौष कृष्णा षष्ठी रविवारके दिन इस कथाग्रन्थकी रचना समाप्त हुई । इस प्रकार कविका साहित्यिक जीवन वि० सं० १२७५ से आरम्भ होकर वि० सं० १३१३ तक बना रहता है । कविने प्रथम रचना लिखने के पश्चात् द्वितीय रचना ३८ वर्षके पश्चात् लिखी है । यही कारण है कि कविको चिन्ता उत्पन्न हुई कि उसकी कवित्वशक्ति क्षीण हो चुकी है । अतएव रात्रिमें शासन-देवताका स्वप्नमें दर्शन कर पुनः काव्य-रचनामें प्रवृत्त हुआ ।

कविके आश्रयदाता चौहानवंशी राजा आहवमल्ल थे । आहवमल्लने मुसल-मानोंसे टक्कर लेकर विजय प्राप्त की और हम्मीरवीरकी सहायता की । हम्मीर देव रणथम्भौरके राजा थे । अल्लाउद्दीन खिलजीने सन् १२९९में रणथम्भौर पर आक्रमण किया और इस युद्धमें हम्मीरदेव काम आये । इस प्रकार आहव-मल्लके साथ कविकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है ।

तिहनगढ़ या त्रिभुवनगिरिमें यदुवंशी राजाओंका राज्य था । कवि लाखू इसी परिवारसे सम्बद्ध था । ऐतिहासिक दृष्टिसे मथुराके यदुवंशी राजा जये-न्द्रपाल हुए और उनके पुत्र विजयपाल । इनके उत्तराधिकारी धर्मपाल और धर्मपालके उत्तराधिकारी अजयपाल हुए । ११५० ई० में इनका राज्य था । उनके उत्तराधिकारी कुँवरपाल हुए । वस्तुतः अजयपालके उत्तराधिकारी हर-पाल हुए । ये हरपाल उनके पुत्र थे । महावनमें ई० सन् ११७० का हरपालका एक अभिलेख मिला है[1] । हरपालके पुत्र कोषपाल थे, जो लाखूके पितामहके

१. दी स्ट्रगल फॉर इम्पायर, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रथम संस्करण, पृ० ५५ ।

पिता थे। कोषपालके पुत्र यशपाल और यशपालके लाहड़ हुए। इनकी जिनमती भार्या थी। इससे अल्हण, गाहुल, साहुल, सोहण, रयण, मयण और सतण हुए। इनमेंसे साहुल लाखूके पिता थे। इस प्रकार लक्खणका सम्बन्ध यदुवंशी राजघरानेके साथ रहा है।

रचनाएँ

कविकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—(१)चंदणछट्ठीकहा, (२) जिणयत्तकहा और (३) अणुवय-रयण-पईव।

'**चंदनषष्ठीकथा**'—कविकी प्रारम्भिक रचना है और इसका रचना-काल वि० सं० १२७० रहा होगा। यह रचना साधारण है और कविने इसके अन्तमें अपना नामांकन किया है—

"इय चंदणछट्ठिहि जो पालइ वहु लक्खणु।
सो दिवि भुंजिवि सोक्खु मोक्खहु णाणे लक्खणु।"

'**जिनदत्तकथा**'—इसकी प्रति आमेर शास्त्र-भंडारमें प्राप्त है। कविने जिनदत्तके चरितका गुम्फन ११ सन्धियोंमें किया है। मगधराज्यके अन्तर्गत वसन्तपुर नगरके राजा शशिशेखर और उनकी रानी मैनासुन्दरीके वर्णनके पश्चात् उस नगरके श्रेष्ठि जीवदेव और उनकी पत्नी जीवनजसाके सौन्दर्यका वर्णन किया गया है। प्रभुभक्तिके प्रसादसे जीवनजसा एक सुन्दर पुत्रको जन्म देती है, जिसका नाम जिनदत्त रखा जाता है। जिनदत्तके वयस्क होनेपर उसका विवाह चम्पानगरीके सेठकी सुन्दरी कन्या विमलमतीके साथ सम्पन्न होता है।

जिनदत्त धनोपार्जनके लिए अनेक व्यापारियोंके साथ समुद्र-यात्रा करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचता है और वहाँके राजाकी सुन्दरी राजकुमारी श्रीमती उससे प्रभावित होती है। दोनोंका विवाह होता है। जिनदत्त श्रीमतीको जिनधर्मका उपदेश देता है। कालान्तरमें वह प्रचुर धन-सम्पत्ति अर्जित कर अपने साथियोंके साथ स्वदेश लौटता है। ईर्ष्याके कारण उसका एक सम्बन्धी धोखेसे उसे एक समुद्रमें गिरा देता है और स्वयं श्रीमतीसे प्रेमका प्रस्ताव करता है। श्रीमती शीलव्रतमें दृढ़ रहती है। जहाज चम्पानगरी पहुँचता है और श्रीमती वहाँके एक चैत्यमें ध्यानस्थ हो जाती है। जिनदत्त भी भाग्यसे बचकर मणिद्वीप पहुँचता है और वहाँ शृंगारमतीसे विवाह करता है। वह किसी प्रकार चम्पानगरीमें पहुँचता है और वहाँ श्रीमती और विमलवतीसे भेंट करता है और उनको लेकर अपने नगर वसन्तपुरमें चला आता है। माता-पिता पुत्र और पुत्रवधुओंको प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं।

कुछ दिनोंके पश्चात् जिनदत्तको समाधिगुप्त मुनिके दर्शन होते हैं। उनसे अपने पूर्वभव सुनकर वह विरक्त हो जाता है और मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेता है तथा तपश्चरण द्वारा निर्वाण प्राप्त करता है।

कविने लोक-कथानकोंको धार्मिक रूप दिया है तथा घटनाओंका स्वाभाविक विकास दिखलाया है। इतना ही नहीं, कविने नगर-वर्णन, रूप-वर्णन, बाल-वर्णन, संयोग-वियोग-वर्णन, विवाह-वर्णन तथा नायकके साहसिक कार्यों-का वर्णन कर कथाको रोचक बनाया है।

इस कथा-काव्यमें कई मार्मिक स्थल हैं, जिनमें मनुष्य-जीवनके विविध मार्मिक प्रसंगोंकी सुन्दर योजना हुई है। बेटीकी भावभीनी बिदाई, माताका नई बहूका स्वागत करना, बेटेकी आरती उतारना, जिनदत्तका समुद्रमें उतरना, समुद्र-संतरण, वनिताओंका करुण-विलाप ऐसे सरस प्रसंग हैं, जिनके अध्ययन-से मानवीय संवेदनाओंकी अनुभूति द्वारा पाठकका हृदय द्रवित एवं दीप्त हो जाता है। लज्जा, औत्सुक्य, मोह, विबोध, आवेग, अलसता, स्मृति, चिन्ता, वितर्क, धृति, चपलता, विषाद, उग्रता आदि अनेक संचारी भाव उद्‌बुद्ध होकर स्थायी भावोंको उद्दीप्त किया है। संयोग-वियोगवर्णनमें कविने रतिभावकी सुन्दर अभिव्यंजना की है। श्लेष, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, लोकोक्ति, विनोक्ति, सन्देह आदि अलंकारोंकी योजना की गयी है। छन्दोंमें विलासिनी, मौक्तिकदाम, मनोहरदाम, आरनाल, सोमराजी ललिता, अमरपुरसुन्दरी, मदनावतार, पद्मिनी, पंचचामर, पमाड़िया, नाराच, भ्रमरपद, तोड़या, त्रिभंगिका, जम्भेटिया, समानिका और आवली आदि प्रयुक्त हुए हैं।

कविने शृंगार और वीर-रसकी बहुत ही सुन्दर योजना की है। करुण रस भी कई सन्दर्भोंमें आया है।

अणुवयरयणपईव

इस ग्रंथमें कविने श्रावकोंके पालन करने योग्य अणुव्रतोंका कथन किया है। विषय-प्रतिपादनके लिये कथाओंका भी आश्रय लिया गया है। कविने लिखा है—

मिच्छत्त-जरंहिव-ससण-मित्त
णाणिय-णरिंद महनियनिमित्त ॥१॥
अवराह-वलाहय-विसम-वाय
वियसिय-जीवणरुह-वयण-छाय

भय-भरियागय-जण-रक्खवाल
छण ससि-परिसर-दल विउल-भाल।
संसार-सरणि-परिभमण-भीय
गुरु-चरण-कुसेसय-चंचरीय।
पोसिय-धम्मासिय-विबुह-वग्ग
णाणिय-णिरुवम-णिव-णीइ-मग्ग।
जस-पसर-भरिय-बंभंड-खंड
मिच्छत्त-महीहर-कुलिस-दंड।
तज्जिय-माया-मय-माण-डंभ
महमइ-करेणु-आलाण-थंभ।
समयाणुवेइ गुरुयण-विणीय
दुत्थिय-णर-गिव्वाणावणीय।

शास्त्रोपदेशके वचनामृतके पानसे तृप्त भव्यजन मिथ्यात्वरूपी जीर्ण वृक्षको समाप्त कर डालते हैं। सम्यक्त्वरूपी सूर्यके उदय होते ही मिथ्यात्वरूपी अंधकार क्षीण हो जाता है। अपराधरूपी मेघोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिए प्रचण्ड वायु, विकसित कमलके समान मुखकीर्तिके धारक, भयसे लदे हुए आने वाले जनोंके रक्षपाल, पूर्ण चन्द्रमण्डलके अर्द्धभाग समान भालयुक्त, संसार-सरणिमें परिभ्रमणसे भीत, गुरुके चरणकमलोंके चंचरीक, धर्मके आश्रित हुए समझदार लोगोंका पोषण करने वाले, निरुपम राजनीतिमार्गके ज्ञाता, यशके प्रसारसे ब्रह्माण्डखण्डको भर देने वाले, मिथ्यात्वरूपी पर्वतके वज्रदण्ड, माया, मद, मान और दंभके त्यागी, महामतिरूपी हस्तिको बाँधनेके स्तंभ, समयवेदी, गुरुजन, विनीत्त और दु:खित नरोंके कल्पवृक्ष, तुम कविजनोंके मनोरंजन, पाप-विभंजन, गुणगणरूपी मणियोंके रत्नाकर और समस्त कलाओंके निर्मल सागर हो।

इस प्रकार कथाके माध्यमसे अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, सप्तव्यसनत्याग, चार कषायोंका त्याग, इन्द्रियोंका निग्रह, अष्टांग सम्यक्दर्शन, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ, स्वाध्याय, आत्मसन्तोष, जिनपूजा, गुरुभक्ति आदि धार्मिक तत्त्वोंका परिचय प्रस्तुत किया है।

लेखककी शैली उपदेशप्रद न होकर आख्यानात्मक है। और कविने अन्यापदेश द्वारा धार्मिक तत्त्वोंकी अभिव्यञ्जना की है। यह ग्रंथ लघुकाय होनेपर भी कथाके माध्यमसे धार्मिक तत्त्वोंकी जानकारी प्रस्तुत करता है।

यशःकीर्त्ति प्रथम

'चंदप्पहचरिउ'के रचयिता कवि यशःकीर्ति है। यशःकीर्तिनामके कई आचार्य हुए हैं। उनमेंसे कईने अपभ्रंश-काव्योंकी रचना की है। 'चन्दप्पह-चरिउ'के रचयिता यशःकीर्तिने न तो ग्रंथका रचनाकाल ही अंकित किया है और न कोई विस्तृत प्रशस्ति ही लिखी है। पुष्पिकावाक्यमें कविने अपनेको महाकवि बताया है। लिखा है—

"इय-सिरि-चंदप्पह-चरिए महाकइ-जसकित्ति-विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण-भूसणे सिरिचंदप्पह-समिणिव्वाणगमणो णाम एयारहमो संधी-परिच्छेओ सम्मत्तो।"

कविने आचार्य समन्तभद्रके मुनिजीवनके समय घटित होनेवाली और अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभके स्तोत्रके सामर्थ्यसे प्रकट होनेवाली चन्द्रप्रभकी मूर्त्ति-सम्बन्धी घटनाका उल्लेख करके अकलंक, पूज्यपाद, जिनसेन और सिद्धसेन नामके पूर्ववर्त्ती विद्वानोंका उल्लेख किया है। आश्चर्य है कि कविने अपभ्रंशके किसी कविका नाम निर्देश नहीं किया है!

कविने इस ग्रंथको हुम्बडकुलभूषण कुँवरसिंहके सुपुत्र सिद्धपालके अनुरोधसे रचा है। वे गुर्जरदेशके अन्तर्गत उन्मत्तदेशके वासी थे। आदि और अन्तमें कविने इस ग्रंथके प्रेरकका उल्लेख किया है—

हुंबड-कुल-नहयलि पुप्फयंत, बहु देउ कुमरसिंहवि महंत।
तहो सुउ णिम्मलु गुण-गण-विसालु, सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु।
जसकित्तिविबुह-करि तुहु पसाउ, महु पूरहि पाइय कव्व-भाउ।
तं निसुणिवि सो भासेइ मंदु, पंगलु तोडेसइ केम चंदु।
इह हुइ बहु गणहरणाणवंत, जिणवयण-रसायण-वित्थरंत।

× × ×

गुज्जर-देसहं उम्मत्त गामु, तहि छड्डा-सुउ हुउ दोण णामु।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्व-बंधु, जिण-धम्म-भारि जें दिण्णु खंधु।
तहु सुउ जिट्ठउ बहुदेव भव्वु, जे धम्मकज्जि विव कलिउ दव्वु।
तहु लहु जायउ सिरि कुमरसिंहु, कलिकाल-करिदंहो हणण सीहु।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु, जिण-पुज्ज-दाण-गुणगण-रमालु।
तहो डवरेहि इह कियउ गंथु, हउं णमु णमि किंपिवि सत्थु गंथु।

स्थितिकाल

ग्रंथके रचनाकालका उल्लेख न होनेसे महाकवि यशःकीर्त्तिके समयके सम्बन्ध-

में निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता है। आमेर-शास्त्रभण्डारमें इनके द्वारा रचित ग्रन्थकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं। एक वि०सं० १५८३ की और दूसरी १६०३की लिखी हुई है। श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने अपने 'प्रशस्ति-संग्रह' ग्रंथमें वि० सं० १५३० में लिखित प्रतिका उपयोग किया है। अतः इतना सुनिश्चित है कि वि० सं० १५३० के पूर्व महाकवि यशःकीर्ति हुए हैं। पूर्ववर्त्ती कवियोंमें महाकवि यशःकीर्त्तिने जिन कवियोंका निर्देश किया है उनमें जिनसेन ही विक्रमकी नवम शताब्दीके कवि हैं। अतः नवम शताब्दीके पश्चात् और १५ वीं शताब्दीके पूर्व महाकवि यशःकीर्त्ति हुए हैं। पर यह ६०० वर्षोंका अन्तराल खटकता है। कविकी रचनाका प्रेरक गुजरातका सिद्धपाल है। विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे गुजरातकी समृद्धि विशेषरूपसे बढ़ी है। सिद्धराज, जयसिंह और कुमारपालने गुजरातके यशकी विशेषरूपसे वृद्धि की है। अतएव कविकी रचनाका प्रेरक सिद्धपाल विक्रमसंवत् ११०० के उपरान्त होना चाहिए। अतएव कविने इस ग्रंथकी रचना ११ वीं शतीके अन्तमें या १२ वीं शतीके प्रारंभमें की होगी।

रचना

चन्द्रप्रभचरित ११ सन्धियोंमें लिखा गया है। इसमें कविने आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभकी कथा गुम्फित की है। ग्रंथका आरंभ मंगलाचरण, सज्जन-दुर्जन-स्मरणसे होता है। अनन्तर कवि मंगलवती पुरीके राजा कनकप्रभका चित्रण करता है। संसारको असार और अनित्य जान राजा अपने पुत्र पद्मनाभको राज्य देकर विरक्त हो जाता है। दूसरीसे पाँचवीं सन्धि तक पद्मनाभका चरित आया है और श्रीधर मुनिसे राजाका अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त सुननेका उल्लेख है। छठी सन्धिमें राजा पद्मनाभ और राजा पृथ्वीपालके बीच युद्ध होनेकी घटना वर्णित है। राजा विजित होता है किन्तु पद्मनाम युद्धसे विरक्त हो जाता है और राज्यभार अपने पुत्रको देकर वह श्रीधर मुनिसे दीक्षा ग्रहण-कर लेता है। आगेवाली सन्धियोंमें पद्मनाभके चन्द्रपुरीके राजा महासेनके यहाँ चन्द्रप्रभ रूपमें जन्म लेने, संसारसे विरक्त हो केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तमें निर्वाण प्राप्त करनेका वर्णन आया है।

इस ग्रंथकी शैली सरल और इतिवृत्तात्मक है। शैलीकी आडम्बरहीनता भी इस ग्रंथकी प्राचीनताका प्रमाण है। राजा, नगर, देश आदिका वर्णन सामान्यरूपमें ही आया है। कवि कहता है—

> तहिं कणयप्पहु नामेण राउ जेंपिछिवि सुरवइ हुउ विराउ।
> जसु भमइं कित्ति भवणंतरम्मि, थेखि अइसकंडि निय घरम्मि।

जसु तेय जलणि नंक्षीवियंगु, जलनिहि सलिलट्ठिउ सिरिचु वंगु।
आइच्चु वि दिणि दिणि देइ झंप, तत्तेअ तत्तु जय जणिय कंप।
सक्कुवि निप्पाइउ पढमु तासु, अब्भास करणि पडिमहं पयासु।
रूवाहंकारिउ काम वीरू, किउ तासु अंगु मलिनहु सरीरु।

× × ×

घत्ता—तिहुयणि बहु-गुणजणि तसु पडिछंदु न दीसइ;
होसइ गुण लेसइ जसु वाई सरिसी सइ॥ १।९॥

नारी-चित्रणमें भी कविने अलंकारोंका प्रयोग नहीं किया है। कथाके प्रवाहमें वस्तुरूपात्मक ही चित्रण किया गया है। यद्यपि अंग-प्रत्यंगका चित्रण कविने किया है; पर भुक्त उपमानोंसे आगे नहीं बढ़ सका है—

सिरिकंताणामें तास कंता, वहुरूव लछि सोहग्गा वंता।
जीयें मुहु इंदहुलंण वाणउ, जं पुण्णिमचंदहु उवमाणउ।
तास तरलु णिम्मिलु जुउ णित्तहं, णं अलि उरि ठिउ केइय पत्तह।
जइ सवणू जुवलु सोहाविलासु, णं मयण विहंगम धरण पासु।
वच्छच्छलु नं पीऊस कुंभ, अह मयण-गंध-गय-पीण-वुंभ।
अइ क्खीणु मज्झु णं पिसुणजणू, थण रमण गुरुत्तणि कुवियमणू।
जह पिहुल णियंवउ अप्पमाणु, ठिउ मयणराय पीढहु समाणु।

घत्ता—हा इय मयणहु, जयजय जयणहु, उरु जुअल घर तोरणु।
अइ कोमलु स्तुप्पलु जिय पय कंतिहिं चोरणु॥ २।१०॥

इस ग्रंथमें छन्दोंका वैविध्य भी नहीं है और अलंकारोंका प्रयोग भी सामान्य रूपमें हुआ है। यह सत्य है कि रसमय स्थलोंकी कमी नहीं है।

देवचन्द

कवि देवचन्दने 'पासणाहचरिउ' की रचना गुंदिज्ज नगरके पार्श्वनाथ मंदिरमें की है। गुंदिज्जनगर दक्षिण भारतमें कहीं अवस्थित है। कविने ग्रंथके अन्तमें अपना परिचय दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि कवि मूलसंघ गच्छके विद्वान् वासवचन्दका शिष्य था। अन्तिम प्रशस्तिसे गुरुपरम्परा निम्न-प्रकार ज्ञात होती है—

श्रीकीर्ति
|
देवकीर्ति
|

मौनीदेव
|
माघवचन्द्र
|
अभयनन्दी
|
वासवचन्द्र
|
देवचन्द्र

वासचन्द्रके सम्बन्धमें अन्वेषण करनेपर दो वासवचन्द्रोंका पता चलता है। एक वे वासवचन्द्र हैं जिनका उल्लेख खजुराहोके वि०सं० १०११ वैसाख शुक्ला सप्तमी सोमवारके दिन उत्कीर्ण किये गये जिननाथ मन्दिरके अभिलेखमें हुआ है, जो वहाँके राजा धंगके राज्यकालमें उत्कीर्ण कराया गया था।[१] द्वितीय वासवचन्द्रका उल्लेख श्रवणबेलगोलके अभिलेखमें पाया जाता है। इस अभिलेखमें बताया है—

'वासवचन्द्र-मुनीन्द्रो रुन्द्र-स्याद्वाद-तर्क्क-कर्क्कश-धिषणः।
चालुक्य-कटक-मध्ये बाल-सरस्वतिरिति प्रसिद्धि प्राप्तः ॥[२]'

× × ×

'श्रीमूलसङ्घद देशीयगणद वक्रगच्छद कोण्डकुन्दान्वयद परियलिय वड्डदेवर बलिय..........वासवचन्द्रपण्डित-देवरु।' इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि वासवचन्द्र मुनीन्द्र स्याद्वाद-विद्याके विद्वान् थे। कर्कश तर्क करनेमें उनकी बुद्धि पटु थी। उन्होंने चालुक्य राजाकी राजधानीमें 'बालसरस्वती'की उपाधि प्राप्त की थी।

श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने अनुमान किया है कि श्रवणबेलगोलके अभिलेखमें उल्लिखित वासवचन्द्र ही देवचन्द्रके गुरु संभव हैं। पर यहाँ पर यह कठिनाई उपस्थित होती है कि मूलसंघ देशीगण और वक्रगच्छमें कुन्दकुन्दके अन्वयमें देवेन्द्र सिद्धान्तदेव हुए। इनके शिष्य चतुर्मुखदेव या वृषभनन्दि थे। इन वृषभनन्दिके ८४ शिष्य थे। इनमें गोपनन्दि, प्रभाचन्द्र, दामनन्दि, गुणचन्द्र, माघनन्दि, जिनचन्द्र, देवेन्द्र, वासवचन्द्र, यशःकीर्ति एवं शुभकीर्ति प्रधान हैं। देवचन्द्रने प्रशस्तिमें अभयनन्दिको वासवचन्द्रका गुरु बताया है। अतः इस गुरुपरम्पराका समन्वय श्रवणबेलगोलके शिलालेखमें उल्लिखित

---

१. Epigraphica India, Vol. VIII, Page 136.

२. सं० डॉ० प्रो० हीरालाल जैन, जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, अभिलेखसंख्या ५५, पद्य २५।

गुरुपरम्परासे नहीं होता। अथवा यह भी संभव है कि वृषभनन्दिके ८४ शिष्योंमें कोई शिष्य अभयनन्दि रहा हो और उसका सम्बन्ध वासवचन्द्रके साथ रहा हो।

कवि देवचन्द्रका व्यक्तित्व गृहत्यागीका है। कविने आरंभमें पंचपरमेष्ठि-की वन्दना की है। तदन्तर आत्मलघुता प्रदर्शित करते हुए बताया है कि न मुझे व्याकरणका ज्ञान है, न छन्द-अलंकारका ज्ञान है, न कोशका ज्ञान है और न सुकवित्व शक्ति ही प्राप्त है। इससे कविकी विनयशीलता प्रकट होती है।

पुष्पिकावाक्यमें कविको मुनि कहा गया है। अतः उन्हें गृहत्यागी विरक्त साधुके रूपमें जानना चाहिये। प्रशस्तिकी पंक्तियोंमें उन्हें रत्नत्रयभूषण, गुणनिधान और अज्ञानतिमिरनाशक कहा गया है।

> रराणत्तय-भूसणसु गुण-निहाणु,
> अण्णाण-तिमिर-पसरंत-भाणु।

कविका पुष्पिकावाक्य निम्न प्रकार है—

'सिरिपासणाहचरिए चउवग्गफले भवियजणमणाणंदे मुणिदेवयंद-रइए महा-कव्वे एयारसिया इमा संधी समत्ता।'

स्थितिकाल

कवि देवचन्द्रने कब अपने ग्रंथकी रचना की, यह नहीं कहा जा सकता। 'पासणाहचरिउ'की प्रशस्तिमें रचनाकालका अंकन नहीं किया गया है। और न ऐसी कोई सामग्री ही इस ग्रंथमें उपलब्ध है जिसके आधार पर कविका काल निर्धारित किया जा सके। इस ग्रन्थकी जो पाण्डुलिपि उपलब्ध है वह वि०सं० १४९८के दुर्मति नामक संवत्सरके पौष महीनेके कृष्णपक्षमें अल्लाउद्दीन के राज्यकालमें भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके पदाधिकारी भट्टारक प्रतापकीर्त्तिके समयमें देवगिरि महादुर्गमें अग्रवाल श्रावक पं० गांगदेवके पुत्र पासराजके द्वारा लिखाई गई है। अतएव वि० सं० १४९८ के पूर्व इस ग्रंथका रचनाकाल निश्चित है। यदि देवचन्द्रके गुरु वासवचन्द्रको देवेन्द्र सिद्धान्तदेवकी गुरु-परम्परामें मान लिया जाय, तो देवेचन्द्रका समय शक सं० १०२२ (वि० सं० ११५७) के लगभग सिद्ध होता है। पासणाहचरिउकी भाषाशैली और वर्ण्य विषयसे भी यह ग्रंथ १२वीं शताब्दीके लगभगका प्रतीत होता है। अतएव देवचन्द्रका समय १२वीं शताब्दीके लगभग है।

रचना

महाकवि देवचन्द्रकी एक ही रचना पासणाहचरिउ उपलब्ध है। इस

ग्रंथकी एक ही प्रति उपलब्ध है, जो पं० परमानन्दजीके पास है। इस ग्रंथमें ११ सन्धियाँ हैं और २०२ कड़वक हैं। कविने पार्श्वनाथचरितको इस ग्रंथमें निबद्ध किया है। पूर्वभवावलीके अनन्तर पार्श्वनाथके वर्त्तमान जीवनपर प्रकाश डाला गया है। उनकी ध्यानमुद्राका चित्रण करते हुए कविने लिखा है—

तत्थ सिलायले थक्कु जिणिंदो, संतु महंतु तिलोयहो वंदो।
पंच-महव्वय-उद्दयकंधो, निम्ममु चत्तचउव्विहबंधो।
जीवदयावरु संगविमुक्को, णं दहलक्खणु धम्मु सुरुक्को।
जम्म-जरामरणुज्झियदप्पो, बारसभेयतवस्समहप्पो।
मोह-तमंध-पयाव-पयंगो, खंतिलयारुहणे गिरितुंगो।
संजम-सील-विहूसियदेहो, कम्म-कसाय-हुआसण-मेहो।
पुप्फंधणुवरतोमरधंसो, मोक्ख-महासरि-कीलणहंसो।
इंदिय-सप्पइं विसहरमंतो, अप्पसरूव-समाहि-सरंतो।
केवलणाण-पयासण-कंखू, घाणपुरम्मि निवेसियचक्खू।
णिज्जियसासु पलंबिय-बाहो, णिच्चलदेह विसज्जिय-वाहो।
कंचणसेलु जहा थिरचित्तो, दोधकछंद इमो बुह वुत्तो।[१]

अर्थात् तीर्थंकर पार्श्वनाथ एक शिलापर ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। वे त्रिलोकवर्त्ती जीवोंके द्वारा वन्दनीय हैं, पंचमहाव्रतोंके धारक हैं। ममता-मोहसे रहित हैं और प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभागरूप चार प्रकारके बन्धसे रहित हैं। दयालु और अपरिग्रही हैं। दशलक्षणधर्मके धारक हैं। जन्म, जरा और मरणके दर्पसे रहित और द्वादश तपोंके अनुष्ठाता हैं। मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्यतुल्य हैं। क्षमारूपी लताके आरोहणार्थ वे गिरिके तुल्य उन्नत हैं। संयम और शीलसे विभूषित हैं। और कर्मरूप कषाय-हुताशनके लिये मेघ हैं। कामदेवके उत्कृष्ट वाणको नष्ट करनेवाले तथा मोक्षरूप महासरोवरमें क्रीड़ा करनेवाले हंस हैं। इन्द्रियरूपी विषधर सर्पोको रोकनेके लिये मंत्र हैं। आत्मसमाधिमें लीन रहने वाले हैं। केवलज्ञानको प्रकाशित करने वाले सूर्य हैं। नासाग्रदृष्टि, प्रलंब बाहु, योगनिरोधक, व्याधिरहित एवं सुमेरुके समान स्थिर चित्त हैं।

इससे स्पष्ट है कि 'पासणाहचरिउ' एक सुन्दर काव्य है। इसमें महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। बीच-बीचमें सिद्धान्त-विषयोंका समावेश भी

---

१. जैन ग्रंथप्रशस्तिसंग्रह, द्वितीय भाग, वीर-सेवा-मंदिर, २१ दरियागंज, दिल्ली, प्रस्तावना, पृ० ७६ पर उद्धृत।

किया गया है। कविने इस ग्रंथके बन्धगठनके सम्बन्धमें लिखा है—

नाणाछंद-बंध-नीरंधहिं, पासचरिउ एयारह-संधिहिं।
पउरच्छहि सुवण्णरस धउियहिं, दोण्णिसयाइं दोण्णि पद्धडियहिं।
चउवग्ग-फलहो पावण-पंथहो, सइं चउवीस होंति फुडु गंथहो।
जो नरु देइ लिहाविड दाणइं, तहो संपज्जइ पंचइं नाणइं।
जो पुणु बच्चइ सुललिय-भासइं, तहो पुण्णेण फलहिं सव्वासइं।
जो पयउत्थु करे वि पउंजइ, सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजइ।
जो आयन्नइ चिरु नियमिय मणु, सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु।

नाना प्रकारके छन्दों द्वारा इस ग्रंथको रचा गया है। नवरसोंसे युक्त चतुवर्गके फलको देने वाले मृदुल और ललित अक्षरोंसे युक्त नवीन अर्थको देने वाला यह ग्रंथ है। कविने संकेत द्वारा काव्यके गुणोंपर प्रकाश डाला है।

उदयचन्द्र

उदयचन्द्रने अपभ्रंश-भाषामें 'सुअंधदहमीकहा' (सुगंधदशमी कथा) ग्रंथकी रचना की है। कविने इस ग्रंथके अन्तमें अपना संक्षिप्त परिचय दिया है—

इय सुअदिक्खहि कहिय सवित्थर, मइं गावित्ति सुणाइय मणहर।
णियकुलणह-उज्जोइय-चंदइं। सज्जण-मण-कय-णयणाणंदइं।
भवियण-कण्णग-मणहर भासइं। जसहर-णायकुमारहो वायइं।
बुहयण सुयणहं विणउ करंतइं। अइसुसील-देमइयहि कंतइं।
एमहि पुणु वि सुपास-जिणेसर। कवि कम्मक्खउ महु परमेसर।

इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि कविका नाम उदयचन्द्र था और उसकी पत्नी-का देवमति।

श्री डॉ० हीरालालजी जैनने उदयचन्द्रके सम्बन्धमें प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सुगन्ध-दशमी ग्रंथके कर्त्ता वे ही उदयचन्द्र हैं, जिनका उल्लेख विनयचन्द्र मुनिने अपने गुरुके रूपमें किया हैं। 'निज्झरपंचमीकहा'में विनय-चन्द्रने अपनेको माथुरसंघका मुनि बताया है। और इस ग्रन्थकी रचना त्रिभुवनगिरिकी तलहटीमें की गई बतलायी है। लिखा है—

पणविवि पंच महागुरु सारद धरिवि मणि।
उदयचंदु गुरु सुमरिवि वंदिय बालमुणि॥
विणयचंदु फलु अक्खइ णिज्झरपंचमिहिं।
णिसुणहु धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमहिं।
× × ×

तिहुयणगिरि-तलहट्टी इहु रासउ रइउ।
माथुरसंघहं मुणिवरु-विणयचंदि कहिउ ॥

× × ×

उदयचंदु गुणगणहरु गरुवउ।
सो मइं भावें मणि अणुसरियउ ॥
बालइंदु मुणि णविवि णिरंतरु।
णरगउतारी कहमि कहंतरु ॥[1]

विनयचन्द्रमुनिकी एक अन्य रचना 'चूनड़ी' उपलब्ध है, जिसमें उन्होंने माथुरसंघके मुनि उदयचन्द्र तथा बालचन्द्रको नमस्कार किया है। और त्रिभुवनगिरिनगरके अजयनरेन्द्रकृत 'राजविहार'को अपनी रचनाका स्थान बताया है—

माथुरसंघहं उदयमुणीसरु।
पणविवि बालइन्दु गुरु गणहरु ॥
जंपइ विणयमयंकु मुणि।
तिहुयणगिरिपुर जगि विक्खायउ।
सग्गखंडु णं धरयलि आयउ ॥
तहिं णिवसंते मुणिवरें अजयणरिंदहो राजाविहारहिं।
वेगें विरइय चूनडिय सोहहु मुणिवर जे सुयधारहिं ॥

इन उद्धरणोंसे यह अवगत होता है कि उदयचन्द्र माथुरसंघके थे। सुगन्धदशमीकथाकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे। उन्होंने अपनी पत्नीका नाम देवमति बताया है। यही कारण है कि विनयचन्द्रने 'निज्झरपंचमीकहा' और बालचन्द्रने 'नरगउतारी कथा' में उन्हें गुरु—विद्यागुरुके रूपमें स्मरण किया है, नमस्कार नहीं किया। उदयचन्द्रने दीक्षा लेकर जब मुनिचर्या ग्रहण कर ली, तो विनयचन्द्रने उन्हें 'चूनड़ी'में मुनीश्वर कहा है और अपने दीक्षागुरु बालचंद्रके साथ उन्हें भी नमस्कार किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विनयचन्द्रने विद्यागुरु होनेसे उदयचन्द्रका सर्वत्र पहले उल्लेख किया है और दीक्षागुरु बालचन्द्रका पश्चात्। बालचन्द्रने भी उदयचन्द्रको गुरुरूपमें स्मरण किया है।

उदयचन्द्र, बालचन्द्र और विनयचन्द्र माथुर संघके मुनि थे। इस संघका साहित्यिक उल्लेख सर्वप्रथम अमितगतिके ग्रन्थोंमें मिलता है। सुभाषितरत्न-

---

१. हीरालाल जैन, सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रस्तावना, पृ० २-३।

सन्दोहका रचनाकाल संवत् १०५० है और इस संघके दूसरे बड़े साहित्यकार अमरकीर्त्ति थे, जिन्होंने वि० सं० १२४७ में अपभ्रंशका 'छक्कम्मोवएस' लिखा है। अतएव उदयचन्द्र माथुर संघके आचार्य थे।

उदयचन्द्रने सुगन्धदशमी कथाके रचना-स्थानका उल्लेख नहीं किया; किन्तु उनके शिष्य बालचन्द्रने 'नरगउतारीकथा' का रचनास्थल यमुना नदीके तटपर बसा हुआ महावन बतलाया है। विनयचन्द्रने अपनी दो रचनाओं—'निर्झरपंचमीकथा' और 'चूनड़ी' को त्रिभुवनगिरिमें रचित कहा है। डॉ० हीरालालजीने महावनको मथुराके निकट यमुनानदीके तटपर बसा हुआ बताया है। और त्रिभुवनगिरि तिहनगढ़-थनगिर है, जो मथुरा या महावनसे दक्षिण पश्चिमकी ओर लगभग ६० मील दूर राजस्थानके पुराने करौली राज्य और भरतपुर राज्यमें पड़ता है। इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंका निवास और विहार प्रदेश मथुरा जिला और भरतपुर राज्यका भूभाग माना जा सकता है।

स्थितिकाल

उदयचन्द्रने अपनी रचना सुगन्धदशमीकथामें रचनाकालका निर्देश नहीं किया है और न विनयचन्द्रने ही अपनी किसी रचनामें रचनाकालका उल्लेख किया है। चूनड़ीमें यह अवश्य लिखा है कि त्रिभुवनगिरिमें अजयनरेन्द्रके राजविहारमें रहते हुए इस ग्रंथकी रचना की। डॉ० हीरालाल जैनका[१] कथन है कि भरतपुर राज्य और मथुरा जिलाके भूमिप्रदेशपर यदुवंशी राजाओंका राज्य था, जिसकी राजधानी श्रीपथ—बयाना थी। यहाँ ११वीं शतीके पूर्वार्द्धमें जगत्पाल नामक राजा हुए। उनके उत्तराधिकारी विजयपाल थे, जिनका उल्लेख विजय नामसे बयानाके सन् १०४४ ई० के उत्कीर्ण लेखमें किया गया है। इनसे उत्तराधिकार त्रिभुवनपालने बयानासे १४ मील दूरीपर तिहनगढ़ नामका किला बनवाया। इस वंशके अजयपाल नामक राजाकी एक प्रशस्ति खुदी मिली है, जिसके अनुसार सन् ११५० ई० में उनका राज्य वर्तमान था। इनका उत्तराधिकारी हरिपाल हुआ, जिसका ११७० ई० का अभिलेख मिला है।

तिहनगढ़ या थनगढ़पर ११९६ ई० मुइजुद्दीन मु० गोरीने आक्रमण कर वहाँके राजा कुँवरपालको परास्त किया। और वह दुर्ग बहाउद्दीन तुघरिलको सौंप दिया। इस प्रकार मथुरापर १२वीं शती तक यदुवंशकी राज्यपरम्परा बनी रही।

---

१. सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रस्तावना, पृ० ४।

इस ऐतिहासिक विवेचनसे यह स्पष्ट होता है। कि सुगन्धदशमीकथाके कर्त्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरिमें अपनी दो रचनाएँ पूर्ण की थीं उसका निर्माण यदुवंशी त्रिभुवनपालने अपने नामसे सन् १०४४ ई० के कुछ काल पश्चात् कराया। चूनड़ीकी रचना अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमें रहकर की थी वह निस्सन्देह उन्हीं अजयपाल नरेश द्वारा निर्मित हुआ होगा, जिनका ११५० ई० का उत्कीर्ण लेख महावनमें मिला है। सन् ११९६ ई० में मुसलमानोंके आक्रमणसे त्रिभुवनगिरि यदुवंशी राजाओंके हाथसे निकल चुका था। अतएव त्रिभुवनगिरिमें लिखे गये उक्त दोनों ग्रंथोंका रचनाकाल ११५० ई०–११९६ ई० के बीच संभव है। चूनड़ीकी रचनाके समय उदयचन्द्र मुनि हो चुके थे, पर सुगन्धदशमीकथाकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे। अतएव बालचन्द्रका समय ई० सन्‌की १२वीं शताब्दी माना जा सकता है।

रचना

कवि उदयचन्द्रकी 'सुअंधदहमीकहा' नामकी एक ही रचना उपलब्ध है। सुगन्धदशमी कथामें बताया गया है कि मुनिनिन्दाके प्रभावसे कुष्ठरोगकी उत्पत्ति, नीच योनियोंमें जन्म तथा शरीरमें दुर्गन्धका होना एवं धर्माचरणके प्रभावसे पापका निवारण होकर स्वर्ग एवं उच्च कुलमें जन्म होता है। कथामें बताया है कि एक बार राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिए जा रहे थे कि सुदर्शन नामक मुनि आहारके लिए आते दिखाई दिये। राजाने अपनी पत्नीको उन्हें आहार करानेके लिये वापस भेजा। रानीने क्रुद्ध हो मुनिराजको कड़वी तुम्बीका आहार करवाया। उसकी वेदनासे मुनिका स्वर्गवास हो गया। राजाको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने उसे निरादरपूर्वक निकाल दिया। उसे कुष्ठ व्याधि हो गई और वह सात दिनके भीतर मर गई। कुत्ती, सूकरी, शृगाली, गदही आदि नीच योनियोंमें जन्म लेकर अन्ततः पूतगन्धाके रूपमें उत्पन्न हुई।

सुव्रता आर्यिकासे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुनकर पूतगन्धाको बड़ी आत्मग्लानि हुई और उसने मुनिराजसे उस पापसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सुगन्धदशमीव्रत ग्रहण किया और इस व्रतके प्रभावसे दुर्गन्धा अपने अगले जन्ममें रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी रूपवती पुत्री तिलकमति हुई। उसके जन्मके कुछ ही दिन बाद उसकी माताका देहान्त हो गया। तथा उसके पिताने दूसरा विवाह कर लिया। इस पत्नीसे उसे तेजमती कन्या उत्पन्न हुई। सौतेली माँ अपनी पुत्रीको जितना अधिक प्यार करती थी, तिलकमतीसे उतना ही द्वेष। इस कारण इस कन्याका जीवन बड़े दुःखसे व्यतीत होने लगा। कन्याओंके वयस्क होनेपर पिताको विवाहकी चिन्ता हुई। पर इसी समय उन्हें वहाँके

नरेश कनकप्रभका आदेश मिला कि वें रत्नोंको खरीदनेके लिए देशान्तर जायें। जाते समय समय सेठ अपनी पत्नीसे कह गया कि सुयोग्य वर देखकर दोनों कन्याओंका विवाह कर देना। जो भी वर घरमें आते वे तिलकमतिके रूपपर मुग्ध हो जाते और उसीकी याचना करते। पर सेठनी उसकी बुराई कर अपनी पुत्रीको आगे करती और उसीकी प्रशंसा करती। तो भी वरके हठसे विवाह तिलकमतिका ही पक्का करना पड़ा। विवाहके दिन सेठानी तिलकमतिको यह कहकर श्मसानमें बैठा आई कि उनकी कुलप्रथानुसार उसका वर वहीं आकर उससे विवाह करेगा, किन्तु घर आकर उसने यह हल्ला मचा दिया कि तिलक-मति कहीं भाग गई। लग्नकी बेला तक उसका पता न चल सकनेके कारण वरका विवाह तेजमतीके साथ करना पड़ा। इस प्रकार कपटजाल द्वारा सेठानी-ने अपनी इच्छा पूर्ण की।

इधर राजाने भवनपर चढ़ कर देखा कि एक सुन्दर कन्या श्मशानमें बैठी हुई है। वह उसके पास गया और सारी बातें जानकर उससे विवाह कर लिया। राजाने अपना नाम पिंडार बतलाया। कन्याने यह सारा समाचार अपनी सौतेली माँको कहा। सौतेली माँने एक पृथक् गृहमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी। राजा रात्रिको उसके पास आता और सूर्योदयके पूर्व ही चला जाता। पतिने रत्नजटित वस्त्राभूषण भी उसे दिये, जिन्हें देख सेठानी घबरा गई। और उसने निश्चय किया कि उसके पतिने राजाके यहाँसे इसे चुराया है। इसी बीच सेठ भी विदेशसे लौट आया। सेठानीने सब वृत्तान्त सुनाकर राजाको खबर दी। राजाने चिन्ता व्यक्त की और सेठको अपनी पुत्रीसे चोरका पता प्राप्त करनेका आग्रह किया। पुत्रीने कहा कि मैं तो उन्हें केवल चरणके स्पर्शसे पहचान सकती हूँ। अन्य कोई परिचय नहीं। इस पर राजाने एक भोजका आयोजन कराया, जिसमें सुगन्धाको आँखे बाँधकर अभ्यागतोंके पैर धुलानेका काम सौंपा गया। इस उपायसे राजा ही पकड़ा गया। राजाने उस कन्यासे विवाह करने-का अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे समस्त वातावरण आनन्दसे भर गया। इस प्रकार मुनिके प्रति दुर्भावके कारण जो रानी दुःखी, दरिद्री और दुर्गन्धा हुई थी वही सुगन्धदशमीव्रतके पुण्य प्रभावसे पुनः रानीके पदको प्राप्त हुई।

यह कथा वर्णनात्मक शैलीमें लिखी गई है, पर बीच-बीचमें आये हुए संवाद बहुत ही सरस और रोचक हैं। राजा-रानीसे कहता है—

दिट्ठउ वि सुदंसणु मुणिवरिंदु। मयलंछणहीणु अउव्व-इंदु।
दो-दोसा-आसा चत्तकाउ। णाणत्तय-जुत्तउ वीयराउ।

सव्वंग-मलेण विलित्तगत्तु । चउ-विकहा-वण्णणे जो विरत्तु ।
परमेसरु सिरि मासोपवासि । गिरिकंदरे अहव मसाणवासि ।
सो पेक्खिवि परमाणंदएण । पभणिय पियपरमसणेहएण ।
इह पेसणजोग्गु ण अण्णु को वि । तो हउं मि अह व फुडु पत्तु होइ ।
जाएप्पिणु अणुराएण वुत्तु । पारणउ करावहि मुणि तुरंत ।
लब्भइ पियमेलण भवसमुद्दे । वणकीलारोहणु गय वरिंदे ।
इउ सुलहउ जीवहो भवि जि भए । दुलहउ जिणधम्मु भवण्णपए ।
दुलहउ सुपत्तदाणु वि विमलु । मुत्ताहल-सिप्पिहि जेम जलु ।

अर्थात् मुनीश्वर सुदर्शनका दर्शन पाकर राजाको परमानन्द हुआ । उन्होंने अपनी रानी श्रीमतीसे कहा—'प्रिय ! इस समय हमें अपने कर्तव्यका निर्वाह करना चाहिए । मुनि आहार-दानकी क्रिया सेवक-सेविकाओंसे सम्पन्न होने की नहीं । इसे तो मुझे या तुम्हें सम्पन्न करना होगा । अतएव तुम स्वयं जाकर धर्मानुराग सहित मासोपवासी मुनिराजकी पारणा कराओ । इस भव-सागरमें प्रियमिलन, वनक्रीडा, राजारोहण आदि सुख तो इस जीवको जन्म-जन्मान्तरमें सुलभ हैं; किन्तु इस भव-समुद्रमें जिनधर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । और उसमें भी अतिदुर्लभ है शुद्ध सुपात्रदानका अवसर । जिस प्रकार मुक्ता-फलकी सीपके लिये स्वातिनक्षत्रका जलबिन्दु दुर्लभ होता है । अतएव सद्भाव सहित घर जाकर अनुरागसहित इन मुनिराजको आहार कराओ, जो प्राशुक और गीला हो, मधुर और रसीला हो, जिससे इनका धर्मसाधन सुलभ हो ।

कटुकफलोंका आहार-दान करनेसे रानीको अनेक कुगतियोंमें भ्रमण करना पड़ा । प्रथम-सन्धिके १२ कड़वकोंमें कुगति-भ्रमणके अनन्तर मुनिराज द्वारा विधिपूर्वक सुगन्धदशमीव्रतका विवेचन किया गया है । और दुर्गन्धाने उस व्रतका विधिपूर्वक पालन किया है । कविने विमाता और तिलकमतीके संवादका भी अच्छा चित्रण किया है । परीक्षाके हेतु राजाने भोजका आयोजन किया और उसी भोजमें राजा पतिके रूपमें पहचाना गया । इस प्रकार कविने इस कथाको पूर्णतया सरस बनानेका प्रयास किया है ।

बालचन्द्र

कवि बालचन्द्रका सम्बन्ध उदयचन्द्र और विनयचन्द्रके साथ है । ये माथुर-संघके आचार्य थे । बालचन्द्रने अपने गुरुका नाम उदयचन्द्र बतलाया है । 'णिद्दुक्खसत्तमीकहा' के आदिमें लिखा है—

'संतिजिणिंदहं-पय-कमलु भव-सय-कलुस-कलंक-निवारु।
उदयचन्दगुरु धरेवि मणे बालइंदुमुणि णविवि णिरंतरु ॥'

स्पष्ट है कि कविके गुरुका नाम उदयचन्द्र मुनि था। बालचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्र मुनि थे। कवि व्रतकथाओंका विज्ञ है और व्रताचरण द्वारा ही व्यक्ति अपना उत्थान कर सकता है; इस पर उन्हें विश्वास है।

श्री डॉ० हीरालालजी जैनने सुगन्धदशमी कथाकी प्रस्तावनामें उदयचन्द्रका समय ई० सन्‌की १२वीं शती सिद्ध किया है। उन्होंने विनयचन्द्र द्वारा रचित 'चूनड़ी'के उल्लेखोंके आधारपर अभिलेखीय और ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत कर निष्कर्ष निकाले हैं। डॉ० जैनने लिखा है—"सुगन्धदशमीकथाके कर्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरि (तिहनगढ़) में अपनी उक्त दो रचनाएँ पूरी की थीं, उसका निर्माण इस यदुवंशके राजा त्रिभुवनपाल (तिहनपाल)ने अपने नामसे सन् १०४४के कुछ काल पश्चात् कराया था तथा अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमें रहकर उन्होंने चूनड़ीकी रचना की थी, वह निस्संदेह इन्हीं अजयपालनरेश द्वारा बनवाया गया होगा, जिनका सन् ११५०का उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है। सन् ११९६ में त्रिभुवनगिरि उक्त यदुवंशी राजाओंके हाथसे निकलकर मुसलमानोंके हाथमें चला गया। अतएव त्रिभुवनगिरिके लिखे गये उक्त दोनों ग्रन्थोंका रचनाकाल लगभग सन् ११५० और ११९६ के बीच अनुमान किया जा सकता है।"[१]

अतः स्पष्ट है कि कवि बालचन्द्रका समय ई० सन्‌की १२वीं शती है।

रचनाएँ

कविकी दो कथा-कृतियाँ उपलब्ध हैं—१. णिद्दुक्खसत्तमीकहा और २. नरक उतारोदुधारसीकथा। प्रथम कथाग्रन्थमें 'निर्दुःखसप्तमीव्रतके करनेकी विधि और व्रतपालन करने वालेकी कथा वर्णित है। यह व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको किया जाता है। इस व्रतमें 'ॐ ह्रूं असिआउसा' इस मंत्रका जाप किया जाता है। व्रतके पूर्व दिन संयम धारण किया जाता है और व्रतके अगले दिन भी संयमका पालन किया जाता है। इस व्रतमें प्रोषधोपवासकी विधि सम्पन्न की जाती है। सात वर्षों तक व्रतके पालन करनेके पश्चात् उद्यापन करनेकी विधि बतायी है। लिखा है—

"किज्जइ धण सत्तिहि उज्जवणउं, विविह-ण्हवणेंहि दुह-दमणउं।

१. डॉ० हीरालाल जैन, सुगन्धदशमी कथा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् १९६६, प्रस्तावना पृ० ४।

आयण्णि वि मुणि भासियंउ, राएँ गुण अणुराउ वहंते।
लयउ धम्मु सावय जणहिं, ति-यरणेंहि विहिउ उत्तम सत्ते।"

कविका दूसरा ग्रन्थ 'नरकउतारीदुधारसी कथा' है। इस कथामें नरकगति-से उद्धार करनेके लिए वारक्रमानुसार रसका परित्यागकर व्रताचरण करने और इस व्रताचरणके द्वारा प्राप्त किये गये फलका कथन किया है। ग्रन्थके आरम्भमें लिखा है—

समवसरण-सीहासण-संठिउ, सो जि देउ महु मणह पइट्ठउ।
अवर जी हरिहर बंभु पडिल्लउ, ते पुण णमउं ण मोह-गहिल्लउ॥
छह दंसण जा थिर करइ वियरइ बुद्धि-पगासा।
सा सारद जइ पुज्जियइ, लब्भइ बुद्धि सहासा।
उदयचन्द्र मुणि गणहि जुगइणउ सोमइं भावें मणि अणुसरिउ।
बालइंदु सुणि णविवि णिरंतरु णरगउतारी कहयि कहंतरु।

इस प्रकार मुनि बालचन्द्रने अपभ्रंशमें कथा-ग्रन्थोंकी रचना कर साहित्यिक समृद्धिमें योगदान किया है।

विनयचन्द्र

विनयचन्द उदयचन्द्रके प्रशिष्य और बालचन्द्रके शिष्य थे। उदयचन्द्र और बालचन्द्रके समयपर पूर्वमें प्रकाश डाला जा चुका है। अतएव उनका समय ई० सन्‌की १२वीं शताब्दी प्रायः निर्णीत है। विनयचन्द्रने तीन रचनाएँ लिखी हैं—१. चूनड़ीरास, २. निर्झरपंचमीकहारास और ३. कल्याणकरास। चूनड़ीरासमें ३२ पद्य हैं। यह रूपक-काव्य है। कवि मुनिविनयचन्द्रने चूनड़ी नामक उत्तरीयवस्त्रको रूपक बनाकर गीतिकाव्यकी रचना की है। कोई मुग्धा युवती हँसती हुई अपने पतिसे कहती है कि हे प्रिय! जिनमंदिरमें भक्ति-भावपूर्वक दर्शन करने जाइये और कृपाकर मेरे लिये एक अनुपम चूनड़ी छपवाकर ले आइये, जिससे मैं जिनशासनमें प्रवीण हो सकूँ। वह यह भी अनुरोध करती है कि यदि आप उसप्रकारकी चूनड़ी छपवाकर नहीं दे सकेंगे, तो वह छापने वाला छीपा तानाकशी करेगा। पति पत्नीकी बातें सुनकर कहता है—हे मुग्धे, वह छीपा मुझे जैनसिद्धान्तके रहस्यसे परिपूर्ण एक सुन्दर चूनड़ी छापकर देनेको कहता है।

कविने इस चूनड़ीरासमें द्रव्य, अस्तिकाय, गुण-पर्याय, तत्त्व, दशधर्म, व्रत आदिका विश्लेषण किया है।

चूनड़ी उत्तरीयवस्त्र है, जिसे राजस्थानकी महिलाएँ ओढ़ती हैं। कविने

इसी रूपकके माध्यमसे संकेतों द्वारा जैनसिद्धान्तके तत्त्वोंकी अभिव्यंजना की है। यह गीतिकाव्य कण्ठको तो विभूषित करता ही है, साथ ही भेदविज्ञानकी भी शिक्षा देता है।

इस सरस, मनोरम और चित्ताकर्षक रचना पर कविकी एक स्वोपज्ञ टीका भी उपलब्ध है, जिसमें चूनड़ीरासमें दिये गये शब्दोंके रहस्यको उद्घाटित किया गया है।

निर्झरपंचमीकहामें निर्झरपंचमीके व्रतका फल बतलाया गया है। इस व्रतकी विधिका निरूपण करते हुए कविने स्वयं लिखा है—

"धवल पक्खि आसाढ़हि पंचमि जागरणू,
सुह उपवासइ किज्जइ कातिग उज्जवणू।
अह सावण आरंभिय पुज्जइ आगहणो,
इह मइ णिज्झर-पंचमि अक्खिय भय-हरणे ॥"

अर्थात् आषाढ़ शुक्ला पंचमीके दिन जागरणपूर्वक उपवास करे और कार्तिकके महीनेमें उसका उद्यापन करे। अथवा श्रावणमें आरंभ कर अगहनके महीनेमें उद्यापन करे। उद्यापनमें पाँच छत्र, पाँच चमर, पाँच वर्तन, पाँच शास्त्र और पाँच चन्दोवे या अन्य उपकरण मंदिरमें प्रदान करने चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो, तो दूने दिनों तक व्रत करना चाहिए।

निर्झरपंचमीव्रतके उद्यापनमें पंच परमेष्ठीकी पृथक्-पृथक् पाँच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमानविंशतितीर्थंकरपूजन, आदिनाथपूजन और महावीर-स्वामीका पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते हैं। कवि विनयचन्द्रने इस कथामें निर्झरपंचमीव्रतके फलको प्राप्त करनेवाले व्यक्तिकी कथा भी लिखी है।

कल्याणकरासमें तीर्थंकरोंके पंचकल्याणकोंकी तिथियोंका निर्देश किया गया है। कविने लिखा है—

पढम पक्खि दुइज्जहिं आसाढहि, रिसइ गब्भज्जहिं उत्तर साढहिं।
अंधियारी छट्ठिहि तंहिमि (हउं) वंदमि वासुपुज्ज गब्भुत्थउ।
विमलु सुसिद्धउ अट्ठमिहि दसमिहि, णामि जिण जम्मणु, तह तउ।
सिद्ध सुहंकर सिद्धि पहु ॥२॥

कविने अंतिम पद्यमें बताया है कि एक तिथिमें एक कल्याणक हो, तो एक भक्त करे, दो कल्याणक हों तो निर्विकृति यह एक स्थानक करे, तीन हो तो आचाम्ल करे, चार हों तो उपवास करे अथवा सभी कल्याणकदिवसमें एक उपवास ही करे।

कविने लिखा है—

"एयभत्तु एक्किजि कल्लाणइ, पिहि णिव्वियडि अहव इग ठाणइ।
तिहि आयंबिलु जिणु भणइ, चउहि होइ उववासु गिहत्थहं।
अहवा सयलह खवणविहि, विणयचंदमुणि कहिउ समत्थहं।
सिद्धि सुहंकर सिद्धिपहु०"

इस काव्यमें २५ पद्य हैं। एक-एक पद्यमें प्रत्येक तीर्थंकरके कल्याणककी तिथियाँ बतलायी गई हैं। किसी-किसी पद्यमें दो-दो तीर्थंकरोंकी कल्याणक-तिथियाँ हैं और कहीं दो-दो पद्योंमें एक ही तीर्थंकरके कल्याणककी तिथि है। भाषा शैली प्रौढ़ है। यहाँ उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

णिम्मल दुइजहि सुविहि सु केवलु
णेमिहि छट्ठिहि गब्भु सुमंगलु।
अरजिण-णाणु दुवारसिहि संभव-संभउ पुण्णिम-वासरि
णव कल्लाणहं अट्ठ दिण इय विहि पक्खहि कत्तिय-अवसरि।

महाकवि दामोदर

महाकवि दामोदरका वंश मेउत्तय था। इनके पिताका नाम मल्ह था, जिन्होंने रल्हका चरित लिखा था। ये सलखनपुरके वासी थे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम जिनदेब था। कवि मालवाका रहनेवाला था। यह दामोदर 'उक्ति-व्यक्ति-विवृत्ति' के रचयितासे भिन्न है। पुष्पिकावाक्यमें कविने निम्न प्रकार नामांकन किया है—

"इय णेमिणाहचरिए महामुणिकमलभद्दपच्चक्खे महाकइ-कणिट्ठ-दामोयरविरइए पंडियरामयंद-आएसिए महाकव्वे मल्ह-सुअ-णग्गएव-आयण्णिए णेमि-णिव्वाणगमणं पंचमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१४५॥"

इससे स्पष्ट है कि कवि दामोदरने महामुनि कमलभद्रके प्रत्यक्षमें पं० रामचन्द्रके आदेशसे इस ग्रन्थकी रचना की। कविके पिताका नाम मल्ह था। उसने अपने वंशका परिचय भी निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है—

मेउत्तयवंश-उज्जोण-करणु, जे हीण-दीण-दुइ-रोय-हरणु।
मल्हइ-णंदणु गुणगणपवित्तु, तेणि भणिउ दल्हविरयहि चरित्तु।
मइं सलखणपुरि-णिवसंतएण, किउ भव्वु कव्वु गुरु-आयरेण।

इस वंश-परिचयसे इतना ही ज्ञात होता है कि कवि सलखनपुरका निवासी था और उसके पिताका नाम मल्ह या मल्हण और बड़े भाईका नाम जिन-देव था।

कविने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना की है। और यह ग्रंथ टोडाके शास्त्र-भण्डारमें विद्यमान है।

इस ग्रंथकी रचनाकी प्रेरणा देनेवाले व्यक्ति मालवदेशमें स्थित सलखन-पुरके निवासी थे। ये खंडेलवालकुलभूषण, विषयविरक्त और तीर्थंकर महावीरके भक्त थे। केशवके पुत्र इन्दुक या इन्द्र थे, जो गृहस्थके षट्कर्मोंका पालन करते थे तथा मल्हके पुत्र नागदेव पुण्यात्मा और भव्यजनोंके मित्र थे। इन्हींकी प्रेरणा एवं अनुरोधसे इस ग्रंथकी रचना की गई है।

स्थितिकाल

इस ग्रंथमें रचनाकालका उल्लेख आया है। बताया है कि परमारवंशी राजा देवपालके राज्यमें वि० सं० १२८७ में इस ग्रंथकी रचना सम्पन्न हुई है। लिखा है—

> "*वारह-सयाइं सत्तासियाइं, विक्कमरायहो कालहं।*
> पमारहं पट्टु समुद्धरण णरव्वइ देवपालहं ॥"

इस पद्यमें कविने मालवाके परमारवंशी राजा देवपालका उल्लेख किया है। यह महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्माका द्वितीय पुत्र था। अर्जुनवर्माको कोई सन्तान नहीं थी। अतः उसके राजसिंहासनका अधिकार इन्हींको प्राप्त हुआ था। इसका अपर नाम साइसमल्ल था। इनके समयके तीन अभिलेख और एक दानपत्र प्राप्त होते हैं। एक अभिलेख हरसोडा गाँवसे वि० सं० १२७५ में और दो अभिलेख ग्वालियर-राज्यसे वि० सं० १२८६ और वि० सं० १२८९ के प्राप्त हैं।[१] मानधातासे वि० सं० १२९२ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमाका दानपत्र भी मिला है।[२] दिल्लीके सुल्तान समसुद्दीन अल्तमशने मालवा पर ई० सन् १२३१–३२ में आक्रमण किया था और एक वर्षके युद्धके पश्चात् ग्वालियरको विजित किया था। इसके पश्चात् भेलसा और उज्जयिनीको भी जीता था। उज्जयिनीके महाकाल मंदिरको भी तोड़ा था। सुल्तान जब लूट-पाट कर रहा था, उस समय वहाँका राजा देवपाल ही था। इसीके राज्यकालमें पं० आशाधरने वि० सं० १२८५ में नलकच्छपुरमें 'जिनयज्ञकल्प' नामक ग्रन्थकी रचना की है। 'जिनयज्ञकल्प'की प्रशस्तिमें देवपालका उल्लेख आया है।

दामोदर कविने वि० सं० १२८७ में 'णेमिणाहचरिउ' लिखा था। उससमय देवपाल जीवित था। पर जब आशाधरने वि०सं० १२९२में त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र

१. इंडियन एण्टी क्वेरी, जिल्द २०, पृ० ८३ तथा पृ० ३११।

2. Epigrahica Indica, Vol. 9, Page 108–113.

लिखा, उससमय देवपालकी मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र जयतुंगदेव राजा था। इससे यह ध्वनित होता है कि देवपालकी मृत्यु वि० सं० १२९२ के पूर्व हो चुकी थी।

इसप्रकार कविने अपने ग्रन्थका जो रचनाकाल बतलाया है उसकी पुष्टि हो जाती है। अतः कवि दामोदरका समय वि० सं० की १३ वीं शती है।

रचना

दामोदरके नामसे कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं। पर णेमिणाहचरिउकी प्रशस्तिमें जो अपना परिचय दिया है उसका मेल श्रीपालकथाकी प्रशस्तिसे नहीं बैठता है। अतएव णेमिणाहचरिउका रचयिता दामोदर श्रीपालकथाके रचयिता दामोदरसे भिन्न है।

इस चरित-ग्रंथमें पाँच सन्धियाँ हैं और २२वें तीर्थंकर नेमिनाथकी कथा गुम्फित है। प्रसंगवश कविने श्रीकृष्ण, पाण्डव और कौरवोंका भी जीवनवृत्त अंकित किया है। यह सुन्दर और अर्थपूर्ण खण्डकाव्य है। इसमें सूक्ति और नीतिके उपदेशोंके साथ श्रावकधर्मका भी कथन आया है। इसी कारण कविने इस णेमिणाहचरिउको दुर्गति-निवारक कहा है—

"चउविह-संघहं सुहंसति करणु,
णेमिसर-चरिउ बहुदुःख-हरणु।
दुज्जीह जि किणि वय-गुणइं लेहि,
भवि-भाव-सिद्धि संभवउ तेहि।"

यह चरित-काव्य आडम्बरहीन और गंभीर अर्थपरिपूर्ण है। कविने अपने गुरुका नाम दामोदर बताया है, जो गुणभद्रके पट्टधर शिष्य थे। पृथ्वीधरके पुत्र पं० ज्ञानचन्द्र और पं० रामचन्द्रने उपदेश दिया तथा जसदेवके पुत्र जसविधानने वात्सल्यका भाव प्रदर्शित किया था।

दामोदर द्वितीय अथवा ब्रह्म दामोदर

ब्रह्म दामोदरने सिरिपालचरिउ और चंदप्पहचरिउकी रचना की है। इन्होंने ग्रंथारंभमें अपनी गुरु-परम्परा अंकित की है। बताया है—

मंतोवहि वड्ढण पुण्णिमिंदु, पहचंदु भडारउ जगि अणिंदु।
तहो पट्टंवर-मंडल मियंकु, भव्वाण-पवोहणु बिहुय-संकु।
सिरिपोमणंदि णंदिय समोहु, सुहचंदु तासु सीसुवि विमोहु
परवाइय-मयंगय-पंचमुहु, परिपालिय-संजम-णियम-विहु।

तह पट्टसरोवर-रायहंसु, जिणचंदभडारउ भुवणहंसु।
वंदिवि गुरुयण-वरणाणवंत, भत्तीइ पसण्णायर सुसंत।

बताया है कि मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके भट्टारक प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र और कवि दामोदर हुए। सिरिपालचरिउके पुष्पिकावाक्यमें कविने अपना नाम ब्रह्म दामोदर बताया है और इस ग्रंथको देवराजपुत्र साहू नक्षत्र नामांकित कहा है।

"इय सिरिपालमहाराजचरिए जयपयडसिद्धचक्कपरमातिसयविसेस-गुणणियर-भरिए बहुरोर-घोर-दुट्ठयर-वाहि-पसर-णिण्णासणे धम्मइंपुरि सत्थपय-पयासणो भट्टारयसिरिजिणचन्दसामिसीसब्रह्मदामोयरविरइए सिरिदेवराज-णंदण-साहुणक्खत्त-णामंकिए सिरिपालराय-मुत्तिगमणविहि-वण्णणो णाम चउत्थो संधिपरिच्छेओ समत्तो।"

कविने इस ग्रन्थको इक्ष्वाकुवंशीय देवराजसाहूके पुत्र नक्षत्रसाहूके लिये रचा है। कविके गुरु जिनचन्द्र दिल्लीपट्टके भट्टारक थे। जिनचन्द्रकी उन दिनोंमें प्रभावशाली भट्टारकके रूपमें गणना थी। संस्कृत-प्राकृतके विद्वान् होनेके साथ ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ प्रायः सभी प्रान्तोंमें पायी जाती हैं। शान्तिनाथमूर्तिके अभिलेखसे अवगत होता है कि पद्मनन्दीके पट्टपर शुभचन्द्र और शुभचन्द्रके पट्टपर जिनचन्द्र आसीन हुए थे। जिनचन्द्र वि० सं० १५०७ में भट्टारकपदपर प्रतिष्ठत हुए और ६४ वर्षों तक अवस्थित रहे। उनके अनेक विद्वान् शिष्य थे, जिनमें पं० मेधावी और दामोदर प्रधान हैं।

"सं० १५०९ वर्षे चैत्र सुदी १३ रविवासरे श्रीमूलसंघे भ० पद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे श्रीशुभचन्द्रदेवाः तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रदेवाः श्रीधौपे ग्रामस्थाने महाराजाधिराजश्रीप्रतापचन्द्रदेवराज्ये प्रवर्तमाने यदुवंशे लंबकंचुकान्वये साधुश्रीउद्धर्ण तत्पुत्र असौ।"

× × ×

"संवत् १५०७ ज्येष्ठ वदि ५ भ० जिनचंद्रजी गृहस्थवर्ष १२, दिक्षावर्ष १५, पट्टवर्ष ६४ मास ८ दिवस १७, अन्तरदिवस १०, सर्ववर्ष ९१ मास ८ दिवस २७ बघेरवालजातिपट्ट दिल्ली।"

कविका स्थितिकाल पट्टावली, मूर्तिलेख एवं भट्टारक जिनचन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ-प्रशस्तियों आदिके आधार पर वि० की १६वीं शती है। ब्रह्म दामोदर दिल्लीकी भट्टारकगद्दीसे सम्बद्ध हैं और जिनचन्द्रके शिष्य हैं। अतः इनके समय-निर्णयमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है।

कविकी 'सिरिपालचरिउ' रचना काव्य और पुराण दोनों ही दृष्टियोंसे

महत्त्वपूर्ण है। इसमें ४ सन्धियाँ हैं। और सिद्धचक्रका महात्म्य बतलानेके लिए चम्पापुरके राजा श्रीपाल और नयनासुन्दरीका जीवनवृत्त अंकित है। नयनासुन्दरीने सिद्धचक्रव्रतके अनुष्ठानसे अपने कुष्ठी पति राजा श्रीपाल और उनके ७०० साथियोंको कुष्ठरोगसे मुक्त किया था।

कविकी दूसरी रचना 'चंदप्पहचरिउ'में अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जीवन गुम्फित है। इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि नागौरके भट्टारकीय शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है।

सुप्रभाचार्य

सुप्रभाचार्यने उपदेशात्मक ७७ दोहोंका एक 'वैराग्यसार' नामक लघुकाय ग्रन्थ लिखा है। कवि दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है। कविने स्वयं दिगम्बर साधुका रूप उपस्थित किया है। लिखा है—

रिसिदयवरवंदिण सयण जं सुहु लहि विनजंति।
झटित्तं घरु सुप्पउ भणइं घोरमसाणु नभंति ॥४६॥

डॉ० हरिवंश कोछड़ने कविका समय विचारधारा, शैली और भाषाके आधार पर ११वीं और १३वीं शताब्दीके मध्य माना है।

कविकी यह रचना सांसारिक-विषयोंकी अस्थिरता और दुःखोंकी बहुलताका प्रतिपादन कर धर्ममें स्थिर बने रहनेके लिये प्रेरित करती है। कविने लिखा है—

सुप्पउ भणइ रे धम्मियहु, खसहु म धम्म णियाणि।
जे सूरग्गमि धवल घरि, ते अंधवण मसाण ॥२॥
सुप्पउ भणइं मा परिहरहु पर-उवचार (यार) चरत्थु।
ससि सूर दुहु अंधवणि अणहं कवण थिरत्थु ॥३॥

अर्थात् सुप्रभ कवि कहते हैं कि हे धार्मिको! निश्चित धर्मसे स्खलित न हो। जो सूर्योदयके समय शुभ्र गृह थे, वे ही सूर्यास्त पर श्मशान हो गये। अतएव परोपकार करना मत छोड़ो, संसार क्षणिक है। जब चन्द्र और सूर्य अस्त हो जाते हैं, तब कौन स्थिर रह सकता है।

यह संसार वस्तुतः विडम्बना है, जिसमें जरा, यौवन, जीवन मरण, धन, दारिद्रय जैसे विरोधी तत्त्व हैं। बन्धु-बान्धव सभी नश्वर हैं, फिर उनके लिए पाप कर धन-संचय क्यों किया जाय। कवि इसी तथ्यकी व्यंजना करता हुआ कहता है—

जसु कारणि धणु संचइं, पाव करेवि, गहीरु ।
तं पिछहु सुप्पउ भणइं, दिणि दिणि गलइ सरीरु ॥३३॥

कवि धन-यौवनसे विरक्त हो, घर छोड़ धर्ममें दीक्षा लेनेका उपदेश देता है। कविका यह विश्वास है कि धर्माचरण ही जीवनमें सबसे प्रमुख है। जो धर्मत्याग कर देता है वह व्यक्ति अनन्तकाल तक संसारका परिभ्रमण करता रहता है। कवि स्त्री, पुत्र और परिवारकी आसक्तिको पिशाचतुल्य मानता है। जबतक यह पिशाच पीछे लगा रहेगा, तक तक निरंजनपद प्राप्त नहीं हो सकता। कविने लिखा है—

जसु लग्गइ सुप्पउ भणइं पिय-घर-घरणि-पिसाउ ।
सो किं कहिउ समायरइ मित्त णिरंजण भाउ ॥६१॥

'सुप्रभाचार्यः कथयति यस्य पुरुषस्य गृह-पुत्र-कलत्र-धनादिप्रीतिमद् वस्तु एव पिशाचो लग्नः तस्य पिशाचग्रस्तस्य पुरुषस्य न किमपि वस्तु सम्यग् स्वात्म-स्वरूपं भासते यद्यदाचरते तत् सर्वमेव निरर्थकत्वेन भासते।'

कविने दानका विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया है और धनकी सार्थकता दानमें ही मानी है। जो दाता धन दान नहीं करता और निरन्तर उदर-पोषण में संलग्न रहता है, वह पशुतुल्य है। मानव-जीवनकी सार्थकता दान, स्वाध्याय एवं ध्यान-चिन्तनमें ही है। जो मूढ़ विषयोंके अधीन हो अपना जीवन नष्ट करता है वह उसी प्रकारसे निर्बुद्धि माना जाता है जिस प्रकार कोई व्यक्ति चिन्तामणि रत्नको प्राप्त कर उसे यों ही फेंक दे। इन्द्रिय और मनका निग्रह करने वाला व्यक्ति ही जीवनको सफल बनाता है।

जसु मणु जीवइं विसयसुहु, सो णरु मुवो भणिज्ज ।
जसु पुण सुप्पय मणु मरइं, सो णरु जीव भणिज्ज ॥६०॥

'हे शिष्य ! यः पुरुषः अथवा या स्त्री ऐन्द्रियेन विषयसुखेन कृत्वा जीवति हर्षं प्राप्नोति स नरः वा सा स्त्री मृतकवत् कथ्यते। ततः सुप्रभाचार्यः कथयति किं यो भव्यः स्वमानसं निग्रह्णाति स भव्यः सर्वदा जीवति—लोकैः स्मर्यते।'

इस प्रकार कवि सुप्रभने अध्यात्म और लोकनीति पर पूरा प्रकाश डाला है। इस दोहा-ग्रन्थके अध्ययनसे व्यक्ति अपने जीवनमें स्थिरता और बोध प्राप्त कर सकता है।

महाकवि रइधू

महाकवि रइधूके पिताका नाम हरिसिंह और पितामहका नाम संघपति देवराज था। इनकी माँका नाम विजयश्री और पत्नीका नाम सावित्री था। इन्हें

सावित्रीके गर्भसे उदयराज नामक पुत्र भी प्राप्त था। जिस समय उदयराजका जन्म हुआ, उस समय कवि अपने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना कर रहा था। रइधू पद्मावतीपुरवालवंशमें उत्पन्न हुए थे। इनका अपरनाम सिंहसेन भी बताया जाता है। रइधू अपने माता-पिताके तृतीय पुत्र थे। इनके अन्य दो बड़े भाई भी थे, जिनके नाम क्रमशः बहोल और मानसिंह थे। रइधू काष्ठासंघ माथुर-गच्छकी पुष्करगणीय शाखासे सम्बद्ध थे।

रइधूके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंसे अवगत होता है कि हिसार, रोहतक, कुरुक्षेत्र, पानीपत, ग्वालियर, सोनीपत और योगिनीपुर आदि स्थानोंके श्रावकोंमें उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे ग्रन्थ-रचनाके साथ मूर्ति-प्रतिष्ठा एवं अन्य क्रिया-काण्ड भी करते थे। रइधूके बालमित्र कमलसिंह संघवीने उन्हें बिम्ब-प्रतिष्ठाकारक कहा है। गृहस्थ होने पर भी कवि प्रतिष्ठाचार्यका कार्य सम्पन्न करता था।

कविके निवास-स्थानके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता है। पर ग्वालियर, उज्जयिनीके उनके भौगोलिक वर्णनको देखनेसे यह अनुमान सहजमें लगाया जा सकता है कि कविकी जन्मभूमि ग्वालियरके आसपास कहीं होनी चाहिये; क्योंकि उसने ग्वालियरकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियोंका जैसा विस्तृत वर्णन किया है उससे नगरीके प्रति कविका आकर्षण सिद्ध होता है। अतएव कविका जन्मस्थान ग्वालियरके आसपास होनी चाहिये।

रइधूने अपने गुरुके रूपमें भट्टारक गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, श्रीपाल ब्रह्म, कमलकीर्ति, शुभचन्द्र और भट्टारक कुमारसेनका स्मरण किया है। इन भट्टारकोंके आशीर्वाद और प्रेरणासे कविने विभिन्न कृतियोंकी रचना की है।

स्थितिकाल

महाकवि रइधूने अपनी रचनाओंकी प्रशस्तियोंमें उनके रचनाकालपर प्रकाश डाला है। अभिलेखों और परवर्ती साहित्यकारोंके स्मरणसे भी कविके समय पर प्रकाश पड़ता है। कविने 'सम्मत्तगुणनिहाणकव्व'[1]की प्रशस्तिमें इस ग्रन्थका रचनाकाल वि० सं० १४९९ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा मंगलवार दिया है। 'सुक्कोसलचरिउ'[2] का रचनाकाल वि० सं० १४९६ अंकित है। रइधू-साहित्यमें गणेशनृपसुत राजा डोंगरसिंहका विस्तृत वर्णन आया है। रइधूके 'सम्मइ-जिणचरिउ'के एक उल्लेखके अनुसार वह उस समय ग्वालियर दुर्गमें ही निवास

१. सम्मतगुणनिहाणकव्व, ४।३४।८-१०।
२. सुक्कोसलचरिउ, ४।२३।१-३।

कर रहा था।[1] इससे ज्ञात होता है कि डोंगरसिंहका राज्यकाल वि० सं० १४-८२-१५११ है। अतः 'सम्मइजिणचरिउ' की रचना भी इसी समय हुई होगी।

वि० सं० १४९७ का एक मूर्त्तिलेख उपलब्ध है, जिसमें कवि रइधूको प्रतिष्ठाचार्य कहा गया है। 'सुक्कोसलचरिउ' के पूर्व कवि 'रिट्ठणेमिचरिउ', 'पासणाहचरिउ', 'बलहद्दचरिउ', 'तेसट्ठिमहापुरिसचरिउ', 'मेहेसरचरिउ', 'जसहरचरिउ', 'वित्तसार', 'जीवंधरचरिउ', 'सावयचरिउ' और 'महापुराण' की रचना कर चुका था।

महाकवि रइधूने 'धण्णकुमारचरिउ' की रचना गुरु गुणकीर्ति भट्टारकके आदेशसे की है और गुणकीर्तिका समय अनुमानतः वि० सं० १४५७–१४८६ के मध्य है। कवि महिंदुने अपने 'संतिणाहचरिउ'में अपने पूर्ववर्त्ती कवियोंके साथ रइधूका भी उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध है कि रइधू वि० सं० १५८७ के पूर्व ख्यात हो चुके थे।

श्री डॉ० राजाराम जैनने रइधू-साहित्यके अध्ययनके आधारपर निम्न-लिखित निष्कर्ष उपस्थित किये हैं—

१. महाकवि रइधूने भट्टारक गुणकीर्तिको अपना गुरु माना है। पद्मनाभ कायस्थने भी राजा वीरमदेव तोमरके मंत्री कुशराजके लिये भट्टारक गुणकीर्ति-के आदेशोपदेशसे 'दयासुन्दरकाव्य' (यशोधरचरित) लिखा था। वीरमदेव तोमरका समय वि० सं० १४५७–१४७६ है। अतः गुणकीर्त्तिका भी प्रारंभिक काल उसे माना जा सकता है। अतः वि० सं० १४५७ रइधूके रचनाकालकी पूर्वावधि सिद्ध होती है।

२. रइधूने कमलकीर्त्तिके शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र तथा डूंगरसिंहके पुत्र राजा कीर्त्तिसिंहके कालकी घटनाओंके बाद अन्य किसी भी राजा या भट्टारक अथवा अन्य किसी भी घटनाका उल्लेख नहीं किया, जिससे विदित होता है कि उक्त भट्टारक एवं राजा कीर्त्तिसिंहका समय ही रइधूका साहित्यिक अथवा जीवनका अन्तिम काल रहा होगा। राजा कीर्त्तिसिंह सम्बन्धी अन्तिम उल्लेख वि० सं० १५३६ का प्राप्त होता है। अतः यही रइधूकालकी उत्तरावधि स्थिर होती है।

इस प्रकार रइधूका रचनाकाल वि० सं० १४५७–१५३६ सिद्ध होता है।[2]

---

१. सम्मइ ०१।३।०–१०।

२. महाकवि रइधूके साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन, प्रकाशक प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, सन् १९७२, पृष्ठ १२०।

रचनाएँ

महाकवि रइधूने अकेले ही विपुल परिमाणमें ग्रन्थोंकी रचना की है। इसे महाकवि न कहकर एक पुस्तकालय-रचयिता कहा जा सकता है।

डॉ० राजाराम जैनने विभिन्न स्रोतोंके आधारपर अभी तक कविकी ३७ रचनाओंका अन्वेषण किया है।

१. मेहेसरचरिउ (अपरनाम आदिपुराण), २. णेमिणाहचरिउ (अपरनाम रिट्ठणेमिचरिउ), ३. पासणाहचरिउ, ४. सम्मइजिणचरिउ, ५. तिसट्ठिमहापुरिसचरिउ, ६. महापुराण, ७. बलहद्दचरिउ, ८. हरिवंशपुराण, ९. श्रीपालचरित, १०. प्रद्युम्नचरित, ११. वृत्तसार, १२. कारणगुणषोडशी, १३. दशलक्षणजयमाला, १४. रत्नत्रयी, १५. षड्धर्मोपदेशमाला, १६. भविष्यदत्तचरित, १७. करकंडुचरित, १८. आत्मसम्बोधकाव्य, १९. उपदेशरत्नमाला, २०. जिमंधरचरित, २१. पुण्याश्रवकथा, २२. सम्यक्त्वगुणनिधानकाव्य, २३. सम्यग्गुणारोहणकाव्य, २४. षोडशकारणजयमाला, २५. बारहभावना (हिन्दी), २६. सम्बोधपंचाशिका, २७. धन्यकुमारचरित, २८. सिद्धान्तार्थसार, २९. बृहत्सिद्धचक्रपूजा (संस्कृत), ३०. सम्यक्त्वभावना, ३१. जसहरचरिउ, ३२ जीणंधरचरित, ३३. कोमुइकहापबंधु, ३४. सुक्कोसलचरिउ, ३५. सुदंसणचरिउ, ३६. सिद्धचक्कमाहप्प, ३७. अणथमिउकहा।[१]

कविको रचना करनेकी प्रेरणा सरस्वतीसे प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एक दिन कवि चिन्तित अवस्थामें रात्रिमें सोया। स्वप्नमें सरस्वतीने दर्शन दिया और काव्य रचनेकी प्रेरणा दी। कविने लिखा है—

सिविणंतरे दिट्ठ सुयदेवि सुपसण्ण।
आहासए तुज्झ हउं जाए सुपसण्ण॥
परिहरहिं मणचित करि भव्वु णिसु कव्वु।
खलयणहं मा डरहि भउ हरिउ मइ सव्व॥
तो देविवयणेण पडिउवि साणंदु।
तक्खणेण सयणाउ उट्ठिउ जि गय-तंदु॥

सम्मइ०—१।४।२-४।

अर्थात् प्रमुदितमना सरस्वतीदेवीने स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मनकी समस्त चिन्ताएँ छोड़ हे भव्य! तुम निरंतर काव्य-रचना करते रहो। दुर्जनोंसे भय करनेकी आवश्यकता नहीं, क्यों कि भय सम्पूर्ण

---

१. रइधू साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन, पृष्ठ, ४९।

बुद्धिका आहरण कर लेता है। कवि कहता है कि मैं सरस्वतीके वचनोंसे प्रतिबुद्ध होकर आनन्दित हो उठा और काव्य-रचनामें प्रवृत्त हो गया। कविकी रचनाओंके प्रेरक अनेक श्रावक रहे हैं, जिससे कवि इतने विशाल-साहित्यका निर्माण कर सका है।

'पासणाहचरिउ'में कविने २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी कथा निबद्ध की है। यह ग्रन्थ डॉ० राजाराम जैन द्वारा सम्पादित होकर शोलापुर दोसी-ग्रन्थमालासे प्रकाशित है। यह कविका पौराणिक महाकाव्य है। कविने इसमें पार्श्वनाथकी साधनाके अतिरिक्त उनके शौर्य, वीर्य, पराक्रम आदि गुणोंको भी उद्घाटित किया है। काव्यके संवाद रुचिकर हैं और उनसे पात्रोंके चरित्रपर पूरा प्रकाश पड़ता है। रइधूकी समस्त कृतियोंमें यह रचना अधिक सरस और काव्यगुणोंसे युक्त है। कथावस्तु सात सन्धियोंमें विभक्त है।

'णेमिणाहचरिउ' में २२वें तीर्थंकर नेमिनाथका जीवन वर्णित है। इसकी कथावस्तु १४ सन्धियोंमें विभक्त है और ३०२ कड़वक हैं। इस पौराणिक महाकाव्यमें भी रस, अलंकार आदिकी योजना हुई है। इसमें ऋषभदेव, और वर्द्धमानका भी कथन आया है। प्रसंगवश भरत चक्रवर्ती, भोगभूमि, कर्मभूमि, स्वर्ग, नरक, द्वीप, समुद्र, भरत, ऐरावतादि क्षेत्र, षट्कुलाचल, गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ, रत्नत्रय, पंचाणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, अष्टमूलगुण, षड्द्रव्य एवं श्रावकाचार आदिका निरूपण किया गया है। मुनिधर्मके वर्णन-प्रसंगमें ५ समिति, ३ गुप्ति, १० धर्म द्वादश अनुप्रेक्षा, २२ परीषहजय और षडावश्यकका कथन आया है।[1] इसप्रकार यह काव्य दर्शन और पुराण तत्त्वकी दृष्टिसे भी समृद्ध है।

'सम्मइजिणचरिउ'—इस काव्यमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जीवनचरित गुम्फित है। कविने दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी चर्चाके अनन्तर वस्तुवर्णनोंको भी सरस बनाया है। महावीर शैशव-कालमें प्रवेश करते हैं। माता-पिता स्नेहवश उन्हें विविध-प्रकारके वस्त्राभूषण धारण कराते हैं। कवि इस मार्मिक प्रसंगका वर्णन करता हुआ लिखता है—

> सिरि-सेहरु णिरुवमु रयणु-जडिउ। कुंडल-जुउ सरेणि सुरेण घडिउ।
> भालयलि-तिलउ गलि-कुसुममाल। कंकणहिं हत्थु अलिगण खल॥
> किंकिणिहि-सद्द-मोहिय-कुरंग। कडि-मेहलडिकदेसहिँ अभंग॥
> तह कट्टारु वि मणि छुरियवंतु। उरु-हार अद्धहारहिँ सहंतु।
> णेवर-सज्जिय पायहिँ पइट्ठ। अंगुलिय समुद्दादय गुणट्ठ।
>
> —सम्मइ०—५।२३।५–९।

---

१. णेमिणाहचरिउ १३।५।

मेहेसरचरिउ

इस काव्यमें जयकुमार और सुलोचनाकी कथा अंकित है। इस ग्रन्थमें कुल १३ सन्धियाँ ३०४ कड़वक और १२ संस्कृत पद्य हैं। यद्यपि इसमें मेघेश्वरकी कथा अंकित की गई है, पर कविने उसमें अपनी विशेषता भी प्रदर्शित की है। वह गंगा नदीमें निमग्न हाथीपरसे सुलोचनाको जलमें गिरा देता है। आचार्य जिनसेन अपने महापुराणमें सुलोचनासे केवल चीत्कार कराके ही गङ्गा-देवी द्वारा हाथीका उद्धार करा देते हैं। पर महाकवि रइधू इस प्रसंगको अत्यन्त मार्मिक बनानेके लिए सती-साध्वी नायिका सुलोचनाको करुण चीत्कार करते हुए मूच्छित रूपमें अंकित करते हैं। पश्चात् उसके सतीत्वकी उद्दाम व्यंजनाके हेतु उसे हाथीपरसे गङ्गाके भयानक गर्तमें गिरा देते हैं। नायिकाकी प्रार्थना एवं उसके पुण्यप्रभावसे गङ्गादेवी प्रत्यक्ष होती हैं और सुलोचनाका जय-जय-कार करती हुई गङ्गातटपर निर्मित रत्नजटित प्रासादमें सिंहासनपर उसे आरूढ़ कर देती है। कथानकका चरमोत्कर्ष इसी स्थानपर संपादित हो जाता है।[१] कविने मेहेसरचरिउको पौराणिक काव्य बनानेका पूरा प्रयास किया है।

सिरिबालचरिउ

श्रीपालचरितकी दो धाराएँ उपलब्ध होती हैं। एक धारा दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित है और दूसरी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें। दोनों सम्प्रदायोंकी कथा-वस्तुमें निम्नलिखित अन्तर है—

१. माता-पिताके नाम सम्बन्धी अन्तर।
२. श्रीपालकी राजगद्दी और रोग सम्बन्धी अन्तर।
३. माँका साथ रहना तथा वैद्य सम्बन्धी अन्तर।
४. मदनसुन्दरी-विवाह सम्बन्धी अन्तर।
५. मदनादि कुमारियोंकी माता तथा कुमारियोंके नामोंमें अन्तर।
६. विवाहके बाद श्रीपालके भ्रमणमें अन्तर।
७. श्रीपालका माता एवं पत्नीसे सम्मेलनमें अन्तर।

श्रीपालचरित एक पौराणिक चरित-काव्य है। कविने श्रीपाल और नयना-सुन्दरीके आख्यानको लेकर सिद्धचक्रविधानके महत्त्वको अंकित किया है। यह विधान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है और उसके द्वारा कुष्ठ जैसे रोगोंको दूर किया जा सकता है। नयनासुन्दरी अपने पिताको निर्भीकतापूर्वक उत्तर देती हुई कहती है—

---

१. मेहेसर० ७।१६।१-१०-१० ।

भो ताय-ताय पइँ णिरु अजुत्तु । जंपियउ ण मुणियउ जिणहु सुत्तु ।
वरकुलि उवण्ण जा कण्ण होइ । सा लज्ज ण मेल्लइ एच्छ लोय ।
वाद-विवाउ नउ जत्तु ताउ । तहँ पुणु तुअ अक्खमि णिसुणि राय ।
बिहुलोयविरुद्धउ एहु कम्मु । जं सु सइंवरु गिण्हइ सुछम्मु ।
जइ मण इच्छइ किज्जइ विवाहु । तो लोयसुहिल्लउ इहु पवाहु ।
२।६।५ ।

अर्थात् हे पिताजी, आपने जिनागमके विरुद्ध ही मुझे अपने आप अपने पतिके चुनाव कर देनेका आदेश दिया है, किन्तु जो कन्याएँ कुलीन होती हैं वे कभी भी ऐसी निर्लज्जताका कार्य नहीं कर सकतीं । हे पिताजी, मैं इस सम्बन्ध में वाद-विवाद भी नहीं करना चाहती । अतएव हे राजन्, मेरी प्रार्थना ध्यान-पूर्वक सुनें । आपका यह कार्य लोक-विरुद्ध होगा कि आपकी कन्या स्वयं अपने पतिका निर्वाचन करे । अतः मुझसे कहे बिना ही आपकी इच्छा जहाँ भी हो, वहीं पर मेरा विवाह कर दें ।

नयनासुन्दरीको भवितव्यता पर अपूर्व विश्वास है । वह स्वयंकृत कर्मोंके फलभोगको अनिवार्य समझती है । कविने प्रसंगवश सिद्धचक्रमहात्म्य, नवकार-महात्म्य, पुण्यमहात्म्य, सम्यक्त्वमहात्म्य, उपकारमहिमा एवं धर्मानुष्ठानका महात्म्य बतलाया है । इस प्रकार यह रचना व्रतानुष्ठानकी दृष्टिसे भी महत्त्व-पूर्ण है ।

बलहद्दचरिउ

इस ग्रन्थमें रामकथा वर्णित है । बलभद्र रामका अपर नाम है । कविने परम्परागत रामकथाको ग्रहण किया है और काव्योचित बनानेके लिए जहाँ तहाँ कथामें संशोधन और परिवर्तन भी किये हैं ।

सुक्कोसलचरिउ

यह लोकप्रिय आख्यान है । कवि रइधूने चार सन्धियों और ७४ कड़वकोंमें इस ग्रन्थको पूर्ण किया है । पुण्यपुरुष सुकोसलकी कथा वर्णित है ।

धण्णकुमारचरिउ

कविने धन्यकुमारके चरितको लेकर खण्डकाव्यकी रचना की है । इस काव्य-ग्रन्थमें बताया गया है कि पुण्यके उदयसे व्यक्तिको सभी प्रकारकी सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं । कविने धर्म-महिमा, कर्म-महिमा, पुण्य-महिमा, उद्यम-महिमा, आदिका चित्रण किया है ।

सम्मत्तगुणणिहाणकव्व

यह अध्यात्म और आचारमूलक काव्य है। इसमें कविने सम्यग्दर्शन और उसके आठ अंगोंके नामोल्लेख कर उन अंगोंको धारण करनेके कारण प्रसिद्ध हुए महान् नर-नारियोंके कथानक अंकित किये हैं। ग्रन्थमें चार सन्धियाँ और १०२ कड़वक हैं।

जसहरचरिउ

रइधूने भट्टारक कमलकीर्तिकी प्रेरणासे अग्रवालकुलोत्पन्न श्रीहेमराज संघपतिके आश्रयमें रहकर इस ग्रन्थकी रचना की है। इसमें ४ सन्धियाँ और १०४ कड़वक हैं। पुण्यपुरुष यशोधरकी कथा वर्णित है।

वित्तसार

इस रचनामें कुल ८९३ गाथाएँ हैं और ७ अंक हैं। कविने सिद्धोंको नमस्कार कर व्रतसार नामक ग्रन्थके लिखनेकी प्रतिज्ञा की है। इसमें सम्यग्दर्शन, १४ गुणस्थान, द्वादशव्रत, ११ प्रतिमा, पंचमहाव्रत, ५ समिति, षड्आवश्यक आदिके साथ कर्मोंकी मूलप्रकृतियाँ उनके आस्रवके कारण स्थितिबंध, प्रदेशबन्ध, अनुभागबन्ध, द्वादश अनुप्रेक्षाएँ, दशधर्म, ध्यान, तीनों लोक आदिका वर्णन आया है। सिद्धान्त-विषयको समझनेके लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है।

सिद्धंतत्थसारो (सिद्धान्तार्थसार)

इसमें १३ अंक और १९३३ गाथाएँ हैं। गुणस्थान, एकादश प्रतिमा, द्वादशव्रत, सप्त व्यसन, चतुर्विध दान, द्वादश तप, महाव्रत, समितियाँ, पिण्डशुद्धि, उत्पाददोष, आहारदोष, संयोजनदोष, इंगारधूमदोष, दातृदोष, चतुर्दश मलप्रकार, पंचेन्द्रिय एवं मन निरोध, षड्आवश्यक, कर्मबन्ध, कर्मप्रकृतियाँ, द्वादशांगश्रुत, द्वादशांगवाणीका वर्ण्यविषय, द्वादश अनुप्रेक्षा, दश धर्म, ध्यान आदिका वर्णन आया है।

अणथमिउकहा

इसमें रात्रि-भोजनत्यागका वर्णन है। तथा उससे सम्बन्धित कथा भी आई है।

इसप्रकार महाकवि रइधूने काव्य, पुराण, सिद्धान्त, आचार एवं दर्शन विषयक रचनाएँ अपभ्रंशमें प्रस्तुत कर अपभ्रंश-साहित्यकी श्रीवृद्धि की है। श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीके पश्चात् रइधू-साहित्यको सुव्यवस्थितरूपसे प्रकाशमें लानेका श्रेय डॉ० राजाराम जैनको है। महाकवि रइधूने षट्धर्मोपदेशमाला, उवएसरयणमाला, अप्पसंव्बोहकव्व और संबोहपंचासिका जैसे आचार सम्बन्धी ग्रन्थोंकी भी रचना की है।

विमलकीर्ति

अपभ्रंशमें कथा-साहित्यकी रचना करनेवाले कवि विमलकीर्ति प्रसिद्ध हैं कवि माथुरगच्छ बागड़संघके मुनि रामकीर्तिका शिष्य था। सुगन्धदशमीकथा-की प्रशस्तिमें विमलकीर्तिको रामकीर्तिका शिष्य बताया गया है। लिखा है—

रामकित्ति गुरु विणउ करेविणु, विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरण करेविणु, सइ अणुकमेण सो मोक्ख लहेसइ।[१]

जगत्सुन्दरीप्रयोगमालाकी प्रशस्तिमें भी विमलकीर्तिका उल्लेख आया है इस उल्लेखसे वह वायउसंघके आचार्य सिद्ध होते हैं।

आसि पुरा वित्थिण्णे वायउसंघे ससंघ-संकासो।
मुणि राम इत्ति धीरो गिरिव्व णइसुव्व गंभीरो ॥१८॥
संजाउ तस्स सीसो विवुहो सिरि 'विमल इत्ति' विक्खाओ।
विमलयइकित्ति खडिया धवलिया धरणियल-गयणयलो ॥१९॥

जैन-साहित्यमें रामकीर्ति नामक दो विद्वान् हुए हैं। एक जयकीर्तिके शिष्य हैं, जिनकी लिखी प्रशस्ति चित्तौड़में वि० सं० १२०७ की प्राप्त हुई है। यही रामकीर्ति संभव हैं विमलकीर्तिके गुरु हों। जगत्सुन्दरीप्रयोगमालाके रचयिता यशःकीर्ति विमलकीर्तिके शिष्य थे। उस ग्रन्थके प्रारंभमें धनेश्वर सूरिका उल्लेख किया है। ये धनेश्वरसूरि अभयदेवसूरिके शिष्य थे और इनका समय वि० सं० ११७१ है। इससे भी प्रस्तुत रामकीर्ति १३ वीं शतीके अन्तिम चरण और १३वींके प्रारंभिक विद्वान् ज्ञात होते हैं। पं० परमानन्दजी शास्त्रीने भी विमलकीर्तिका समय १३वीं शती माना है।

विमलकीर्तिकी एक ही रचना 'सोखवइविहाणकहा' उपलब्ध है। इसमें व्रत-विधि और उसके फलका निरूपण किया है। कविने इस कथाके अन्तमें आशीर्वाद देते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति इस कथाको पढ़े-पढ़ायेगा, सुने-सुनायेगा, वह संसारके समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर मुक्तिरमाको प्राप्त करेगा। बताया है—

जो पढइ सुणइ मणि भावइ,
जिणु आरुहइ सुह संपइ सो णरु लहइ।
णाणु वि पज्जइ भव-दुह-खिज्जइ
सिद्धि-विलासणि सो रमइ ॥

१. राजस्थान शास्त्रभंडारकी ग्रन्थसूची, चतुर्थ भाग, पृ० ६३२।

लक्ष्मणदेव

कवि लक्ष्मणदेवने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना की है। इस ग्रन्थकी सन्धि-पुष्पिकाओंमें कविने अपने आपको रत्नदेवका पुत्र कहा है। आरम्भकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि कवि मालवादेशके समृद्ध नगर गोणंदमें रहता था। यह नगर उस समय जैनधर्म और जैनविद्याका केन्द्र था। कवि पुरवाडवंशमें उत्पन्न हुआ था। यह अत्यन्त रूपवान, धार्मिक और धनधान्य-सम्पन्न था। कविकी रचनासे यह भी ज्ञात होता है कि उसने पहले व्याकरणग्रन्थकी रचना की थी, जो विद्वानोंका कण्ठहार[1] थी। कविने प्रशस्तिमें लिखा है—

मालवय-विसय अंतरि पहाणु, सुरहरि-भूसिउ णं तिसय-ठाणु।
णिवसइ पट्टाणु णामइँ महंतु, गाणंदु पसिद्ध बहुरिद्धिवंतु।
आराम-गाम-परिमिउ घणेहि, णं भू-मंडणु किउ णियय-देहि।
जहि सरि-सरवर चउदिसि रु वण्ण, आणंदिय-पहियण तंडि विसण्ण।
४।२१

× × ×

पउरवाल-कुल-कमल-दिवायरु, विणयवंसु सँघहु मय सायरु।
धण-कण-पुत्त-अत्थ-संपुण्णउ, आइस रावउ रूव रवण्णउ।
तेण वि कयउ गंथु अकसायइ, बंधव अंबएव सुसहायइ। ४।२२

इस प्रशस्तिके अवतरणसे यह स्पष्ट है कि कवि गोणन्दका निवासी था। यह स्थान संभवतः उज्जैन और भेलसाके मध्य होना चाहिए। श्री डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने 'पाणिनिकालीन भारत' में लिखा है कि महाजनपथ, दक्षिणमें प्रतिष्ठानसे उत्तरमें श्रावस्ती तक जाता था। यह लम्बा पथ भारतका दक्षिण-उत्तर महाजनपथ कहा जाता था। इसपर माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनद्द, विदिशा और कौशाम्बी स्थित थे। हमारा अनुमान है कि यह गोनद्द ही कवि द्वारा उल्लिखत गोणन्द है। कविके अम्बदेव नामका भाई था, जो स्वयं कवि था, जिसने कविको काव्य लिखनेकी प्रेरणा दी होगी।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कविने स्वयं ग्रन्थरचना-कालका निर्देश नहीं किया है। और न अपनी गुर्वावली और पूर्व आचार्योंका उल्लेख ही किया है। अतएव रचनाकालके निर्णयके लिए केवल अनुमान ही शेष रह जाता है।

---

१. जहि पढमु जाउ वायरण सारु, जो बुहियण-कंठाहरणु चारु।

'णेमिणाहचरिउ' की दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। एक पाण्डुलिपि पंचायतीमंदिर, दिल्लीमें सुरक्षित है, जिसका लेखनकाल वि० सं० १५९२ है। इस ग्रन्थकी दूसरी पाण्डुलिपि वि० सं० १५१० की लिखी हुई प्राप्त होती है। यह प्रति पाटौदी शास्त्र-भण्डार जयपुरमें है। अतएव यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ग्रन्थकी रचना वि० सं० १५१० के पूर्व हुई है। भाषा-शैली और वर्णनक्रमकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ १४वीं शताब्दीका होना चाहिए। प्रायः यह देखा जा सकता है कि प्राचीन अपभ्रंश-काव्योंमें छन्दका वैविध्य नहीं है। इस प्रस्तुत ग्रन्थमें भी छन्द-वैविध्य नहीं पाया जाता है। हेला, दुवइ और वस्तुबन्ध आदि थोड़े ही छन्द प्रयुक्त हैं।

रचना

कविकी एकमात्र 'णेमिणाहचरिउ' रचना ही उपलब्ध है। इस ग्रन्थमें चार सन्धियाँ या चार परिच्छेद और ८३ कड़वक हैं। ग्रन्थ-प्रमाण १३५० श्लोकके लगभग है। प्रथम सन्धिमें मंगल-स्तवनके अनन्तर, सज्जन-दुर्जन स्मरण किया गया है। तदनन्तर कविने अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित की है। मगधदेश और राज्यगृह नगरके वर्णनके पश्चात् कवि राजा श्रेणिक, द्वारा गौतम गणधरसे नेमिनाथका चरित वर्णन करनेके लिए अनुरोध कराता है। बराडक देशमें द्वारावती नगरीमें जनार्दन नामका राजा राज्य करता था। वहीं शौरीपुरनरेश समुद्रविजय अपनी शिवदेवीके साथ निवास करते थे। जरासन्धके भयसे यादवगण शौरीपुर छोड़ कर द्वारकामें रहने लगे। यहीं तीर्थंकर नेमिनाथका जन्म हुआ और इन्द्रने उनका जन्माभिषेक सम्पन्न किया।

दूसरी संधिमें नेमिनाथकी युवावस्था, वसन्तवर्णन, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा आदिके प्रसंग आये हैं। नेमिनाथके पराक्रमको देखकर कृष्णको ईर्ष्या हुई और वे उन्हें किसी प्रकार विरक्त करनेके लिए प्रयास करने लगे। जूनागढ़के राजाकी पुत्री राजीमतिके साथ नेमिनाथका विवाह निश्चित हुआ। बारात सजधज कर जूनागढ़के निकट पहुँचती है। और नेमिनाथकी दृष्टि पार्श्ववर्त्ती बाड़ोंमें बन्द चीत्कार करते हुए पशुओंपर पड़ती है। उनके दयालु हृदयको वेदना होती है और वे कहते हैं यदि मेरे विवाहके निमित्त इतने पशुओंका जीवन संकटमें है तो ऐसा विवाह करना मैंने छोड़ा।

पशुओंको छुड़वाकर रथसे उतर कंकण और मुकुट फेंककर वे वनकी ओर चल देते हैं। इस समाचारसे बारातमें कोहराम मच जाता है। राजमती मूर्च्छा खाकर गिर पड़ती है। लोगोंने नेमिनाथको लौटानेका प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। वे पासमें स्थित ऊर्जयन्तगिरिपर चले जाते हैं। और सहस्राम्र

वनमें वस्त्रालंकारका त्यागकर दिगम्बरमुद्रा धारण कर लेते हैं।

तीसरी सन्धिमें राजमतिकी वियोगावस्थाका चित्रण है। कविने बड़ी सहृदयता और सहानुभूतिके साथ राजमतिकी करुण भावनाओंका चित्रण किया है। राजमति भी विरक्त हो जाती है और वह भी तपश्चरण द्वारा आत्म-साधनामें प्रवृत्त हो जाती है।

चतुर्थ संधिमें तपश्चर्याके द्वारा नेमिनाथको केवलज्ञानकी प्राप्ति होनेका कथन आया है। उनकी समवशरण-सभा आयोजित होती है। वे प्राणिकल्याणार्थ धर्मोपदेश देते हैं और अन्तमें निर्वाण प्राप्त करते हैं। कविने संसारकी विवशताका सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहता है—

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाण छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु अइ-लोहु अत्थि।
जसु मयण राउ तसि णत्थि भाम, जसु भाम तसु छवण काम ॥३।२

अर्थात् जिस मनुष्यके घरमें अन्न भरा हुआ है उसे भोजनके प्रति अरुचि है। जिसमें भोजन पचानेकी शक्ति है उसे शस्य-अन्न नहीं। जिसमें दानका उत्साह है उसके पास धन नहीं। जिसके पास धन है उसमें अतिलोभ है। जिसमें कामका प्रभुत्व है उसके भार्या नहीं। जिसके पास भार्या है उसका काम शान्त है।

कविने सुभाषितोंका भी प्रयोग यथास्थान किया है। इनके द्वारा उसने काव्यको सरस बनानेकी पूरी चेष्टा की है।

किं जीयइं धम्म-विवज्जिएण—धर्मरहित जीनेसे क्या प्रयोजन ?
किं सुउइं संगरि कायरेण—युद्धमें कायर सुभटोंसे क्या ?
किं वयण असच्चा भासणेण—झूठ वचन बोलनेसे क्या प्रयोजन है ?
किं पुत्तइ गोत्त-विणासणेण—कुलका नाश करनेवाले पुत्रसे क्या ?
किं फुल्लइं गंध-विवज्जिएण—गन्धरहित फूलसे क्या ?

इस ग्रन्थमें श्रावकाचार और मुनि-आचारका भी वर्णन आया है।

तेजपाल

तेजपालके तीन काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। कवि मूलसंघके भट्टारक रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति और विशालकीर्त्तिकी आम्नायका है। वासवपुर नामक गाँवमें बरसावडह वंशमें जाल्हड नामके एक साहू थे। उनके पुत्रका नाम सुजउ साहू था। वे दयावन्त और जिनधर्ममें अनुरक्त थे। उनके चार पुत्र थे—रणमल, वल्लाल, ईसरु और पोल्हणु। ये चारों ही भाई खण्डेलवाल

कुलके भूषण थे। रणमल साहूके पुत्र ताल्हडय साहू हुए। इनका पुत्र कवि तेजपाल था।

कवि सुन्दर, सुभग और मेधावी होनेके साथ भक्त भी था। उसने ग्रंथ-निर्माणके साथ संस्कृतिके उत्थापक प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें भी अनुराग प्रदर्शित किया था। कविसे ग्रन्थ-रचनाओंके लिये विभिन्न लोगोंने प्रार्थना की और इसी प्रार्थनाके आधारपर कविने रचनाएँ लिखी हैं।

स्थितिकाल

कविकी रचनाओंमें स्थितिकालका उल्लेख है। अतएव समयके सम्बन्धमें विवाद नहीं है। कविने रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति आदि भट्टारकोंका निर्देश किया है, जिससे कविका काल विक्रमकी १६वीं शती सिद्ध होता है। कविने वि० सं० १५०७ वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन 'वरंगचरिउ' को समाप्त किया है।

'संभवणाहचरिउ' की रचना थील्हाके अनुरोधसे वि० सं० १५०० के लगभग सम्पन्न की गई है। 'पासपुराण' को मुनि पद्मनन्दिके शिष्य शिवनन्दि-भट्टारकके संकेतसे रचा है। कविने इस ग्रंथको वि० सं० १५१५ में कार्त्तिक-कृष्णा पंचमीके दिन समाप्त किया है। अतएव कविका स्थितिकाल विक्रमकी १६वीं शती निश्चित है।

कविको 'संभवणाहचरिउ' के रचनेकी प्रेरणा भादानक देशके श्रीप्रभनगरमें दाऊदशाहके राज्यकालमें थील्हासे प्राप्त हुई है। श्रीप्रभनगरके अग्रवालवंशीय मित्तल गोत्रीय साहू लक्ष्मणदेवके चतुर्थ पुत्रका नाम थील्हा था, जिसकी माताका नाम महादेवी और प्रथम धर्मपत्नीका नाम कोल्हाही था। और दूसरी पत्नीका नाम आसाही था, जिससे त्रिभुवनपाल और रणमल नामके पुत्र उत्पन्न हुए। साहू थील्हाके पाँच भाई थे, जिनके नाम खिउसी, होलू, दिवसी, मल्लिदास और कुंथदास हैं। ये सभी व्यक्ति धर्मनिष्ठ, नीतिवान और न्यायपालक थे। लक्ष्मणदेवके पितामह साहू होलूने जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा करायी थी। उन्हींके वंशज थील्हाके अनुरोधसे कवि तेजपालने 'संभवणाहचरिउ'की रचना की है। इस चरित-ग्रंथमें ६ सन्धियाँ और १७० कड़वक हैं। इसमें तृतीय तीर्थंकर संभवनाथका जीवन गुम्फित है। कथावस्तु पौराणिक है; पर कविने अवसर मिलने पर वर्णनोंको अधिक जीवन्त बनाया है। सन्धिवाक्यमें बताया है—

'इय संभवजिणचरिए सावयायारविहाणफलाणुसरिए कइतेजपालवण्णिदे सज्जणसंदोहमणि-अणुमण्णिदे सिरिमहाभव्व-थील्हासवणभूमणो संभवजिण-

णिव्वाणगमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ६ ॥'

कविने नगरवर्णनमें भी पटुता दिखलाई है। वह देश, नगरका सजीव चित्रण करता है। लिखा है—

इह इत्थु दीवि भारहि पसिद्धु, णामेण सिरिपहु सिरि-समिद्धु।
दुग्गु वि सुरम्मु जण जणिय-राउ, परिहा परियरियउ दीहकाउ।
गोउर सिर कलसाइय पयंगु, णाणा लच्छिए आलिंगि पंगु।
जहिं जणणयणाणंदिराइं, मुणि-यण-गुण-मंडियमंदिराइं।
सोहंति गउरवरकइ-मणहराइं, मणि-जडियकिनाडइं सुंदराइं।
जहिं वसहिं महायण चुय-पमाय, पर-रमणि-परम्मुह मुक्क-माय।
जहिं समय करडि घड घड हडंति, पडिसद्दें दिसि विदिसा फुडंति।
जहिं पवण-गमण धाविय तुरंग, णं वारि-रासि भंगुर-तरंग।
जो भूसिउ णेत्त-सुहावणेहि, सरयब्व धवल-गोहणगणेहिं।
सुरयण वि समीहहिं जहिं सजम्मु, मेल्लेविणु सग्गालउ सुरम्मु।

कविकी दूसरी रचना 'वरंगचरिउ' है। इसमें चार सन्धियाँ हैं। २२वें तीर्थंकर यदुवंशी नेमिनाथके शासनकालमें उत्पन्न हुए पुण्यपुरुष वरांगका जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है। कविने इस रचनाको विपुलकीर्तिके प्रसादसे सम्पन्न किया है। पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी आदिको नमस्कार करनेके पश्चात् ग्रन्थकी रचना आरंभ की है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय कड़वकमें कविने अपना परिचय अंकित किया है। अन्तिम प्रशस्तिमें भी कविका परिचय पाया जाता है।

कविकी तीसरी रचना 'पासपुराण' है। यह भी खण्डकाव्य है, जो पद्धड़िया छन्दमें लिखा गया है। यह रचना भट्टारक हर्षकीर्ति-भण्डार अजमेरमें सुरक्षित है। कविने यदुवंशी साहू शिवदासके पुत्र भूघलि साहुकी प्रेरणासे रचा है। ये मुनि पद्मनन्दिके शिष्य शिवनन्दि भट्टारककी आम्नायके थे तथा जिनधर्मरत श्रावकधर्मप्रतिपालक, दयावन्त और चतुर्विध संघके संपोषक थे। मुनि पद्मनन्दिने शिवनन्दिको दीक्षा दी थी। दीक्षासे पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था। सुरजन साहु संसारसे विरक्त और निरन्तर द्वादश भावनाओंके चिन्तनमें संलग्न रहते थे। प्रशस्तिमें साहु सुरजनके परिवारका भी परिचय आया है।

इस प्रकार कवि तेजपालने चरितकाव्योंकी रचना द्वारा अपभ्रंश-साहित्यकी समृद्धि की है।

धनपाल द्वितीय

धनपाल कविने 'बाहुबलिचरिउ'की रचना की है। इस ग्रन्थकी प्रति आमेर-

शास्त्र-भाण्डार जयपुरमें सुरक्षित है। कविने ग्रन्थके आदिमें अपना परिचय दिया है।

गुज्जर देश मज्झि णयवट्टणु, वसइ विउलु पल्हणपुरु पट्टणु।
वीसलएउ राउ पयपालउ, कुवलय-मंडणु सउलु व मालउ।
तहिं पुरवाडवंस नायामल, अगणिय-पुव्वपुरिस-णिम्मल कुल।
पुणु हुउ राय सेट्ठि जिणभत्तउ, भोवइं णामें दयगुण जुत्तउ।
सुहउपउ तहो णंदणु जायउ, गुरु सज्जणहं भुअणि विक्खायउ।
तहो सुउ हुउ घणवाल धरायले, परमप्पय-पय-पंकय-रउ अलि।
एतहिं तहिं जिणतित्थण मंतउ, महि भमंतु पल्हणपुरे पत्तउ।

अर्थात् धनपाल गुर्जर देशके रहनेवाले थे। पल्हणपुर इनका वास-स्थान था। इनके पिताका नाम सुहडदेव और माताका नाम सुहडादेवी था। ये पुरवाड जातिमें उत्पन्न हुए थे। कविके समय राजा बीसलदेव राज्य कर रहा था। योगिनीपुर (दिल्ली) में उस समय महम्मदशाहका शासन था। कविने यह ग्रन्थ-रचना चन्द्रवाडनगरके राजा सारंगके मंत्री जायसवंशोत्पन्न साहू वासद्धर (वासधर) की प्रेरणासे की है। कृति समर्पित भी उन्हींको की गई है। वासाधरके पिताका नाम सोमदेव था, जो संभरी नरेन्द्र कर्णदेवके मंत्री थे। कविने साहू वासाधरको सम्यग्दृष्टि, जिनचरणोंका भक्त, दयालु, लोकप्रिय, मिथ्यात्वरहित और विशुद्धचित्त कहा है। इनको गृहस्थके दैनिक षट्कर्मोंमें प्रवीण राजनीतिमें चतुर और अष्टमूल गुणोंके पालनमें तत्पर बताया है। इनकी पत्नीका नाम उभयश्री था, जो पतिव्रता और शीलव्रत पालन करनेवाली थी। यह चतुर्विध संघको दान देती थी। इसके आठ पुत्र हुए—जसपाल, जयपाल, रतपाल, चन्द्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहड और रूपदेव। ये आठों पुत्र अपने पिताके समान ही धर्मात्मा थे।

कविने इस ग्रन्थके आदिमें प्राचीन कवियों, आचार्यों और ग्रन्थोंका स्मरण किया है। उसने कविचक्रवर्त्ती धीरसेन, जैनेन्द्रव्याकरणरचयिता देवनन्दि, श्रीवज्रसूरि और उनके द्वारा रचित षट्दर्शनप्रमाणग्रन्थ, महासेन-सुलोचना-चरित, रविषेण-पद्मचरित, जिनसेन-हरिवंशपुराण, जटिलमुनि-वरांगचरित, दिनकरसेन-कन्दर्पचरित, पद्मसेन-पार्श्वनाथचरित, अमृताराधना, गणि-अम्बसेन-चन्द्रप्रभचरित, धनदत्तचरित, कविविष्णुसेन, मुनिसिंहनन्दि-अनुप्रेक्षा, णवकारमंत्र, नरदेव, कविअसग-वीरचरित, सिद्धसेन, कविगोविन्द, जय-धवल, शालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदन्त और सेढु कविका स्मरण किया है। इससे कविकी अध्ययनशीलता, पांडित्य और कवित्वशक्तिपर

प्रकाश पड़ता है। कवि सन्तोषी था और स्वाभिमानी भी। यही कारण है कि उसने बाहुबलि-चरितकी रचना कर अपनेको मनस्वी घोषित किया है।

कविके गुरु प्रभाचन्द्र थे, जो अनेक शिष्यों सहित विहार करते हुए पल्हण-पुरमें पधारे। धनपालने उन्हें प्रणाम किया और मुनिने आशीर्वाद दिया कि तुम मेरे प्रसादसे विचक्षण होगे। कविके मस्तक पर हाथ रखकर प्रभाचन्द्र कहने लगे कि मैं तुम्हें मन्त्र देता हूँ। तुम मेरे मुखसे निकले हुए अक्षरोंको याद करो। धनपालने प्रसन्नतापूर्वक गुरु द्वारा दिये गये मंत्रको ग्रहण किया और शास्त्राभ्यासद्वारा सुकवित्व प्राप्त किया। इसके पश्चात् प्रभाचन्द्र खंभात, धारा-नगर और देवगिरि होते हुए योगिनीपुर आये। दिल्ली-निवासियोंने यहाँ एक महोत्सव सम्पन्न किया और भट्टारक रत्नकीर्तिके पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया।

कवि धनपाल गुरुकी आज्ञासे सौरिपुर तीर्थके प्रसिद्ध भगवान् नेमिनाथकी वन्दना करनेके लिये गये। मार्गमें वे चन्द्रवाडनगरको देखकर प्रभावित हुए और साहु वासाधर द्वारा निर्मित जिनालयको देखकर वहीं पर काव्य-रचना करनेमें प्रवृत्त हुए।

स्थितिकाल

कविके स्थितिकालका निर्णय पूर्ववर्त्ती कवियों और राजाओंके निर्देशसे संभव है। इस ग्रन्थकी समाप्ति वि० सं० १४५४ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी, स्वाति नक्षत्र, सिद्धियोग और सोमवारके दिन हुई है। कविने अपनी प्रशस्तिमें मुहम्मदशाह तुगलकका निर्देश किया है। मुहम्मदशाहने वि० सं० १३८१ से १४०८ तक राज्य किया है।

भट्टारक प्रभाचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्त्तिके पदपर प्रतिष्ठित हुए थे, इस कथनका समर्थन भगवतीआराधनाकी पंजिकाटीकाकी लेखक-प्रशस्तिसे भी होता है। इस प्रशस्तिमें बताया गया है कि वि०सं० १४१६ में इन्हीं प्रभाचन्द्रके शिष्य ब्रह्म नाथूरामने अपने पढ़नेके लिए दिल्लीके बादशाह फिरोजशाह तुगलक-के शासन-कालमें लिखवाया था।[1] फिरोजशाह तुगलकने वि० सं० १४०८–

---

१. संवत् १४१६ वर्षे चैत्रसुदिपञ्चम्यां सोमवासरे सकलराजशिरो-मुकुटमाणिक्य-मरीचिपिंजरीकृत-चरण-कमलपादपोठस्य श्रीपेरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्रीदिल्यां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भट्टारकश्री-रत्नकीर्त्तिदेवपट्टोदयाद्रि-तरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणरण: (ण:) भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रदेव-शिष्याणां ब्रह्मनाथूराम। इत्याराधनापंजिकाग्रंथआत्मपठनार्थं लिखापितम्।

—आरा-जैनसिद्धान्तभवन प्रति

१४४५ तक राज्य किया है। अतएव स्पष्ट है कि भट्टारक प्रभाचन्द्र वि० सं० १४१६ से कुछ समय पूर्व भट्टारकपदपर प्रतिष्ठित हुए होंगे। इस आलोकमें धनपालका समय विक्रमकी पन्द्रहवीं शती माना जा सकता है।

रचना

कवि धनपालद्वितीयने 'बाहुबलिचरिउ' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम 'कामचरिउ' भी है। ग्रन्थ १८ संधियोंमें विभक्त है। इसमें प्रथम कामदेव बाहुबलिकी कथा गुम्फित है। बाहुबली ऋषभदेवके पुत्र थे और सम्राट् भरतके कनिष्ठ भ्राता। बाहुबली सुन्दर, उन्नत एवं बल-पौरुषसे सम्पन्न थे। वे इन्द्रियजयी और उग्र तपस्वी भी थे। उन्होंने चक्रवर्त्ती भरतको जल, मल्ल और दृष्टि युद्धमें पराजित किया था। भरत इस पराजयसे विक्षुब्ध हो गये और प्रतिशोध लेनेकी भावनासे उन्होंने अपने भाई पर सुदर्शनचक्र चलाया। किन्तु देवोपनीत अस्त्र वंशघातक नहीं होते, अतएव वह चक्र बहुबलिकी प्रदक्षिणा देकर लौट आया। इससे बाहुबलिके मनमें पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ। वे परिग्रह, कषायभाव, अहंकार, राज्यसत्ता, न्याय-अन्याय, भाई-भाईका सम्बन्ध आदिके सम्बन्धमें विचार करने लगे। उन्होंने राज-त्यागका निश्चय कर लिया और वे दिगम्बरदीक्षा लेकर आत्म-साधनामें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कठोर तपश्चरण किया और स्वात्मोपलब्धि प्राप्त की।

यह ग्रंथ काव्य और मानवीय भावनाओंसे आतेप्रोत है। कविने यथास्थान वस्तु-चित्र प्रस्तुतकर काव्यको सरस बनानेका प्रयास किया है। हम यहाँ विवाहके अनन्तर वर-वधूके मिलनका एक उदाहरण प्रस्तुतकर कविके काव्यत्व-पर प्रकाश डालेंगे।

सोहइ कोइल-झुणि महुरसमए, सोहइ मेइणि पहु लद्ध जए।
सोहइ मणिकणयालंकरिया, सोहइ सासय-सिरि सिद्धजया।
सोहइ संपइ सम्माण जणं, सोहइ जयलछी सुहडु रणं।
सोहइ साहा जलइरस वणं, सोहइ वाया सुपुरिस वयणं।
जह सोहइ एयहि वहु कलिया, तह सोहइ कण्णा वर मिलिया।
किं वहुणा वाया उब्भसए, कीरइ विवाहु सोमंजसए। ७।५।

वाहुबलिचरित वास्तवमें महाकाव्यके गुणोंसे युक्त है। कविने इसे सभी प्रकारसे सरस और कवित्वपूर्ण बनाया है।

कवि हरिचन्द या जयमित्रहल

कवि हरिचन्द्रने अपनी गुरु-परम्पराका उल्लेख किया है। बताया है कि

इनके गुरु पद्मनन्दि भट्टारक थे। ये मूलसंघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छके विद्वान थे। भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर थे। पद्मनन्दि अपने समयके यशस्वी लेखक और संस्कृति-प्रचारक हैं। गुर्वावलीमें पद्मनन्दिकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—

श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनींद्रपट्टे शश्वत्प्रतिष्ठः प्रतिभा-गरिष्ठः।
विशुद्ध-सिद्धान्तरहस्य-रत्न-रत्नाकरो नंदतु पद्मनंदी ॥२८॥
जैन सिद्धन्तभास्कर भाग १, किरण ४, पृ० ५३

दिल्लीमें वि० सं० १२९६ भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको रत्नकीर्ति पट्टारूढ़ हुए। ये १४ वर्षों तक पट्टपर रहे। रत्नकीर्तिके पट्टपर वि० सं० १३१० पौष शुक्ला पूर्णिमाको भट्टारक प्रभाचन्द्रका अभिषेक हुआ। पश्चात् वि० सं० १३८५ पौष शुक्ला सप्तमीको प्रभाचन्द्रके पट्ट पर पद्मनन्दि आसीन हुए। इन्हीं पद्मनन्दिके शिष्योंमें जयमित्रहल भी सम्मिलित थे।

श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने अपने प्रशस्ति-संग्रहकी भूमिकामें एक घटना उद्धृत की है। बताया है कि पार्श्वनाथचरितके कर्त्ता कवि अग्रवाल (सं० १४७९) ने अपने ग्रंथकी अन्तिम प्रशस्तिमें सं० १४७१की एक घटनाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि करहलके चौहानवंशी राजा भोजराज थे। इनकी पत्नीका नाम णाइक्कदेवी था। उससे संसारचन्द या पृथ्वीराज नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके राज्यमें सं० १४७१ माघ कृष्णा चतुर्दशी शनिवारके दिन रत्नमयी जिन-बिम्बकी स्थापना की गयी। उस समय यदुवंशी अमरसिंह भोजराजके मंत्री थे। उनके पिताका नाम ब्रह्मदेव और माताका नाम पद्मलक्षणा था। इनके चार भाई और भी थे, जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिंह, और लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिंहकी पत्नी कमलश्री पातिव्रत्य और शीलादि गुणोंसे विभूषित थी। उसके तीन पुत्र हुए—नन्दन, सोना साहु, लोणा साहु। इनमें लोणा साहु धार्मिक कार्योंमें विपुल धन खर्च करते थे। इन्होंने कवि जयमित्रहलकी प्रशंसा की है।[1] अतः जयमित्रहलका समय भट्टारक प्रभाचन्द्रका पट्टकाल है।

कवि हरिचन्द या जयमित्रहलका समय विक्रमकी १५वीं शती है। यतः जयमित्रहलने अपना मल्लिनाथकाव्य विक्रम सं० १४७१ से कुछ समय पूर्व

---

१. जैन-ग्रंथ-प्रशस्तिसंग्रह, द्वितीय भाग, वीरसेवामंदिर, २१ दरियागंज, दिल्ली प्रस्तावना, पृष्ठ ८६।

लिखा है। दूसरे ग्रंथ 'वड्ढमाणचरिउ' भी मल्लिनाथकाव्यसे एकाध वर्ष आगे-पीछे लिखा गया है।

रचनाएँ

जयमित्रहल्लकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—'वड्ढमाणचरिउ' और 'मल्लिणाहकव्व'। 'वड्ढमाणचरिउ' का दूसरा नाम 'सेणियचरिउ' भी मिलता है। इस काव्यमें ११ सन्धि या परिच्छेद बताये गये हैं। पर प्रारंभकी ५ सन्धियाँ उपलब्ध सभी पाण्डुलिपियोंमें नहीं मिलती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकी छठी सन्धि ही प्रथम सन्धि है। इस ग्रंथमें अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरका जीवनचरित अंकित है। साथ ही उनके समयमें होनेवाले मगधके शिशुनागवंशी सम्राट् बिम्बसार या श्रेणिककी जीवनगाथा भी अंकित है। यह राजा बड़ा प्रतापी और राजनीतिकुशल था। इसके सेनापति जम्बूकुमारने केरलके राजा मृगांकपर विजय प्राप्त कर उसकी पुत्री चिलावतीसे श्रेणिकका विवाह-सम्बन्ध करवाया था। इसकी पट्टमहिषी चेटककी पुत्री चेलना थी। चेलना अत्यन्त धर्मात्मा और पतिव्रता थी। श्रेणिकको जैनधर्मकी ओर लानेका श्रेय चेलनाको है। श्रेणिक तीर्थंकर महावीरके प्रमुख श्रोता थे। यह ग्रंथ देवरायके पुत्र संघाधिप होलिबम्मके अनुराधसे रचा गया है।

दूसरी रचना 'मल्लिणाहकव्व' है। इसमें १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथका जीवनचरित अंकित है। इसकी प्रति आमेर-शास्त्र-भण्डारमें भी अपूर्ण है। ग्रंथकी रचना कविने पृथ्वी नामक राजाके राज्यमें स्थित साहू आल्हाके अनुरोधसे की है। आल्हा साहूके चार पुत्र थे, जिनके नाम बाह्म साहु, तुम्बर, रतणऊ और गल्हग थे। इन्होंने ही इस काव्य-ग्रंथको लिखवाया है।

गुणभद्र

काष्ठासंघ-माथुरान्वयके भट्टारक गुणभद्र मलयकीर्त्तिके शिष्य थे। और भट्टारक यशःकीर्त्तिके प्रशिष्य थे। ये कथा-साहित्यके विशेषज्ञ माने गये हैं। गुणभद्रका स्मरण महाकवि रइधूने भी किया है। साथ ही तेजपाल[1] और महिन्दुने[2] भी किया है। रइधूने इन्हें चरित्रके आचरणमें धीर, संयमी, गुणिजनोंके गुरु, मधुरभाषी, प्रवचनसे सबको सन्तुष्ट करनेवाला, जितेन्द्रिय, मान-

---

१. गुणभद्दु-महामइमहमुणीसु। जिणसंगहोमंडणु पंचमीसु।

—संभवणाहचरिउ, १।२।५-७

२. गुणभद्दसूरिगुणभद्दठाणु ... ...—संतिणाहचरिउ—१।५।

रूपी महागजकी तर्जनाको सहन करनेवाला एवं भव्यजनोंको उद्बोधित करने वाला कहा है।

तहो वरपट्टु वइरिउंइ अज्जमु। धरिय चरित्तायरणु ससंजमु॥
गुरु गुणयणमणि पाइयभूसणु। वयण-पउत्ति-जणिय-जणतूसणु॥
कयकामाइय-दोस-विसज्जणु। दंसिय-माण-महागय-तज्जणु॥
भवियण-मण-उप्पाइय-बोहणु। सिरिगुणभद्दमहारिसि सोहणु॥
—सम्मइ०—१०।३०।२१-२४

गुणभद्र प्रतिष्ठाचार्य भी थे। मैनपुरी (उत्तरप्रदेश) के जैन मन्दिरोंमें कुछ मूर्तियों एवं यंत्रों पर लेख उत्कीर्णित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे प्रतिष्ठाचार्य थे।[1]

गुणभद्रका स्थितिकाल उनकी गुरुपरम्परा और समकालीन राजवंशोंके आधारपर निर्णीत किया जा सकता है। इन्होंने ग्वालियरके तोमरवंशी राजा डूंगरसिंहके पुत्र कीर्त्तिसिंह या कर्णसिंहके राज्यकालमें अपनी रचनाएँ लिखी हैं। महाकवि रइधूने गुणभद्रका उल्लेख किया है। अतः गुणभद्रका समय रइधूके समकालीन या उनसे कुछ पूर्व होना चाहिए।

कारञ्जाके सेनगण-भण्डारकी लिपि-प्रशस्ति वि० सं० १५१० वैशाख शुक्ला तृतीयाकी लिखी हुई है, जो गोपाचलमें डूगरसिंहके राज्यकालमें भट्टारक गुणभद्रकी आम्नायके अग्रवालवंशी गर्गगोत्रीय साहु जिनदासने लिखाई थी।[2]

अतएव कवि गुणभद्रका समय १५वीं शतीका अंतिम पाद या १६वीं शतीका प्रथम पाद होना चाहिए।

रचनाएँ

भट्टारक गुणभद्रने १५ कथा-ग्रंथोंकी रचना की है, जो निम्न प्रकार हैं—

१. सवणबारसिविहाणकहा (श्रावणद्वादशी-विधान-कथा)
२. पक्खवइवयकहा (पाक्षिकव्रतकथा)
३. आयासपंचमीकहा—आकाशपंचमीकथा
४. चंदायणवयकहा—चन्द्रायणव्रतकथा
५. चंदणछट्ठीकहा—चन्दनषष्ठीकथा

१. सं० १५२९ वैसाख सुदी ७ बुधे श्रीकाष्ठासंघे भ० श्रीमलयकीर्त्ति भ० श्रीगुणभद्राम्नाये अग्रोत्कान्वये मित्तलगोत्र......प्रतिमालेखसंग्रह (जैनसिद्धान्तभवन, आरा, वि० सं० १९९४) पृ० ८,१४।
२. अनेकान्त, वर्ष १४, किरण १०, पृ० २९६।

६. नरकउतारीदुग्धारसकथा
७. णिद्दुखसत्तमीकहा—निदु:खसप्तमीकथा
८. मउडसत्तमीकहा—मुकुटसप्तमीकथा
९. पुप्फंजलीकहा—पुष्पांजलिकथा
१०. रयणत्तयवयकहा—रत्नत्रयव्रतकथा
११. दहलक्खणवयकहा—दशलक्षणव्रतकथा
१२. अणंतवयकहा—अनंतव्रतकथा
१३. लद्धिविहाणकहा—लब्धिविधानकथा
१४. सोलहकारणवयकहा—षोडशकारणव्रतकथा
१५. सुगंधदहमीकहा—सुगंधदशमीकथा

इन व्रत-कथाओंमें व्रतका स्वरूप, आचरण-विधि और उनका फल प्राप्ति प्रतिपादित की गयी है। आत्मशोधनके लिये व्रतोंकी नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि आत्मशुद्धिके बिना कल्याण संभव नहीं है। पाक्षिकश्रावक-कथा और अनन्तव्रत-कथा ये दो कथा-ग्रन्थ तो ग्वालियरनिवासी संघपति साहू उद्धरणके जिनमंदिरमें निवास करते हुए साहू सारंगदेवके पुत्र देवदासकी प्रेरणासे रचे गये हैं। और अनन्तव्रतकथा, पुष्पांजलिव्रतकथा और दशलक्षणव्रतकथा ये तीन कथाकृतियाँ ग्वालियरनिवासी जयसवालवंशी चौधरी लक्ष्मणसिंहके पुत्र पं० भीमसेनके अनुरोधसे लिखी गई हैं। निदुं:खसप्तमीकथा गोपाचल-वासी साहू बीधाके पुत्र सहजपालके अनुरोधसे लिखी गई है। शेष कथा-ग्रन्थ धार्मिक भावनासे प्रेरित होकर लिखे हैं। नामानुसार कथाओंमें व्रतोंका स्व-रूपादि वर्णित है।

हरिदेव

'मयणपराजयचरिउ'के रचयिता हरिदेवने ग्रन्थके आदिमें अपना परिचय दिया है जिससे यह ज्ञात होता है, कि इनके पिता का नाम चंगदेव और माता-का नाम चित्रा था। इनके दो बड़े भाई थे—किंकर और कृष्ण। किंकर महा-गुणवान् तथा कृष्ण स्वभावत: निपुण थे। इनके दो छोटे भाई थे, जिनके नाम द्विजवर और राघव थे। कविने लिखा है—

चंगरवहु णवियजिणपयहु
तह चित्तमहासइहिं पढमु पुत्तु किंकर महागुणु।
पुणु बीयउ कण्हु हुउ जेण लद्धु ससहाउ णियपुणु॥
हरि तिज्जउ कइ जाणि यइ दियवरु राघउ वेइ।
ते लहुया जिणपय घुणहिं पावह माणु मलेइ॥२॥

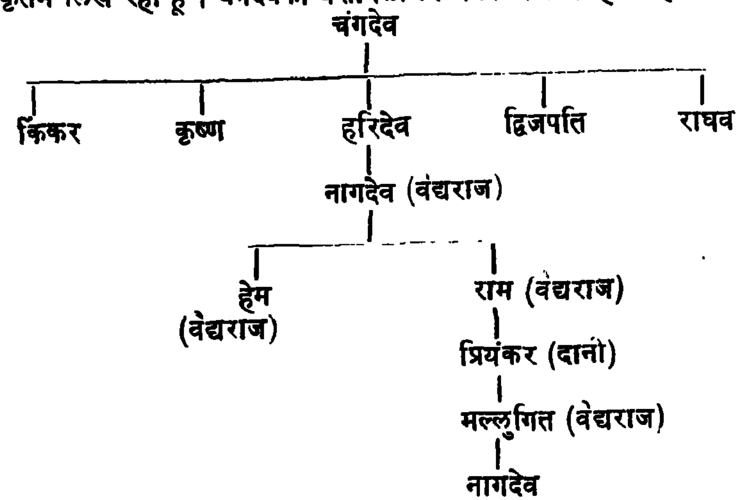
इस कुटुम्ब का परिचय नागदेवके संस्कृत-मदनपराजयसे भी प्राप्त होता है। नागदेवने अपना मदनपराजय हरिदेवके इस अपभ्रंश-मदनपराजयके आधार पर ही लिखा है। वे चंगदेवके वंशमें सातवीं पीढ़ीमें हुए हैं। परिचय निम्न प्रकार है—

यः शुद्धसोमकुलपद्मविकासनार्को जातोऽर्थिनां सुरतरुर्भुवि चंगदेवः।
तन्नन्दनो हरिरसत्कवि-नागसिंहः तस्माद्भिषग्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥२॥
तज्जावुभौ सुभिषजाविह हेमरामौ रामात्प्रियंकर इति प्रियदोऽर्थिनां यः।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधिपारमाप्तः श्रीमल्लुगिज्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्गः॥३॥

तज्जोऽहं नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः।
छन्दोऽलंकारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम् ॥४॥

कथाप्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता।
वक्ष्ये संस्कृतबन्धेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥५॥

अर्थात् पृथ्वीपर पवित्र सोमकुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यरूप और याचकोंके लिए कल्पवृक्षस्वरूप चंगदेव हुए। इनके पुत्र हरि हुए, जो असत्कविरूपी हस्तियोंके लिए सिंह थे। उनके पुत्र वैद्यराज नागदेव हुए। नागदेवके हेम और राम नामके दो पुत्र हुए और ये दोनों ही अच्छे वैद्य थे। रामके पुत्र प्रियंकर हुए, जो याचकोंके लिए प्रिय दानी थे। प्रियंकरके पुत्र मल्लुगित्त हुए, जो चिकित्सामहोदधिके पारगामी विद्वान् तथा जिनेन्द्रके चरण-कमलोंके मत्त भ्रमर थे। उनका पुत्र मैं नागदेव हुआ, जो अल्पज्ञानी हूँ और छन्द, अलंकार, काव्य तथा शब्दकोशका जानकार नहीं हूँ। हरिदेवने जिस कथाको प्राकृत-बन्धमें रचा था, उसे ही मैं भव्योंकी धर्मवृद्धिके हेतु संस्कृतमें लिख रहा हूँ। चंगदेवकी वंशावली निम्नप्रकार प्राप्त होती है—



इस वंशावलीसे कविके जीवन-परिचयका बोध हो जाता है। पर उसके स्थितिकालके सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती।

स्थितिकाल

'मयणपराजयचरिउ'की कथावस्तुका आधार शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव है और परम्परानुसार शुभचन्द्रका समय भोजदेवके समकालीन माना जाता है। ज्ञानार्णवकी एक प्राचीन प्रति पाटणके शास्त्रभण्डारमें वि० सं० १२४८की लिखी हुई प्राप्त हुई है। अतः ज्ञानार्णवका रचनाकाल ९वीं शतीसे १२वीं शतीके बीच सिद्ध होता है। अतएव 'मयणपराजयचरिउ'की रचनाकी पूर्वावधि यही माननी चाहिए। उत्तरावधिका निश्चय प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर किया जा सकता है। 'संस्कृतमदनपराजय'की एक प्रतिका लेखनकाल वि० सं० १५७३ है और अपभ्रंश 'मयणपराजयचरिउ'की एक प्रति वि० सं० १६०८ और दूसरी वि० सं० १६५४ की है। अतएव कवि हरिदेवका समय नागदेवसे छठी पीढ़ी पूर्ण होनेके कारण कम-से-कम १५० वर्ष पहले होना चाहिए। इस प्रकार नागदेवका समय १३वीं-१४वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

पं० परमानन्दजीने जयपुरके तेरापंथी बड़े मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें वि० सं० १५५१ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी गुरुवारकी लिखी हुई प्रतिका निर्देश किया है तथा आमेरभंडारकी प्रति वि० सं० १५७६ की लिखी हुई बताई है। और उन्होंने भाषा-शैली आदिके आधारपर हरिदेवका समय १४वीं शताब्दीका अन्तिम चरण बताया है।[1]

डॉ० हीरालालजी जैनने हरिदेवका समय १२वीं शतीसे १५वीं शतीके बीच माना है।[2]

रचना

कविकी एक ही रचना 'मयणपराजयचरिउ' उपलब्ध है। इस ग्रंथमें दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेदमें ३७ और दूसरेमें ८१ इस प्रकार कुल ११८ कड़वक हैं। यह छोटा-सा रूपक खण्डकाव्य है। कविने इसमें मदनको जीतनेका सरस वर्णन किया है। कामदेव राजा, मोह मंत्री, अहंकार, अज्ञान आदि सेनापतियोंके साथ भावनगरमें निवास करता था। चारित्रपुरके राजा जिनराज उसके शत्रु थे, क्योंकि वे मुक्तिरूपी लक्ष्मीसे अपना विवाह करना चाहते थे। कामदेवने

१. जैनग्रंथप्रशस्तिसंग्रह, द्वितीय भाग, दिल्ली, प्रस्तावना, पृ० ११४।
२. मयणपराजयचरिउ, भारतीयज्ञानपीठ काशी, प्रस्तावना, पृ० ६१।

राग-द्वेष नामके दूत द्वारा जिनराजके पास यह सन्देश भेजा कि आप या तो मुक्ति-कन्यासे विवाह करनेका अपना विचार छोड़ दें और अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप सुभटोंको मुझे सौंप दें; अन्यथा युद्धके लिये तैयार हो जाएँ। जिन-राजने कामदेवसे युद्ध करना स्वीकार किया और अन्तमें उसे पराजित कर शिवरमणीको प्राप्त किया। इस प्रकार इस रूपक-काव्यमें कविने सरस रूपमें इन्द्रियनिग्रह और विकारोंको जीतनेकी ओर संकेत किया है। यहाँ हम उदाहरणार्थं इस रूपक काव्यमें राग-द्वेषादिके युद्धका वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

राय-रोस खम-दमहं महाभड। आसव-बंध गुणहं दह-लंपड।।
चारित्तहं तइ भिडिय असंजम। णिज्जर-गुणहं कम्म कय-घण-तम।।
गारव तिण्णि भिडिय सिवपंथहं। अणय पधाइय णयहं पयत्थहं।।
अण्णु वि जे जसु समुहु पइट्ठा। ते तसु सयलु वि रणि आभिट्ठा।।
तहि अवसरि पुच्छिउ आणंदें। सिद्धिरूउ सरवदउ जिणिदे।।
अम्हहं बलु कारणे किं णट्ठउ। मयरद्धय-सेण्णहो संतट्ठउ।।
उपसम-सेढिय-भूमिहि लग्गउ। तें कज्जेण जिणेसर भग्गउ।।
एवहिं खाइय-भूमि चडावहि। परबलु उच्छरंतु बिहडावहि।।
तो परणइ-सहाव संगूढउ। खवग-सेढि जिणबलु आरूढउ।।

महाभट राग और द्वेष, क्षमा और दमनसे भिड़ गये। दस लंपट आसव और बन्ध गुणोंसे युद्ध करने लगे। असंयम चारित्रसे भिड़ा। सघन अंधकार उत्पन्न करनेवाले कर्म निर्जरागुणसे युद्ध करने लगे। तीन गारव शिवपंथसे भिड़ गये और अनय प्रशस्त नयों पर दौड़ पड़े। अन्य सुभट भी जिनके सम्मुख पड़े वे सब उनसे रणमें आकर युद्ध करने लगे। इस अवसर पर जिनेन्द्रने आनन्दपूर्वक सिद्धिरूप स्वरोदय ज्ञानीसे पूछा कि हमारा बल किस कारणसे नष्ट हुआ और मकरध्वजके शैन्यसे संत्रस्त हुआ? तब उस ज्ञानीने बतलाया कि हे जिनेश्वर तुम्हारा बल उपशम-श्रेणीकी भूमि पर जा लगा था। इस कारण वह भग्न हुआ। अब उसे क्षायिक भूमि पर चढ़ाइये, जिससे वह आगे बढ़ता हुआ शत्रु-बलको नष्ट कर सके। तब स्वभाव परिणतिसे संगूढ़ वह जिनबल क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुआ। फिर श्रेष्ठ रथोंके संघटनोंने, उत्तम घोड़ोंके समूहोंने, गुलगुलाते हुए हाथियोंके व्यूहोंने एवं महाभटोंने ध्वजाएँ उड़ाते हुए सम्मुख बढ़कर अपने-अपने घात दिखलाये।

इस वर्णनसे स्पष्ट है कि कविने सैद्धान्तिक विषयोंको काव्यके रूपमें प्रस्तुत किया है। पौराणिक तथ्योंकी अभिव्यंजना भी यथास्थान की गई है। द्वितीय संधिके ६१, ६२, ६३ और ६४वें पद्योंमें कामदेवने अपनी व्यापकताका परिचय

दिया है और बताया है कि मेरे प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव त्रस्त हैं, मैं त्रिलोकविजयी हूँ।

प्रसंगवश गुणस्थान, व्रत, समिति, गुप्ति, षडावश्यक, ध्यान आदिका भी चित्रण होता गया है।

हरिचन्द द्वितीय

इन हरिचन्दका वंश अग्रवाल था। इनके पिताका नाम जंडू और माताका नाम बील्हा देवी था। कविने 'अणत्थमियकहा' की रचना की है। इस कृतिमें रचनाकाल निर्दिष्ट नहीं किया गया है; पर पाण्डुलिपिपरसे यह रचना १५वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। कविने ग्रंथकी अन्तिम प्रशस्तिमें अपने वंशका परिचय दिया है—

> पाविउ वील्हा जंडू तणएं जाएं, गुरुभत्तिए सरसइहि पसाएं।
> अयरवालवंसे उप्पणइं, मइं हरियंदेण।
> भत्तिय जिणु पणवेवि पयडिउ पद्धडिया-छंदेण ॥१॥

यह प्रति लगभग ३०० वर्ष पुरानी है। अतएव शैली, भाषा, विषय आदिकी दृष्टिसे कविका समय १५वीं शताब्दी प्रायः निश्चित है। कविकी एक ही रचना 'अणत्थमियकहा' उपलब्ध है। ग्रंथमें १६ कड़वक हैं, जिनमें रात्रि-भोजनसे होनेवाली हानियोंका वर्णन किया गया है। सूर्यास्तके पश्चात् रात्रिमें भोजन करनेवाले सूक्ष्म-जीवोंके संचारसे रक्षा नहीं कर सकते। बहुत विषैले कीटाणु भोजनके साथ प्रविष्ट हो नानाप्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं।

कविने तीर्थंकर वर्धमानकी बहुत ही सुन्दर रूपमें स्तुति की है और अनन्तर रात्रि-भोजनके दोषोंका निरूपण किया है। यहाँ स्तुति-सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

> जय वड्ढमाण सिवउरि-पहाण, तइलोय-पयासण विमल-णाण।
> जय सयल-सुरासुर-णमिय-पाय, जय धम्म-पयासण वीयराय।
> जय सील-भार-धुर-धरण-धवल, जय काम-कलंक-विमुक्क अमल।
> जय इंदिय-मय-गल-वहण-वाह, जय सयल-जीव-असरण सणाह।
> जय मोह-लोह-मच्छर-विणास, जय दुट्ठ-चिट्ठ-कम्मट्ठ-णास।
> जय चउदह-मल-वज्जिय-सरीर, जय पंचमहव्वय-धरण-धीर।
> जय जिणवर केवलणाण-किरण, जय दंसण-णाण-चरित्त-चरण।

कवि हरिचन्दकी अन्य रचनाएँ भी होनी चाहिए।

नरसेन या नरदेव

कवि नरसेनका अन्य नाम नरदेव भी मिलता है। कविने अपने ग्रन्थोंको प्रशस्तियोंमें नामके अतिरिक्त किसी प्रकारका परिचय नहीं दिया है। 'सिद्ध-चक्ककहा'के अन्तमें लिखा हुआ मिलता है—

सिद्धचक्कविहि रइय मइं, णरसेणु भणइ णिय-सत्तिय।
भवियण-जण-आणंदयरे, करिवि जिणेसर-भत्तिए ॥२-३६॥

द्वितीय सन्धिके अन्तमें निम्नलिखित पुष्पिका-वाक्य प्राप्त होता है—

"इय सिद्धचक्ककहाए पयडिण-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए महाराय-चंपाहिव-सिरिपालदेव-मयणासुन्दरिदेवि-चरिए पंडिय-सिरिणरसेण-विरइए इहलोय-पर-लोय-सुह-फल-कराए रोर-दुह-घोर-कोट्ठ-बाहि-भवणासणाए सिरिपाल-णि-व्वाण-गमणो णाम वीओ संधिपरिच्छेओ समत्तो ॥"

कवि नरसेन दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी है। उसने श्रीपालकथा दिगम्बर-सम्प्रदायके अनुसार लिखी है। कविकी गुरुपरम्परा या वंशावली के सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता है।

स्थितिकाल

कविने अपनी रचनाओंमें रचनाकालका निर्देश नहीं किया है। 'सिद्ध-चक्ककहा'की सबसे प्राचीन प्रति जयपुरके आमेर-शास्त्र-भण्डारमें वि० सं० १५१२की उपलब्ध होती है। यदि इस प्रतिलिपिकालसे सौ-सवासौ वर्ष पूर्व भी कविका समय माना जाय, तो वि० सं०की १४वीं शती सिद्ध हो जाता है। कवि धनपाल द्वितीयने 'बाहुबलीचरिउ'में नरदेवका उल्लेख किया है—

णवयारणेहु णरदेव वुत्तु, कइ असग विहिउ करहो चरित्तु।

'बाहुबलीचरिउ'का रचनाकाल वि० सं० १४५४ है। अतएव नरदेव या नरसेनका समय १४वीं शती माना जा सकता है। दूसरी बात यह है कि रइधू और नरसेनकी श्रीपालकथाके तुलनात्मक अध्ययनसे यह ज्ञात हो जाता है कि नरसेनने अपने इस ग्रन्थको रइधूके पहले लिखा है। अतः रइधूके पूर्ववर्ती होनेसे भी नरसेनका समय १४वीं शती अनुमानित किया जा सकता है।

रचनाएँ

नरसेनकी 'सिद्धचक्ककहा' और 'वड्ढमाणकहा' अथवा 'जिणरत्तिविहाण-

कहा' ये दो रचनाएँ प्राप्त हैं। डॉ॰ देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने भ्रमवश 'वड्ढमाण-कहा' और 'जिणरत्तिविहाणकहा'को पृथक्-पृथक् मान लिया है। वस्तुतः ये दोनों एक ही रचना हैं। आमेर-भण्डारकी प्रतिमें लिखा है—

इय जिणरत्तिविहाणु पयासिउ, जइ जिण-सासण गणहर भासिउ।

× × ×

घत्ता—सिरिणरसेणहो सामिउ सिवपुर, गामिउ वड्ढमाणु-तित्थंकरु।
जा मग्गिउ देइ करुण करेइ, रेउ सुबोहिउ णरु॥

उपर्युक्त पक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि वर्धमानकथा और जिनरात्रिविधानकथा दोनों एक ही ग्रन्थ हैं। जिस रात्रिमें भगवान् महावीरने अविनाशी पद प्राप्त किया, उसी व्रतकी कथा शिवरात्रिके समान लिखी गई है। इसमें तीर्थंकर महावीरका वर्त्तमान जीवनवृत्त भी अंकित है। कविकी दूसरी रचना 'सिद्धचक्ककहा' है। सिद्धचक्रकथामें उज्जयिनी नगरके प्रजापाल राजाकी छोटी कन्या मैनासुन्दरी और चम्पा नगरीके राजा श्रीपालकी कथा अंकित है। इस कथाको पूर्वमें भी लिखा जा चुका है। नरसेनने दो सन्धियोंमें ही इस कथाको निबद्ध किया है। इस कथाग्रन्थमें पौराणिक तथ्योंकी सम्यक् योजना की गई है। घटनाएँ संक्षिप्त हैं; पर उनमें स्वाभाविकता अधिक पाई जाती है। आधिकारिक कथामें पूर्ण प्रवाह और गतिशीलता है। प्रासंगिक कथाओंका प्रायः अभाव है; किन्तु घट-नाओं और वृत्तोंकी योजनाने मुख्य कथाको गतिशील बनाया है। वस्तु-विषय और संघटनाकी दृष्टिसे अल्पकाय होनेपर भी यह सफल कथाकाव्य है।

वर्णनोंकी सरसताने इस कथाकाव्यको अधिक रोचक बनाया है। विवाह-वर्णन (१।१४), यात्रावर्णन (१।२४), समुद्रयात्रावर्णन (१।२५), युद्धवर्णन (१।२६) और युद्धयात्रावर्णन (२।२२) आदिके द्वारा कविने भावोंको सशक्त बनाया है। संवाद और भावोंकी रमणीयता आद्यन्त व्याप्त है।

माताका उपदेश, सहस्रकूट चैत्यालयकी वन्दना, सिद्धचक्रव्रतका पालन, वीरदमनका साधु होना, मुनियोंसे पूर्वभवोंका वृत्तान्त सुनना तथा मुनिदीक्षा ग्रहण कर तपस्या करना आदि संदर्भोंसे निर्वेदका संचार होता है।

कविने इस कथाकाव्यमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, निदर्शना, अनुमान आदि अलंकारोंकी योजना भी की है। इस प्रकार यह काव्य कवित्वकी दृष्टिसे भी सुन्दर है।

महीन्दु

कवि महीन्दु या महीचन्द्र इल्लराजके पुत्र हैं। इससे अधिक इनके परिचय के सम्बन्धमें कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। कविने 'संतिणाहचरिउ'की रचनाके अन्तमें अपने पिताका नामांकन किया है—

> मो सुणु बुद्धीसर वरमहि दुहहर, इल्लराजसुअ णाखिज्जइ।
> सण्णाणसुअ साहारण दोसीणिवारण वरणेरहि धारिज्जइ॥

पुष्पिका-वाक्यसे भी इल्लराजका पुत्र प्रकट होता है।

ग्रन्थ-प्रशस्तिमें कविने योगिनीपुर (दिल्ली) का सामान्य परिचय कराते हुए काष्ठासंघके माथुरगच्छ और पुष्करगणके तीन भट्टारकोंका नामोल्लेख किया है—यशःकीर्ति, मलयकीर्त्ति और गुणभद्रसूरि। इसके पश्चात् ग्रंथका निर्माण कराने वाले साधारणनामक अग्रवालश्रावकके वंशादिका विस्तृत परिचय दिया है। ग्रन्थके प्रत्येक परिच्छेदके प्रारंभमें एक-एक संस्कृत-पद्य द्वारा भगवान शान्तिनाथका जयघोष करते हुए साधारणके लिये श्री और कीर्त्ति आदि-की प्रार्थना की गई है।

भट्टारकोंकी उपर्युक्त परम्परा अंकनसे यह ध्वनित होता है कि कवि महीन्दुके गुरु काष्ठासंघ माथुरगच्छ और पुष्करगणके आचार्य ही रहे हैं तथा कविका सम्बन्ध भी उक्त भट्टारक-परम्पराके साथ है।

स्थितिकाल

कविने इस ग्रंथका रचनाकाल स्वयं ही बतलाया है। लिखा है—

> विक्कमरायहु ववगय-कालइ। रिसि-वसु-सर-भुवि-अकालइ।
> कत्तिय-पढम-पक्खि पंचमि-दिणि। हुड परिपुण्ण वि उग्गंतइ इणि।

अर्थात् इस ग्रंथकी रचना वि० सं० १५८७ कार्त्तिक कृष्ण पंचमी मुगल-बादशाह बाबरके राज्यकालमें समाप्त हुई।

इतिहास बतलाता है कि बाबरने ई० सन् १५२६की पानीपतकी लड़ाईमें दिल्लीके बादशाह इब्राहिम लोदीको पराजित और दिवंगतकर दिल्लीका राज्य-शासन प्राप्त किया था। इसके पश्चात् उसने आगरापर भी अधिकार कर लिया। सन् १५३० ई० (वि० सं० १५८७)में आगरामें ही उसकी मृत्यु हो गई। इससे यह विदित होता है कि बाबरके जीवनकालमें ही 'सन्तिणाहचरिउ'की रचना समाप्त हुई है। अतएव कविका स्थितिकाल १६वीं शती सिद्ध होता है।

कविने इस ग्रन्थमें अपनेसे पूर्ववर्त्ती अकलंक, पूज्यपाद, नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदन्त, यशःकीर्ति, रइधू, गुणभद्रसूरि और सहणपालका स्मरण किया है। रइधूका समय वि०की १५वीं शतीका अन्तिम भाग अथवा १६वीं शतीका प्रारंभिक भाग है। अतएव कविका समय पूर्व आचार्योंके स्मरणसे भी सिद्ध हो जाता है। लिखा है—

अकलंकसामि सिरिपायपूय, इंदाइ महाकइ अट्ठहूय।
सिरिणेमिचंद सिद्धंतियाइं, सिद्धंतसार मुणि ण वि ताईं।
चउमुहु-सुयंभु-सिरिपुप्फयंतु, सरसइ-णिवासु गुण-गण-महंतु।
जसकित्तिमुणीसर जस-णिहाणु, पंडिय रइधूकइ गुण अमाणु।
गुणभद्दसूरि गुणभद्द ठाणु, सिरिसहणपाल बहुबुद्धि जाणु।

रचना

कवि द्वारा लिखित 'संतिणाहचरिउ'की प्रति वि० सं० १५८८ फाल्गुण कृष्णा पंचमीकी लिखी हुई उपलब्ध है।

प्रस्तुत ग्रंथकी रचना योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अग्रवालकुलभूषण गर्गगोत्रीय साहू भोजराजके पाँच पुत्रोंमेंसे ज्ञानचन्दके पुत्र साधारण श्रावककी प्रेरणासे की गई है। भोजराजके पुत्रोंके नाम खेमचन्द, ज्ञानचन्द, श्रीचन्द, राजमल्ल और रणमल बताये गये हैं। ग्रंथकी प्रशस्तिमें कविने साधारण श्रावकके वंशका परिचय कराया है। बताया है कि उसने हस्तिनागपुरके यात्रार्थ संघ चलाया था और जिनमंदिरका निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी कराई थी। भोजराजके पुत्र ज्ञानचंदकी पत्नीका नाम 'सौराजही', था जो अनेक गुणोंसे विभूषित थी। इसके तीन पुत्र हुए, जिनमें सारंगसाहू और साधारण प्रसिद्ध हैं। सारंगसाहूने सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। इसकी पत्नीका नाम 'तिलोकाही' था। दूसरा पुत्र साधारण बड़ा विद्वान् और गुणी था। उसने शत्रुंजयकी यात्राकी थी। इसकी पत्नीका नाम 'सीवाही' था। इसके चार पुत्र हुए—अभयचन्द, मल्लिदास, जितमल्ल और सोहिल्ल। इनकी पत्नियोंके नाम चंदणही, भदासही, समदो और भीखणही। ये चारों ही पतिव्रता और धर्मनिष्ठा थीं। इस प्रकार कविने ग्रंथ-रचनाके प्रेरकका परिचय प्रस्तुत किया है।

'संतिणाहचरिउ'में १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्तीका जीवनवृत्त गुम्फित है। कथा-वस्तु १३ परिच्छेदोंमें विभक्त है। पद्य-प्रमाण ५०००के लगभग है।

शान्तिनाथ चक्रवर्त्ती, कामदेव और धर्मचक्री थे। कविने इनकी पूर्वभवावलीके साथ वर्त्तमान जीवनका अंकन किया है। चक्रवर्तीने सभी प्रकारके वैभवोंका

उपभोग किया और षट्खण्डभूमिको अपने अधीन किया। अन्तमें इन्द्रियविषयोंको दुःखद अवगत कर देह-भोगोंसे विरक्त हो दिगम्बर-दीक्षा धारण कर तपश्चरण किया। समाधिरूपी चक्रसे कर्मशत्रुओंको विनष्टकर धर्मचक्री बने। विविध देशोंमें विहार कर जगत्को कल्याणका मार्ग बताया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया।

विजयसिंह

कवि विजयसिंहने अजितपुराणकी प्रशस्तिमें अपना परिचय दिया है। बताया है कि मेरुपुरमें मेरुकीत्तिका जन्म करमसिंह राजाके यहाँ हुआ था, जो पद्मावतीपुरवालवंशके थे। कविके पिताका नाम दिल्हण और माताका नाम राजमती था। कविने अपनी गुरुपरम्पराका निर्देश नहीं किया है। सन्धिके पुष्पिका-वाक्यसे यह प्रकट है कि यह ग्रंथ देवपालने लिखवाया था।

"इय सिरिअजियणाहतित्थयरदेवमहापुराणे धम्मत्थ-काम-मोक्ख-चउपयत्थ पहाणे सुकइणसिरिविजयसिंहबुहविरइए महाभव्व-कामरायसुय-सिरिदेवपाल-विवुहसिरसेहरोवमिए दायार-गुणाण-कित्तणं पुणो मगह-देसाहिववण्णणं णाम पढमों संधीपरिछेओ समत्तो ॥"

कवि विजयसिंहकी कविता उच्चकोटिकी नहींहै। यद्यपि उनका व्यक्तित्व महत्त्वाकांक्षीका है, तो भी वे जीवनके लिए आस्था, चरित्र और विवेकको आवश्यक मानते हैं।

स्थितिकाल

कविने अजितपुराणकी समाप्ति वि० सं० १५०५ कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन की है। इसी संवत्की लिखी हुई एक प्रति भोगाँवके शास्त्रभण्डारमें पाई जाती है। इस प्रतिकी लेखन-प्रशस्तिमें बताया है—

"संवत् १५०५ वर्षे कार्तिक सुदि पूर्णमासो दिने श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भट्टारकश्रीपद्मनंदिदेवस्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवः तस्य पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवः तस्याम्नाये श्रीखंडेलवालान्वये सकलग्रंथार्थप्रवीणः पंडितकउडिः तस्य पुत्रः सकलकलाकुशलः पण्डितछीत (र) तत्पुत्रः निरवद्य-श्रावकाचारधरः पंडितजिनदासः, पंडितखेता तत्पुत्रपंचाणुव्रतपालकः पण्डित-कामराजस्तद्भार्या कमलश्री तत्पुत्रास्त्रयः पण्डितजिनदासः, पंडितरतनः देवपालः एतेषां मध्ये पंडितदेवपालेन इदं अजितनाथदेवचरितं लिखापितं निजज्ञाना-वरणीयकर्मक्षयार्थं, शुभमस्तु लेखकपाठकयोः।"

—जैन सि० भा० भा० २२, कि० २।

अतएव कविका समय विक्रमकी १६वीं शती है। कविने इस ग्रन्थकी रचना महाभव्य कामराजके पुत्र पंडित देवपालकी प्रेरणासे की है। बताया है कि वणिपुर या वणिक्पुर नामके नगरमें खण्डेलवाल वंशमें कउडि (कौड़ी) नामके पंडित थे। उनके पुत्रका नाम छीतु था, जो बड़े धर्मनिष्ठ और आचारवान थे। वे श्रावकको ११ प्रतिमाओंका पालन करते थे। वहीपर लोकमित्र पंडित खेता था। इन्हींके प्रसिद्ध पुत्र कामराज हुए। कामराजकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इनके तीन पुत्र हुए—जिनदास, रयणु और देवपाल। देवपालने वर्धमानका एक चैत्यालय बनवाया था, जो उत्तुंग ध्वजाओंसे अलंकृत था। इसी देवपालकी प्रेरणासे अजितपुराण लिखा गया है।

इस ग्रन्थकी प्रथम सन्धिके नवम कडवकमें जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, गृद्धपिच्छ, प्रोष्ठिल, लक्ष्मण, श्रीधर और चतुर्मुखके नाम भी आये हैं।

इस ग्रन्थमें कविने द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथका जीवनवृत्त गुम्फित किया है। इसमें १० सन्धियाँ हैं। पूर्वभवावलीके पश्चात् अजितनाथ तीर्थंकरके गर्भ जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकोंका विवेचन किया है। प्रसंगवश लोक, गुणस्थान, श्रावकाचार, श्रमणाचार, द्रव्य और गुणोंका भी निर्देश किया गया है।

कवि असवाल

कवि असवालका वंश गोलाराड था। इनके पिताका नाम लक्ष्मण था। इन्होंने अपनी रचनामें मूलसंघ बलात्कारगणके आचार्य प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र और धर्मचन्द्रका उल्लेख किया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि कवि इन्हींको आम्नायका था। कविने कुशार्त्त देशमें स्थित करहल नगर निवासी साहू सोणिगके अनुरोधसे लिखा है। ये सोणिग यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे।

ग्रन्थ-रचनाके समय करहलमें चौहानवंशी राजा भोजरायके पुत्र संसारचन्द (पृथ्वीसिंह) का राज्य था। उनकी माताका नाम नाइक्कदेवी था। यदुवंशी अमरसिंह भोजराजके मंत्री थे, जो जैनधर्मके अनुयायी थे। इनके चार भाई और भी थे, जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिंह और लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिंहकी पत्नीका नाम कमलश्री था। इसके तीन पुत्र हुए—नन्दन, सोणिग और लोणा साहू। लोणा साहू जिनयात्रा, प्रतिष्ठा आदिमें उदारतापूर्वक धन व्यय करते थे।

मल्लिनाथचरितके कर्त्ता कवि हल्लकी प्रशंसा भी असवाल कविने की है। लोणा साहूके अनुरोधसे ही कवि असवालने 'पासणाहचरिउ'की रचना अपने

ज्येष्ठ भ्राता सोणिगके लिये कराई थी। सन्धि-वाक्यमें भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

"इय पासणाहचरिए आयमसारे सुवग्गचहुभरिए बुहअसवालविरइए संघाहिपसोणिगस्स कण्णाहरणसिरिपासणाहणिव्वाणगमणो णाम तेरहमो परिच्छेओ सम्मत्तो।"

स्थितिकाल

कविने 'पासणाहचरिउ'की प्रशस्तिमें इस ग्रन्थका रचनाकाल अंकित किया है—

इगवीरहो णिव्वुइं कुच्छराइं, सत्तरिसहुँ चउसयवत्थराइं।
पच्छइं सिरिणिवविक्कमगयाइं, एउणसीदीसहुँ चउदहसयाइं।
भादव-तम-एयारसि मुणेहु, वरिसिक्के पूरिउ गंथु एहु।
पंचाहियवीससयाइं सुत्तु, सहसइं चयारि मंडणिहिं जुत्तु।

अर्थात् वि० सं० १४७९ भाद्रपद कृष्णा एकादशीको यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। ग्रन्थ लिखनेमें कविको एक वर्ष लगा था।

प्रशस्तिमें वि० सं० १४७१ भोजराजके राज्यमें सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठोत्सवका भी वर्णन आया है। इस उत्सवमें रत्नमयी जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा की गई थी।

प्रशस्तिमें जिस राजवंशका उल्लेख किया है उसका अस्तित्व भी वि० सं० की १५वीं शताब्दीमें उपलब्ध होता है। अतएव कविका समय विक्रमकी १५ वीं शताब्दी है। कविकी एक ही रचना 'पासणाहचरिउ' उपलब्ध है। इसमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथका जीवन-चरित अंकित है। कथावस्तु १३ सन्धियोंमें विभक्त है। कविने इस काव्यमें मरुभूति और कमठके जीवनका सुन्दर अंकन किया है। सदाचार और अत्याचारकी कहानी प्रस्तुत की है। प्रत्येक जन्ममें मरुभूतिका जीव कमठके जीवके विद्वेषका शिकार होता है। कमठका जीव मरुभूतिके जीवके समान ही इस लोकमें उत्पन्न होता है, किन्तु अपने दुष्कृत्यके कारण तिर्यञ्चमें जन्म ग्रहणकर नरकवास भोगता है। उसे छठवें भवमें पुनः मनुष्य-योनिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मरुभूति और कमठका वैर-विरोध १० जन्मों तक चलता है। १० वें भवमें मरुभूतिका जीव पार्श्वनाथके रूपमें जन्म ग्रहण करता है। पार्श्व जन्मके पश्चात् अपने बल, पौरुष एवं बुद्धिका परिचय देते हैं। और ३० वर्षकी आयु पूर्ण होनेपर माघ शुक्ला एकादशीको दीक्षा ग्रहण करते हैं। वे तपश्चरण कर केवलज्ञान लाभ करते हैं और सम्मेद-

शिखरपर निर्वाण-लाभ करते हैं। कविने प्रसंगवश सम्यक्त्व, श्रावकधर्म, मुनिधर्म, कर्मसिद्धान्त और लोकके स्वरूपका विवेचन भी किया है। कविता साधारण है और भाषा लोक-भाषाके निकट है।

इस चरित-ग्रन्थमें कविने ग्राम, नगर और प्रकृतिका विवरणात्मक चित्रण किया है। नर-नारियोंके चित्रणमें परम्परायुक्त उपमानोंका व्यवहार किया गया है।

बल्ह या बूचिराज

कवि बल्ह या बूचिराज मूलसंघके भट्टारक पद्मनन्दिकी परम्परामें हुए हैं। ये राजस्थानके निवासी थे। सम्यक्त्वकौमुदीनामक ग्रंथ उन्हें चम्पावती (चाटसु)में भेंट किया गया था। बूचिराज अच्छे कवि थे और पठन-पाठन आदिमें इनका समय व्यतीत होता था।

कवित्वकी शक्ति प्राप्त है। कवि अपभ्रंश और लोक-भाषाओंका अच्छा जानकार है।

स्थितिकाल

कविने अपनी कतिपय रचनाओंमें रचनाकालका निर्देश किया है। उन्होंने 'मयणजुज्झ'की समाप्ति वि० १५८९में की है। 'सन्तोषतिलक जयमाल' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५९१में की गई है। अतएव रचनाओंपरसे कवि-का समय विक्रम सं० की १६वीं शतीका उत्तरार्द्ध आता है। भाषा, शैली एवं वर्ण्य विषयकी दृष्टिसे भी इस कविका समय विक्रमकी १६वीं शती प्रतीत होता है।

रचनाएँ

कवि आचार-नीति और अध्यात्मका प्रेमी है। अतएव उसने इन विषयोंसे सम्बद्ध निम्नलिखित रचनाएँ लिखी हैं—

१. मयणजुज्झ (मदनयुद्ध), २. सन्तोषतिलकजयमाल, ३. चेतनपुद्गल-धमाल, ४. टंडाणागीत, ५. भुवनकीर्त्तिगीत, ६. नेमिनाथवसन्त और ७. नेमि-नाथबारहमासा।

'मयणजुज्झ' रूपक-काव्य है। इसकी रचनाका मुख्य उद्देश्य मनोविकारों पर विजय प्राप्त करना है। इस काव्यमें १५९ पद्य हैं, जिनमें आदिनाथ तीर्थं-करका मदनके साथ युद्ध दिखलाकर उनकी विजय बतलाई गई है।

बसन्तऋतु कामोत्पादक है। उसके आगमनके साथ प्रकृतिमें चारों ओर आह्लादक वातावरण व्याप्त हो जाता है। सुरभित मलयानिल प्रवाहित होने लगता है, कोयलकी कूज सुनाई पड़ती है और प्रकृति नई वधूके समान इठलाती हुई दृष्टिगोचर होती है।

इसी सुहावने समयमें तीर्थंकर ऋषभदेव ध्यानस्थ थे। कामदेवने जब उन्हें शान्त-मुद्रामें निमग्न देखा, तो वह कुपित होकर अपने सहायकोंके साथ ऋषभदेवपर आक्रमण करने लगा। कामके साथ क्रोध, मद, माया, लोभ, मोह, राग-द्वेष और अविवेक आदि सेनानियोंने भी अपने-अपने पराक्रमको दिखलाया। पर ऋषभदेवपर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उनके संयम, त्याग, शील और ध्यानके समक्ष मदनको परास्त होना पड़ा। कविने युद्धका सजीव वर्णन निम्नलिखित पंक्तियोंमें किया है—

चढिउ कोपि कंदप्पु अप्पु बलि अवर न मन्नइ।
कुंदे कुरले तसै हंसै सव्वह अवगन्नइ।
ताणि कुसुम-कोवंडु भविय संघह दलु मिल्लिउ।
मोहु वहिड तहगवि तासु बलु खिणमहि पिल्लिउ।
कवि वल्लह जैनु जंगम अटलु तासु सरि अवरु न करै कुइ।
असि-झाणि-हणिउ श्री आदिजिण, गयो मयणु दहवउहोइ॥

कविकी दूसरी रचना संतोषतिलकजयमाल है। यह भी रूपक काव्य है। इसमें सन्तोषद्वारा लोभपर विजय प्राप्त करनेका वर्णन आया है। काव्यका नायक सन्तोष है और प्रतिनायक लोभ। लोभ प्रवृत्तिमार्गका पथिक है और सन्तोष निवृत्तिमार्गका। लोभके सेनानी असत्य, मान, माया, क्रोध, मोह, कलह, व्यसन, कुशील, कुमति और मिथ्याचरित आदि हैं। सन्तोषके सहायक शील, सदाचार, सुधर्म, सम्यक्त्व, विवेक, सम्यक्चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा और संयम आदि हैं।

कविने यह काव्य १३१ पद्योंमें रचा है। लोभ और सन्तोषके परिकरका परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

लोभ

आपउ झूठु परधानु मंत-तंत खिणि कीयउ।
मानु मोह अरु दोहु मोहु इकु युद्धउ कीयउ।
माया कलह कलेपु थापु, संताप छद्म दुखु
कम्म मिथ्या आचरउ, आइ अद्धम्मि कियउ पखु
कुविसन कुसीलु कुमतु जुडिउ राग दोष आइरु लहिउ।
अप्पणउ सयनु बल देखिकरि, लोहुराउ तब गहु गहिउ॥

सन्तोष

आइयौ सीलु सुधम्मु समकितु ग्यान चारित संवरो,
वेरागु तप करुणा महाव्रत खिमा चिति संजय थिरो।
अज्जउ सुमइउ मुत्ति उपसमु धम्मु सो आकिंचिणो,
इन मेलि दलु सन्तोषराजा लोभ सिव मंडक रणो॥

चेतनपुद्गल धमाल

इसका दूसरा नाम अध्यात्म धमाल भी है। यह भी एक रूपक काव्य है। कुल १३६ पद्य हैं। इसमें पुद्गलकी संगतिसे होने वाली चेतन-विकृत परिणतिका अच्छा वर्णन किया है। चेतन और पुद्गल का बहुत ही रोचक संवाद आया है। कवि की कविताका नमूना निम्न प्रकार है—

जिउ ससि मंउणु रयणिका दिनका मंउणु भाणु।
तिम चेतनका मंडणा, यहु पुद्गल तू जाणु॥

× × ×

कांइ कलेवरु वसि सुहु, जतनु करं तिहि जाइ।
जिउ जिउ वाचे तंबडो, तिव तिव अति करवाइ॥

× × ×

कायाकी निन्दा करइ, आपु न देखइ जोइ।
जिउ जिउ भोजइ कांवली, तिउ तिउ भारी होइ॥[1]

टंडाणागीत—यह उपदेशात्मक रचना है। इसका मुख्य उद्देश्य संसारके स्वरूपका चित्रण कर उसके दुःखोंसे उन्मुक्त करना है। यह मोही प्राणी अनादिकालसे स्वरूपको भूलकर परमें अपनी कल्पना करता आ रहा है। इसी कारण उसका परवस्तुओंसे अधिक राग हो गया है। कविने अन्तिम पदमें आत्माको सम्बोधन कर आत्मसिद्धि करनेका संकेत किया है। कविकी यह रचना बड़ी हो सरल और मनोहर है।

भुवनकीर्त्तिगीत—इसमें पाँच पद्य हैं, जिनमें भट्टारक भुवनकीर्त्तिके गुणोंकी प्रशंसा की गई है। भुवनकीर्त्ति अट्ठाइस मूलगुण और १३ प्रकारके चारित्रका पालन करते हुए मोहरूपी महाभटको ताड़न करनेवाले थे। कविने इस कृतिमें इन्हींके गुणोंका वर्णन किया है।

नेमिनाथवसन्त—इसमें २३ पद्य हैं। वसन्त ऋतुका रोचक वर्णन करनेके

१. अनेकान्त वर्ष १६, किरण ६, १९६४ फरवरी, पृ० २५४–२५६।

अनन्तर नेमिनाथका अकारण पशुओंको घिरा हुआ देखकर और सारथीसे अतिथियोंके लिए वधकी बात सुनकर विरक्त हो रैवन्तगिरि पर जाना वर्णित है। राजमतीका विरह और उसका तपस्विनीके रूपमें आत्म-साधना करना भी वर्णित है।

वल्हि वियक्खणु सखीय बंधण।
मूल संघ मुख मंडिया पद्मनंदि सुपसाइ,
बल्हि बसंतु जु गावहि सो सखि रलिय कराइ॥

नेमिनाथबारहमासा—१२ महीनोंमें राजीमतिने अपने उद्‌गारोंको व्यक्त किया है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आषाढ़ आदि मास अपनी विभिन्न प्रकारकी विशेषताओं और प्राकृतिक सौंदर्यके कारण राजीमतिको उद्वेलित करते हैं और वह नेमिनाथको सम्बोधित कर अपने भावोंको व्यक्त करती है। कृति सरस और मार्मिक है।

कवि शाह ठाकुर

कवि शाह ठाकुरने 'संतिणाहचरिउ' की प्रशस्तिमें अपना परिचय दिया है। अपनी गुरुपरम्परामें बताया है कि भट्टारक पद्मनन्दिकी आम्नायमें होने वाले भट्टारक विशालकीर्त्तिके वे शिष्य थे। मूलसंघ नन्द्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगणके विद्वान थे। कविने भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्रदेव, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, रत्नकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति, लक्ष्मीचन्द्र, सहस्र-कीर्त्ति, नेमिचन्द्र, आर्यिका अनन्तश्री और दाभाडालीबाईका नामोल्लेख किया है। कविने यहाँ दो परम्पराके भट्टारकोंका उल्लेख किया है—अजमेर-पट्ट और आमेरपट्ट। भट्टारक विशालकीर्त्ति अजमेर-शाखाके विद्वान थे और वे भट्टारक चन्द्रकीर्त्तिके पट्टधर थे। विशालकीर्त्ति नामके अनेक विद्वान् हुए हैं।

"सिरि पद्मनन्दि भट्टारकेण पढहु सुतासु सुभचन्ददेव।
जिणचंद भट्टारक सुभगसेव।
सिरि पहाचंद पापाटि सुमत्ति। परिभणहु भट्टारक चंदकित्ति।
तहु वारइ किय सुकहा-पबंधु। सुसहावकरण जणि जेम बंधु।
आचारिय धुरि हुउ रयणकित्ति। तहु सीसु भलो जग भुवणकित्ति।
× × × ×
दिक्खा-सिक्खा-गुण-गहणसार। सिरिविशालकित्ति विद्या-अपार।
तहु सिखि हुवउ लक्ष्मी सुचंद। भवि-बोहण-सोहण भुवणमिंदु।

ता सिक्खु सुभग जगि सहसकित्ति । नेमिचंद हुवो सासनि सुयत्ति ।
अज्जिका अन्नतिसिरि ले पदेसि । दाभाडालीवाई विसेसि ।"

कविके पितामहका नाम साहू सील्हा और पिताका नाम खेत्ता था। जाति खंडेलवाल और गोत्र लोहडिया था। यह लोवाइणिपुरके निवासी थे। इस नगरमें चन्द्रप्रभ नामका विशाल जिनालय था। इनके दो पुत्र थे—धर्मदास और गोविन्ददास। इनमें धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृहभार वहन करने वाला था। उसकी बुद्धि जैनधर्ममें विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरुका भक्त और विद्या-विनोदी था। विद्वानोंके प्रति उसका विशेष प्रेम था। कविने लिखा है—

"खंडेलवाल साल्हा पसंसि। लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुसंसि।
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह, पंडितजन प्रीति वहइ उछाह।
तहु पुत्त पयड जगि जसु मईय, मानिसालोय महि मंडलीय।
गुरुयण सुभट गोविंददास, जिणधम्मबुद्धि जगि धम्मदास।
णंदहु लुवायणिपुर लोणविंद, णंदहु जिण सासण जगि जिणिंदु।
चंदप्पहु जिनमंदिर विशाल, णंदहु पाति मंडल सामिसाल।"

प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविका वंश राजमान्य रहा है। कविने विशालकीर्त्तिको अपना गुरु बताया है। पर विशालकीर्त्ति नामके कई भट्टारक हुए हैं। अतः यह निश्चय कर सकना कठिन है कि कौन विशालकीर्त्ति इनके गुरु थे। एक विशालकीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख भट्टारक शुभचन्द्रकी गुर्वावलीमें ८०वें नम्बरपर आया है और जो वसन्तकीर्त्तिके शिष्य और शुभकीर्त्तिके गुरु थे। दूसरे विशालकीर्त्ति वे हैं, जो भट्टारक पद्मनन्दिके पट्टधर थे, जिनके द्वारा वि० सं० १४७०में मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। तीसरे विशालकीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख नागौरके भट्टारकोंकी नामावलीमें आया है, जो धर्मकीर्त्तिके पट्टधर थे, जिनका पट्टाभिषेक वि० सं० १६०१में हुआ था।

'महापुराणकलिका'में भी कविने अपनेको विशालकीर्त्तिका शिष्य कहा है और नेमिचन्द्रका भी आदरपूर्वक स्मरण किया है। अतएव उपलब्ध सामग्रीके आधारपर इतना हो कहा जा सकता है कि कवि शाह ठाकुर खंडेलवाल वंशमें उत्पन्न हुए थे और इनके दादाका नाम सीहा और पिताका नाम खेत्ता था। इनके गुरुका नाम विशालकीर्त्ति था।

स्थितिकाल

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. संतिणाहचरिउ और २. महापुराणकलिका। संतिणाहचरिउकी रचना वि० सं० १६५२ भाद्रपद शुक्ला पंचमीके

दिन चकत्तावंशके जलालुद्दीन अकबर बादशाहके शासनकालमें पूर्ण हुई थी। उस समय ढूंढाहाड़ देशके कच्छपवंशी राजा मानसिंहका राज्य वर्त्तमान था। मानसिंहकी राजधानी उस समय अम्बावती या आमेर थी।

कविकी दूसरी रचना वि० सं० १६५०में मानसिंहके शासनमें ही समाप्त हुई थी। अतएव कविका समय वि० सं० की १७वीं शताब्दी निर्णीत है।

रचनाएँ

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—संतिणाहचरिउ और महापुराणकलिका। संतिणाहचरिउमें ५ सन्धियाँ हैं और १६वे तीर्थंकर शान्तिनाथका जीवनवृत्त वर्णित है। शान्तिनाथ कामदेव, चक्रवर्त्ती और तीर्थंकर इन तीनों पदोंको अलंकृत करते थे। यह चरित ग्रन्थ वर्णनात्मक शैलीमें लिखा गया है। भाषा सरस और सरल है।

महापुराणकलिकामें २७ सन्धियाँ हैं, जिनमें ६३ शलाकापुरुषोंकी गौरव-गाथा गुम्फित है। इसमें तीर्थंकर ऋषभदेवका चरित तो विस्तारके साथ अंकित किया गया है। भरत, बाहुबली, जयकुमार आदिके इतिवृत्त भी विस्तार-पूर्वक दिये गये हैं। शेष महापुरुषोंके जीवनवृत्त संक्षेपमें ही आये हैं। २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र और ९ प्रतिनारायणोंके नाम, जन्म-ग्राम, माता-पिता, राज्यकाल, तपश्चरण आदिका संक्षेपमें वर्णन आया है। इसप्रकार कविने अपने इस पुराणमें शलाकापुरुषोंका जीवनवृत्त निरूपित किया है।

माणिक्यराज

१६ वीं शताब्दीके अपभ्रंशकाव्य-निर्माताओंमें माणिक्यराजका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। ये बुहसूरा—(बुधसूरा) के पुत्र थे। जायस अथवा जयसवाल-कुलरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्य थे। इनकी माताका नाम दीवा-देवी था। 'णायकुमारचरिउ'की प्रशस्तिमें कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

तहिं णिवसइ पंडिउ सत्थखणि, सिरिजयसवालकुलकमलतरणि।
इक्खाकुवंस-महियवलि-वरिट्ठ, बुहसुरा-णंदणु सुयगरिट्ठु।
उप्पण्णउ दीवा-उयरिखाणु, बुह माणिकुराये बुहहिमाणु।

कवि माणिक्यराजने अमरसेन-चरितमें अपनी गुरुपरम्पराका निर्देश करते हुए लिखा है—

ता सिक्खु सुभग जगि सहसकित्ति । नेमिचंद हुवो सासनि सुयत्ति ।
अज्जिका अन्नत्तिसिरि ले पदेसि । दाभाडालीवाई विसेसि ।"

कविके पितामहका नाम साहू सील्हा और पिताका नाम खेत्ता था। जाति खंडेलवाल और गोत्र लोहडिया था। यह लोवाइणिपुरके निवासी थे। इस नगरमें चन्द्रप्रभ नामका विशाल जिनालय था। इनके दो पुत्र थे—धर्मदास और गोविन्ददास। इनमें धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृहभार वहन करने वाला था। उसकी बुद्धि जैनधर्ममें विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरुका भक्त और विद्या-विनोदी था। विद्वानोंके प्रति उसका विशेष प्रेम था। कविने लिखा है—

"खंडेलवाल साल्हा पसंसि। लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुसंसि।
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह, पंडितजन प्रीति वहइ उछाह।
तहु पुत्त पयड जगि जसु मईय, मानिसालोय महि मंडलोय।
गुरुयण सुभट गोविंददास, जिणधम्मबुद्धि जगि धम्मदास।
णंदहु लुवायणिपुर लोणविंद, णंदहु जिण सासण जगि जिणिंदु।
चंदप्पहु जिनमंदिर विशाल, णंदहु पाति मंडल सामिसाल।"

प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविका वंश राजमान्य रहा है। कविने विशालकीर्त्तिको अपना गुरु बताया है। पर विशालकीर्त्ति नामके कई भट्टारक हुए हैं। अतः यह निश्चय कर सकना कठिन है कि कौन विशालकीर्त्ति इनके गुरु थे। एक विशालकीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख भट्टारक शुभचन्द्रकी गुर्वावलीमें ८०वें नम्बरपर आया है और जो वसन्तकीर्त्तिके शिष्य और शुभकीर्त्तिके गुरु थे। दूसरे विशालकीर्त्ति वे हैं, जो भट्टारक पद्मनन्दिके पट्टधर थे, जिनके द्वारा वि० सं० १४७०में मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। तीसरे विशालकीर्त्ति वे हैं, जिनका उल्लेख नागौरके भट्टारकोंकी नामावलीमें आया है, जो धर्मकीर्त्तिके पट्टधर थे, जिनका पट्टाभिषेक वि० सं० १६०१में हुआ था।

'महापुराणकलिका'में भी कविने अपनेको विशालकीर्त्तिका शिष्य कहा है और नेमिचन्द्रका भी आदरपूर्वक स्मरण किया है। अतएव उपलब्ध सामग्रीके आधारपर इतना ही कहा जा सकता है कि कवि शाह ठाकुर खंडेलवाल वंशमें उत्पन्न हुए थे और इनके दादाका नाम सीहा और पिताका नाम खेत्ता था। इनके गुरुका नाम विशालकीर्त्ति था।

स्थितिकाल

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. संतिणाहचरिउ और २. महापुराणकलिका। संतिणाहचरिउकी रचना वि० सं० १६५२ भाद्रपद शुक्ला पंचमीके

दिन चकत्तावंशके जलालुद्दीन अकबर बादशाहके शासनकालमें पूर्ण हुई थी। उस समय ढूंढाहाड़ देशके कच्छपवंशी राजा मानसिंहका राज्य वर्त्तमान था। मानसिंहकी राजधानी उस समय अम्बावती या आमेर थी।

कविकी दूसरी रचना वि० सं० १६५०में मानसिंहके शासनमें ही समाप्त हुई थी। अतएव कविका समय वि० सं० को १७वीं शताब्दी निर्णीत है।

रचनाएँ

कविकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—संतिणाहचरिउ और महापुराणकलिका। संतिणाहचरिउमें ५ सन्धियाँ हैं और १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथका जीवनवृत्त वर्णित है। शान्तिनाथ कामदेव, चक्रवर्त्ती और तीर्थंकर इन तीनों पदोंको अलंकृत करते थे। यह चरित ग्रन्थ वर्णनात्मक शैलीमें लिखा गया है। भाषा सरस और सरल है।

महापुराणकलिकामें २७ सन्धियाँ हैं, जिनमें ६३ शलाकापुरुषोंकी गौरव-गाथा गुम्फित है। इसमें तीर्थंकर ऋषभदेवका चरित तो विस्तारके साथ अंकित किया गया है। भरत, बाहुबली, जयकुमार आदिके इतिवृत्त भी विस्तार-पूर्वक दिये गये हैं। शेष महापुरुषोंके जीवनवृत्त संक्षेपमें ही आये हैं। २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र और ९ प्रतिनारायणोंके नाम, जन्म-ग्राम, माता-पिता, राज्यकाल, तपश्चरण आदिका संक्षेपमें वर्णन आया है। इसप्रकार कविने अपने इस पुराणमें शलाकापुरुषोंका जीवनवृत्त निरूपित किया है।

माणिक्यराज

१६ वीं शताब्दीके अपभ्रंशकाव्य-निर्माताओंमें माणिक्यराजका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। ये बुहसूरा—(बुधसूरा) के पुत्र थे। जायस अथवा जयसवाल-कुलरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्य थे। इनकी माताका नाम दीवा-देवी था। 'णायकुमारचरिउ'की प्रशस्तिमें कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

> तहिं णिवसइ पंडिउ सत्थखणि, सिरिजयसवालकुलकमलतरणि।
> इक्खाकुवंस-महियवलि-वरिट्ठ, बुहसुरा-णंदणु सुयगरिट्ठु।
> उप्पण्णउ दीवा-उयरिखाणु, बुह माणिकुराये बुहृहिमाणु।

कवि माणिक्यराजने अमरसेन-चरितमें अपनी गुरुपरम्पराका निर्देश करते हुए लिखा है—

"तव-तेय-णियत्तणु कियउ खीणु, सिरिखेमकित्ति पट्टहि पवीणु ।
सिरिहेमकित्ति जि हयउ वामु, तहुं पट्टवि कुमर वि सेण णामु ।
णिग्गथु दयालउ जइ वरिट्ठु, जिं कहिउ जिणागमभेउ सुट्ठु ।
तहु पट्टि णिविट्ठिउ बुहपहाणु, सिरिहेमचंदु मय-तिमिर-भाणु ।
तं पट्टि धुरंधरु वयपवीणु, वर पोमणंदि जो तवहं खीणु ।
तं पणविवि णियगुरुसीलखाणि, णिग्गंथु दयालउ अमियवाणि ।"

अर्थात् क्षेमकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दि आचार्य हुए। प्रस्तुत पद्मनन्दि तपस्वी, शीलकी खान, निर्ग्रंथ, दयालु और अमृतवाणी थे। ये पद्मनन्दि ही माणिक्यराजके गुरु थे।

अमरसेनग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें पद्मनन्दिके एक और शिष्यका उल्लेख आया है, जिसका नाम देवनन्दि है। ये देवनन्दि श्रावककी एकादश प्रतिमाओंके पालन करनेवाले राग-द्वेष-मद-मोहके विनाशक, शुभध्यानमें अनुरक्त और उपशमभावी थे। इस ग्रन्थका प्रणयन रोहतकके पार्श्वनाथ मन्दिरमें हुआ है।

कवि माणिक्यराज अपभ्रंशके लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं और इनका व्यक्तित्व सभी दृष्टियोंसे महनीय है।

स्थितिकाल

कविने अमरसेनचरितकी रचना वि० सं० १५७६ चैत्र शुक्ला पंचमी शनिवार और कृत्तिका नक्षत्रमें पूर्ण की है। ग्रन्थकी प्रशस्तिमें उक्त रचना-कालका विवरण अंकित मिलता है—

"विक्कमरायहु ववगइ कालइं, लेसु मुणीस विसर अंकालइं ।
धरणि अंक सहु चइत विमाणें, सणिवारें सुय पंचमि-दिवसें ।
कित्तिय णक्खत्तें सुहजोएं, हुउ उप्पण्णउ सुत्तु सुहजोएं ।"

अमरसेनचरितके लिखनेके एक वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० सं० १५७७ की लिखी हुई प्रति उपलब्ध है। यह प्रति कार्त्तिक कृष्णा चतुर्थी रविवारके दिन कुरुजांगल देशके सुवर्णपथ (सुनपत) नगरमें काष्ठासंघ माथुरान्वय पुष्करगणके भट्टारक गुणभद्रकी आम्नायमें उक्त नगरके निवासी अग्रवालवंशीय गोयल गोत्री साहू छल्हूके पुत्र साहू बाटूके द्वारा लिखी गई।

दूसरी रचना नागकुमारचरितका प्रणयन विक्रम संवत् १५७९ में फाल्गुण शुक्ला नवमीके दिन हुआ है। इस ग्रन्थमें साहू जगसीके पुत्र साहू-टोडरमलकी बहुत प्रशंसा की गई है। उसे कर्णके समान दानी, विद्वज्जनोंका

सम्पोषक, रूप-लावण्यसे युक्त और विवेकी बताया है। नागकुमारचरितको रचनेकी प्रेरणा कविको इन्हीं टोडरमलसे प्राप्त हुई थी। अतः इस रचनाको पूर्णकर जब साहू टोडरमलके हाथमें इसे दिया गया, तो उसने इसे अपने सिरपर चढ़ाया और कवि माणिकराजका खूब सत्कार किया। और उसे वस्त्राभूषण भेंट किये।

उपर्युक्त ग्रन्थरचना-कालोंसे यह स्पष्ट है कि कविका समय वि० की १६ वीं शती है।

रचनाएँ

अमरसेनचरित—इस चरित-ग्रन्थमें मुनि अमरसेनका जीवनवृत्त अंकित है। कथावस्तु ७ सन्धियोंमें विभक्त है। ग्रन्थकी पाण्डुलिपि आमेर-शास्त्र-भण्डार जयपुरमें उपलब्ध है।

दूसरी कृति नागकुमारचरित है। इसमें पुण्यपुरुष नागकुमारकी कथा वर्णित है। कथावस्तु ९ सन्धियोंमें विभक्त है तथा ग्रंथप्रमाण ३३०० श्लोक है।

माणिक्यराजने अमरसेनचरिउ नामक काव्यमें ग्वालियर नगरका वर्णन किया है। इस वर्णनका अनुसरण महाकवि रइधूके ग्वालियरनगर-वर्णनसे किया गया है। यहाँ उदाहरणार्थ रइधू विरचित पासणाहचरिउ और अमर-सेनचरिउकी पंक्तियाँ तुलनाहेतु प्रस्तुत की जा रही हैं—

महिवीढि पहाणउँ णं गिरिरणउँ, सुरहँ वि मणि विंभउ जणिउँ।
कउसीसहिँ मंडिउ णं इहु पंडिउ, गोपायलु णामें भणिउँ।
—रइधूकृत पासणाहचरिउ १।२।१५-१६

महीवीढि पहाणउँ गुण-वरिट्ठु, सुरहँ वि मणि विभउ जणइ सुट्ठु।
वरतिण्णिसालमंडिउ पवित्तु, णंदइ पंडिउ सुरपारपत्तु।
—अमरसेनचरिउ १।३।१-१८

कवि माणिकराजकी भाषा-शैली पुष्ट है तथा चरित-काव्योचित सभी गुण पाये जाते हैं।

कवि माणिकचन्द

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्रीने[1] भरतपुरके जैनशास्त्र भण्डारसे कवि माणिक-चन्दकी 'सत्तवसणकहा' को प्रति प्राप्त की है। इस कथाग्रन्थके रचयिता

१. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंशकथाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ० ३२६।

जयसवालकुलोत्पन्न कवि माणिकचन्द हैं। इस कथाकी रचना टोडरसाहूके पुत्र ऋषभदासके हेतु हुई है। कवि मलयकीर्त्ति भट्टारकके वंशमें उत्पन्न हुआ था। ये मलयकीर्त्ति यशःकीर्त्तिके पट्टधर थे।

ग्रंथका रचनाकाल वि० सं० १६३४ है।[1] अतः कविका समय १७वीं शती निश्चित है।

'सत्तवसणकहा'—इसमें सप्तव्यसनोंकी सात कथाएँ निबद्ध हैं। कथाग्रंथ सात सन्धियोंमें विभक्त है। यह प्रबन्ध शैलीमें लिखा गया है। कथामें वस्तु-वर्णनोंका आधिक्य नहीं है। कथा सीधे और सरल रूपमें चलती है। संवाद-योजना बड़ी मधुर है। भाषा सरल और स्पष्ट है। युद्ध-वर्णन विस्तृत रूपमें मिलता है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

ता उहय वलहि संगामु जाउ, भड भडहि रहहु भिडिउ ताउ।
गउ गयहि पुणु हउ हयहि वग्गु, खण खण करंत करिवार अग्गु।
वरसहि समरंगण वाणपंति, णावइ धाराहर घणहु जुत्ति।
रणभूमें भउहिमि भडु णिरुद्धु, गउ गयहि तुरिउ तुरएहि कुद्धु। (७,२४)

इस कथाकाव्यमें कृष्ण और जरासंधका युद्ध, नेमीश्वरका विवाह द्यूत-क्रीड़ा आदिका वर्णन आया है। इन वर्णनोंसे यह स्पष्ट है कि यह एक कथा काव्यात्मक संग्रह है, जिसमें ७ व्यसनोंकी कथाएँ अलग-अलग काव्यात्मक रूपमें लिखी गई हैं। इसमें लोकोक्तियों और देशी शब्दोंकी भी प्रचुरता है।

भगवतीदास

भगवतीदास भट्टारक गुणचन्द्रके पट्टधर भट्टारक सकलचन्द्रके प्रशिष्य और महीन्द्रसेनके शिष्य थे। महीन्द्रसेन दिल्लीकी भट्टारकीय गद्दीके पट्टधर थे। पंडित भगवतीदासने अपने गुरु महीन्द्रसेनका बड़े आदरके साथ स्मरण किया है। यह बूढ़िया, जिला अम्बालाके निवासी थे। इनके पिताका नाम किसनदास था। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र बंसल था। कहा जाता है कि चतुर्थ वयमें इन्होंने मुनिव्रत धारण कर लिया था।

कवि भगवतीदास संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषाके अच्छे कवि और विद्वान् थे। ये बूढ़ियासे योगिनीपुर (दिल्ली) आकर बस गये थे। उस समय दिल्लीमें अकबर बादशाहके पुत्र जहाँगीरका राज्य था। दिल्लीके मोतीबाजार-

---

१. अह सोलह सइ चउतीस एण, चइतहु उज्जल-पक्खें सुहेण।
आइच्चवार तिहि पंचमीहि, इहु गंथु सऊरणु हुउ विहीहि। ७-३२।

में भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर था। इसी मंदिरमें आकर भगवतीदास निवास करते थे।

स्थितिकाल

कविने अपनी अधिकांश रचनाएं जहांगीरके राज्यकालमें लिखी हैं। जहांगीरका राज्य ई० सन् १६०५–१६२८ ई० तक रहा है। अवशिष्ट रचनाएँ शाहजहांके राज्यमें ई० सन् १६२८–१६५८में लिखी गई हैं।

कतिपय रचनाओंमें कविने उनके लेखनकालका उल्लेख किया है। 'चूनड़ी' रचना वि० सं० १६८०में समाप्त हुई है। अन्य १९ रचनाएँ भी संभवतः सं० १६८० या इसके पूर्व लिखी जा चुकी थीं। 'बृहत् सीता सतु'की रचना वि० सं० १६८४ और 'लघु सीतासतु'की रचना वि० सं० १६८७में की है। कविने अपभ्रंश भाषाका 'मृगांकलेखाचरित' वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी सोमवारके दिन पूरा किया है। लिखा है—

सगदह संवदतीह तहा, विक्कमराय महप्पए।
अगहण-सिय पंचमि सोम-दिणे, पुण्ण ठियउ अवियप्पए।

अतएव कवि भगवतीदासका समय १७वीं शतीका उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शतीका पूर्वार्ध सुनिश्चित है। कविकी सभी रचनाएं १७वीं शतीमें सम्पन्न हुई हैं।

रचनाएँ

कवि पं० भगवतीदासने अपभ्रंश और हिंदीमें प्रचुर परिमाणमें रचनाएं लिखी हैं। उनकी उपलब्ध रचनाओंका उल्लेख निम्न प्रकार है—

१. ढंडाणारास—यह रूपक काव्य है। इसमें बताया गया है कि एक चतुर प्राणी अपने-अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि गुणोंको छोड़कर अज्ञानी बन गया और मोह-मिथ्यात्वमें पड़कर निरन्तर परवश हुआ चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करता है। अतः कवि सम्बोधन करता हुआ कहता है—

धर्म-सुकल धरि ध्यानु अनूपम, लहि निजु केवलनाणा वे।
जंम्पति दासभगवती पावहु, सासउ-सुहु निव्वाणा वे॥

२. आदित्यरास—इसमें बीस पद्य हैं।

३. पखवाडारास—२२ पद्य हैं। पन्द्रह तिथियोंमें विधेय कर्त्तव्यपर प्रकाश डाला गया है।

४. दशलक्षणरास—३४ पद्य हैं और उत्तमक्षमादि दश धर्मोंका स्वरूप बतलाया गया है। दश धर्मोंको अवगत करनेके लिए यह रचना उपादेय है।

५. खिचडीरास—४० पद्य हैं। इसमें भावनाओंको उदात्त बनानेपर जोर दिया है।

६. समाधिरास—इसमें साधु-समाधिका चित्रण आया है।

७. जोगीरास—३८ पद्य हैं। भ्रमवश संसारमें भ्रमण करनेवाले जीवको भ्रम त्याग अतीन्द्रिय सुख-प्राप्तिके हेतु प्रयत्नशील रहनेके लिए संकेत किया है।

पेरवहु हो तुम पेरवहु भाई, जोगी जगमहि सोई।
घट-घट-अन्तरि वसइ चिदानंदु, अलखु न लखिए कोई।।
भववन भूल रह्यो भ्रमिरावलु, सिवपुर-सुध विसराई।
परम अतीन्द्रिय शिव-सुख तजिकर, विषयनि रहिउ भुलाई।।

८. मनकरहारास—२५ पद्य हैं। इस रूपक काव्यमें मनकरहाके चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करने और जन्म-मरणके असह्य दुःख उठानेका वर्णन किया है और बताया है कि रत्नत्रय द्वारा ही जीव जन्म-मरणके दुःखोंसे मुक्त हो शिवपुरी प्राप्त करता है। रूपकको पूर्णतया स्पष्ट किया गया है।

९. रोहिणीव्रतरास—४२ पद्य हैं।

१०. चतुर बनजारा—३५ पद्य हैं। यह भी रूपक काव्य है।

११. द्वादशानुप्रेक्षा—१२ पद्योंमें द्वादश भावनाओंका निरूपण किया है।

१२. सुगन्धदशमीकथा—५१ पद्योंमें सुगन्धदशमीव्रतके पालन करनेका फल निरूपित किया गया है।

१३. आदित्यवारकथा—रविवारके व्रतानुष्ठानकी रचना की गयी है।

१४. अनथमीकथा—२६ पद्योंमें रात्रिभोजनके दोषोंपर प्रकाश डाला गया है और उसके त्यागकी महत्ता बतलाई है।

१५. 'चूनड़ी' अथवा 'मुक्तिरमणीकी चूनड़ी'—यह रूपक काव्य है।

१६. वीरजिनिन्दगीत—तीर्थंकर महावीरकी स्तुति वर्णित है।

१७. राजमती-नेमिसुर-ढमाल—इसमें राजमति और नेमकुमारके जीवनको अंकित किया गया है।

१८. लघुसीतासतु—इसमें सीताके सतीत्वका चित्रण किया गया है। बारह महीनोंके मन्दोदरी-सीताके प्रश्नोत्तरके रूपमें भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है। आषाढ़ मासके प्रश्नोत्तरको उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

मंदोदरी

तब बोलइ मंदोदरी रानी, सखि अषाढ़ घनघट घहरानी।
पीय गए ते फिर घर आवा, पामर नर नित मन्दिर छावा।
लवहिं पपीहे दादुर मोरा, हियरा उमग धरत नहिं धीरा।
बादर उमहि रहे चौपासा, तिय पिय विनु लिहि उसन उसासा।।

सीता

करत कुशील बढ़त बहु पापू, नरकि जाइ तिउं हुइ संतापू।
जिउ मधुबिंदु तनूसुख लहिये, शील विना दुरगति दुख सहिये।

१९. **अनेकार्थ नाममाला**—यह कोषग्रन्थ है। इसमें एक शब्दके अनेकानेक अर्थोंका दोहोंमें संग्रह किया है। इसमें तीन अध्याय हैं और प्रथम अध्यायमें ६३, द्वितीयमें १२२ और तृतीयमें ७१ दोहे लिखित हैं। यह बनारसीदासकी नाममालासे १७ वर्ष बादकी रचना है।

२०. **मृगांकलेखाचरित**—इस ग्रन्थमें चन्द्रलेखा और सागरचन्द्रके चरितका वर्णन करते हुए चन्द्रलेखाके शीलव्रतका महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। चन्द्र-लेखा नाना प्रकारकी विपत्तियोंको सहन करते हुए भी अपने शीलव्रतसे च्युत नहीं होती।

इस ग्रन्थकी कथावस्तु चार सन्धियोंमें विभक्त है। इस अपभ्रंश-काव्यमें काव्यतत्त्वोंका पूर्णतया समावेश हुआ है। कवि चन्द्रलेखाका वर्णन करता हुआ कहता है—

सुहलग्ग जोइ वर सुह णरवत्ति, सुउवण्ण कण्ण णं काम थत्ति।
कम पांणि कवल सुसुवण्ण देह, तिहं णांउ धरिउ सुमइंक लेह।
कमि कमि सुपवड्ढइ सांगुणाल, दिग मिग ससिवत्तु मराल वाल।
रूव रइ दासि व णियडि तासु, किं वण्णमि अमरी खयरि जासु।
लछो सुविलछो सोह दिंत्ति, तिहं तुल्लि ण छज्जइ बुद्धि कित्ति।

—मृगांक १।३

चन्द्रलेखाकी आँखें मृगकी आँखोंके समान, वक्त्र चंद्रके समान और चाल हंसके समान थी। उसके निकट रति दासीके समान प्रतीत होती थी, अतः इस स्थितिमें अमरांगना या विद्याधारी उसकी समता कैसे कर सकती थी?

ग्रन्थकी भाषा खिचड़ी है। पद्धड़ीबन्धमें अपभ्रंश, दोहा-सोरठा आदिमें हिन्दी और गाथाओंमें प्राकृतभाषाका प्रयोग किया है।

इस प्रकार भगवतीदासने अपभ्रंश और हिन्दीमें काव्य-रचनाएं लिखकर जिनवाणीकी समृद्धि की है।

अपभ्रंशके अन्य चर्चित कवि

अपभ्रंश-साहित्यकी समृद्धिमें अनेक कवि और लेखकोंने योगदान दिया है। *इन कवियों द्वारा विरचित अधिकांश रचनाएं अप्रकाशित हैं। अतः* उनका यथार्थ मूल्यांकन तब तक संभव नहीं है, जबतक रचनाएं मुद्रित होकर सामने न आ जायें। अपभ्रंशमें ऐसे और कई कवि और लेखक हैं जिन्होंने

एकाधिक रचनाएँ लिखी हैं। हम यहाँ कतिपय ऐसे कवियोंका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने कई दृष्टियोंसे अपभ्रंश-साहित्यके विकासमें अपनी शक्ति और समयका व्यय किया है।

कवि ब्रह्मसाधारण

इन्होंने कई कथाग्रन्थोंकी रचना की है। इनने अपनी रचनाओंमें न तो अपना परिचय ही अंकित किया है और न रचनाकाल ही। कुन्द-कुन्द-आम्नायमें रत्नकीर्त्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्दि और ब्रह्मसाधारणके नाम प्राप्त होते हैं। ब्रह्मसाधारण भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे। ब्रह्मसाधारणने प्रत्येक ग्रंथके पुष्पिकावाक्यमें अपने-को नरेन्द्रकीर्तिका शिष्य कहा है। इनके कथाग्रंथोंकी प्रतिलिपि वि० सं० १५०८ की लिखी हुई प्राप्त है। अतएव इनका समय वि० सं० १५०८के पूर्व निश्चित है। गुरुपरम्परासे भी इनका समय वि० की १५वीं शती सिद्ध होता है। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

१. कोइलपंचमीकहा, २. मउडसत्तमीकहा, ३. रविवयकहा, ४. तियाल-चउवीसीकहा, ५. कुसुमंजलिकहा, ६. निद्दुसिसत्तमीनयकहा, ७. णिज्झर-पंचमीकहा और ८. अणुपेहा।

कवि देवनन्दि

इनने भी कथा-ग्रन्थोंकी रचना कर अपभ्रंश-साहित्यकी श्रीवृद्धिमें योगदान दिया है। ये देवनन्दि पूज्यपाद-देवनन्दिसे भिन्न हैं और उनके पश्चात्वर्त्ती हैं। इनका 'रोहिणीविहाणकहा' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। रचनाकी शैलीके आधारपर कविका समय १५वीं शती माना जा सकता है।

कवि अल्हू

इन्होंने 'अणुवेक्खा' नामक ग्रंथ की रचना कर संसारकी असारता, अशुचिता, अनित्यता आदिका स्वरूप प्रस्तुत किया है। आत्मोत्थानके लिए अणुवेक्खाका अध्ययन उपयोगी है। रचनाकी भाषा और शैलीसे कविका समय १६वीं शती प्रतीत होता है।

जल्हिगले

इन्होंने 'अनुपेहारास' नामक उपदेशप्रद ग्रन्थ लिखा है। इसमें अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अनेकत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधदुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओंका स्वरूपाङ्कन किया है। कविके सम्बन्धमें कुछ

भी जानकारी प्राप्त नहीं होती। अनुमानतः कविका समय वि० की १५वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

पं० योगदेव

पं० योगदेवने कुम्भनगरके मुनिसुव्रतनाथचैत्यालयमें बैठकर 'बारस अणुवेक्खारास' नामक ग्रंथकी रचना की है। यह ग्रंथ भी १५वीं-१६वीं शताब्दी-का प्रतीत होता है।

कवि लक्ष्मीचन्द

लक्ष्मीचन्दने 'अणुवेक्खा-दोहा'की रचना की है। इसमें ४७ दोहे हैं। सभी दोहे शिक्षाप्रद और आत्मोद्बोधक हैं।

कवि नेमिचन्द

नेमिचन्द भी १५वीं शतीके प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने 'रविव्रतकथा', 'अनन्तव्रत कथा' आदि ग्रंथोंकी रचना की है।

कवि देवदत्त

वि० सं० १०५०के लगभग हुए कवि देवदत्तका नाम भी अपभ्रंशके रचयि-ताओंमें मिलता है। देवदत्तने वरांगचरिउ, शान्तिनाथपुराण और अम्बादेवी रासकी रचना की है।

तारणस्वामी

तारणस्वामी बालब्रह्मचारी थे। आरम्भसे ही उन्हें घरसे उदासीनता और आत्मकल्याणकी रुचि रही। कुन्दकुन्दके समयसार, पूज्यपादके इष्टोपदेश और समाधिशतक तथा योगीन्दुके परमात्मप्रकाश और योगसारका उनपर प्रभाव लक्षित होता है। संवेगी-श्रावक रहते हुए भी अध्यात्म-ज्ञानकी भूख और उसके प्रसारकी लगन उनमें दृष्टिगोचर होती है।

तारणस्वामीका जन्म अगहन सुदी ७, विक्रम संवत् १५०५ में पुष्पावती (कटनी, मध्यप्रदेश) में हुआ था। पिताका नाम गढ़ासाहू और माताका नाम वीरश्री था। ज्येष्ठ वदी ६, विक्रम संवत् १५७२ में शरीरत्याग हुआ था। ६७ वर्षके यशस्वी दीर्घ जीवनमें इन्होंने ज्ञान-प्रचारके साथ १४ ग्रन्थोंकी रचना भी की है। ये सभी ग्रन्थ आध्यात्मिक हैं, जिन्हें तारण-अध्यात्मवाणीके नामसे जाना जाता है। वे १४ ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

१. मालारोहण—इसमें 'ओम्' के स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि जो इस 'ओम्' का ध्यान करते हैं उन्हें परमात्मपदकी प्राप्ति तथा अक्षयानन्दकी प्राप्ति होती है।

२. पण्डितपूजा—आत्माके अस्तित्व आदिका कथन करते हुए इसमें आत्म-देवदर्शन, निग्रंथ-गुरु-सेवा, जिनवाणीका स्वाध्याय, इन्द्रिय-दमन आदि क्रियाओं-को आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका साधन बताया है। सम्यग्दृष्टि ही आस्तिक होता है और आस्तिक ही पूर्ण ज्ञानी एवं परमपदका स्वामी होता है। नास्तिकको संसारमें ही भ्रमण करना पड़ता है, इत्यादिका सुन्दर विवेचन इसमें है।

३. कमलबत्तीसी—इसमें जीवनको ऊँचा उठानेके लिए आठ बातोंका निर्देश है—१. चिन्तारहित जीवन-यापन, २. सुखी और प्रसन्न रहना, ३. संसारको रंगमंच समझना, ४. मनको स्वच्छ रखना, ५. अच्छे कार्योंमें प्रमाद न करना, सहनशील बनना और परोपकारमें निरत रहना, ६. आडम्बर और विलासतासे दूर रहना, ७. कर्त्तव्यका पालन तथा ८. निर्भय रहना।

४. श्रावकाचार—इसमें श्रावकके पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंके पालनपर बल देते हुए बारह अव्रत (५. मिथ्याभाव, ३. मूढ़ता और ४. कषायभाव)के त्यागका उपदेश दिया गया है।

५. ज्ञानसमुच्चयसार—इसमें ज्ञानके महत्त्वका कथन किया है।

६. उपदेशशुद्धसार—आत्माको परमात्मा स्वरूप समझकर उसे शुद्ध-बुद्ध बनानेके लिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको अपनानेका उपदेश है।

७. त्रिभंगीसार—इसमें कर्मास्रवके कारण तीन मिथ्याभावों और उनके निरोधक कारणोंको बताते हुए आयुबन्धकी त्रिभागीका कथन किया है।

८. चौबीसठाना—इसमें गति, इन्द्रिय, काय आदि १८ विधियोंसे जीवोंके भावों द्वारा उनकी उन्नति-अवनतिको दिखाया गया है।

९. ममलपाहुड—इसमें १६४ भजनोंके माध्यमसे ३२०० गाथाओंमें निश्चयनयकी अपेक्षासे प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदिका विवेचन है।

१०. खातिकाविशेष—किन-किन अशुभ भावनाओंसे जीव निम्न गतियोंको प्राप्त होता है, इसका इसमें कथन है।

११. सिद्धिस्वभाव—इसमें किन शुभ भावोंसे आत्मा उन्नति करता और सम्यक्त्वके उन्मुख होता है, इसका निरूपण है।

१२. सुन्नस्वभाव—ध्यानयोगके द्वारा राग-द्वेषके विकल्पोंकी शून्यता ही आत्मस्वरूपकी उपलब्धिका परम साधन है, इसका प्रतिपादन है।

१३. छद्मस्थवाणी—इसमें अनन्तचतुष्टय और रत्नत्रययुक्त आत्मा ही उपादेय और गेय है तथा मिथ्याभावादिसे युक्त आत्मा हेय है। उपादेय

आत्मा महावीरके समान वीतराग-सर्वज्ञ है और हेय आत्मा छद्मस्थके समान रागी-अज्ञानी है, इसका विशद वर्णन है।

१४. नाममाला—तारणस्वामीका यह अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें उनके उपदेशके पात्र सभी भव्यात्माओंको नामावली है और बताया गया है कि उनके उपदेशके लिए जाति, पद, भाषा, देश या धर्म की रेखाएँ बाधक नहीं थीं—सब उनके उपदेशसे लाभ उठाते थे।

स्वामीजीके मुख्य तीन केन्द्र हैं—१. ज्ञान-साधना, २. ज्ञान-प्रचार और समाधिस्थल। श्री सेमरखेड़ी (सिरोंज से ६ मील दूर) जिला विदिशामें आपने ज्ञानर्जन किया था। वहाँ एक चैत्यालय, धर्मशाला और शास्त्रभण्डार है। बसन्त पंचमीपर वार्षिक मेला भरता है। श्रीनिसईजी (रेलवे स्टेशन पथरिया, जिला दमोहसे ११ मीलपर स्थित)में अपने प्राप्त ज्ञानका प्रचार-प्रसार किया था। यहाँ भी विशाल चैत्यालय, धर्मशाला और शास्त्रभण्डार है। अगहन सुदी ७ को प्रतिवर्ष सामाजिक मेला लगता है। श्री मल्हारगढ़ (रेलवे स्टेशन मुंगवली, जिला गुनासे ९ मीलकी दूरीपर स्थित)में वेतवा नदीके तटपर स्वामीजीने उक्त ग्रन्थोंका प्रणयन किया और यहीं समाधिपूर्वक देहत्याग किया। इसमें सन्देह नहीं कि तारणस्वामी १६वीं शतीके लोकोपकारी और अध्यात्म-प्रचारक सन्त हैं। इनके ग्रन्थोंको भाषा उस समयकी बोलचालको भाषा जान पड़ती है, जो अपभ्रंशकी कोटिमें रखी जा सकती है। हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत और तत्कालीन बोलीके शब्दोंसे ही उनके ये ग्रन्थ सृजित हैं।

इसप्रकार अपभ्रंश-साहित्यकी विकासोन्मुख साहित्य-धारा ६ठीं शतीके आरंभ होकर १७वीं शती तक अनवरत रूपसे चलती रही। इन कवियोंने मध्यकालीन लोक-संस्कृति, साहित्य, उपासनापद्धति एवं उस समयमें प्रचलित आचार-शास्त्रपर प्रकाश डाला है। अपभ्रंश-कवियोंने तीर्थंकर महावीरकी उत्तरकालीन परम्पराका सम्यक् निर्वाह किया है। पुराण, आचार-शास्त्र, व्रतविधान आदिपर सैकड़ों ग्रन्थोंकी उन्होंने रचना की है।

●

तृतीय परिच्छेद

हिन्दी कवि और लेखक

संस्कृत, प्राकृत और और अपभ्रंशके समान ही जैन कवि और लेखकोंने हिन्दी भाषामें भी अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीके जैन कवियोंने लोकप्रचलित कथाओंको लेकर उनमें स्वेच्छानुसार परिवर्त्तन कर सुन्दर काव्य लिखे। मध्यकालके प्रारम्भमें समाज और धर्म संकीर्ण हो रहे थे। अतः जैन लेखकोंने अपने पुरातन कथानकों और लोकप्रिय परिचित कथानकोंमें जैन धर्मका पुट देकर अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल हिन्दी भाषामें काव्य लिखे।

बाह्री वेशभूषा, पाखण्ड आदिका, जिनसे समाज विकृत होता जा रहा था, बड़ी ही ओजस्वी वाणीमें हिन्दीके जैन कवियोंने निराकरण किया। अपभ्रंश-साहित्यकी विभिन्न विधाओंने सामान्यतः हिन्दी साहित्यको प्रभावित किया था। अतः जैन कवि व्रज और राजस्थानीमें प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्योंकी रचना करनेमें संलग्न रहे। इतना ही नहीं, जैन कवि मानव-जीवनकी विभिन्न समस्याओं-

का समाधान करते हुए काव्य-रचनामें प्रवृत्त रहे। धर्मविशेषके कवियों द्वारा लिखा जानेपर भी जनसामान्यके लिए भी यह साहित्य पूर्णतया उपयोगी है। इसमें सुन्दर आत्म-पीयूषरस छलछलाता है और मानवकी उन भावना और अनुभूतियोंको अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, जो समाजके लिए संबल हैं और जिनके आधारपर ही समाजका संगठन, संशोधन और संस्करण होता है।

स्वातन्त्र्य या स्वावलम्बनका पाठ पढ़ानेके लिए आत्माकी उन शक्तियोंका विवेचन किया गया है, जिनके आधारपर समाजवादी मनोवृत्तिका विकास किया जाता है। आध्यात्मिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियोंसे समाजवादी विचारधाराको स्थान दिया गया है। स्याद्वाद-सिद्धान्त द्वारा उदारता और सहिष्णुताकी शिक्षा दी गई है।

आरंभमें जैन कलाकारोंने लोकभाषा हिन्दीको ग्रहणकर जीवनका चिरन्तन सत्य, मानव-कल्याणकी प्रेरणा एवं सौन्दर्यकी अनुभूतिको अनुपम रूपमें अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आत्मशुद्धिके लिए पुरुषार्थ अत्यावश्यक है। इसीके द्वारा राग-द्वेषको हटाया जा सकता है। यह पुरुषार्थ प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्गों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रवृत्तिमार्ग कर्मबन्धका कारण है और निवृत्तिमार्ग अबन्धका। यदि प्रवृत्तिमार्गको घूमघूमावदार गोलघर माना जाये, जिसमें कुछ समयके पश्चात् गमन स्थानपर इधर-उधर दौड़ लगानेके अनन्तर पुनः आ जाना पड़ता है, तो निवृत्तिमार्गको पक्की, सीधी, कंकड़ीली सीमेण्टकी सड़क कहा जा सकता है, जिसमें गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुनिश्चित है; पर गमन करना कष्टसाध्य है। हिन्दी के जैन कवियोंने दोनों ही मार्गोंका निरूपण अपने काव्योंमें किया, पर उपादेय निवृत्तिको ही माना है।

अहिंसा, अपरिग्रह और स्याद्वादके सिद्धान्तने आध्यात्मिक समानताके साथ आर्थिक समानताको भी प्रस्तुत किया है। १७वीं शतीसे अद्यावधि जैन कवि और लेखक हिन्दी-भाषामें विभिन्न प्रकारके काव्य-ग्रन्थोंका निर्माण करते चले आ रहे हैं। इन लेखकोंकी रचनाएँ मानवको जड़तासे चैतन्यकी ओर, शरीरसे आत्माकी ओर, रूपसे भावकी ओर, संग्रहसे त्यागकी ओर एवं स्वार्थसे सेवाकी ओर ले जानेमें समर्थ हैं। जब तक जीवनमें राग-द्वेषकी स्थिति बनी रहती है, तब तक त्याग और संयमकी प्रवृत्ति आ नहीं सकती। राग और द्वेष ही विभिन्न आश्रय और अवलम्बन पाकर अगणित भावनाओंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहारक्षेत्रमें व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एवं हीनताके

अनुसार उक्त दोनों भावोंमें मौलिक परिवर्त्तन होता है। साधु और गुणवानके प्रति राग सम्मान हो जाता है। यही सम्मानके प्रति प्रेम एवं हीनके प्रति करुणा बन जाता है। मानव रागभावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्त्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बड़ा समझ कर दूसरोंका तिरस्कार करता है। दूसरोंकी धन-सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य देखकर हृदयमें ईर्ष्या-भाव उत्पन्न करता है तथा सुन्दर रमणियोंके अवलोकनसे काम-तृष्णा उसके हृदयमें जागृत हो जाती है। अतएव यह स्पष्ट है कि संसारके दुःखोंका मूल कारण राग-द्वेष हैं। इन्हींकी अधीनताके कारण सभी प्रकारकी विषमताएँ समाजमें उत्पन्न होती हैं।

अतएव हिन्दीके जैन कवियोंने मानवके अन्तर्जगतके रहस्यके साथ बाह्यरूप-में होनेवाले संघर्षों, उलट-फेरों एवं पारस्परिक-कलह या अन्य झगड़ोंका काव्यों-के द्वारा उद्घाटन किया है।

हिन्दीके शताधिक जैन-कवि हुए हैं। पर उन सबका इतिवृत्त प्रस्तुत कर सकना संभव नहीं है। अतः प्रतिनिधिकवि और लेखकोंके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। यह सत्य है कि जैन लेखकोंने जैनदर्शनके सिद्धान्तोंको अपने काव्योंमें स्थान दिया है; पर रस-परिपाक, मानवीय प्रवृत्ति, आर्थिक संघर्ष, जातिवादके अहंकार आदिकी सूक्ष्म व्यंजना की है।

महाकवि बनारसीदास

बीहोलिया वंशकी परम्परामें श्रीमाल-जातिके अन्तर्गत बनारसीदासका एक धनी-मानी सम्भ्रान्त परिवारमें जन्म हुआ। इनके प्रपितामह जिनदासका 'साका' चलता था। पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे। और ये नरवर (मालवा)में वहांके मुसलमान-नवाबके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके प्रसिद्ध जौहरी थे। पिता खड्गसेन कुछ दिनों तक बंगालके सुल्तान मोदीखांके पोतदार थे। और कुछ दिनोंके उपरान्त जौनपुरमें जवाहरातका व्यापार करने लगे थे। इस प्रकार कविका वंश सम्पन्न था तथा अन्य सम्बन्धी भी धनी थे।

खड्गसेनको बहुत दिनों तक सन्तानकी प्राप्ति नहीं हुई थी और जो सन्तान-लाभ हुआ भी, वह असमयमें ही स्वर्गस्थ हो गया। अतएव पुत्र-कामनासे प्रेरित हो खड्गसेनने रोहतकपुरकी सतीकी यात्रा की।

बनारसीदासका जन्म वि० सं० १६४३ माघ, शुक्ला एकादशी रविवारको

रोहिणी नक्षत्रमें हुआ और बालकका नाम विक्रमाजीत रखा गया। खड्गसेन बालकके जन्मके छः-सात महीनेके पश्चात् पार्श्वनाथकी यात्रा करने काशी गये। बड़े भक्तिभावसे पूजन किया और बालकको भगवत्-चरणोंमें रख दिया तथा उसके दीर्घायुष्मकी प्रार्थना की। मन्दिरके पुजारीने मायाचार कर खड्गसेनसे कहा कि तुम्हारी प्रार्थना पार्श्वनाथके यक्षने स्वीकार कर ली है। तुम्हारा पुत्र दीर्घायुष्क होगा। अब तुम उसका नाम बनारसीदास रख दो। उसी दिनसे विक्रमाजीतनाम परिवर्त्तित हो बनारसीदास हो गया। पाँच वर्षकी अवस्थामें बनारसीदासको संग्रहणी रोग हो गया और यह डेढ़-दो वर्षों तक चलता रहा। बीमारीसे मुक्त होकर बनारसीदासने विद्याध्ययनके लिए गुरु-चरणोंका आश्रय ग्रहण किया।

नव वर्षकी अवस्थामें इनकी सगाई हो गई और इसके दो वर्ष पश्चात् सं० १६५४में विवाह हो गया। बनारसीदासका अध्ययनक्रम टूटने लगा। फिर भी उन्होंने विद्याप्राप्तिके योगको किसी तरह बनाये रखनेका प्रयास किया। १४ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने पं० देवीदाससे विद्याध्ययनका संयोग प्राप्त किया। पंडितजीसे अनेकार्थनाममाला, ज्योतिषशास्त्र, अलंकार तथा कोकशास्त्र आदिका अध्ययन किया। आगे चलकर इन्होंने अध्यात्मके प्रखर पंडित मुनि भानुचन्द्रसे भी विविध-शास्त्रोंका अध्ययन आरंभ किया। पंचसंधि, कोष, छन्द, स्तवन, सामायिकपाठ आदिका अच्छा अभ्यास किया। बनारसीदासकी उक्त शिक्षासे यह स्पष्ट है कि वे बहुत उच्चकोटिकी शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके थे। पर उनकी प्रतिभा इतनी प्रखर थी, जिससे वे संस्कृतके बड़े-बड़े ग्रंथोंको समझ लेते थे।

१४ वर्षकी अवस्थामें प्रवेश करते ही कविकी कामुकता जाग उठी और वह ऐयाशी करने लगा। अपने अर्द्धकथानकमें स्वयं कविने लिखा है—

तजि कुल-आन लोककी लाज, भयो बनारसि आसिखबाज ॥१७०॥
करै आसिखी धरत न धीर, दरदबंद ज्यों सेख फकीर।
इक-टक देख ध्यान सो धरै, पिता आपनेको धन हरै ॥१७१॥
चौर चूनी मानिक मनी, आने पान मिठाई घनी।
भेजै पेसकसी हितपास, आप गरीब कहावै दास ॥१७२॥

माता-पिताकी दृष्टि बचाकर मणि, रत्न तथा रुपये चुराकर स्वयं उड़ाना-खाना और अधिकांश प्रेम-पात्रोंमें वितरित करनेका एक लम्बा क्रम बँध गया। मुनि भानुचन्द्रने भी इन्हें समझानेका बहुत प्रयास किया, पर सब व्यर्थ हुआ। कविने इसी अवस्थामें एक हजार दोहा-चौपाईप्रमाण नवरसकी कविता लिखी

थी, जिसे पीछे बोध आनेपर गोमतीमें प्रवाहित कर दिया। १५ वर्ष १० महीना की अवस्थामें कवि सजधज अपनी ससुराल खैराबादसे पत्नीका द्विरागमन कराने गया। ससुरालमें एक माह रहनेके उपरान्त कविको पूर्वोपार्जित अशुभोदयके कारण कुष्ठ रोग हो गया। विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड़ दिया। वहाँके एक नाईकी चिकित्सासे कविको कुष्ठ-रोगसे मुक्ति मिली। कविके पिता खड्गसेन सं० १६६१में हीरानन्दजी द्वारा चलाये गये शिखरजी यात्रा-संघमें यात्रार्थ चले गये। बनारसीदास बनारस आदि स्थानोंमें घूमकर अपना समय-यापन करते रहे।

वि० सं० १६६६में एक दिन पिताने पुत्रसे कहा—"वत्स! अब तुम सयाने हो गये हो, अतः घरका सब कामकाज संभालो और हमें धर्मध्यान करने दो।" पिताकी इच्छानुसार कवि घरका काम-काज करने लगा। कुछ दिन उपरान्त वह दो हीरेकी अंगूठी, २४ माणिक्य, ३४ मणियाँ, ९ नीलम, २० पन्ना, ४ गाँठ फुटकर चुन्नी इस प्रकार जवाहरात, २० मन घी, २ कुप्पे तेल, २०० रुपयेका कपड़ा और कुछ नगद रुपये लेकर आगराको व्यापार करने चला। प्रतिदिन पाँच कोसके हिसाबसे चलकर गाड़ियाँ इटावाके निकट आईं। वहाँ मंजिल पूरी हो जानेसे एक बीहड़ स्थानपर डेरा डाला। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे कि मूसलाधार वारिस होने लगी। तूफान और पानी इतनी तेजीसे बह रहे थे कि खुले मैदानमें रहना अत्यन्त कठिन था। गाड़ियों जहाँ-की-तहाँ छोड़ साथी इधर-उधर भागने लगे। शहरमें भी कहीं शरण न मिली। किसी प्रकार चौकीदारोंकी झोपड़ीमें शरण मिली और कष्टपूर्वक रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल गाड़ियाँ लेकर आगरेको चला और मोतीकटरामें एक मकान लेकर सारा सामान रख दिया। व्यापारसे अनभिज्ञ होनेके कारण कविको घी, तेल और कपड़ेमें घाटा हो रहा। बिक्रीके रुपयोंको हुण्डी द्वारा जौनपुर भेज दिया। जवाहरात घाटेमें बेंचे और दुर्भाग्यसे कुछ जवाहरात उससे कहीं गिर गये। माल बहुत था। इससे अत्यधिक हानि हुई। एक जड़ाऊ मुद्रिका सड़कपर गिर गई और दो जड़ाऊ पहुँची किसी सेठको बेंची थीं, जिसका दूसरे दिन दिवाला निकल गया। इस प्रकार धनके नष्ट होनेसे बनारसीदासके हृदयको बहुत बड़ा धक्का लगा। इससे संध्या-समय उन्हें ज्वर चढ़ आया और दस लंघनोंके पश्चात् ठीक हुआ। इसी बीच पिताके कई पत्र आये, पर इन्होंने लज्जावश उत्तर नहीं दिया। सत्य छिपाये नहीं छिपता। अतः इनके बड़े बहनोई उत्तमचन्द जौहरीने समस्त घटनाएँ इनके पिताके पास जौनपुर लिख दीं। खड्गसेन पश्चाताप करने लगे।

जब बनारसीदासके पास कुछ न बचा, तब गृहस्थीकी चीजें बेंच-बेंच कर

खाने लगे। समय काटनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको बैठे पढ़ा करते थे। दो-चार रसिक श्रोता भी आकर सुनते थे। एक कचौड़ी वाला भी इन श्रोताओंमें था, जिसके यहाँसे कई महीनों तक दोनों शाम उधार लेकर कचौड़ियाँ खाते रहे। फिर एक दिन एकान्तमें इन्होंने उससे कहा—

तुम उधार कीनो बहुत, अब आगे जनि देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहाँ सौं लेहु॥

कचौड़ी वाला सज्जन था। उसने उत्तर दिया—

कहै कचौड़ीवाला नर, बीस सवैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहँ भावै तहँ जाहु॥

कवि निश्चिन्त होकर छः-सात महीने तक भरपेट कचौड़ियाँ खाता रहा। और जब पासमें पैसे हुए, तो १४ रुपयेका हिसाब साफ कर दिया। कुछ समय पश्चात् कवि अपनी ससुराल खैराबाद पहुँचा। उनकी पत्नीने वास्तविक स्थिति जानकर इनको स्वयंके अर्जित बीस रुपये तथा अपनी मातासे २०० रुपये व्यापार करनेके लिये दिलाए। कवि आगरा आकर पुनः व्यापार करने लगा; पर यहाँ भी दुर्भाग्यवश घाटा ही रहा। फलतः वह अपने मित्र नरोत्तमदासके यहाँ रहने लगा। दुर्भाग्य जीवन-पर्यन्त साथमें लगा रहा। अतः आगरा लौटते समय कुरी-नामक ग्राममें झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगाया गया। और इन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया। किसी प्रकार बनारसीदास वहाँसे छूटे। इनकी दो पत्नियों और नौ बच्चोंका भी स्वर्गवास हुआ। सं० १६९८में अपनी तीसरी पत्नीके साथ बैठा हुआ कवि कहता है—

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि-नर दोइ।
ज्यों तरुवर पतझार ह्वै, रहैं ठूंठसे होइ॥

कवि जन्मना श्वेताम्बर-सम्प्रदायका अनुयायी था। उसने खरतरगच्छी श्वेताम्बराचार्य भानुचन्द्रसे शिक्षा प्राप्त की थी। उसके सभी मित्र भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी थे। पर सं० १६८०के पश्चात् कविका झुकाव दिगम्बर सम्प्रदायकी मान्यताओंकी ओर हुआ। इन्हें खैराबाद निवासी अर्थमलजीने समयसारकी हिन्दी अर्थ सहित राजमलकी टीका सौंप दी। इस ग्रंथका अध्ययन करनेसे उन्हें दिगम्बर सम्प्रदायकी श्रद्धा हो गयी। सं० १६९२में अध्यात्म-के प्रकाण्ड पंडित रूपचन्द पाण्डेय आगरा आये। रूपचन्दने गोम्मटसार ग्रन्थका प्रवचन आरंभ किया, जिसे सुनकर बनारसीदास दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी बन गये। यही कारण है कि उनकी सभी रचनाओंमें दिगम्बरत्वकी झलक मिलती है।

स्थिति काल

बनारसीदासका समय वि० की १७वीं शती निश्चित है, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही अपने अर्द्धकथानकमें अपनी जीवन-तिथियोंके सम्बन्धमें प्रकाश डाला है।

रचनाएँ

बनारसीदासके नामसे निम्न लिखित रचनाएँ प्रचलित हैं—१. नाममाला, २. समयसारनाटक, ३. बनारसीविलास, ४. अर्द्धकथानक, ५. मोहविवेकयुद्ध एवं ६. नवरसपद्यावली।

नाममाला—प्राप्त रचनाओंमें नाममाला सबसे पूर्व की है। इसका समाप्ति-काल वि० सं० १६७० आश्विन शुक्ला दशमी है। परममित्र नरोत्तमदास सोवरा और थानमल सोवराकी प्रेरणासे कविने यह रचना लिखी है। यह पद्य-बद्ध शब्दकोष १७५ दोहोंमें लिखा गया है। प्रसिद्ध कवि धनञ्जयको संस्कृत नाममाला और अनेकार्थकोशके आधारपर इस ग्रंथको रचना हुई है। कविको इसकी साज-सज्जा, व्यवस्था, शब्द-योजना और लोकप्रचलित शब्दोंकी योजनाके कारण इसे मौलिक माना जा सकता है।

नाटक समयसार—अध्यात्म-संत कविवर बनारसीदासकी समस्त कृतियोंमें नाटक-समयसार अत्यन्त-महत्त्वपूर्ण है। आचार्य कुन्दकुन्दके समय पाहुडपर आचार्य अमृतचन्द्रकी आत्मख्याति नामक विशद टीका है। ग्रंथके मूल भावोंको विस्तृत करनेके लिए कुछ संस्कृत-पद्य भी लिखे गये हैं, जो कलश नामसे प्रसिद्ध हैं। इसमें २७७ पद्य हैं। इन कलशोंपर भट्टारक शुभचन्द्रकी परमाध्यात्मतरंगिणीनामक संस्कृत-टीका भी है। पाण्डेय राजमलने कलशों-पर बाल-बोधिनी नामक हिन्दी-टीका भी लिखी है। इसी टीकाको प्राप्त कर बनारसीदासने कवित्तबद्ध नाटक-समयसारकी रचना की है। इस ग्रंथमें ३१० दोहा-सोरठा, २४५ इकत्तीसा कवित्त, ८६ चौपाई, ३७ तेइसा सवैया, २० छप्पय, १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुंडलियाँ इस प्रकार सब मिलाकर ७२७ पद्य हैं। बनारसीदासने इस रचनाको वि० सं० १६९३ आश्विन-शुक्ला, त्रयो-दशी रविवारको समाप्त किया है।

नाटक-समयसारमें जीवद्वार अजीवद्वार, कर्त्ता-कर्म-क्रियाद्वार, पुण्यपाप-एकत्व-द्वार, आस्रव-द्वार, संवरद्वार, निर्जराद्वार, बन्धद्वार, मोक्षद्वार सर्वविशुद्धि-द्वार, स्याद्वादद्वार, साध्यसाधकद्वार और चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रकरण हैं। नामानुसार इन प्रकरणोंमें विषयोंका निरूपण किया गया है। कविने इस नाटकको यथार्थताका विश्लेषण करते हुए लिखा है—

काया चित्रसारीमें करम-परजंक भारी,
मायाकी संवारी सेज चादर कलपना।
शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिए,
मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना॥
उदै बल जोर यहै श्वासको सबद घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना।
ऐसी मूढ़-दशामें मगन रहै तिहुँकाल,
धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना॥

अज्ञानी व्यक्ति भ्रमके कारण अपने स्वरूपको विस्मृत कर संसारमें जन्म-मरणके कष्ट उठा रहा है। कवि कहता है कि कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलग बिछाया गया है। उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या-कल्पनाकी चादर डाल रखी है। इस शय्यापर अचेतनकी नींदमें चेतन सोता है। मोहकी मरोड़ नेत्रोंका बन्द करना—झपकी लेना है। कर्मके उदयका बल ही स्वांसका घोर शब्द है। विषय-सुखकी दौर ही स्वप्न है। इस प्रकार तीनों कालोंमें अज्ञानकी निद्रामें मग्न यह आत्मा भ्रमजालमें दौड़ती है। अपने स्वरूपको कभी नहीं पाती। अज्ञानी जीवकी यह निद्रा ही संसार-परिभ्रमणका कारण है। मिथ्या-तत्वोंकी श्रद्धा होनेसे ही इस जीवको इस प्रकारकी निद्रा अभिभूत करती है। आत्मा अपने शुद्ध निर्मल और शक्तिशाली स्वरूपको विस्मृत कर ही इस व्यापक असत्यको सत्य-रूपमें समझती है।

इस प्रकार कविने रूपक द्वारा अज्ञानी-जीवकी स्थितिका मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। आत्मा सुख-शान्तिका अक्षय भण्डार है। इसमें ज्ञान, सुख, वीर्य आदि गुण पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्तिको इसी शुद्धात्माकी उपलब्धि करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। कविने बताया है कि ज्ञानी-व्यक्ति संसारकी समस्त-क्रियाओंको करते हुए भी अपनेको भिन्न एवं निर्मल समझता है।

जैसे निशि-बासर कमल रहै पंक ही में,
पंकज कहावै पै न वाके ढिग पंक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधरसों गहावें गात,
मन्त्रकी शकति वाके बिना विष डंक है॥
जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग,
पानीमें कनक जैसे काईसे अटंक है।
तैसे ज्ञानवान नाना भाँति करतूत ठानै,
किरियातैं भिन्न मानै यातै निष्कलंक है॥

आत्मामें अशुद्धि पर-द्रव्यके संयोगसे आई है। यद्यपि मूलद्रव्य अन्य प्रकार रूप परिणमन नहीं करता, तो भी परद्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है। जब सम्यक्त्वके साथ ज्ञानमें भी सच्चाई उत्पन्न होती है तो ज्ञान-रूप आत्मा परद्रव्योंसे अपनेको भिन्न समझकर शुद्धात्म अवस्थाको प्राप्त होती है। कवि कहता है कि कमल रात-दिन पंकमें रहता है तथा पंकज कहा जाता है फिर भी कीचड़से वह सदा अलग रहता है। मन्त्रवादी सर्पको अपना गात्र-पकड़ाता है; परन्तु मन्त्र-शक्तिसे विषके रहते हुए भी सर्पका दंश निर्विष रहता है। पानीमें पड़ा रहनेपर भी जैसे स्वर्णमें काई नहीं लगती उसी प्रकार ज्ञानी-व्यक्ति संसारकी समस्त क्रियाओंको करते हुए भी अपनेको भिन्न एवं निर्मल समझता है।

इस नाटक-समयसारमें अज्ञानीकी विभिन्न अवस्थाएँ, ज्ञानीकी अवस्थाएँ, ज्ञानीका हृदय, संसार और शरीरका स्वरूप-दर्शन, आत्म-जागृति, आत्माकी अनेकता, मनकी विचित्र दौड़ एवं सप्तव्यसनोंका सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करनेके साथ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका काव्य-रूपमें चित्रण किया है।

बनारसी-विलास—इस ग्रन्थमें महाकवि बनारसीदासकी ४८ रचनाओंका संकलन है। यह संग्रह आगरानिवासी दीवान जगजीवनजीने बनारसीदासके स्वर्गवासके कुछ समयके पश्चात् वि० सं० १७०१ चैत्र शुक्ला द्वितीयाको किया है। बनारसीदासने वि० सं० १७०० फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको कर्म-प्रकृति-विधानकी रचना की थी। यह रचना भी इस संग्रहमें समाविष्ट है। संगृहीत रचनाओंके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. जिनसहस्रनाम, २. सूक्तिमुक्तावली, ३. ज्ञानबावनी, ४. वेदनिर्णय-पंचाशिका, ५. शलाकापुरुषोंकी नामावली, ६. मार्गणाविचार, ७. कर्मप्रकृति-विधान, ८. कल्याणमन्दिरस्तोत्र, ९. साधुवन्दना, १०. मोक्षपैडी, ११. करम-छत्तीसी, १२. ध्यानबत्तीसी, १३. अध्यात्मबत्तीसी, १४. ज्ञानपच्चीसी, १५. शिव-पच्चीसी १६. भवसिन्धुचतुर्दशी १७. अध्यात्मफाग १८. सोलहतिथि १९. तेरह-काठिया, २०. अध्यात्मगीत, २१. पंचपदविधान, २२. सुमतिदेवीके अष्टोत्तर-शत नाम, २३. शारदाष्टक, २४. नवदुर्गाविधान, २५. नामनिर्णयविधान, २६. नवरत्नकवित्त, २७. अष्टप्रकारी जिनपूजा, २८. दशदानविधान, २९. दश-बोल, ३०. पहेली, ३१. प्रश्नोत्तरदोहा, ३२. प्रश्नोत्तरमाला, ३३. अवस्थाष्टक, ३४. षट्दर्शनाष्टक, ३५. चातुर्वर्ण, ३६. अजितनाथके छन्द, ३७. शान्तिनाथ-स्तुति ३८. नवसेनाविधान, ३९. नाटकसमयसारके कवित्त, ४०. फुटकर कविता,

४१. गोरखनाथके वचन, ४२. वैद्य आदिके भेद, ४३. परमार्थवचनिका, ४४. उपादान-निमित्तकी चिट्ठी, ४५. उपादान-निमित्तके दोहे, ४६. अध्यात्मपद, ४७. परमार्थ हिंडोलना, ४८. अष्टपदी मल्हार।

इन समस्त रचनाओंमें हमें महाकविकी बहुमुखी प्रतिभा, काव्य-कुशलता एवं अगाध विद्वत्ताके दर्शन होते हैं। धार्मिक मुक्तकोंमें कविने उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अनुप्रास आदि अलंकारोंकी योजना की है। सैद्धान्तिक-रचनाओंमें विषय-प्रधान वर्णन-शैली है। इन रचनाओंमें कवि, कवि न रहकर, तार्किक हो गया है। अतः कविता तर्कों, गणनाओं, उक्तियों और दृष्टान्तोंसे बहुधा बोझिल हो गई हैं। कविने सभी सिद्धान्तोंका समावेश सरल-शैलीमें किया है।

मोह-विवेक-युद्ध—इस रचनाको कुछ लोग बनारसीदासकृत मानते हैं और कुछ लोग उसके विरोधी भी हैं। कृतिके आरंभमें कहा है कि मेरे पूर्ववर्त्ती कविमल्ल, लालदास और गोपाल द्वारा पृथक-पृथक रचे गये मोहविवेकयुद्धके आधारपर उनका सार लेकर इस ग्रंथकी संक्षेपमें रचना की जा रही है। इससे स्पष्ट है कि कविने उक्त तीनों कवियोंके ग्रंथोंका सार ग्रहणकर ही अपने इस ग्रन्थकी रचना की है।

इसमें ११० दोहा-चौपाई है। यह लघु खण्ड-काव्य है। इसका नायक मोह है और प्रतिनायक विवेक। दोनोंमें विवाद होता है और दोनों ओरकी सेनाएँ सजकर युद्ध करती हैं। महाकवि बनारसीदासकी शैली प्रसन्न और गम्भीर है। उन्होंने अध्यात्मकी बड़ी-से-बड़ी बातोंको संक्षेपमें सरलता-पूर्वक गुम्फित कर दिया है।

अर्द्धकथानकमें कविने अपनी आत्म-कथा लिखी है। इसमें सं० १६९८ तक की सभी घटनाएँ आ गई हैं। कविने ५५वर्षोंका यथार्थ जीवनवृत्त अंकित किया है।

पं० रूपचन्द या रूपचन्द पाण्डेय

पं० रूपचन्द्र और पाण्डेय रूपचन्द्र दोनों अभिन्न-व्यक्ति प्रतीत होते हैं। महाकवि बनारसीदासने इन दोनोंका उल्लेख किया है। नाटकसमयसारकी प्रशस्तिमें रूपचन्दपंडित कहा है और अर्द्धकथानकमें पाण्डेय रूपचन्द कहा गया है। बनारसीदासने अपने गुरुरूपमें पाण्डेय रूपचन्दका उल्लेख करते हुए लिखा है—

तब बनारसी और भयो। स्यादवाद परिनति परिनयो।
पांडे रूपचन्द गुरु पास। सुन्यो ग्रन्थ मन भयो हुलास॥

फिर तिस समै बरस द्वै बीच। रूपचन्दको आई मीच।
सुनि-सुनि रूपचन्दके बैन। बानारसी भयौ दिढ़ जैन।।

उक्त उद्धरणसे भी ऐसा अवगत होता है कि पंडित रूपचन्द और पाण्डेय रूपचन्द अभिन्न-व्यक्ति हैं। ये महाकवि बनारसीदासके गुरु हैं। बनारसीदासने रूपचन्दका परिचय प्रस्तुत करते हुए बताया है कि इनका जन्म-स्थान कोइदेशमें स्थित सलेमपुर था। ये गर्गगोत्री अग्रवाल कुलके भूषण थे। इनके पितामहका नाम भामह और पिताका नाम भगवानदास था। भगवानदासकी दो पत्नियाँ थीं, जिनमें प्रथमसे ब्रह्मदास नामक पुत्रका जन्म हुआ और दूसरी पत्नीसे पाँच पुत्र हुए—१. हरिराज, २. भूपति, ३. अभयराज, ४. कीर्तिचन्द, ५. रूपचन्द।

यह रूपचन्द ही रूपचन्द पाण्डेय हैं। भट्टारकीय पंडित होनेके कारण इनकी उपाधि पाण्डेय थी। ये जैन-सिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान थे। और शिक्षा अर्जनहेतु बनारसकी यात्रा की थी।[१] महाकवि बनारसीदासने इन्हीं रूपचन्दको अपना गुरु बताया है और पाण्डेयशब्दसे उनका उल्लेख किया है।[२]

जब महाकवि बनारसीदासको व्यवसायके हेतु आगराकी यात्रा करनी पड़ी थी और व्यापारमें असफल होनेके कारण आगरामें उनका समय काव्य-रचना लिखने और विद्वानोंकी गोष्ठीमें सम्मिलित होनेमें व्यतीत होता था, तभी सं० १६९२में इनके गुरु पाण्डेयरूपचन्दका आगरामें आगमन हुआ।

सोलहसै बानबे लौं, कियौ नियत रसपान।
पै कवीसुरी सब सब भई, स्याद्वाद परवान।
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान।
रूपचन्द पंडित गुनी, आयौ आगम जान।

—अर्द्धकथानक पृ० ५७, पद्य ६२९-६३०

इन्होंने आगरामें तिहुना नामक मन्दिरमें डेरा डाला। उनके आगमनसे बनारसीदासको पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। यहाँ इन्हीं पाण्डेयरूपचन्दसे कविने

---

१. अनेकान्त, वर्ष १०, किरण २ (अगस्त १९४७), पाण्डेयरूपचन्द और उनका साहित्य, पृ० ७७।

२. आठ-बरस को हुओ बाल। विद्या पढ़न गयो चटसाल।।
गुरु पांडेसो विद्या सिखै। अक्खर बाँचै लेखा लिखै।।
—अर्धकथानक, पृ० १०।

गोम्मटसार-ग्रन्थकी व्याख्या सुनी थी। सं० १६९४में पाण्डेयरूपचन्दकी मृत्यु हो गई।

श्री पं० श्रीनाथूरामजी प्रेमीने रूपचन्दको पाण्डेयरूपचन्दसे भिन्न माना है। उन्होंने बताया है कि कवि बनारसीदासने अपने नाटकसमयसारमें अपने जिन पाँच साथियोंका उल्लेख किया है। उनमें एक रूपचन्द भी हैं, जो पाण्डेय रूपचन्दसे भिन्न हैं। बनारसीदास इन रूपचन्दके साथ भी परमार्थकी चर्चा किया करते थे। पर हमारी दृष्टिमें पंडित रूपचन्द और पाण्डेयरूपचन्द भिन्न नहीं हैं—एक ही व्यक्ति हैं। यही रूपचन्द बनारसीदासके गुरु हैं और बनारसीदास इनसे अध्यात्मचर्चा करते थे।

स्थितिकाल

पाण्डेयरूपचन्दका समय बनारसीदासके समयके आसपास है। महाकवि बनारसीदासका जन्म सं० १६४३में हुआ और पाण्डेय रूपचन्द इनसे अवस्थामें कुछ बड़े ही होंगे। बहुत संभव है कि इनका जन्म सं० १६४०के आसपास हुआ होगा। अर्धकथानकमें बनारसीदासने पाण्डेय रूपचन्दका उल्लेख किया है। अतएव इनका समय वि०की १७वीं शती सुनिश्चित है। रूपचन्दने संस्कृत और हिन्दी इन दोनों भाषाओंमें रचनाएँ लिखी हैं। इनके द्वारा संस्कृतमें लिखित समवशरणपूजा अथवा केवलज्ञान-चर्चा ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पाण्डेय रूपचन्दने अपना परिचय प्रस्तुत किया है। हिन्दीमें इनके द्वारा लिखित रचनाएँ अध्यात्म, भक्ति और रूपक काव्य-सम्बन्धी हैं। इन रचनाओंसे इनके शास्त्रीय और काव्यात्मक ज्ञानका अनुमान किया जा सकता है। पाण्डेयरूपचन्द सहज कवि हैं। इनकी रचनाओंमें सहज स्वाभाविकता पाई जाती है।

१. परमार्थदोहाशतक या दोहापरमार्थ—इसमें १०१ दोहोंका संग्रह है। ये सभी दोहे अध्यात्म-विषयक हैं। कविने विषय-वासनाकी अनित्यता, क्षण-भंगुरता और असारताका सजीव चित्रण किया है। प्रत्येक दोहेके प्रथम चरणमें विषयजनित दुःख तथा उसके उपभोगसे उत्पन्न असन्तोष और दोहेके दूसरे चरणमें उपमान या दृष्टान्त द्वारा पूर्व कथनकी पुष्टि की गई है। प्रायः समस्त दोहोंमें अर्थान्तरन्यास पाया जाता है।

विषयन सेवत हुउ भले, तृष्णा तउ न बुझाय।
जिमि जल खारा पीव तइ, बाढ़इ तिस अधिकाय ॥४॥
विषयन सेवत दुःख बढ़इ, देखहु किन जिन जोइ।
खाज खुजावत ही भला, पुनि दुःख इनउ होय ॥९॥

सेवत ही जु मधुर विषय, करुए होंहि निदान।
विषफल मीठे खातके, अंतहि हरहिं पराल ॥११॥

विषय-सुखोंकी निस्सारता दिखलानेके पश्चात् कवि सहज सुखका वर्णन करता है, जिसके प्राप्त होते आत्मा निहाल हो जाती है। यह सहज सुख स्वात्मानुभूतिरूप है। जिस प्रकार पाषाणमें सुवर्ण, पुष्पमें गन्ध, तिलमें तैल व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा प्रत्येक घटमें विद्यमान है। जो व्यक्ति जड़-चेतन-का परिज्ञानी है, जिसने दोनों द्रव्योंके स्वभावको भली प्रकार अवगत कर लिया है, वही व्यक्ति ज्ञानदर्शन-चैतन्यात्मक स्वपरिणतिका अनुभवकर सहज सुखको प्राप्त कर सकता है। कविने सहज सुखको विवेचित करते हुए लिखा है—

चेतन सहज सुख ही बिना, इहु तृष्णा न बुझाइ।
सहज सलिल बिन कहहु क्यउ, उसन प्यास बुझाइ ॥३०॥

२. गीत परमार्थी अथवा परमार्थगीत—यह एक छोटी-सी कृति है। इसमें १६ पद्य हैं और सभी पद्य आध्यात्मिक हैं। जीवनको सम्बोधन कर उसे राग-द्वेष-मोहसे पृथक् रहनेकी चेतावनी दी गई है। आत्माका वास्तविक स्वरूप सत्, चित् आनन्दमय है। इस स्वरूपको जीव अपनी पुरुषार्थहीनताके कारण भूल जाता है और रागद्वेषरूपी विकृतिको ही अपना निजरूप मान लेता है। इस विकारसे दूर रहनेके लिए कवि बार-बार चेतावनी देता है। पहला पद्य निम्न प्रकार है—

चेतन हो चेत न चेतऊ काहिन हो।
गाफिल होइ न कहा रहे विधिवस हो॥
....चेतन हो ॥१॥

३. अध्यात्म सवैया—१०१ कवित्त और सवैया छन्दोंका यह संग्रह है। जैन सिद्धान्त भवन आराकी हस्तलिखित प्रतिमें इसे रूपचन्द-शतक कहा गया है। समस्त छन्द अध्यात्मपूर्ण है। जीवन, जगत् और जीवकी वर्त्तमान विकृत अवस्थाका चित्रण इन सवैयोंमें पाया जाता है। कविने लिखा है कि यह जीव महासुखकी शय्याका त्यागकर क्षणिक सुखके प्रलोभनमें आकर संसारमें भटकता है और अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करता है। मिथ्यात्व—आत्मानुभव-से बहिर्मुख प्रवृत्ति—का निरोध समतारसके उत्पन्न होनेपर ही प्राप्त होता है। यह समता आत्माका निजी पुरुषार्थ है। जब समस्त परद्रव्योंके संयोगको छोड़ आत्मा अपने स्वरूपमें विचरण करने लगता है, तो समतारसकी प्राप्ति होती है। कविने इस समतारसका विवेचन निम्न प्रकार किया है—

भूल गयौ निज सेज महासुख, मान रह्यो सुख सेज पराई।
आस-हुतासन तेज महा जिहि, सेज अनेक अनन्त जराई॥
कित पूरी भई जु मिथ्यामतिकी इति, भेदविज्ञान घटा जु भराई।
उमग्यौ समितारस मेघ महा. जिह वेग हि आस-हुतास सिराई॥८२॥

यदि आत्मा मिथ्या स्थितिको दूर कर समतारसका पान करने लगे, तो उसे अपनेमें परमात्माका दर्शन हो सकता है, क्योंकि कर्म आदि परसंयोगी हैं। जिस प्रकार दूध और पानी मिल जानेपर एक प्रतीत होते हैं, पर वास्तवमें उनका गुण-धर्म पृथक्-पृथक् है। जो व्यक्ति द्रव्य और तत्त्वोंके स्वभावको यथार्थ रूपमें अवगत कर निजी रूपका अनुभव करता है उसका उत्थान स्वयमेव हो जाता है। यह सत्य है कि उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक उस आत्मतत्त्वकी प्राप्ति निजानुभूतिसे ही होती है और उसीसे मिथ्यात्वका क्षय भी होता है। कविने उक्त तथ्यपर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है :—

काहू न मिलायौ जाने करम-संजोगी सदा,
छीर नीर पाइयौ अनादि हीका धरा है।
अमिल मिलाय जड़ जीव गुन भेद न्यारे,
न्यारे पर भाव परि आप हीमें धरा है।
काइ भरमायौ नाहिं भम्यौ भूल आपन ही,
आपने प्रकास कै विभाव भिन्न धरा है।
साचै अविनासी परमातम प्रगट भयौ,
नास्यौ है मिथ्यात वस्यौ जहाँ ग्यान धरा है॥९५॥

४. खटोलनागीत—खटोलनागीत छोटी-सी कृति है। इसमें कुल १३ पद्य हैं। यह रूपक काव्य है। कविने बताया है कि संसाररूपी मन्दिरमें एक खटोला है, जिसमें क्रोधादि चार पग हैं। काम और कपटका सिरा है और चिन्ता और रतिकी पाटी है। यह अविरतिके बानोंसे बुना है और उसमें आशाकी आडवाइन लगायी गयी है। मनरूपी बढ़ईने विविध कर्मोंकी सहायतासे उसका निर्माण किया है। जीवरूपी पथिक इस खटोलेपर अनादिकालसे लेटा हुआ मोहकी गहरी निद्रामें सो रहा है। पाँच पापरूपी चोरोंने उसकी संयमरूपी संपत्तिको चुरा लिया है। मोहनिद्राके भंग न होनेके कारण ही यह आत्मा निर्वाण-सुखसे वंचित है। वीतरागी गुरु या तीर्थंकरके उपदेशसे यह कालरात्रि समाप्त हो सकती है और सम्यक्त्वरूपी सूर्यका उदय हो सकता है। कविने इस प्रकार शरीरको खटोलाका रूपक देकर आध्यात्मिक तत्त्वोंका विवेचन किया है। पद्य बहुत ही सुन्दर और काव्यचमत्कारपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

भव रतिमंदिर पौठियो, खटोला मेरो, कोपादिक पग चारि।
काम कपट सीरा दोऊ, चिन्ता रति दोउ पाटि ॥१॥
अविरति दिढ़ बाननि बुनो, मिथ्या माई विसाल।
आशा-अडवाइनि दई, शंकादिक वसु साल ॥२॥

× × × ×

राग-द्वेष दोउ गडुवा, कुमति सुकोमल सौरि।
जीव-पथिक तँह पौढियो, परपरिणति संग गौरि ॥४॥

५. स्फुट पद—रूपचन्दके स्फुट पद लगभग ६०-७०की संख्यामें उपलब्ध हो चुके हैं। ये भी पद भक्तिरससे पूर्ण हैं। कविने अपने आराध्यकी भक्ति करते हुए उसके रूप-लावण्यका विवेचन किया है। कवि एक पदमें अपने आराध्यके मुखको अपूर्व चन्द्रमा बतलाता है और इस अपूर्व चन्द्रमाकी तर्क द्वारा पुष्टि करता है—

प्रभु मुख-चन्द अपूरब तेरो।
संतत सकल-कला-परिपूरन,
पारे तुम तिहुँ जगत उजेरो ॥प्रभु० ॥१॥
निरूप-राग निरदोष निरंजनु,
निरावरनु जड जाड्य निवेरो ॥
कुमुद विरोधि कृसी कृतसागरु,
अहि निसि अमृत श्रवै जु घनेरो ॥प्रभु० ॥२॥
उदे अस्त बन रहितु निरन्तरु,
सुर नर मुनि आनन्द जनेरो ॥
रूपचन्द इमि नैनन देखति,
हरषित मन-चकोर भयो मेरो ॥प्रभु० ॥३॥

६. पञ्चमङ्गल या मङ्गलगीतप्रबन्ध—इस रचनासे प्रायः सभी लोग सुपरिचित हैं। कविने तीर्थंकरके पञ्चकल्याणकोंकी गाथा काव्यरूपमें निबद्ध की है।

जगजीवन

आगरानिवासी जगजीवन अग्रवाल जैन थे। इनका गोत्र गर्ग था। इनके पिताका नाम अभयराज और माताका नाम मोहनदे था। ये अभयराज जाफर-खाँके दीवान थे, जो बादशाह शाहजहाँका पाँच हजारी उमराव था। जगजीवन अध्यात्मशैलीके कवि थे। पण्डित हीरानन्दने वि० सं० १७०१में समवशरण-

विधानकी रचना की है। इस रचनामें जगजीवनका परिचय निम्न प्रकार दिया है—

अब सुनि नगरराज आगरा, सकल सोभा अनुपम सागरा।
साहजहाँ भूपति है जहाँ, राज करै नयमारग तहाँ॥
ताको जाफरखाँ उमराव, पंच हजारी प्रकट कराउ।
ताको अगरवाल दीवान, गरग गोत सब विधि परवान॥
संघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
वनितागण नाना परकार, तिनमैं लघु मोहनदे सार॥
ताको पूत पूत-सिरमौर, जगजीवन जीवनकी ठौर।
सुन्दर सुभग रूप अभिराम, परम पुनीत धरम-धन-धान॥

जगजीवनने सं० १७०१में बनारसीविलासका संपादन किया था। इनके अब तक ४५ पद भी उपलब्ध हो चुके हैं। इनके पदोंको तीन वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१. प्रार्थना एवं स्तुतिपरक
२. आध्यात्मिक
३. सांसारिक प्रपञ्चके विश्लेषण-मूलक

यहाँ उदाहरणके लिए एक पदकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। कविने सांसारिक प्रपञ्चको बादलकी छाया माना है और छायाका रूपक देकर पुरजन, परिजन, इन्द्रिय-विषय, राग-द्वेष-मोह, सुमति-कुमति सभीकी व्याख्या प्रस्तुत की है। यथा—

जगत सब दीसता घनकी छाया॥
पुत्र कलत्र मित्र तन संपति
उदय पुद्गल जुरि आया।
भव परनति वरषागम सोहै
आश्रव पवन बहाया॥जगत०॥१॥
इन्द्रियविषय लहरि तडता है
देखत जाय बिलाया।
राग दोष बगु पंकति दीरघ
मोह गहल घरराया॥जगत०॥२॥
सुमति विरहनी दुखदायक है,
कुमति संजोगति भाया।

निज संपति रतनत्रय गहिकर
मुनि जन नर मन भाया ॥
सहज अनन्त चतुष्ट मंदिर
जगजीवन सुख पाया ॥जगत०॥३॥

कुँवरपाल

कुँवरपाल बनारसीदासके अभिन्न मित्र थे। इन्होंने सूक्तिमुक्तावलीका पद्यानुवाद बनारसीदासके साथ मिलकर किया है। इस पद्यानुवादसे उनकी काव्यप्रतिभाका परिचय प्राप्त होता है। सोमप्रभने संस्कृत-भाषामें सूक्ति-मुक्तावलीकी रचना की थी। इसीका पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद इन्होंने किया है। यह समस्त काव्य मानवजीवनको परिष्कृत करने वाला है। कविने संस्कृत-ग्रन्थका आधार ग्रहणकर भी अपनी मौलिकताको अक्षुण्ण रखा है। वह समस्त दोषोंकी खानि अहंकारको मानता है। मनुष्य 'अहं' प्रवृत्तिके अधीन होकर दूसरोंकी अवहेलना करता है। अपनेको बड़ा और दूसरेको तुच्छ या लघु समझता है। समस्त दोष इस एक ही प्रवृत्तिमें निवास करते हैं। कवि कहता है कि इस अभिमानसे ही विपत्तिकी सरिता कल-कल ध्वनि करती हुई चारों ओर प्रवाहित होती है। इस नदीकी धारा इतनी प्रखर है कि जिससे यह एक भी गुणग्रामको अपने पूरमें बहाये बिना नहीं छोड़ती। 'अहं' भाव विशाल पर्वतके तुल्य है। कुबुद्धि और माया उसकी गुफाएँ हैं। हिंसक बुद्धि धूम्ररेखाके समान है और क्रोध दावानलके तुल्य है। कवि कहता है—

जातैं निकस विपति-सरिता सब, जगमें फैल रही चहुँ ओर।
जाके ढिग गुण-ग्राम नाम नहिं, माया कुमति गुफा अति घोर॥
जहँ बध-बुद्धि धूमरेखा सम, उदित कोप दावानल जोर।
सो अभिमान-पहार पठंतर, तजत ताहि सर्वज्ञ किशोर॥

कवि सालिवाहन

कवि सालिवाहन भदावर प्रान्तके कञ्चनपुर नगरके निवासी थे। कविके पिताका नाम रावत खरगसेन और गुरुका नाम भट्टारक नगभूषण था। इन्होंने वि० सं० १६९५में आगरामें रहकर जिनसेनाचारिकृत संस्कृतके हरिवंशपुराण-का हिन्दीमें पद्यानुवाद उपस्थित किया है। हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिसे अव-

गत होता है कि कविने उक्त दोहा-चौपाईबद्ध रचना आगराकी साहित्य भूमिमें ही सम्पन्न की है।

संवत् सोरहिसे तहाँ भये तापरि अधिक पचानवे गये।
माघ मास किसन पक्ष जानि सोमवार सुभवार बखानि॥
........भट्टारक जगभूषण देव गनधर साद्रस वाकि जुएइ।
........नगर आगिरो उत्तम थानु साहिजहाँ तपै दूजो भान॥
........बाहन करी चौपईबन्धु, हीनबुधि मेरी मति अंधु।

कवि बुलाकीदास

बुलाकीदासका जन्म आगरेमें हुआ था। ये गोयलगोत्री अग्रवाल दिगम्बर जैन श्रावक थे। इनके पूर्वज बयाना (भरतपुर)में रहते थे। इनके पितामह भवणदास बयाना छोड़कर आगरेमें बस गये थे। उनके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पंडित हेमराजने उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया था, जिसका नाम जैनी था। हेमराजने अपनी इस कन्याको बहुत ही सुशिक्षित किया था। बुलाकीदासका जन्म इसी जैनी उदरसे हुआ था। उन्होंने अपनी माताकी प्रशंसामें लिखा है—

हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरौ, सब पूजें जिस पाइ॥
उपगीता के देहजा, जैनी नाम विख्याति।
सील रूप गुन आगरी, प्रीति-नीतिको पाँति॥
दीनी विद्या जनकनै कीनी अति व्युत्पन्न।
पंडित जापै सीख लैं धरनीतलमें धन्न॥

कविकी 'पाण्डवपुराण' नामक एक ही रचना उपलब्ध है। यह रचना उसने अपनी माताके आग्रहसे लिखी है।

भैया भगवतीदास

भैया भगवतीदास आगरानिवासी कटारियागोत्रीय ओसवाल जैन थे। इनके दादाका नाम दशरथ साहू और पिताका नाम लालजी था। इनकी रचनाओंसे अवगत होता है कि जिस समय ये काव्यरचना कर रहे थे उस समय आगरा दिल्ली-शासनके अन्तर्गत था और औरंगजेब वहाँका शासक था।[1]

१. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन प्रथम भाग, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ० १६३-१६९ तथा २४६।

ओसवाल होनेके कारण कविको जन्मना श्वेताम्बरसम्प्रदायानुयायी होना चाहिए; पर उनकी रचनाओंके अध्ययनसे उनका दिगम्बर सम्प्रदायानुयायी होना सिद्ध होता है। कविकी रचनाओंके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि भैया भगवतीदासने समयसार, आत्मानुशासन, गोम्मटसार और द्रव्यसंग्रह आदि दिगम्बर ग्रन्थोंका पूरा अध्ययन किया है। उनकी आध्यात्मिक रचनाओं पर समयसारका पूरा प्रभाव है।

इन्होंने स्तुतिपरक या भक्तिपरक जितने पद लिखे हैं उनमें तीर्थंकरोंके गुण और इतिवृत्त दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार अंकित हैं।

संवत सत्रह से इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस।
मंगलकरण परमसुखधाम, द्रवसंग्रह प्रति करहुं प्रणाम॥

द्रव्यसंग्रहकी रचनाके साथ भैया भगवतीदासकी स्वप्नबत्तीसी, द्वादशानुप्रेक्षा, प्रभाती और स्तवनोंसे भी उनका दिगम्बर सम्प्रदायी होना सिद्ध होता है।

वि० सं० १७११में हीरानन्दजीने पंचास्तिकायका अनुवाद किया था। उसमें उन्होंने आगरामें एक भगवतीदास नामक व्यक्तिके होनेका उल्लेख किया है। संभवतः भैया भगवतीदास ही उक्त व्यक्ति हों। इन्होंने कवितामें अपना उल्लेख भैया, भविक और दासकिशोर उपनामोंसे किया है। इनकी समस्त रचनाओंका संग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है।

भैया भगवतीदासका समय वि० सं० की १८वीं शताब्दी है। इन्होंने अपनी रचनाओंमें औरंगजेबका उल्लेख किया है। औरंगजेबका शासनकाल वि० सं० १७१५-१७६४ रहा है। भैया भगवतीदासके समकालीन महाकवि केशवदास हैं, जिन्होंने रसिकप्रिया नामक शृंगाररसपूर्ण रचना लिखी है। कवि भगवतीदासने इस रसिकप्रियाकी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है—

बड़ी नीत लघु नीत करत है, बाय सरत बदवोय भरी।
फोड़ो बहुत फुनगणी मंडित सकल देह मनु रोगदरी॥
शोणित हाड़ मांसमय मूरत तापर रीझत घरी-घरी।
ऐसी नारी निरखि करि केशव ? रसिकप्रिया तुम कहा करी॥

अतएव भैया भगवतीदास १८वीं शताब्दीके कवि हैं।

रचनाएँ

भैया भगवतीदासकी रचनाओंका संग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है। इसमें ६७ रचनाएँ सगृहीत हैं। इन रचनाओंको काव्यविधाकी दृष्टिसे निम्नलिखित वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है:—

१. पदसाहित्य
२. आध्यात्मिक रूपककाव्य
३. एकार्थ काव्य
४. प्रकीर्णककाव्य

१. पदसाहित्य—इनके पदसाहित्यको १. प्रभाती, २. स्तवन, ३. अध्यात्म, ४. वस्तुस्थितिनिरूपण, ५. आत्मालोचन एवं ६. आराध्यके प्रति दृढ़तर विश्वास, विषयोंमें विभाजित किया जा सकता है। वस्तुस्थितिका चित्रण करते हुए बताया है कि यह जीव विश्वकी वास्तविकता और जीवनके रहस्योंसे सदा आँखें बन्द किये रहता है। इसने व्यापक विश्वजनीन और चिरन्तन सत्यको प्राप्त करनेका प्रयास नहीं किया। पार्थिव सौन्दर्यके प्रति मानव नैसर्गिक आस्था रखता है। राग-द्वेषोंकी ओर इसका झुकाव निरन्तर होता रहता है, परन्तु सत्य इससे परे है, विविधनामरूपात्मक इस जगत्से पृथक् होकर प्रकृत भावनाओंका संयमन, दमन और परिष्करण करना ही व्यक्तिका जीवन-लक्ष्य होना चाहिए। इसी कारण पश्चात्तापके साथ सजग करते हुए वैयक्तिक चेतनामें सामूहिक चेतनाका अध्यारोप कर कवि कहता है—

अरे तैं जु यह जन्म गमायो रे, अरे तैं॥
पूरब पुण्य किये कहुँ अति ही, तातैं नरभव पायो रे।
देव धरम गुरु ग्रन्थ न परसे, भटकि भटकि भरमायो रे॥अरे०॥१॥
फिरि तोको मिलिबो यह दुरलभ दश दृष्टान्त बतायो रे।
जो चेतै तो चेत रे भैया, तोको करि समुझायो रे॥अरे०॥२॥

आत्मालोचन सम्बन्धी पदोंमें कविने राग-द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मद, मात्सर्य आदि विकारोंसे अभिभूत हृदयकी आलोचना करते हुए गूढ़ अध्यात्मकी अभिव्यञ्जना की है। कवि कहता है—

छाँड़ि दे अभिमान जियरे, छाँड़ि दे अभि० ॥टेक॥
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हैं महिमान।
देखा राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान॥जियरे०॥१॥
जगत देखत तेरि चलवो, तू भी देखत आन।
घरी पलकी खबर नाहीं, कहा होय विहान॥जियरे०॥२॥
त्याग क्रोध रु लोभ माया, मोह मदिरा पान।
राग-दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान॥जियरे०॥३॥
भयो सुरपुर-देव कबहूँ, कबहुँ नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान॥जियरे०॥४॥

२. आध्यात्मिक रूपकाव्य—के अन्तर्गत कविकी चेतनकर्मचरित, षट्-अष्टोत्तरी, पंचइन्द्रियसंवाद, मधुबिन्दुकचौपाई, स्वप्नबत्तीसी, द्वादशानुप्रेक्षा आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। चेतनकर्मचरितमें कुल २९६ पद्य हैं। कल्पना, भावना, अलंकार, रस, उक्ति-सौन्दर्य और रमणीयता आदिका समवाय पाया जाता है। भावनाओंके अनुसार मधुर अथवा परुष वर्णोंका प्रयोग इस कृतिमें अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। बेकारोंको पात्रकल्पना कर कविने इस चरित-काव्यमें आत्माकी श्रेयता और प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शित किया है। कुबुद्धि एवं सुबुद्धि ये दो चेतनकी भार्या हैं। कविने इस काव्यमें प्रमुखरूपसे चेतन और उनकी पत्नियोंके वार्त्तालाप प्रस्तुत किये हैं। सुबुद्धि चेतन-आत्माकी कर्मसंयुक्त अवस्थाको देखकर कहती है—"चेतन, तुम्हारे साथ यह दुष्टोंका संग कहाँसे आ गया? क्या तुम अपना सर्वस्व खोकर भी सजग होनेमें विलम्ब करोगे? जो व्यक्ति जीवनमें प्रमाद करता है, संयमसे दूर रहता है वह अपनी उन्नति नहीं कर नकता।"

चेतन—"हे महाभागे! मैं तो इस प्रकार फँस गया हूँ, जिससे इस गहन पंकसे निकलना मुश्किल-सा लग रहा है। मेरा उद्धार किस प्रकार हो, इसकी मुझे जानकारी नहीं।"

सुबुद्धि—"नाथ! आप अपना उद्धार स्वयं करनेमें समर्थ हैं। भेदविज्ञानके प्राप्त होते ही आपके समस्त पर-सम्बन्ध विगलित हो जायेंगे और आप स्वतंत्र दिखलाई पड़ेंगे।"

कुबुद्धि—"अरी दुष्टा! क्या बक रही है? मेरे सामने तेरा इतना बोलनेका साहस? तू नहीं जानती कि मैं प्रसिद्ध शूरवीर मोहकी पुत्री हूँ?"

कविने इस संदर्भमें सुबुद्धि और कुबुद्धिके कलहका सजीव चित्रण किया है। और चेतन द्वारा सुबुद्धिका पक्ष लेनेपर कुबुद्धि रूठ कर अपने पिता मोहके यहाँ चली जाती है और मोहको चेतनके प्रति उभारती है। मोह युद्धकी तैयारी कर अपने राग-द्वेषरूपी मंत्रियोंसे साहाय्य प्राप्त करता है और अष्ट कर्मोंकी सेना सजाकर सैन्य संचालनका भार मोहनीय कर्मको देता है। दोनों ओरकी सेनाएँ रणभूमिमें एकत्र हो जाती हैं। एक ओर मोहके सेनापतित्वमें काम, क्रोध आदि विकार और अष्ट कर्मोंका सैन्य-दल है। दूसरी ओर ज्ञानके सेनापतित्वमें दर्शन, चरित्र, सुख, वीर्य आदिकी सेनाएँ उपस्थित हैं। मोहराज चेतनपर आक्रमण करता है; पर ज्ञानदेव स्वानुभूतिकी सहायतासे विपक्षी दलको परास्त देता है। कविने युद्धका बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। निम्न पंक्तियाँ हैं:—

सूर बलवंत मदमत्त महामोहके, निकसि सब सेन आगे जु आये।
मारि घमासान महाजुद्ध बहुक्रुद्ध करि, एक तै एक सातों सवाए॥
वीर-सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारि कै सुभट सातों गिराए।
कुमुक जो ज्ञानकी सेन सब संग धसी मोहके सुभट मूर्छा सवाए॥
रणसिंगे बज्जहिं कोऊ न भज्जहिं, करहिं महा दोऊ जुद्ध।
इत जीव हंकारहिं, निजपर वारहिं, करहै अरिनको रुद्ध॥

शतअष्टोत्तरी—इसमें १०८ पद्य हैं। कविने आत्मज्ञानका सुन्दर उपदेश अंकित किया है। यह रचना बड़ी ही सरस और हृदयग्राह्य है। अत्यल्प कथानकके सहारे आत्मतत्त्वका पूर्ण परिज्ञान सरस शैलीमें करा देनेमें इस रचनाको अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कवि कहता है कि चेतनराजाको दो रानियाँ हैं, एक सुबुद्धि और दूसरी माया। माया बहुत ही सुन्दर और मोहक है। सुबुद्धि बुद्धिमती होनेपर भी सुन्दरी नहीं है। चेतनराजा मायारानीपर बहुत आसक्त है। दिन-रात भोग-विलासमें संलग्न रहता है। राजकाज देखनेका उसे बिल्कुल अवसर नहीं मिलता। अतः राज्यकर्मचारी मनमानी करते हैं। यद्यपि चेतन राजाने अपने शरीर-देशकी सुरक्षाके लिए मोहको सेनापति, क्रोधको कोतवाल, लोभको मंत्री, कर्मोदयको काजी, कामदेवको वैयक्तिक सचिव और ईर्ष्या-घृणाको प्रबन्धक नियुक्त किया है। फिर भी शरीर-देशका शासन चेतनराजाकी असावधानीके कारण विशृंखलित होता जा रहा है। मान और चिन्ताने प्रधानमंत्री बननेके लिए संघर्ष आरंभ कर दिया है। इधर लोभ और कामदेव अपना पद सुरक्षित रखनेके लिये नाना प्रकारसे देशको त्रस्त कर रहे हैं। नये-नये प्रकारके कर लगाये जाते हैं, जिससे शरीर-राज्यकी दुरवस्था हो रही है। ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य, जो कि चेतनराजाके विश्वासपात्र अमात्य हैं, उनको कोतवाल सेनापति, वैयक्तिक सचिव आदिने खदेड़ बाहर कर दिया है। शरीर-देशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चेतनराजाका राज्य न हो कर सेनापति मोहने अपना शासन स्थापित कर लिया है। चेतनकी आज्ञाको सभी अवहेलना करते हैं।

माया-रानी भी मोह और लोभको चुपचाप-राज्य शरीर-संचालनमें सहायता देती है। उसने इस प्रकार षड्यन्त्र किया है जिससे चेतनराजाका राज्य उलट दिया जाय और वह स्वयं उसकी शासिका बन जाये। जब सुबुद्धिको चेतनराजाके विरुद्ध किये गये षड्यन्त्रका पता लगा तो उसने अपना कर्त्तव्य और धर्म समझकर चेतनराजाको समझाया तथा उससे प्रार्थना की—"प्रिय चेतन, तुम अपने भीतर रहनेवाले ज्ञान, दर्शन आदि गुणोंकी सम्हाल नहीं करते।

इन्द्रिय और शरीरके गुणोंको अपना समझ माया-रानीमें इतना आसक्त होना तुम्हें शोभा नहीं देता। जिन क्रोध, मोह और काम-कर्मचारियोंपर तुमने विश्वास कर लिया है वे निश्चय ही तुमको ठग रहे हैं। तुम्हारे चैतन्य-नगर-पर उनका अधिकार होनेवाला है, क्योंकि तुमने शरीरके हारनेपर अपनी हार और उसके जीतनेपर जीत समझ ली, दिन-रात मायाके द्वारा निरूपित सांसारिक धन्धोंमें मस्त रहनेसे तुम्हें अपने विश्वासप्राप्त अमात्योंको भी खो देना पड़ेगा। तुमने जो मार्ग अभी ग्रहण किया है वह बिल्कुल अनुचित है। क्या कभी तुमने विचार किया है कि तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? तुम्हें कौन-कौन धोखा दे रहे हैं? और तुम अपने स्वभावसे किस प्रकार च्युत हो रहे हो? ये द्रव्य-कर्म ज्ञानावरणादि तथा भावकर्म राग-द्वेष आदि, जिनपर तुम्हारा अटूट विश्वास हो गया है, तुमसे बिल्कुल भिन्न हैं। इनका तुमसे कुछ भी तादात्म्य-भाव नहीं है। प्रिय चेतन! क्या तुम राजा होकर दास बनना चाहते हो? इतने चतुर और कलाप्रवीण होकर तुमने यह मूर्खता क्यों की? तीन लोकके स्वामी होकर मायाकी मीठी बातोंमें उलझकर भिखारी बन रहे हो? तुम्हारे-त्रासको देखकर मैं वेदनासे झुलस रही हूँ। तुम्हारी अन्धता मेरे लिये लज्जाकी बात है, अब भी समय है, अवसर हैं, सुयोग है और है विश्वासपात्र अमात्योंका सहारा। हृदयेश! अब सावधान होकर अपनी नगरीका शासन करें, जिससे शीघ्र ही मोक्ष-महलपर अधिकार किया जा सके। प्राणनाथ! राज्य सम्हालते समय तुमने मोक्षमहलको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मोक्ष-महलमें रहनेवाली मुक्ति-रानी इस ठगिनी मायासे करोड़ों-गुणी सुन्दरी और हाव-भावप्रवीण है। उसे देखते ही मुग्ध हो जाओगे। प्रमाद और अहंकार दोनों ही तुमको मुक्ति-रमाके साथ विहार करनेमें बाधा दे रहे हैं।

इस प्रकार सुबुद्धिने नानाप्रकारसे चेतनराजाको समझाया। सुबुद्धिकी बात मान लेनेपर चेतनराजा अपने विश्वासपात्र अमात्य ज्ञान, दर्शन आदिकी सहायतासे मोक्ष-महलपर अधिकार करने चल दिया।

काव्यकी दृष्टिसे इस रचनामें सभी गुण वर्त्तमान हैं। मानवके विकार और उसकी विभिन्न चित्तवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया है। यह रचना रसमय होनेके साथ मंगलप्रद है। भावात्मक शैलीमें कविने अपने हृदयकी अनुभूतिको सरलरूपसे अभिव्यक्त किया है। दार्शनिकताके साथ काव्यात्मक शैलीमें सम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण भावोंकी अभिव्यञ्जना रोचक हुई है। कवि चेतनराजाकी सुव्यवस्थाका विश्लेषण करता हुआ कहता है—

काया-सी जु नगरीमें चिदानन्द राज करै;
माया-सी जु रानी पै मगन बहु भयो है।

मोह-सो है फौजदार क्रोध-सो है कोतवार;
लोभ-सो वजीर जहाँ लूटिबेको रह्यो है ।।
उदैको जु काजी मानै, मानको अदल जानै,
कामसेनाका नवीस आई बाको कह्यो है ।
ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि रह्यो;
सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ।

सुबुद्धि चेतनराजाको समझाती है—

कौन तुम, कहाँ आए, कौन बौराये तुमहिं;
काके रस राचे कछु सुधहू धरतु हो ।
कौन हैं वे कर्म, जिन्हें एकमेक मानि रहे;
अजहू न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो ।।
वे दिन चितारो, जहाँ बीते हैं अनादि काल;
कैसे-कैसे संकट सहे हू विसरतु हो ।
तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हो;
तीन-लोक-नाथ ह्वैके दीनसे फिरतु हो ।।

पञ्चेन्द्रियसंवाद—में बताया गया है कि एक सुरम्य उद्यानमें एक दिन एक मुनिराज धर्मोपदेश दे रहे थे। उनकी धर्मदेशनाका श्रवण करनेके लिए अनेक व्यक्ति एकत्र हुए। सभामें नानाप्रकारकी शंकाएं की जाने लगीं। एक व्यक्तिने मुनिराजसे पूछा—'पंचेन्द्रियोंके विषय सुखकर हैं या दुखकर ?' मुनिराजबोले—"ये पंचेन्द्रियाँ बड़ी दुष्ट हैं। इनका जितना ही पोषण किया जाता है, दुःख ही देती हैं।"

एक विद्याधर बीचमें ही इन्द्रियोंका पक्ष लेकर बोला—"महाराज इन्द्रियाँ दुष्ट नहीं हैं, इनकी बात इन्हींके मुखसे सुनिये। ये प्राणियोंको कितना सुख देती हैं ?"

मुनिराजका संकेत पाते ही सभी इन्द्रियाँ अपने-अपनेको बड़ा सिद्ध करने लगीं। पश्चात् मुनिराजने उन सभी इन्द्रियों और मनको समझाकर बताया कि तुम सबसे बड़ी आत्मा हो। राग-द्वेषके दूर होनेपर आत्मा ही परमात्मा बन जाता है।

इस पंचेन्द्रिय-संवादमें इन्द्रियोंके उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सरस और स्वाभाविक हैं। प्रत्येक इन्द्रियका उत्तर इतने प्रामाणिक ढंगसे उपस्थित किया है, जिससे पाठक मुग्ध हो जाता है। सर्वप्रथम अपने पक्षको स्थापित करती हुई नाक कहती है—

नाक कहै प्रभु मैं बड़ी, और न बड़ो कहाय।
नाक रहै पत लोकमें, नाक गये पत जाय॥
प्रथम वदनपर देखिए, नाक नवल आकार।
सुन्दर महा सुहावनी, मोहित लोक अपार॥
सुख विलसै संसारका, सो सब मुझ परसाद।
नाना वृक्ष सुगन्धिको, नाक करें आस्वाद॥

कानका उत्तर—

कान कहै, री नाक, सुन, तू कहा करे गुमान।
जो आकर आगे चलै, तो नहिं भूप समान॥
नाक सुरनि पानी झरे, बहे श्लेषम अपार।
गूँघनि करि पूरित रहै, लाजे नहीं गँवार॥
तेरी छींक सुनै जिते, करे न उत्तम काज।
मूदे तुह दुर्गन्ध में, तऊ न आवै लाज॥
वृषभऊँ नारी निरख, और जीव जग माँहि।
जित तित तोको छेदिये, तोऊ लजानो नाँहि॥

× × ×

कानन कुण्डल झलकता, मणि मुक्ताफल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार॥
सातों सुरको गाइबो, अद्‌भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिये, मीठे-मीठे नाद॥
कानन सरभर को करै, कान बड़े सरदार।
छहों द्रव्य के गुण सुनै, जानै सबद-विचार॥

मधुबिन्दुकचौपाई—भी कविका एक सरस आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इस काव्यमें बताया है कि एक पुरुष वनमें जाते हुए रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। जिस अरण्यमें वह पहुँच गया था वह अरण्य अत्यन्त भयंकर था। उसमें सिंह और मदोन्मत्त गजोंकी गर्जनाएँ सुनाई पड़ रही थीं। वह भयाक्रान्त होकर इधर-उधर छिपनेका प्रयास करने लगा। इतनेमें एक पागल हाथी उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। हाथीको अपनी ओर आते हुए देखकर वह व्यक्ति भागा। वह जितनी तेजीसे भागता जाता था, हाथी भी उतनी ही तेजीसे उसका पीछा कर रहा था। जब उसने इस प्रकार जान बचते न देखी, तो वह एक वृक्षकी शाखासे लटक गया। उस वृक्षकी शाखाके नीचे एक बड़ा अन्धकूप था तथा उसके ऊपर एक मधुमक्खीका छत्ता लगा हुआ था। हाथी

भी दौड़ता हुआ उसके पास आया। पर शाखासे लटक जानेके कारण वह उस पेड़के तनेको सूँड़से पकड़कर हिलाने लगा। वृक्षके हिलनेसे मधुछत्तेसे एक-एक बूँद मधु गिरने लगा और वह पुरुष उस मधुका आस्वादन कर अपनेको सुखी समझने लगा।

नीचेके अन्धकूपमें चारों किनारेपर चार अजगर मुँह फैलाये बैठे थे तथा जिस शाखाको वह पकड़े हुए था, उसे काले और सफेद रंगके दो चूहे काट रहे थे। उस व्यक्तिकी बुरी अवस्था थी। पागल हाथी वृक्षको उखाड़कर उसे मार डालना चाहता था तथा हाथीसे बच जानेपर चूहे उसकी डालको काट रहे थे, जिससे वह अन्धकूपमें गिरकर अजगरोंका भक्ष्य बनने जा रहा था। उसकी इस दयनीय अवस्थाको आकाशमार्गसे जाते हुए विद्याधर-दम्पतिने देखा। स्त्री अपने पतिसे कहने लगी—"स्वामिन् इस पुरुषका जल्द उद्धार कीजिए। यह जल्दी ही अन्धकूपमें गिरकर अजगरोंका शिकार होना चाहता है। आप दयालु हैं। अतः अब विलम्ब करना अनुचित है। इसे विमानमें बैठाकर इस दुःखसे छुटकारा दिला देना हमारा परम कर्त्तव्य है।"

स्त्रीके अनुरोधसे वह विद्याधर वहाँ आया और उससे कहने लगा—"आओ, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ लेता हूँ। विश्वास करो, मैं तुम्हें विमान द्वारा सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दूँगा।" वह पुरुष बोला—"मित्र आप बड़े उपकारी हैं। कृपया थोड़ी देर रुके रहें। अबकी बार गिरने वाली मधुबूँदको खाकर मैं आता हूँ।" विद्याधरने बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके बाद पुन: कहा—"भाई, निकलना है, तो निकलो, विलम्ब करनेसे तुम्हारे प्राण नहीं बच सकेंगे। जल्दी करो।"

पुरुष—"महाभाग ! इस मधुबूँदमें अपूर्व स्वाद है। मैं निकलता हूँ, अबकी बूँद और चाट लेने दीजिये। बेचारे विद्याधरने कुछ समय तक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त पुन: कहा—"क्या भाई ! तुम्हें इससे छुटकारा पाना नहीं है ? जल्दी आओ, अब मुझे देरी हो रही है। वह लोभी पुरुष बार-बार उसी प्रकार बूँद और चाट लेने दो, उत्तर देता रहा। अब निराश होकर विद्याधर चला गया और कुछ समय पश्चात् शाखाके कट जानेपर वह उस अन्धकूपमें गिर पड़ा तथा एक किनारेके अजगरका शिकार हुआ।

इस रूपकको स्पष्ट करते हुए कविने लिखा है—

यह संसार महा वन जान। तामहिं भयभ्रम कूप समान॥
गज जिम काल फिरत निशदीस। तिहँ पकरन कहुँ विस्वावीस॥
वटकी जटा लटकि जो रही। सो आयुर्दा जिनवर कही॥

तिहूँ जर काटत मूसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुम सोय ।।
माँखी चूँटित ताहि शरीर । सो बहु रोगादिककी पीर ।।
अजगर पर्‌यो कूपके बीच । सो निगोद सबतैं गति बीच ।।

इस प्रकार इस रूपक द्वारा कविने विषय-सुखकी सारहीनताका उदाहरण प्रस्तुत किया है। भैया भगवतीदासकी पुण्यपच्चीसिका, अक्षरबत्तीसिका, शिक्षावली, गुणमंजरी, अनादिबत्तीसिका, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी, वैराग्य-पंचाशिका और आश्चर्यचतुर्दशी आदि रचनाएँ काव्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं।

महाकवि भूधरदास

हिन्दी भाषाके जैन-कवियोंमें महाकवि भूधरदासका नाम उल्लेखनीय है। कवि आगरानिवासी था और इसकी जाति खण्डेलवाल थी। इससे अधिक इनका परिचय प्राप्त नहीं होता है। इनकी रचनाओंके अवलोकनसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि कवि श्रद्धालु और धर्मात्मा था। कविता करनेका अच्छा अभ्यास था। कविके कुछ मित्र थे, जो कविसे ऐसे सार्वजनीन साहित्यका निर्माण कराना चाहते थे, जिसका अध्ययन कर साधारण जन भी आत्मसाधना और आचार-तत्त्वको प्राप्त कर सके। उन्हीं दिनों आगरामें जयसिंहसवाई सूबा और हाकीम गुलाबचन्द वहाँ आये। शाह हरिसिंहके वंशमें जो धर्मानुरागी मनुष्य थे उनकी बार-बार प्रेरणासे कविके प्रमादका अन्त हो गया और कविने विक्रम सं० १७८१में पौष कृष्णा त्रयोदशीके दिन अपना 'शतक' नामक ग्रन्थ रचकर समाप्त किया।

कविके हृदयमें आत्मकल्याणकी तरंग उठती थी और विलीन हो जाती थी, पर वह कुछ नहीं कर पाता था। अध्यात्मगोष्ठीमें जाना और चर्चा करना नित्यका काम था। एक-दिन कवि अपने मित्रोंके साथ बैठा हुआ था कि वहाँसे एक वृद्ध पुरुष निकला, जिसका शरीर थक चुका था, दृष्टि कमजोर हो गई थी, लाठीके सहारे चला जा रहा था। उसका सारा शरीर काँप रहा था। मुँहसे कभी-कभी लार भी टपकती थी। वह लाठीके सहारे स्थिर होकर चलना चाहता था, पर वहाँसे दस-पाँच कदम ही आगे चल पाया था कि संयोगसे उसकी लाठी टूट गई। पासमें स्थित लोगोंने उसे खड़ा किया और दूसरी लाठी-का सहारा देकर उसे घर पहुँचाया। वृद्धकी इस अवस्थासे कवि भूधरदासका मन विचलित हो गया[1] और उनके मुखसे निम्नलिखित पद्य निकल पड़ा—

१. आगरे मैं बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल, बालकके ख्याल सौं कवित्त कर जानैं है।
ऐसे ही करत भयो जैसिंह सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आये तिहि थाने हैं।

आया रे बुढ़ापा मानी, सुधि-बुधि बिसरानी ।।
श्रवनकी शक्ति घटी, चाल चले अटपटी,
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी ।।१।।
दाँतनकी पंक्ति टूटी, हाड़नकी सन्धि छूटी,
कायाकी नगरी लूटी, जात नहिं पहिचानी ।।२।।
बालोंने वरन फेरा, रोगने शरीर घेरा,
पुत्रहू न आवै नेरा, औरोंकी कहा कहानी ।।३।।
'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कब?
यह गति ह्वै है जब, तब पछतैहै प्रानी ।।४।।

पदके अन्तिम चरणको कविने कई बार पढ़ा और अनुभव किया कि वृद्धावस्थामें हम सबकी ऐसी ही हालत होती है। अतः आत्मोत्थानकी ओर प्रवृत्त होना चाहिए। इस प्रकार कवि भूधरदासका व्यक्तित्व सांसारिकतासे परे आत्मोन्मुखी है।

इनकी रचनाओंसे इनका समय वि० सं० की १८वीं शती (१७८१) सिद्ध होता है।

रचनाएँ

महाकवि भूधरदासने पार्श्वपुराण, जिनशतक और पद-साहित्यकी रचना कर हिन्दी-साहित्यको समृद्ध बनाया है। इनकी कविता उच्च-कोटिकी होती है।

१. पार्श्वपुराण—यह एक महाकाव्य है। इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है। किस प्रकार वैरकी परम्परा प्राणियोंके अनेक जन्म जन्मान्तरों तक चलती रहती है, यह इसमें बड़ी ही खूबीके साथ बतलाया गया है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भव पूर्व पोदनपुर नगरके राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूतिके पुत्र थे। उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था। विश्वभूतिके दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनों भाई राजाके मन्त्री हुए और जब राजा अरविन्दने वज्रकीर्त्तिपर चढ़ाई की, तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्धक्षेत्रमें आया। कमठने राजधानीमें अनेक उपद्रव मचाये और अपने

हरीसिंह शाहके सुवंश धर्मरागी नर, तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानै हैं।
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलसको अन्त भयो, उनकी सहाय यह मेरो मन मानै हैं।
सतरहसै, इक्यासिया, पोह पाख तमलीन।
तिथि तेरस रविवारको, सतक समापत कीन।।

—जिनशतकप्रशस्ति

छोटे भाईकी पत्नीके साथ दुराचार किया। जब राजा शत्रुको परास्त कर राजधानीमें आया, तो कमठके कुकृत्यकी बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। कमठका काला मुँह कर गदहेपर चढ़ा सारे नगरमें घुमाया और नगरकी सीमासे बाहर कर दिया। आत्म-प्रताड़नासे पीड़ित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियोंके साथ रहने लगा। मरुभूति कमठके इस समाचारको प्राप्त कर भूताचलपर गया और वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी। इसके बाद कविने आठ जन्मोंकी कथा अंकित की है। नवें जन्ममें काशीके विश्वसेन राजाके यहाँ पार्श्वनाथका जन्म होता है। पार्श्व आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्मसाधना करते हैं। वे तीर्थंकर बन जाते हैं। कमठका जीव उनकी तपस्यामें विघ्न करता है; पर पार्श्वनाथ अपनी साधनासे विचलित नहीं होते। केवलज्ञान प्राप्त होनेपर वे प्राणियोंको धर्मोपदेश देते हैं और अन्तमें सम्मेदाचलसे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

नायक पार्श्वनाथका जीवन अपने समयके समाजका प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मंगलकी रक्षाके लिए बद्धपरिकर है। कविने कथामें क्रमबद्धताका पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युगभावनाका प्राधान्य सर्वत्र है; पर स्थिति-निर्माणमें पूर्वके नौ भवोंकी कथा जोड़कर कविने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवनका इतना सर्वांगीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्यमें ही मिलेगा। इसमें एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियोंके बीच अंकित हुआ है। अत: इसमें मानवके रागद्वेषोंकी क्रीड़ाके लिए विस्तृत क्षेत्र है। मनुष्यका ममत्व अपने परिवारके साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनाथके जीव मरुभूतिके चरित्रसे स्पष्ट है।

वस्तुव्यापार-वर्णन, घटना-विधान और दृश्य-योजनाओंकी दृष्टिसे भी यह काव्य सफल है। कवि जीवनके सत्यको काव्यके माध्यमसे व्यक्त करता हुआ कहता है—

बालक-काया कूंपल लोय। पत्ररूप - जीवनमें होय॥
पाको पात जरा तन करै। काल-बयारि चलत पर झरै॥
मरन-दिवसको नेम न कोय। यातै कछु सुधि परै न लोय॥
एक नेम यह तो परमान। जन्म धरै सो मरै निदान॥४।६५-६७

अर्थात् किशोरावस्था कोंपलके तुल्य है। इसमें पत्रस्वरूप यौवन अवस्था है। पत्तोंका पक जाना जरा है। मृत्युरूपी वायु इस पके पत्तेको अपने एक हल्के धक्केसे ही गिरा देती है। जब जीवनमें मृत्यु निश्चित है तो हमें अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिए।

जीवनका अन्तर्दर्शन ज्ञान-दीपके द्वारा ही संभव है, पर इस ज्ञान-दीपमें तपरूपी तेल और स्वात्मानुभवरूपी बत्तीका रहना अनिवार्य है।

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर ॥४॥८१

कविने इस काव्यकी समाप्ति वि० सं० १७८९ आषाढ़ शुक्ला पंचमीको की है।[1]

२. जैन शतक—इस रचनामें १०७ कवित्त, दोहे, सवैये और छप्पय हैं। कविने वैराग्य-जीवनके विकासके लिए इस रचनाका प्रणयन किया है। वृद्धावस्था, संसारकी असारता, काल सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियोंकी तपस्या, आशा-तृष्णाकी नग्नता आदि विषयोंका निरूपण बड़े ही अद्भुत ढंगसे किया है। कवि जिस तथ्यका प्रतिपादन करना चाहता है उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रतिपादित करता है। नीरस और गूढ़ विषयोंका निरूपण भी सरस एवं प्रभावोत्पादक शैलीमें किया गया है। कल्पना, भावना और विचारोंका समन्वय सन्तुलित रूपमें हुआ है। आत्म-सौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता है कि संसारके भोगोंमें लिप्त प्राणी अहर्निश विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी संभव हो उस प्रकार मैं धन एकत्र कर आनन्द भोगूँ। मानव नाना प्रकारके सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त होनेपर संसारके समस्त अभ्युदयजन्य कार्योंको सम्पन्न करूँगा, पर उसकी धनार्जनकी यह अभिलाषा मृत्युके कारण अधूरी ही रह जाती है। यथा—

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज करे जिय राजी।
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बाँटिय भाजी॥
चिन्तत यों दिन जाहि चले, जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रूपी शतरंजकी बाजी॥

इस संसारमें मनुष्य आत्मज्ञानसे विमुख होकर शरीरकी सेवा करता है। शरीरको स्वच्छ करनेमें अनेक साबुनकी बट्टियाँ रगड़ डालता है और अनेक तेलकी शीशियाँ खाली कर डालता है। फैशनके अनेक पदार्थोंका उपयोग शारीरिक सौन्दर्य, प्रसाधनमें करता है, प्रतिदिन रगड़-रगड़कर शरीरको साफ करता है। इत्र और सेण्टोंका व्यवहार करता है। प्रत्येक इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अनेक पदार्थोंका संचय करता है। इस प्रकारसे मानवकी दृष्टि अनात्मिक

१. संवत् सतरह शतक मैं, और नवासी लीय।
सुदी अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समापत कीय॥

हो रहा है। वह शरीरको ही सब कुछ समझ गया। कवि भूधरदासने अपने अन्तस्में उसी सत्यका अनुभव कर जगत्के मानवोंको सजग करते हुए कहा है—

मात-पिता-रज-वीरज सों, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ़ धरी है॥
नाहिं तो आय लगें अबहीं, बक वायस जीव बचै न घरी है।
देह-दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥

इस प्रकार कविने इस शतकमें अनात्मिक दृष्टिको दूर कर आत्मिक दृष्टि स्थापित करनेका प्रयास किया है।

३. पद साहित्य—महाकवि भूधरदासकी तीसरी रचना पद-संग्रह है। इनके पदोंको—१. स्तुतिपरक, २. जीवके अज्ञानावस्थाके कारण परिणाम और विस्तार सूचक, ३. आराध्यकी शरणके दृढ़ विश्वास सूचक, ४. अध्यात्मोपदेशी, ५. ससार और शरीरसे विरक्ति उत्पादक, ६. नाम स्मरणके महत्त्व द्योतक और ७. मनुष्यत्वके पूर्ण अभिव्यञ्जक इन सात वर्गोंम विभक्त किया जा सकता है। इन सभी प्रकारके पदोंमें शाब्दिक कोमलता, भावोंकी मादकता और कल्पनाओंका इन्द्रजाल समन्वित रूपमें विद्यमान है। इनके पदोंमें राग-विरागका गंगा-यमुनी संगम होनेपर भी श्रृंगारिकता नहीं है। कई पद सूरदासके पदोंके समान दृष्टि-कूट भी हैं। "जगत्-जन जुआ हार चले" पदमें भाषाकी लाक्षणिकता और काव्योक्तियोंकी विदग्धता पूर्णतया समाविष्ट है। "सुनि ठगनी माया। तैं सब जग ठग खाया" पद कबीरके "माया महा ठगनी हम जानी" पदसे समकक्षता रखता है। इसी प्रकार "भगवन्त भजन क्यों भूला रे। यह ससार रैनका सुपना, तन धन वारि बबूला रे" पद "भजु मन जोवन नाम सबेरा" कबीरके पदके समकक्ष है। "चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना" आदि आध्यात्मिक पद कबीरके "चरखा चलै सुरत विरहिनका" पदके तुल्य है। इस प्रकार भूधरदासके पद जीवनमें आस्था, विश्वासकी भावना जागृत करते हैं।

कवि द्यानतराय

द्यानतराय आगरानिवासी थे। इनका जन्म अग्रवालजातिके गोयल गोत्रमें हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरसे आकर यहाँ बस गये थे। इनके पितामहका नाम वीरदास और पिताका नाम श्यामदास था। इनका जन्म वि० सं० १७३३में हुआ और विवाह वि० सं० १७४८में। उस समय आगरामें मानसिंहजीकी धर्मशैली थी। कवि द्यानतरायने उनसे लाभ उठाया।

कविको पंडित बिहारीदास और पण्डित मानसिंहके धर्मोपदेशसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इन्होंने सं० १७७७में श्रीसम्मेदशिखरकी यात्राकी थी। इनका महान ग्रन्थ 'धर्मविलासके' नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमें ३३३ पद, अनेक पूजाएँ एवं ४५ विषयोंपर फुटकर कविताएँ संग्रहीत हैं। कविने इनका संकलन स्वयं वि० सं० १७८०में किया है। काव्य-विधाकी दृष्टिसे द्यानत-विलासकी रचनाओंको निम्नलिखित वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१. पद
२. पूजापाठ-भक्ति स्तोत्र और पूजाएँ।
३. रूपक काव्य
४. प्रकीर्णक काव्य

पद—इनके पद-साहित्यको, १. बधाई, २. स्तवन, ३. आत्म-समर्पण ४. आश्वासन, ५. परत्वबोधक, ६. सहज समाधिकी आकांक्षा इन षट् श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता हैं। बधाई सूचक पदोंमें तीर्थंकर ऋषभनाथके जन्म-समयका आनन्द व्यक्त किया है। प्रसंगवश प्रभुके नख-शिखका वर्णन भी किया गया है। अपने इष्टदेवके जन्म-समयका वातावरण और उस कालकी समस्त परिस्थितियोंका स्मरण कर कवि आनन्दविभोर हो जाता है और हर्षोन्मत्त हो गा उठता है—

माई आज आनन्द या नगरी ॥टेक॥

गजगमनी, शशिवदनी तरुनी, मंगल गावति हैं सगरी ॥माई०॥
नाभिराय घर पुत्र भयो है, किये हैं अजाचक जाचक री ॥माई०॥
'द्यानत' धन्य कूख मरुदेवी, सुर सेवत जाके पग री ॥माई०॥

कविके पदोंकी प्रमुख विशेषता यह है कि तथ्योंका विवेचन दार्शनिक शैलीमें न कर काव्यशैलीमें किया गया है। "रे मन भजभज दीन दयाल, जाके नाम लेत इक खिनमें, कटै कोटि अघजाल" जैसे पदों द्वारा नामस्मरणके महत्त्वको प्रतिपादित किया है।

प्रकीर्णक काव्य—प्रकीर्णक-काव्यमें उपदेशशतक, दानबावनी, व्यवहारपच्चीसी, पूर्णपंचाशिका आदि प्रधान हैं। उपदेशशतकमें १२१ पद्य हैं। कविने आत्मसौन्दर्यका अनुभव कर उसे संसारके समक्ष इस रूपमें उपस्थित किया है, जिससे वास्तविक आन्तरिक सौन्दर्यका परिज्ञान सहजमें हो जाता है।

यह कृति मानव-हृदयको स्वार्थ-सम्बन्धोंकी संकीर्णतासे ऊपर उठाकर लोक कल्याणकी भावभूमिपर ले आती है, जिससे मनोविकारोंका परिष्कर हो जाता है। कविने आरंभमें इष्टदेवको नमस्कार करनेके उपरान्त भक्ति एवं स्तुतिकी आवश्यकता, मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा, गृहवासका दुःख, इन्द्रियोंकी दासता, नरक-निगोदके दुःख, पुण्यपापकी महत्ता, धर्मकी उपादेयता, ज्ञानी-अज्ञानीका चिन्तन, आत्मानुभूतिकी विशेषता, शुद्ध आत्मस्वरूप एवं नवतत्त्व-स्वरूप आदिका सुन्दर विवेचन किया है। भवसागरसे पार होनेका कविने कितना सुन्दर उपाय बताया है—

सोचत जात सबै दिन-रात, कछू न बसात कहा करिये जी।
सोच निवार निजातम धारहु, राग-विरोध सबै हरिये जी॥
यौं कहिये जु कहा लहिये, सु वहै कहिये करुना धरिये जो।
पावत मोख मिटावत दोष, सु यौं भवसागर कौ तरिये जी॥

कविने इसी ग्रन्थमें समताका महत्त्व बतलाते हुए कितने सुन्दर रूपमें कहा है—समदृष्टि आत्मरूपका अनुभव करता है। उसे अपने अन्तस्‌की छवि मुग्ध और अतुलनीय प्रतीत होती है। अतः वह आध्यात्मिक समरसताका आस्वादन कर निश्चिन्त हो जाता है। कविने कहा है—

काहेको सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै।
पूरब कर्म सुभासुभ संचित, सो निहचय अपनो रस दैहै॥
ताहि निवारनको बलवन्त, तिहूं जगमांहि न कोउ लसै हैं।
तातै हि सोच तजो समता गहि, ज्यौं सुख होइ जिनंद कहै हैं॥

धर्मविलास[1] या द्यानतविलासके अतिरिक्त कविके अन्य दो ग्रन्थ और पाये जाते हैं। आगमविलास तथा भेद-विज्ञान या आत्मानुभव। आगमविलासमें कविकी ४६ रचनाएँ संकलित हैं। उनका संकलन उनकी मृत्युके पश्चात् पं० जगतराय द्वारा किया गया है। कहा जाता है कि द्यानतरायकी मृत्युके पश्चात् उनकी रचनाओंको उनके पुत्र लालजीने आलमगंजवासी किसी झाझू नामक व्यक्तिको दे दिया। पंडित जगतरायने वे रचनाएँ नष्ट न हो जायें, इस आशयसे उन्हें एक गुटकेमें[1] संगृहीत कर दिया है—

---

१. यह ग्रन्थ जैन रत्नाकर कार्यालय बम्बई द्वारा फरवरी १९१४ में प्रकाशित।

आगमविलासके प्रारम्भमें १५२ सवैया-छन्दोंमें सैद्धान्तिक विषयोंकी चर्चा है। अतः सैद्धान्तिक विषयोंकी प्रधानताके कारण ही इस रचनाका नाम आगम-विलास रखा गया है।

भेदविज्ञान या आत्मानुभव यह कविकी एक अन्य रचना है। कविने इसमें जीवद्रव्य और पुद्गलादि द्रव्योंका विवेचन किया है। कविका विश्वास है कि आत्मतत्त्वरूपी चिन्तामणिके प्राप्त होते ही समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। आत्मतत्त्वके उपलब्ध होते ही विषयरस नीरस प्रतीत होने लगते हैं।

मैं एक शुद्ध ज्ञानी, निर्मल सुभाव ज्ञाता,
दृग ज्ञान चरन धारी, थिर चेतना हमारी।
× × × ×
अब चिदानन्द प्यारा, हम आपमें निहारा ॥

कवि धार्मिक प्रवृत्तिका लेखक है; पर व्यवहार और काव्यतत्त्वोंकी कमी नहीं आने पाई है। संसारकी सजीवताका चित्रण करते हुए लिखा है—

रूजगार बनै नाहिं धनतौं न घर माहिं
खानेकी फिकर बहु नारि चाहै गहना।
देनेवाले फिरि जाँहि मिलै तो उधार नाहिं
साझी मिलै चोर धन आवै नाहिं लहना।
कोऊ पूत ज्वारी भयौ, घर माहिं सुत थयौ,
एक पूत मरि गयौ ताको दुःख सहना।
पुत्री वर जोग भई ब्याही सुता जम लई,
एते दुःख सुख जाने तिसे कहा कहना ॥

१. द्यानतका सुत लालजी, चिट्ठे ल्याओ पास।
सो ले झाझूको दिए, आलमगंज सुवास ॥१३॥
तासे पुनसे सकल ही, चिट्ठे लिये मँगाय।
मोती कटले मेल है, जगतराय सुख पाय ॥१४॥
तब मन माँहि विचार, पोथी किन्ही एक ठी।
जोरि पढ़ै नर नारि, धर्म ध्यानमें थिर रहैं ॥१५॥
संवत सतरह सै चौरासी, माघ सुदी चतुर्दशी मासी।
तब यह लिखत समापत कीन्हीं, मैनपुरीके माहिं नवीनी ॥१६॥

किशनसिंह

यह रामपुरके निवासी संगही कल्याणके पौत्र तथा आनन्दसिंहके पुत्र थे। इनकी खण्डेलवाल जैन जाति थी और पाटनी गोत्र था। यह रामपुर छोड़कर साँगानेर आकर रहने लगे थे। इन्होंने संवत् १७८४में क्रियाकोश नामक छन्दोबद्ध ग्रन्थ रचा था, जिसकी श्लोकसंख्या २९०० है। इसके अलावा भद्रबाहुचरित संवत् १७८५ और रात्रिभोजन त्यागव्रतकथा सं० १७७३ में छन्दोबद्ध लिखे हैं। इनको कविता साधारण कोटिकी है। नमूना निम्न प्रकार है—

माथुर वसंतराय बोहरांको परधान,
संगही कल्याणदास पाटणी बखानिये।
रामपुर वास जाकों सुत सुखदेव सुधी,
ताको सुत किस्नसिंह कविनाम जानिये॥
तिहिं निसि भोजन त्यजन व्रत कथा सुनी,
तांकी कीनीं चौपई सुआगम प्रमाणिये।
भूलि चूकि अक्षर घर जौं वाकों बुधजन,
सोधि पढ़ि वीनती हमारी मनि आनियें॥

कवि खड्गसेन

यह लाहौर-निवासी थे। इनके पिताका नाम लूणराज था। कविके पूर्वज पहले नारनोलमें रहा करते थे। यहींसे आकर लाहौरमें रहने लगे थे। इन्होंने नारनोलमें भी चतुर्भुज वैरागीके पास अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। इन्होंने संवत् १७१३ में त्रिलोकदर्पणकी रचना सम्पूर्ण की थी। कविता साधारण ही है। उदाहरणार्थ—

बागड देश महा विसतार, नारनोल तहाँ नगर निवास।
तहाँ कौम छत्तीसौं बसें, अपणें करमतणां रस लसै॥
श्रावक बसै परम गुणवन्त, नाम पापडीवाल वसन्त।
सब भाई मैं परमित लियैं, मानू साह परमगण किये।
जिसके दो पुत्र गुणश्वास, लूणराज ठाकुरीदास।
ठाकुरसीके सुत हैं तीन, तिनकौ जाणौं परम प्रवीन।
बड़ो पुत्र धनपाल प्रमाण, सोहिलदास महासुख जाण।

मनोहरलाल या मनोहरदास

यह कवि धामपुरके निवासी थे। आसू साहके यहाँ इनका आश्रय था।

सेठके सम्बन्धमें इन्होंने मनोरंजक घटना लिखी है। सेठकी दरिद्रताके कारण वह बनारससे अयोध्या चले गये, किन्तु वहाँके सेठने सम्मान और प्रचुर सम्पत्तिके साथ वापस लौटा दिया। कविने हीरामणिके उपदेश एवं आगरा निवासी सालिवाहण, हिसारके जगदत्त मिश्र तथा उसी नगरके रहनेवाले गंग-राजके अनुरोधसे 'धर्मपरीक्षा' नामक ग्रन्थकी रचना संवत् १७७५ में की है। यह रचना कहीं-कहीं बहुत सुन्दर है। इस ग्रन्थका परिमाण ३००० पद्य है। कविने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है :—

कविता मनोहर खंडेलवाल सोनी जाति,
मूलसंघी मूल जाको सागानेर वास है।
कर्मके उदय तैं घामपुर मैं वसन भयो,
सबसौं मिलाप पुनि सज्जनको दास है।
व्याकरण छंद अलकार कछु पढ्यो नाहि,
भाषामें निपुन तुच्छ बुद्धिका प्रकास है।
बाई दाहिनी कछू समझै संतोष लीयै,
जिनकी दुहाई जाकैं जिन ही की आस है।

नथमल विलाला

नथमल विलाला आगराके रहनेवाले थे। इन्होंने वि० सं० १८२७ में 'वरांगचरितभाषा'की रचना करनेवाले अटेरनिवासी पाण्डेय लालचन्द्रको सहायता प्रदान की थी।[१] नथमलके पिताका नाम शोभाचन्द्र था और गोत्र विलाला, ये प्रतिभाशाली कवि थे। इनकी रचनाएँ निम्न लिखित हैं :—

१. सिद्धान्तसारदीपक (वि० सं० १८२४)
२. जिनगुणविलास
३. नागकुमारचरित (वि० सं० १८३४)
४. जीवंधरचरित (वि० सं० १८३५)
५. जम्बूस्वामीचरित

पंडित दौलतराम कासलीवाल

पं० दौलतरामजी कासलीवालका जन्म वि० सं० १७४५में बसवा ग्राममें

---

१. नन्दन सोभाचन्दको नथमल अति गुनवान। गोत विलाला गगनमें उद्यो चंद समान॥
नगर आगरो तज रहै, हीरापुरमें आय। करत देखि इस ग्रंथ को कीनी अधिक सहाय॥

हुआ था। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। जाति खण्डेलवाल और गोत्र कासलीवाल था। जयपुरके महाराजसे इनका विशेष परिचय था। ये उदयपुर राज्यमें जयपुरके वकील बनकर गये थे और वहाँ ३० वर्षों तक रहे। संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी-गद्यसाहित्यके क्षेत्रमें सबसे पहली रचना इन्हीं दौलतरामकी उपलब्ध है।

ये दौलतराम पं० टोडरमल, रायमल आदिके समकालीन थे। संस्कृत, हिन्दी और अपभ्रंश इन तीनों ही भाषाओंके विद्वान् थे। इनका समय विक्रम को १८वीं शतीका अंतिम भाग और १९वीं शतीका पूर्वार्द्ध है। इन्होंने निम्नलिखित रचनाएँ लिखी हैं—

१. पुण्यास्रववचनिका (वि० सं० १७७७), २. क्रियाकोषभाषा (वि० १७९५) ३. आदिपुराणवचनिका (सं० १८२४), ४. हरिवंशपुराण (सं० १८२९), ५. परमात्मप्रकाशवचनिका, ६. श्रीपालचरित (सं० १८२२), ७. अध्यात्मबाराखड़ी (वि० सं० १७९८), ८. वसुनन्दीश्रावकाचार टब्बा (वि० सं० १८१८), ९. पदमपुराणवचनिका (सं० १८२३), १०. विवेकविलास (वि० सं० १८२७), ११. तत्त्वार्थसूत्रभाषा, १२. चौबीसदण्डक, १३. सिद्धपूजा, १४. आत्मबत्तीसी, १५. सारसमुच्चय, १६. जीवंधरचरित (वि० सं० १८०५), १७. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय जो पं० टोडरमल पूर्ण नहीं कर पाये थे।

कविने पदमपुराणवचनिकामें अपना परिचय देते हुए लिखा है कि रायमल्ल साधर्मी भाईकी प्रेरणासे इस ग्रन्थकी वचनिका लिखी जा रही है। लिखा है—

जम्बूद्वीप सदा शुभ थान। भरत क्षेत्र ता माहिं प्रमाण ॥
उसमें आरजखंड पुनीत। वसैं ताहि में लोक विनीत ॥१॥
तिनके मध्य ढुंढार जु देश। निवसैं जैनी लोक विशेष ॥
नगर सवाई जयपुर महा। तासकी उपमा जाय न कहा ॥२॥
राज्य करै माधव नृप जहां। कामदार जैनी जन तहां ॥
ठौर-ठौर जिनमंदिर बने। पूजैं तिनकूं भविजन घने ॥३॥
बसें महाजन नाना जाति। सेवैं निजमारग बहु ख्याति ॥
रायमल्ल साधर्मी एक। जाके घट में स्वपर-विवेक ॥४॥
दयावन्त गुणवन्त सुजान। पर-उपकारी परम निधान ॥
दौलतराम सु ताको मित्र। तासों भाष्यों वचन पवित्र ॥५॥
पद्मपुराण महाशुभ ग्रन्थ। तामें लोकशिखरको पन्थ ॥
भाषारूप होय जो येह। बहुजन बांच करैं अति नेह ॥६॥

ताके वचन हियेमें धार। भाषा कीनी मति अनुसार॥
रविषेणाचारज-कृत सार। जाहि पढ़ें बुधजन गुणधार॥७॥
जिनधर्मिनकी आज्ञा लेय। जिनशासन माहीं चित देय॥
आनन्दसुतने भाषा करी। नंदो विरदो अति रस भरी॥८॥

× × ×

सम्वत् अष्टादश शत जान। ता ऊपर तेईस बखान (१८२३)॥
शुक्ल पक्ष नवमी शनिवार। माघ मास रोहिणी ऋख सार॥१०॥

आचार्यकल्प पं० टोडरमल

महाकवि आशाधरके अनुपम व्यक्तित्वकी तुलना करनेवाला व्यक्तित्व आचार्यकल्प पं० टोडरमलजीका है। इन्हें प्रकृतिप्रदत्त स्मरणशक्ति और मेधा प्राप्त थी। एक प्रकारसे ये स्वयंबुद्ध थे। इनका जन्म जयपुरमें हुआ था। पिताका नाम जोगीदास और माताका नाम रमा या लक्ष्मी था। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र गोदीका था। ये शैशवसे ही होनहार थे। गूढ़-से-गूढ़ शंकाओंका समाधान इनके पास मिलता था। इनकी योग्यता एवं प्रतिभाका ज्ञान तत्कालीन सधर्मी भाई रायमल्लने इन्द्रध्वज पूजाके निमन्त्रणपत्रमें जो उद्‌गार प्रकट किये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है। इन उद्‌गारोंको ज्यों-का-त्यों दिया जा रहा है—

"यहाँ घणां भायां और घणीं बायांके व्याकरण व गोम्मटसारजीकी चर्चा का ज्ञान पाइए हैं। सारा ही विषैं भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है, जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बणाई, और पाँच-सात ग्रन्थोंकी टीका बणायवेका उपाय है। न्याय, व्याकरण, गणित, छन्द, अलंकारका यदि ज्ञान पाइये है। ऐसे पुरुष महन्त बुद्धिका धारक ईकाल विषैं होना दुर्लभ है। ताते यासू मिलें सर्व सन्देह दूरि होय है। घणी लिखवा करि कहा आपणां हेतका वांछीक पुरुष शीघ्र आप यांसू मिलाप करो।"

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि टोडरमलजी महान् विद्वान् थे। वे स्वभावसे बड़े नम्र थे। अहंकार उन्हें छू तक न गया था। इन्हें एक दार्शनिकका मस्तिष्क, श्रद्धालुका हृदय, साधुका जीवन और सैनिककी दृढ़ता मिली थी। इनकी वाणीमें इतना आकर्षण था कि नित्य सहस्रों व्यक्ति इनका शास्त्र-प्रवचन सुननेके लिए एकत्र होते थे। गृहस्थ होकर भी गृहस्थीमें अनुरक्त नहीं थे। अपनी साधारण आजीविका कर लेनेके बाद ये शास्त्रचिन्तनमें रत रहते

थे। इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। इसका एक प्रमाण यही है कि इन्होंने किसी से बिना पढ़े ही कन्नड़ लिपिका अभ्यास कर लिया था।

अब तकके उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर इनका जन्म वि० सं० १७९७ है और मृत्यु सं० १८२४ है। टोडरमलजी आरंभसे ही क्रान्तिकारी और धर्मके स्वच्छ स्वरूपको हृदयंगत करनेवाले थे। इनकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें विशेष जानकारी नहीं है, पर इनके गुरुका नाम वंशोधरजी मैनपुरी बतलाया जाता है। वह आगरासे आकर जयपुरमें रहने लगे थे और बालकोंको शिक्षा देते थे। टोडरमल बाल्यकालसे ही प्रतिभाशाली थे। अतएव गुरुको भी उन्हें स्वयंबुद्ध कहना पड़ा था। वि० सं० १८११ फाल्गुन शुक्ला पंचमीको १४-१५ वर्षकी अवस्थामें अध्यात्मरसिक मुल्तानके भाइयोंके नाम चिट्ठी लिखी थी, जो शास्त्रीय चिट्ठी है। राजस्थानके उत्साही विद्वान् पंडित देवीदास गोधाने अपने सिद्धान्तसारसंग्रहवचनिका ग्रन्थमें इनका परिचय देते हुए लिखा है—

"सो दिल्ली पढ़िकर बसुवा आय पाछे जयपुरमें थोड़ा दिन टोडरमल्लजी महा बुद्धिमानके पासि शास्त्र सुननेको मिल्या..........सो टोडरमलजीके श्रोता विशेष बुद्धिमान दीवान रतनचन्दजी, अजबरायजी, तिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी, विशेष चरचावान ओसवाल, क्रियावान उदासीन तथा तिलोकचन्द सौगाणी, नयनचन्दजी पाटनी इत्यादि टोडरमलजीके श्रोता विशेष बुद्धिमान तिनके आगे शास्त्रका तो व्याख्यान किया।"

इस उद्धरणसे टोडरमलजीकी शास्त्र-प्रवचन शक्ति एवं विद्वता प्रकट होती है। आरा सिद्धान्त भवनमें संगृहीत शान्तिनाथपुराणकी प्रशस्तिमें टोडरमलजीके सम्बन्धमें जो उल्लेख मिलता है उससे उनके साहित्यिक व्यक्तित्वपर पूरा प्रकाश पड़ता है।

वासी श्री जयपुर तनौ, टोडरमल्ल क्रिपाल।
ता प्रसंग को पाय के, गह्यो सुपंथ विशाल।
गोमठसारादिक तने, सिद्धान्तन में सार।
प्रवर बोध जिनके उदै, महाकवि निरधार।
फुनि ताके तट दूसरो, राजमल्ल बुधराज।
जुगल मल्ल जब ये जुरे, और मल्ल किह काज।
देश ढूंढाहड आदि दे, सम्बोधे बहु देस।
रचि रचि ग्रन्थ कठिन किये, 'टोडरमल्ल' महेश।

माता-पिताकी एकमात्र सन्तान होनेके नाते टोडरमल्लजीका बचपन बड़े लाड़-प्यारमें बीता। बालककी व्युत्पन्नमति देखकर इनके माता-पिताने शिक्षाकी

विशेष व्यवस्था की और वाराणसीसे एक विद्वान्‌को व्याकरण, दर्शन आदि विषयोंको पढ़ानेके लिए बुलाया। अपने विद्यार्थीकी व्युत्पन्नमति और स्मरण शक्ति देखकर गुरुजी भी चकित थे। टोडरमल व्याकरणसूत्रोंको गुरुसे भी अधिक स्पष्ट व्याख्या करके सुना देते थे। छः मासमें ही इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरणको पूर्ण कर लिया।

अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् इन्हें धनोपार्जनके लिए सिंहाणा जाना पड़ा। इससे अनुमान लगता है कि इस समय तक इनके पिताका स्वर्गवास हो चुका था। वहाँ भी टोडरमलजी अपने कार्यके अतिरिक्त पूरा समय शास्त्र-स्वाध्यायमें लगाते थे। कुछ समय पश्चात् रायमल्लजी भी शंका-समाधानार्थ सिंघाणा पहुँचे और इनकी नैसर्गिक प्रतिभा देखकर इन्हें 'गोम्मटसार'का भाषानुवाद करनेके लिए प्रेरित किया। अल्प समयमें ही इन्होंने इसकी भाषाटीका समाप्त कर ली। मात्र १८-१९ वर्षकी अवस्थामें ही गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार एवं त्रिलोकसारके ६५००० श्लोकप्रमाणकी टीका कर इन्होंने जनसमूहमें विस्मय भर दिया।

सिंघाणासे जयपुर लौटनेपर इनका विवाह सम्पन्न कर दिया गया। कुछ समय पश्चात् दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ेका नाम हरिश्चन्द्र और छोटेका नाम गुमानीराम था। इस समय तक टोडरमलजीके व्यक्तित्वका प्रभाव सारे समाज पर व्याप्त हो चुका था और चारों ओर उनकी विद्वत्ताकी चर्चा होने लगी थी। यहाँ उन्होंने समाज-सुधार एवं शिथिलाचारके विरुद्ध अपना अभियान शुरू किया। शास्त्रप्रवचन एवं ग्रन्थनिर्माणके माध्यमसे उन्होंने समाजमें नई चेतना एवं नई जागृति उत्पन्न की। इनका प्रवचन तेरहपन्थी बड़े मन्दिरमें प्रतिदिन होता था, जिसमें दीवान रतनचन्द, अजबराय, त्रिलोकचन्द महाराज जैसे विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित होते थे। सारे देशमें उनके शास्त्रप्रवचनकी धूम थी।

टोडरमलका जादू जैसा प्रभाव कुछ व्यक्तियोंके लिए असह्य हो गया। वे उनकी कीर्त्तिसे जलने लगे और इस प्रकार उनके विनाशके लिए नित्य प्रति षड्यन्त्र किया जाने लगा। अन्तमें वह षड्यन्त्र सफल हुआ और युवावस्थामें यौवनकी कीर्त्ति अन्तिम चरणमें पहुँचने वाली थी कि उन्हें मृत्युका सामना करना पड़ा। सं० १८२४में इन्हें आततायियोंका शिकार होना पड़ा और हँसते-हँसते इन्होंने मृत्युका आलिंगन किया।

रचनाएँ

टोडरमलजीकी कुल ११ रचनाएँ हैं, जिनमें सात टीकाग्रन्थ और चार मौलिक ग्रन्थ हैं। मौलिक ग्रन्थोंमें १. मोक्षमार्गप्रकाशक २. आध्यात्मिक पत्र, ३.

अर्थसंदृष्टि और ४. गोम्मटसारपूजा परिगणित हैं। टीकाग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

१. गोम्मटसार (जीवकाण्ड)—सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका। यह सं० १८१५में पूर्ण हुई।

२. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड)— ,, ,,

३. लब्धिसार— ,, ,, टीका सं० १८१८में पूर्ण हुई।

४. क्षपणासार—वचनिका सरस है।

५ त्रिलोकसार—इस टीकामें गणितकी अनेक उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण चर्चाएँ की गई हैं।

६. आत्मानुशासन—यह आध्यात्मिक सरस संस्कृत-ग्रन्थ है। इसको वचनिका संस्कृत-टीकाके आधारपर है।

७. पुरुषार्थसिद्‌ध्युपाय—इस ग्रन्थकी टीका अधूरी ही रह गई है।

मौलिक रचनाएँ

१. अर्थसंदृष्टि, २. आध्यात्मिक पत्र, ३. गोम्मटसारपूजा और ४. मोक्षमार्ग-प्रकाशक।

इन समस्त रचनाओंमें मोक्षमार्गप्रकाशक सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह ९ अध्यायोंमें विभक्त है और इसमें जैनागमका सार निबद्ध है। इस ग्रन्थके स्वाध्यायसे आगमका सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस ग्रन्थके प्रथम अधिकारमें उत्तम सुख प्राप्तिके लिए परम इष्टअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधुका स्वरूप विस्तारसे बतलाया गया है। पंचपरमेष्ठीका स्वरूप समझनेके लिए यह अधिकार उपादेय है। द्वितीय अधिकारमें संसारावस्थाका स्वरूप वर्णित है। कर्मबन्धनका निदान, कर्मोंके अनादिपनकी सिद्धि, जीव-कर्मोंकी भिन्नता एवं कथंचित् अभिन्नता, योगसे होनेवाले प्रकृति-प्रदेशबन्ध, कषायसे होनेवाले स्थिति और अनुभाग बन्ध, कर्मोंके फलदानमें निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध, द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप, जीवकी अवस्था आदिका वर्णन है।

तृतीय अधिकारमें संसार-दुःख तथा मोक्षसुखका निरूपण किया गया है। दुःखोंका मूल कारण मिथ्यात्व और मोहजनित विषयाभिलाषा है। इसीसे चारों गतियोंमें दुःखकी प्राप्ति होती है। चौथे अधिकारमें मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्याचारित्रका निरूपण किया गया है। इष्ट-अनिष्टकी मिथ्या *कल्पना राग-द्वेषकी प्रवृत्तिके कारण होती है; जो इस प्रवृत्तिका त्याग करता है* उसे सुखकी प्राप्ति होती है।

पंचम अधिकारमें विविधमत-समीक्षा है। इस अध्यायसे पं० टोडरमलके

प्रकाण्ड पाण्डित्य और उनके विशाल ज्ञानकोशका परिचय प्राप्त होता है। इस अध्यायसे यह स्पष्ट है कि सत्यान्वेषी पुरुष विविध मतोंका अध्ययन कर अनेकान्तबुद्धिके द्वारा सत्य प्राप्त कर लेता है।

षष्ठ अधिकारमें सत्यतत्त्वविरोधी असत्यायतनोंके स्वरूपका विस्तार बतलाया गया है। इसमें यही बतलाया गया है कि मुक्तिके पिपासुको मुक्ति-विरोधी तत्त्वोंका कभी सम्पर्क नहीं करना चाहिए। मिथ्यात्वभावके सेवनसे सत्यका दर्शन नहीं होता।

सप्तम अधिकारमें जैन मिथ्या दृष्टिका विवेचन किया है। जो एकान्त मार्गका अवलम्बन करता है वह ग्रन्थकारकी दृष्टिमें मिथ्यादृष्टि है। रागादिकका घटना निर्जराका कारण है और रागादिकका होना बन्धका। जैनाभास, व्यवहाराभासके कथनके पश्चात्, तत्त्व और ज्ञानका स्वरूप बतलाया गया है।

अष्टम अधिकारमें आगमके स्वरूपका विश्लेषण किया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोगके स्वरूप और विषयका विवेचन किया गया है। नवम अधिकारमें मोक्षमार्गका स्वरूप, आत्महित, पुरुषार्थसे मोक्षप्राप्ति, सम्यक्त्वके भेद और उसके आठ अंग आदिका कथन आया है।

इस प्रकार पं० टोडरमलने मोक्षमार्गप्रकाशकमें जैनतत्त्वज्ञानके समस्त विषयोंका समावेश किया है। यद्यपि उसका मूल विषय मोक्षमार्गका प्रकाशन है; किन्तु प्रकारान्तरसे उसमें कर्मसिद्धान्त, निमित्त-उपादान, स्याद्वाद-अनेकान्त, निश्चय-व्यवहार, पुण्य-पाप, दैव और पुरुषार्थपर तात्त्विक विवेचना निबद्ध की गयी है।

रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें पं० टोडरमलने अध्यात्मवादकी ऊँची बातें कही हैं। सविकल्पके द्वारा निर्विकल्पक परिणाम होनेका विधान करते हुए लिखा है—

"वही सम्यक्त्वी कदाचित् स्वरूप ध्यान करनेको उद्यमी होता है, वहाँ प्रथम भेदविज्ञान स्वपरका करे, नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित केवल चैतन्य-चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जाने; पश्चात् परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्मविचार ही रहता है; वहाँ अनेक प्रकार निजस्वरूपमें अहंबुद्धि धरता है। चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होनेपर सहज ही आनन्द-तरंग उठती है, रोमांच हो आता है, तत्पश्चात् ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लगे; वहाँ सर्वपरिणाम उस रूपमें एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं; दर्शन-ज्ञानादिकका व नय-प्रमाणादिकका भी विचार विलय हो जाता है।"

चैतन्य स्वरूपका जो सविकल्पसे निश्चय किया था, उस ही में व्याप्य-व्यापक-रूप होकर इस प्रकार प्रवर्त्तता है जहाँ ध्याता-ध्येयपना दूर हो गया। सो ऐसी दशाका नाम निर्विकल्प अनुभव है। बड़े नयचक्र ग्रन्थमें ऐसा ही कहा है—

तच्चाणेसणकाले समयं बुज्झेहि जुत्तिमग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जम्हा ॥२६६॥"

शुद्ध आत्माको नय-प्रमाण द्वारा अवगत कर जो प्रत्यक्ष अनुभव करता है वह सविकल्पसे निर्विकल्पक स्थितिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार रत्नको खरीदनेमें अनेक विकल्प करते हैं, जब प्रत्यक्ष उसे पहनते हैं तब विकल्प नहीं है, पहननेका सुख ही है। इस प्रकार सविकल्पके द्वारा निर्विकल्पका अनुभव होता है। इसी चिट्ठीमें प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाणोंके भेदके पश्चात् परिणामोंके अनुभवकी चर्चा की गई है। कथनकी पुष्टिके लिए आगमके ग्रन्थोंके प्रमाण भी दिये गये हैं।

पं० टोडरमल गद्यलेखकके साथ कवि भी हैं। उनके कविहृदयका पता टीकाओंमें रचित पद्योंसे प्राप्त होता है। लब्धिसारकी टीकाके अन्तमें अपना परिचय देते हुए लिखा है—

मैं हों जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो;
लग्यो है अनादि तें कलंक कर्म-मलको।
वाहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भए,
भयो है शरीरको मिलाप जैसे खलको॥
रागादिक भावनको पायके निमित्त पुनि,
होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको।
ऐसे ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग,
बने तो बने यहाँ उपाय निज थलको॥

दौलतराम द्वितीय

कवि दौलतराम द्वितीय लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। ये हाथरसके निवासी और पल्लीवाल जातिके थे। इनका गोत्र गंगटीवाल था, पर प्रायः लोग इन्हें फतेहपुरी कहा करते थे। इनके पिताका नाम टोडरमल था। इनका जन्म वि० सं० १८५५ या १८५६के मध्य हुआ था।

कविके पिता दो भाई थे। छोटे भाईका नाम चुन्नीलाल था। हाथरसमें ही दानों भाई कपड़ेका व्यापार करते थे। अलीगढ़ निवासी चिन्तामणि कविके

श्वसुर थे। जिस समय छींटका थान छापने बैठते थे, उस समय चौकीपर गोम्मटसार, त्रिलोकसार और आत्मानुशासन ग्रंथोंको विराजमान कर लेते थे और छापनेके कामके साथ-साथ ७०-८० श्लोक या गाथाएँ भी कण्ठाग्र कर लेते थे।

वि० सं० १८८२में मथुरा निवासी सेठ मनीरामजी पं० चम्पालालजीके साथ हाथरस आये और उक्त पण्डितजीको गोम्मटसारका स्वाध्याय करते हुए देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा अपने साथ मथुरा लिवा ले गये। वहाँ कुछ दिन तक रहनेके पश्चात् आप सासनी या लश्करमें आकर रहने लगे।

कविके दो पुत्र हुए। बड़े पुत्रका नाम टीकाराम था। इनके वंशज आज-कल भी लश्करमें निवास करते हैं।

कहा जाता है कि कविको अपनी मृत्युका परिज्ञान अपने स्वर्गवाससे छः दिन पहले ही हो गया था। अतः उन्होंने अपने समस्त कुटुम्बियोंको एकत्र कर कहा—"आजसे छठवें दिन मध्याह्नके पश्चात् मैं इस शरीरसे निकलकर अन्य शरीर धारण करूँगा। अतः आप सबसे क्षमायाचना कर समाधिमरण ग्रहण करता हूँ।" सबसे क्षमायाचना कर संवत् १९२३ मार्गशीर्ष कृष्ण-अमा-वस्याको मध्याह्नमें दिल्लीमें अपने प्राणोंका त्याग किया था।

कविवरके समकालीन विद्वानोंमें रत्नकरण्डश्रावकाचारके वचनिकाकर्त्ता पं० सदासुख, बुधजन विलासके कर्त्ता बुधजन, तीस-चौबीसी आदि कई ग्रंथोंके रचयिता वृन्दावन, चन्द्रप्रभकाव्यकी वचनिकाके कर्त्ता तनसुखदास, प्रसिद्ध भजनरचयिता भागचन्द्र और पं० बख्तावरमल आदि प्रमुख हैं।

रचनाएँ

इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. छहढाला और २. पदसंग्रह। छहढालाने तो कविको अमर बना दिया है। भाव, भाषा और अनुभूतिकी दृष्टिसे रचना बेजोड़ है। जैनागमका सार इसमें अंकित कर 'गागरमें सागर' भर देनेकी कहा-वतको चरितार्थ किया है। इस अकेले ग्रंथके अध्ययनसे जैनागमके साथ परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

पदसंग्रहमें विविध प्रवृत्तियोंका विश्लेषण किया गया है। कवि कहता है कि मनकी बुरी आदत पड़ गयी है, जिससे अनादिकालसे विषयोंकी ओर दौड़ता रहता है। कवि कहता है—

हे मन, तेरी कुटेव यह, करन-विषयमें धावै है॥ टेक॥
इन्हींके वश तू अनादि तैं, निज स्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन-छिन समाकुल, दुरगति-विपति चखावै है॥ हे० मन० ॥१॥

फरस-विषयके कारण वारन, गरत परत दुःख पावे है।
रसना इन्द्रीवश झख जलमें, कंटक कंठ छिदावै है।। है० मन० ।।२।।

इनके पद विषयकी दृष्टिसे १. रक्षाकी भावना, २. आत्म भर्त्सना, ३. भयदर्शन, ४. आश्वासन, ५. चेतावनी, ६. प्रभुस्मरणके प्रति आग्रह, ७. आत्मदर्शन होनेपर अस्फुट वचन, ८. सहज समाधिकी आकांक्षा ९ स्वपदकी अकांक्षा, १०. संसार विश्लेषण, ११. परसत्त्वबोधक और १२. आत्मानन्द श्रेणीमें विभक्त किये जा सकते हैं।

भर्त्सना विषयक पदोंमें कविने विषय-वासनाके कारण मलिन हुए मनको फटकारा है तथा कवि अपने विकार और कषायोंका कच्चा चिट्ठा प्रकटकर अपनी आत्माका परिष्कार करना चाहता है। भयदर्शन सम्बन्धी पदोंमें मनको भय दिखलाकर आत्मोन्मुख किया गया है। कवि आत्मानुभूतिकी ओर झुकता हुआ कहता है—

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी।।
भोग भुजंग भोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी।
ते अनन्त भव-भीम भरे दुख, परे अधोगति खोरी,
बँधे दृढ़ पातक डोरी।। मान ले०।।

इस प्रकार कवि दौलतरामके पदोंमें भावावेश, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक संगीत, कल्पनाकी तूलिका द्वारा भावचित्रोंकी कमनीयता, आनन्द विह्वलता, रसानुभूतिकी गम्भीरता एवं रमणीयताका पूरा समन्वय विद्यमान है।

पण्डित जयचन्द छावड़ा

हिन्दी जैन साहित्यके गद्य-पद्य लेखक विद्वानोंमें पण्डित जयचन्दजी छावड़ाका नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धिकी हिन्दी टीका समाप्त करते हुए अन्तिम प्रशस्तिमें अपना परिचय अंकित किया है—

काल अनादि भ्रमत संसार, पायो नरभव मैं सुखकार।
जन्म फागई लयौ सुथानि, मोतीराम पिताकै आनि।।
पायो नाम तहां जयचन्द, यह परजाल तणूं मकरंद।
द्रव्य दृष्टि मैं देखूं जबै, मेरा नाम आतमा कबै।।
गोत छावड़ा श्रावक धर्म, जामें भली क्रिया शुभकर्म।
ग्यारह वर्ष अवस्था भई, तब जिन मारगकी सुधि लही।।
× × × ×

निमित्त पाय जयपुरमें आय, बड़ी जु शैली देखी भाय ॥
गुणी लोक साधर्मी भले, ज्ञानी पंडित बहुत मिले।
पहले थे वंशीधर नाम, धरै प्रभाव भाव शुभ ठाम ॥
टोडरमल पंडित मति खरी, गोमटसार वचनिका करी।
ताकी महिमा सब जन करैं, वाचैं पढ़ैं बुद्धि विस्तरैं ॥
दौलतराम गुणी अधिकाय, पंडितराय राजमैं जाय।
ताकी बुद्धि लसै सब खरी, तीन प्रमाण वचनिका करी ॥
रायमल्ल त्यागी गृह वास, महाराम व्रत शील निवास।
मैं हूँ इनकी संगति ठानि, बुधसारू जिनवाणी जानि ॥

अर्थात्—कविका जन्म फागी नामक ग्राममें हुआ था। यह ग्राम जयपुरसे डिग्गीमालपुरा रोडपर ३० मीलकी दूरीपर बसा हुआ है। यहाँ आपके पिता मोतीरामजी पटवारीका काम करते थे। इसीसे आपका वंश पटवारी नामसे प्रसिद्ध रहा है।

११ वर्षकी अवस्था व्यतीत हो जानेपर कविका ध्यान जैनधर्मकी ओर गया और उसीमें अपने हितको निहित समझकर आपने अपनी श्रद्धाको सुदृढ़ बनानेका प्रयत्न किया। फलतः जयचन्दजीने जैनदर्शन और तत्त्वज्ञानके अध्ययनका प्रयास किया। वि० सं० १८२१में जयपुरमें इन्द्रध्वज पूजा महोत्सवका विशाल आयोजन किया गया था। इस उत्सवमें आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजीके आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। इन प्रवचनोंका लाभ उठानेके लिए दूर-दूरके व्यक्ति वहाँ आये थे। पण्डित जयचन्द भी यहाँ पधारे और जैनधर्मकी ओर इनका पूर्ण झुकाव हुआ। फलतः ३-४ वर्षके पश्चात् ये जयपुरमें ही आकर रहने लगे। जयचन्दजीने जयपुरमें सैद्धान्तिक ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन किया।

जयचन्दजीका स्वभाव सरल और उदार था। उनका रहन-सहन और वेश-भूषा सीधी-सादी थी। ये श्रावकोचित क्रियाओंका पालन करते थे और बड़े अच्छे विद्याव्यसनी थे। अध्ययनार्थियोंकी भीड़ इनके पास सदा लगी रहती थी। इनके पुत्रका नाम नन्दलाल था, जो बहुत ही सुयोग्य विद्वान् था और पण्डितजीके पठन-पाठनादि कार्यों में सहयोग देता था। मन्नालाल, उदयचन्द और माणिकचन्द इनके प्रमुख शिष्य थे।

एक दिन जयपुरमें एक विदेशी विद्वान शास्त्रार्थ करनेके लिए आया। नगरके अधिकांश विद्वान उससे पराजित हो चुके थे। अतः राज्य कर्मचारियों और विद्वान पंचोंने पण्डित जयचन्दजीसे, उक्त विद्वान्से शास्त्रार्थ करनेको

प्रार्थना की। पर उन्होंने कहा कि आप मेरे स्थानपर मेरे पुत्र नन्दलालको ले जाइये। यही उस विद्वानको शास्त्रार्थमें परास्त कर देगा। हुआ भी यही। नन्दलालने अपनी युक्तियोंसे उस विद्वान्‌को परास्त कर दिया। इससे नन्दलालका बड़ा यश व्याप्त हुआ और उसे नगरकी ओरसे उपाधि दी गयी। नन्दलालने जयचन्दजीको सभी टीकाग्रन्थोंमें सहायता दी है। सर्वार्थसिद्धिकी प्रशस्तिमें लिखा है—

> लिखी यहै जयचन्दनै सोधी सुत नन्दलाल।
> बुधलखि भूलि जु शुद्ध करो बांचौ सिखै वो बाल॥
> नन्दलाल मेरा सुत गुनी बालपने तैं विद्यासुनी।
> पण्डित भयो बड़ो परवीन ताहूने यह प्रेरणकीन॥

पण्डित जयचन्दजीका समय वि० सं०की १९वीं शती है। इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथोंकी भाषा वचनिकाएँ लिखी हैं—

१. सर्वार्थसिद्धि वचनिका (वि० सं० १८६१ चैत्र शुक्ला पञ्चमी)
२. तत्त्वार्थसूत्र भाषा
३. प्रमेयरत्नमाला टीका (वि० सं० १८६३ आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी बुधवार)
४. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा (वि० सं० १८६३ श्रावण कृष्णा तृतीया)
५. द्रव्यसंग्रह टीका (वि० सं० १८६३ श्रावण कृष्णा चतुर्दशी और दोहामय पद्यानुवाद)
६. समयसार टीका (वि० सं० १८६४ कार्तिक कृष्णा दशमी)
७. देवागमस्तोत्र टीका (वि० सं० १८६६)
८. अष्टपाहुड भाषा (वि० सं० १८६७ भाद्र शुक्ला त्रयोदशी)
९. ज्ञानार्णव भाषा (वि० सं० १८६९)
१०. भक्तामर स्तोत्र (वि० सं० १८७०)
११. पद संग्रह
१२. चन्द्रप्रभचरित्र (न्यायविषयिक) भाषा। वि० सं० १८७४
१३. धन्यकुमारचरित्र

पण्डित जयचन्दकी वचनिकाओंकी भाषा ढूंढारी है। क्रियापदोंके परिवर्तित करनेपर उनकी भाषा आधुनिक खड़ी बोलीका रूप ले सकती है। उदाहरणार्थ यहाँ दो एक उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

"बहुरि वचन दोय प्रकार हैं, द्रव्यवचन, भाववचन। तहाँ वीर्यान्तराय मतिश्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होतैं अंगोपांगनामा नामकर्मके उदयतैं आत्माके बोलनेकी सामर्थ्य होय, सो तो भाववचन है। सो पुद्गलकर्मके निमित्त-

तें भया तातें पुद्गलका कहिये बहुरि तिस बोलनेका सामर्थ्य सहित आत्माकरि कंठ तालुवा जीभ आदि स्थाननिकरि प्रेरे जे पुद्गल, ते वचनरूप परिणये ते पुद्गल ही है। ते श्रोत्र इन्द्रियके विषय हैं, और इन्द्रियके ग्रहण योग्य नाहीं हैं। जैसे घ्राणइन्द्रियका विषय गंधद्रव्य है, तिस घ्राण कैं रसादिक ग्रहण योग्य नहीं हैं तैसें।"—सर्वार्थसिद्धि ५-१९।

"जैसे इस लोकविषें सुवर्ण अर रूपाकूं गालि एक किये एक पिंडका व्यवहार होता है, तैसें आत्माके अर शरीरके परस्पर एक क्षेत्रावगाहकी अवस्था होतें, एक पणाका व्यवहार है, ऐसें व्यवहार मात्र ही करि आत्मा अर शरीरका एकपणा है। बहुरि निश्चयतें एकपणा नाहीं है, जातें पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनका ऐसा सुवर्ण अर रूपा है, तिनकें जैसें निश्चय विचारिये तब अत्यन्त भिन्नपणा करि एक-एक पदार्थपणाकी अनुपपत्ति है, तातैं नानापना ही है। तैसें ही आत्मा अर शरीर उपयोग स्वभाव हैं। तिनिकैं अत्यन्त भिन्नपणातैं एक पदार्थपेणाकी प्राप्ति नाहीं तातैं नानापणा ही है। ऐसा प्रगट नय विभाग है।"—समयसार २८

दीपचन्दशाह

दीपचन्दशाह वि०के १८वीं शताब्दीके प्रतिभावान विद्वान् और कवि हैं। ये सांगानेरके रहनेवाले थे और बादमें आकर आमेरमें रहने लगे। इन्होंने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें अपना जीवन परिचय, माता-पिता या गुरुपरम्परा आदिके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। कविकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी थी। ये आत्मानुभूतिके पुजारी थे। तेरह पंथी सम्प्रदायके अनुयायी भी इन्हें बताया गया है। कवि दीपचन्दका गोत्र काशलीवाल था। इनकी रचनाओंके अध्ययनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि इनके पावन हृदयमें संसारी जीवोंकी विपरीताभिनवेशमय परिणतिको देखकर, इन्हें अत्यन्त दुःख होता था। ये चाहते थे कि संसारके सभी प्राणी स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धान्यादि बाह्य पदार्थोंमें आत्मबुद्धि न करे, उन्हें भ्रमवश अपने न माने। उन्हें कर्मोदयसे प्राप्त समझे तथा उनमें कर्तृत्व बुद्धिसे सम्पन्न अहंकार, ममकार रूप परिणतिको न होने दे।

कवि दीपचन्द मेधावी कवि हैं, इन्होंने 'चिद्‌विलास' नामक ग्रन्थ वि० सं० १७७९में समाप्त किया है। इनका गद्य अपरिमार्जित और आरम्भिक अवस्थामें है। इनकी भाषा ढूढ़ारी और व्रजमिश्रित है। रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. चिद्विलास
२. अनुभवप्रकाश
३. गुणस्थानभेद
४. आत्मावलोकन
५. भावदीपिका
६. परमार्थपुराण

ये रचनाएँ गद्यमें लिखी गयी हैं।

७. अध्यात्म पच्चीसी
८. द्वादशानुप्रेक्षा
९. ज्ञानदर्पण
१०. स्वरूपानन्द
११. उपदेशसिद्धान्त

कविने गद्य रचनाओंमें अपने भावोंको पूर्णतया स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। पद्यमें भी इन्होंने सहजरूपमें अपने भावोंको अभिव्यक्त किया है। यहाँ उदाहरणार्थ ज्ञानार्णव और उपदेशरत्नमालासे दो एक पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

अलख अरूपी अजआतम अमित तेज, एक अविकार सारपद त्रिभुवनमें।
चिरलौं सुभाव जाको समै हू सम्हारो नांहि, परपद आपो मानि भम्यो भववनमें॥
करम कलोलनिमें मिल्यो है निशङ्कमहा, पद-पद प्रतिरागी भयो तन-तनमें।
ऐसी चिरकालकी बहु विपति विलाय जाय नेकहू निहार देखो आप निजघनमें॥
—ज्ञानदर्पण, पद्य ४६

× × × ×

मानि पर आपो प्रेम करत शरीरसेती, कामिनी कनकमांहि करै मोह भावना।
लोकलाज लागि मूढ आपनौं अकाज करै, जानै नहीं जे जे दुख परगति पावना॥
परिवार प्यार करि बांधै भव-भार महा, बिनु ही विवेक करै कालका गमावना।
कहै गुरुज्ञान नाव बैठ भव सिन्धुतरि, शिवथान पाय सदा अचल रहावना॥
उपदेशरत्नमाला, पद्य ६

कविकी प्रतिभाका प्रवेश आध्यात्मिक रचनाओंके लिखनेमें विशेषरूपसे हुआ है।

सदासुख काशलीवाल

वि०की १९ वीं शतीके विद्वानोंमें पण्डित सदासुख काशलीवालका महत्व-

पूर्ण स्थान है। इनका जन्म वि० सं० १८५२ में जयपुरनगरमें हुआ था। इनके पिताका नाम दुलीचन्द और गोत्र काशलीवाल था। इनका जन्म डेडराजवंशमें हुआ था। अर्थप्रकाशिकाकी वचनिकामें अपना परिचय देते हुए लिखा है—

डेडराजके वंश माँहि इक किंचित् ज्ञाता।
दुलीचन्दका पुत्र काशलीवाल विख्याता॥
नाम सदासुख कहें आत्मसुखका बहु इच्छुक।
सो जिनवाणी प्रसाद विषयतैं भये निरिच्छुक॥

पण्डित सदासुखजी बड़े अध्ययनशील थे। ये सदाचारी, आत्मनिर्भय, अध्यात्मरसिक और धार्मिक लगनके व्यक्ति थे। ये परम संतोषी थे। आजीविकाके लिए थोड़ा-सा कार्य कर लेनेके पश्चात् अध्ययन और चिन्तनमें रत रहते थे। इनके गुरु पण्डित पन्नालालजी और प्रगुरु पण्डित जयचन्दजी छावड़ा थे। इनका ज्ञान भी अनुभवके साथ-साथ वृद्धिगत होता गया था। बीसपंथी आम्नायके अनुयायी होनेपर भी तेरहपंथी आम्नायके प्रति किसी भी प्रकारका विद्वेष नहीं था। इनके शिष्योंमें पण्डित पन्नालाल संगी, नाथूराम दोषी और पण्डित पारसदास निगोत्या प्रधान हैं। पारसदासने 'ज्ञानसूर्योदय'नाटककी टोकामें इनका परिचय देते हुए इनके स्वभाव और गुणोंपर प्रकाश डाला है—

लौकिक प्रवीना तेरापंथ माँहि लीना,
मिथ्याबुद्धि करि छीना जिन आतमगुण चीना है।
पढ़ैं औ पढ़ावें मिथ्या अलटकूँ कढ़वैं,
ज्ञानदान देय जिन मारग बढ़ावें हैं।
दीसें घरवासी रहें घरहूतें उदासी,
जिनमारग प्रकाशी जग कीरत जगमासी है।
कहाँ लौ कहीजे गुणसागर सुखदास जूके,
ज्ञानामृत पीय बहु मिथ्याबुद्धि नासी है।

पण्डित सदासुखजीके गार्हस्थ्यजीवनके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है, फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि पण्डितजीको एक पुत्र था, जिसका नाम गणेशीलाल था। यह पुत्र भी पिताके अनुरूप होनहार और विद्वान् था, पर दुर्भाग्यवश २० वर्षकी अवस्थामें ही इकलौते पुत्रका वियोग हो जानेसे पण्डिजीपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। संसारी होनेके कारण पण्डितजी भी इस आघातसे विचलितसे हो गये। फलतः अजमेर निवासी स्वनामधन्य सेठ मूलचन्दजी सोनीने इन्हें जयपुरसे अजमेर बुला लिया। यहाँ आनेपर इनके दुःखका उफान कुछ शान्त हुआ। इनका समाधिमरण वि० सं० १९२३में हुआ। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. भगवती आराधना वचनिका
२. सूत्रजीकी लघुवचनिका
३. अर्थ प्रकाशिकाका स्वतन्त्र ग्रन्थ
४. अकलंकाष्टक वचनिका
५. रत्नकरंडश्रावकाचार वचनिका
६. मृत्युमहोत्सव वचनिका
७. नित्यनियम पूजा
८. समयसार नाटकपर भाषा वचनिका
९. न्यायदीपिका वचनिका
१०. ऋषिमंडलपूजा वचनिका

पण्डित सदासुखजीकी भाषा ढूँढारी होनेपर भी, पण्डित टोडरमलजी और पण्डित जयचन्दजीकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत और खड़ी बोलीके अधिक निकट है। भगवती आराधनाकी प्रशस्तिकी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मेरा हित होनेको और, दीखै नाहिं जगतमें ठौर।
यातैं भगवति शरण जु गही, मरण आराधन पाऊँ सही॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद।
पंच परमगुरु पदकरि ढोक, संयम सहित लहू परलोक॥

पण्डित भागचन्द

१९वीं शताब्दीके अन्तिम पाद और २०वीं शताब्दीके प्रथम पादके प्रमुख विद्वानोंमें पण्डित भागचन्दजीकी गणना है। ये संस्कृत और प्राकृत भाषाके साथ हिन्दी भाषाके भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। ग्वालियरके अन्तर्गत ईसागढ़के निवासी थे। इनकी जाति ओसवाल और धर्म दिगम्बर जैन था। दर्शनशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासी थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओंमें कविता करनेकी अपूर्व क्षमता थी। शास्त्रप्रवचन और तत्वचर्चामें इनको विशेष रस आता था। ये सोनागिरि क्षेत्रपर वार्षिक मेलेमें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते थे और शास्त्र-प्रवचन द्वारा जनताको लाभान्वित करते थे। कविका अन्तिम समय आर्थिक कठिनाईमें व्यतीत हुआ है। इनकी 'प्रमाणपरीक्षा'की टीकाका रचनाकाल सं० १९१३ है। अत: कविका समय २० वीं शताब्दीका प्रारम्भिक भाग है।

कवि द्वारा रचित पदोंसे उनके जीवन और व्यक्तित्वके सम्बन्धमें अनेक जानकारीकी बातें प्राप्त होती हैं। जिनभक्त होनेके साथ कवि आत्मसाधक भी

हैं, प्रतिदिन सामायिक करना तथा सांसारिक भोगोंको निस्सार समझना और साहित्यसेवा तथा सरस्वती आराधनको जीवनका प्रमुख तत्त्व मानना कविकी विशेषताओंके अन्तर्गत है। कविकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

१. महावीराष्टक (संस्कृत)
२. अमितगतिश्रावकाचार वचनिका
३. उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला वचनिका
४. प्रमाणपरीक्षा वचनिका
५. नेमिनाथपुराण
६. ज्ञानसूर्योदय नाटक वचनिका
७. पद संग्रह

कवि भागचन्दकी प्रतिभाका परिचय उनके पदसाहित्यसे प्राप्त होता है। इनके पदोंमें तर्कविचार और चिन्तनकी प्रधानता है। निम्नलिखित पदमें दार्शनिक तत्त्वोंका सुन्दर विश्लेषण हुआ है—

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।
मोह वारुणी पी अनादि तैं, परपदमें चिर सोये।
सुख करंड चितपिंड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ।। जे दिन०।।
होहि बहिर्मुख हानि राग रुख, कर्मबीज बहु बोये।
तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि, चितमें हरखे रोये ।। जे दिन० ।।
धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये।
परद्रव्यनिकी चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।। जे दिन० ।।
अब निजमें निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये।
यह शिव-मारग समरस सागर, 'भागचंद' हित तो ये ।। जे दिन० ।।

विशुद्ध दार्शनिकके समान कविने तत्त्वार्थ श्रद्धानी और ज्ञानीकी प्रशंसा की है। यद्यपि वर्णनमें कविने रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारोंका आलम्बन लिया है, किन्तु शुष्क सैद्धान्तिकता रहनेसे भाव और रसकी कमी रह गयी है। ज्ञानी जीव किस प्रकार संसारमें निर्भय होकर विचरण करता है तथा उन्हें अपना आचार-व्यवहार किस प्रकार रखना चाहिये, इत्यादि विषयका विश्लेषण करनेवाले पदोंमें कविका चिन्तन विद्यमान है, पर भावुकता नहीं है। हाँ प्रार्थनापरक पदोंमें मूर्त-अमूर्तको आलम्बन लेकर कविने अपने अन्तर्जगतकी अभिव्यक्ति अनूठे ढंगसे की है। कविके पदोंमें विराट कल्पना, अगाध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं।

"निज कारज काहे न सारै रे भूले प्रानी"; "जीव तू भ्रमत सदैव अकेला

संगसाथी कोई नहीं तेरा", एवं "मोसम कौन कुटिल खल कामी। तुम सम कलिमल दलन न नामी" पदोंमें कविने अपनी भावनाओंका निविड रूप प्रदर्शित किया है। इस प्रकार कवि भागचन्द अपने क्षेत्रके प्रसिद्ध कवि हैं।

बुधजन

इनका पूरा नाम वृद्धिचन्द था। ये जयपुरके निवासी और खण्डेलवाल जैन थे। इनका समय अनुमानतः १९वीं शताब्दीका मध्यभाग है।

बुधजन नीतिसाहित्य निर्माताके रूपमें प्रतिष्ठाप्राप्त हैं। इनकी रचनाओंमें कई रचनाएं नीतिसे सम्बन्धित हैं। ग्रन्थोंकी रचना सं० १८७१ से १८९२ तक पायी जाती है। अभी तक इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. तत्त्वार्थबोध (वि० सं० १८७१)
२. योगसार भाषा
३. पञ्चास्तिकाय (वि० सं० १८९१)
४. बुधजनसतसई (वि० सं० १८७९)
५. बुधजनविलास (वि० सं० १८९२)
६. पद संग्रह

बुधजनसतसईमें देवानुरागशतक, सुभाषित नीति, उपदेशान्धकार और विराग भावना ये चार विभाग हैं और ६९५ दोहे हैं। बुधजनने दया, मित्र, विद्या, संतोष, धैर्य, कर्मफल, मद, समता, लोभ, धन, धनव्यय, वचन, द्यूत, मांस, मद्य, परनारीगमन, वेश्यागमन, शोक आदि विषयोंपर नीतिपरक उक्तियाँ लिखी हैं। इन उक्तियोंपर वसुनन्दि, हारीत, शुक्र, गुरु, पुत्रक आदि प्राचीन नीतिकारोंका पूर्णप्रभाव है। कविताकी दृष्टिसे बुधजनसतसईके दोहे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, जितने नीतिकी दृष्टिसे। कविने एक-एक दोहेमें जीवनको गतिशील बनानेवाले अमूल्य सन्देश भरे हैं। कवि कहता है—

एक चरन हूँ नित पढ़े, तो काटे अज्ञान।
पनिहारीकी लेज सो, सहज कटे पाषान॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाय।
सेवत फल भासे न तौ, छाया तो रह जाय॥
पर उपदेश करन निपुन, ते तौ लखे अनेक।
करे समिक बोले समिक, ते हजारमें एक॥
विपताको धन राखिये, धन दीजे रखि दार।
आतम हितको छाड़िए, धन, दारा, परिवार॥

कतिपय दोहे तो तुलसी, कबीर और रहीमके दोहोंसे अनुप्राणित दिखलायी पड़ते हैं। विरागभावना खण्डमें कविने संसारकी असारताका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। इस खण्डके सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं। दृष्टान्तों द्वारा संसारकी वास्तविकताका चित्रण करनेमें कविको अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुका चित्र नेत्रोंके सामने मूर्तिमान होकर उपस्थित होता है—

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमें, बिछुरेंगे निरधार॥
आया सो नाहीं रह्या, दशरथ लछमन राम।
तू कैसें रह जायगा, झूठ पापका धाम॥

बुधजनका पदसंग्रह भी विभिन्न राग-रागनियोंसे युक्त है। इस संग्रहमें २४३ पद हैं। इन पदोंमें अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक संवेदनशीलता और समाहित भावनाका पूरा अस्तित्व विद्यमान है। आत्मशोधनके प्रति जो जागरूकता इनमें है, वह बहुत कम कवियोंमें उपलब्ध है। इनकी विचारोंकी कल्पना और आत्मानुभूतिको प्रेरणा पाठकोंके समक्ष ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है, जिससे पाठक आत्मानुभूतिमें लीन हुए बिना नहीं रह सकता—

मैं देखा आतम रामा॥ टेक०॥
रूप, फरस, रस, गंध तें न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरंजन जाके नाहीं, क्रोध, लोभ-मद कामा॥ मैं देखा०॥

× × × ×

भजन बिन यौं ही जनम गमायो।
पानी पै ल्या पाल न बांधी, फिर पीछे पछतायो॥ भजन०॥
रामा-मोह भये दिन खोवत, आशापाश बंधायो।
जप-तप संजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो॥ भजन०॥

स्पष्ट है कि बुधजनकी भाषापर राजस्थानीका प्रभाव है। पदोंमें राजस्थानी प्रवाह और प्रभाव दोनों ही विद्यमान है।

वृन्दावनदास

कवि वृन्दावनका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक गाँवमें सं० १८४२ में हुआ था। ये गोयल गोत्रीय अग्रवाल थे। कविके वंशधर बारा छोड़कर काशीमें आकर रहने लगे। कविके पिताका नाम धर्मचन्द्र था। बारह वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन अपने पिताके साथ काशी आये थे। काशीमें लोग बाबर शहीदकी गलीमें रहते थे।

वृन्दावनकी माताका नाम सिताबी और स्त्रीका नाम रुक्मिणि था। इनकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशीके ठठेरी बाजारमें थी। इनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे। इनके यहाँ उस समय टकसालाका काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुरकी टकसाला देखने आया। वृन्दावन भी उस समय वहीं उपस्थित थे। उस समय किरानी अंग्रेजने इनके श्वसुरसे कहा—"हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं कि उसमें कैसे सिक्के तैयार होते हैं।" वृन्दावनने उस अंग्रेज किरानीको फटकार दिया और उसे टकसाला नहीं दिखलायी। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ वहाँसे चला गया।

संयोगसे कुछ दिनोंके उपरान्त वही अंग्रेज किरानी काशीका कलक्टर होकर आया। उस समय वृन्दावन सरकारी खजांचीके पदपर आसीन थे। साहब बहादुरने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर ही इन्हें पहचान लिया और मनमें बदला लेनेकी बलवती भावना जागृत हुई। यद्यपि कविवर अपना काम ईमानदारी, सच्चाई और कुशलतासे सम्पन्न करते थे, पर जब अफसर ही विरोधी बन जाये तब कितने दिनों तक कोई बच सकता है। आखिरकार एक जाल बनाकर साहबने इन्हें तीन वर्षकी जेलकी सजा दे दी और इन्होंने शान्ति पूर्वक उस अंग्रेजके अत्याचारोंको सहा।

कुछ दिनके उपरान्त एक दिन प्रातःकाल ही कलक्टर साहब जेलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होंने कविको जेलकी एक कोठरीमें पद्मासन लगाये निम्न स्तुति पढ़ते हुए देखा—

हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी,
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी।

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और भैरवीमें गाते जाते थे। कविता करनेकी इनमें अपूर्व शक्ति थी। जिनेन्द्रदेवके ध्यानमें मग्न होकर धारा प्रवाह कविता कर सकते थे। इनके साथ दो लेखक रहते थे, जो इनकी कविताएँ लिपिबद्ध किया करते थे, परन्तु जेलकी कोठरीमें अकेले ही ध्यान मग्न होकर भगवानका चिन्तन करते हुए गानेमें लीन थे। इनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी। साहब बहुत देर तक इनकी इस दशाको देखता रहा। उसने 'खजांची बाबू' 'खजांची बाबू' कहकर कई बार पुकारा, पर कविका ध्यान नहीं टूटा। निदान कलक्टर साहब अपने आफिसको लौट गये और थोड़ी देरमें एक सिपाहीके द्वारा उनको बुलवाया और पूछा—"तुम क्या गाटा और रोटा था"? वृन्दावनने उत्तर दिया—"अपने भगवान्से तुम्हारे अत्या-

चारकी प्रार्थना करता था। साहबके अनुरोधसे वृन्दावनने पुन: "हे दीनबन्धु करुणानिधानजी" विनती उन्हें सुनायी और उसका अर्थ भी समझाया। साहब बहुत प्रसन्न हुआ और इस घटनाके तीन दिन बाद ही कारागृहसे उन्हें मुक्त कर दिया गया। तभीसे उक्त विनती संकटमोचन स्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है। इनके कारागृहकी घटनाका समर्थन इनकी निम्नलिखित कवितासे भी होता है—

"श्रीपति मोहि जान जन अपनो,
हरो विघन दुख दारिद जेल।"

कहा जाता है कि राजघाटपर फुटही कोठीमें एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे। इनकी बड़ी भारी दुकान थी। कविने कुछ दिनों तक इस दुकानकी मैनेजरीका कार्य भी किया था। यह अनवरत कविता रचनेमें लीन रहते थे। जब ये जिन मन्दिरमें दर्शन करने जाते, तो प्रतिदिन एक विनती या स्तुति रचकर भगवान्के दर्शन करते। इनके साथ देवीदास नामक व्यक्ति रहते थे। इन्हें पद्मावती देवीका इष्ट था। यह शरीरसे बड़े बली थे। बड़े-बड़े पहलवान भी इनसे भयभीत रहते थे। इनके जीवनमें अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटी हैं। इनके दो पुत्र थे—अजितदास और शिखरचन्द। अजितदासका विवाह आरामें बाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था। अतः अजितदास आरामें ही आकर बस गये थे। यह भी पिताके समान कवि थे।

कवि वृन्दावनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

१. प्रवचनसार
२. तीस चौबीसी पाठ
३. चौबीसी पाठ
४. छन्द शतक
५. अर्हत्पाशाकेवली
६. वृन्दावनविलास

कवि वृन्दावनकी रचनाओंमें भक्तिकी ऊँची भावना, धार्मिक सजगता और आत्मनिवेदन विद्यमान है। आत्मपरितोषके साथ लोकहित सम्पन्न करना ही इनके काव्यका उद्देश्य है। भक्ति विह्वलता और विनम्र आत्म समर्पणके कारण अभिव्यञ्जना शक्ति सबल है। सुकुमार भावनायें, लयात्मक संगीतके साथ प्रस्फुटित हो पाठकके हृदयमें अपूर्व आशाका संचार करती हैं। कवि जिनेन्द्रकी आराधना करता हुआ कहता है—

निशदिन श्रीजिन मोहि अधार ।।टेक।।
जिनके चरन-कमलके सेवत, संकट कटत अपार ।। निशदिन० ।।
जिनको वचन सुधारस-गर्भित, मेटत कुमति विकार ।। निशदिन० ।।
भव आताप बुझावत को है, महामेघ जलधार ।। निशदिन० ।।
जिनको भगति सहित नित सुरपत, पूजत अष्ट प्रकार ।। निशदिन० ।।
जिनको विरद वेद विद वरनत, दारुण दुःख-हरतार ।। निशदिन० ।।
भविक वृन्दकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार ।। निशदिन० ।।

× × × ×

घन घन श्री दीनदयाल ।। टेक० ।।
परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल ।
मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण मनिभाल ।। घन० ।।

महाकवि वृन्दावनदासके चौबीसो पाठसे हर व्यक्ति परिचित है। आज उत्तर भारतमें ही नहीं दक्षिण भारतमें भी इस पाठका पूरा प्रचार है। निश्चयतः कवि वृन्दावनदास जन सामान्यके कवि हैं।

हिन्दीके अन्य चर्चित कवि

हिन्दीमें शताधिक छोटे-बड़े कवि हुए हैं। हमने पूर्वमें प्रसिद्ध कवियोंका ही इतिवृत्त उपस्थित किया है। इनके अतिरिक्त लब्धप्रतिष्ठ अनेक कवि और लेखक भी विद्यमान हैं, पर उनके सम्बन्धमें विस्तृत परिचय देनेका अवसर नहीं है। अतएव संक्षेपमें हिन्दीके कुछ कवि और लेखकोंके सम्बन्धमें इतिवृत्त उपस्थित किया जाता है।

जयसागर

जयसागर नामके दिगम्बर सम्प्रदायमें दो कवि हुए हैं। एक काष्ठा संघके नन्दी तटके गच्छसे सम्बन्धित हैं। इनकी गुरुपरम्परामें सोमकीर्त्ति, विजयसेन यशःकीर्त्ति, उदयसेन, त्रिभुवनकीर्त्ति और रत्नभूषणके नाम आये हैं। रत्नभूषण ही जयसागरके गुरु हैं। इनका समय वि० सं० १६७४ है। जयसागर हिन्दी और संस्कृत दोनोंही भाषाओंमें काव्यरचना करते थे। संस्कृतमें इनकी पार्श्वपञ्चकल्याणक और हिन्दीमें ज्येष्ठजिनवरपूजा, विमलपुराण, रत्नभूषणस्तुति और तीर्थं जयमाला नामकी रचनाएँ हैं।

दूसरे जयसागर ब्रह्म जयसागर हैं। इनका समय वि० सं० की १८वीं शतीका प्रथम पाद है। ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणकी सूरत शाखामें

हुए हैं। इनकी गुरु परम्परामें देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मी चन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादिचन्द्र और महीचन्द्रके नाम आये हैं। महीचन्द्रके पश्चात् मेरुचन्द्र भट्टारक पदपर आसीन हुए हैं। ये ब्रह्म जयसागरके गुरुभाई थे। मेरुचन्द्रका समय वि० सं० १७२२-१७३२ सिद्ध है। ब्रह्म जयसागरकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. सीताहरण
२. अनिरुद्धहरण
३. सगरचरित

खुशालचंद काला

यह कवि देहलीके निवासी थे। कभी-कभी ये साँगानेर भी आकर रहा करते थे। इनके पिताका नाम सुन्दर और माताका नाम अभिधा था। इन्होंने भट्टारक लक्ष्मीदासके पास विद्याध्ययन किया था। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१. हरिवंशपुराण (सं० १७८०)
२. पद्मपुराण (सं० १७८५)
३. धन्यकुमारचरित
४. जम्बूचरित
५. व्रतकथाकोश

शिरोमणिदास

यह कवि पण्डित गंगादासके शिष्य थे। भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे सं० १६३२ में धर्मसार नामक दोहा-चौपाईबद्ध ग्रन्थ सिहरोन नगरमें रचा है। इस नगरके शासक उस समय राजा देवीसिंह थे। इस ग्रन्थमें कुल ७५५ दोहा-चौपाई है। रचना स्वतन्त्र है, किसीका अनुवाद नहीं।

जोधराज गोदीका

ये सांगानेरके निवासी हैं। इनके पिताका नाम अमरराज था। हरिनाम मिश्रके पास रहकर इन्होंने प्रीतिंकरचरित, कथाकोश, धर्मसरोवर, सम्यक्त्वकौमुदी, प्रवचनसार, भावदीपिका आदि रचनाएँ लिखी हैं।

लोहट

कवि लोहटके पिताका नाम धर्म था। ये बघेरवाल जातिके थे। हींग और

सुन्दर इनके बड़े भाई थे। पहले ये साँभरमें रहते थे, फिर बूँदीमें आकर रहने लगे। कविके समयमें रावभावसिंहका राज्य था। इन्होंने बूँदीनगर एवं वहाँके राजवंशका वर्णन किया है। इन्होंने यशोधरचरितका पद्यानुवाद वि० सं० १७२१ में समाप्त किया है।

लक्ष्मीदास

पण्डित लक्ष्मीदास भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। सांगानेरके रहनेवाले थे। इन दिनों महाराज जयसिंहका राज्य था। इन्होंने यशोधरचरितकी रचना भट्टारक सकलकीर्ति और पद्मनाभकी रचनाके आधारपर की है। यशोधरचरित वि० सं० १७८१ में पूर्ण हुआ है।

गद्यकार राजमल्ल

हिन्दी जैन गद्यलेखकोंमें सबसे प्राचीन गद्यलेखक राजमल्ल हैं। इन्होंने वि० सं० १६०० के आस-पास समयसारकी हिन्दी टीका लिखी है। महाकवि बनारसीदासने इन्हींकी टीकाके आधारपर 'नाटक समयसार'की रचना की है।

पाण्डे जिनदास

ब्रह्म शान्तिदासके पास इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। ये मथुराके रहनेवाले थे। यहीं रहते हुए वि० सं० १६४२ में 'जम्बूस्वामीचरित'की रचना की है। इनकी अन्य रचना 'जोगीरासो' भी बतायी जाती है।

ब्रह्म गुलाल

ये पद्मावती पुरवाल जातिके थे और चन्दवारके पास टापू नामक ग्रामके निवासी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कृष्णजगावनचरित' है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविवर ब्रह्मगुलालजी भट्टारक जगभूषणके शिष्य थे। उस समय टापू गाँवके राजा कीरतसिंह थे। यहींपर धरमदासजीके कुलमें मथुरामल्ल हुए थे। इन्हीं मथुरामल्लके उपदेशसे सगुणमार्गका निरूपण करनेके लिए सं० १६७१ में इस ग्रन्थकी रचना की है। कविकी एक अन्य कृतिके 'त्रेपन-क्रिया' भी उपलब्ध है, जो वि० सं० १६५५ में लिखी गयी है।

भारामल

कवि भारामल फर्रुखाबादके निवासी सिंघई परशुरामके पुत्र थे और

इनकी जाति खरौवा थी। इन्होंने भिण्डनगरमें रहकर सं० १८१३ में 'चारु-चरित'की रचना की थी। सप्तव्यसनचरित, दानकथा, शीलकथा और रात्रि-भोजनकथा भी इनके छन्दोबद्ध ग्रन्थ हैं।

बखतराम

कवि बखतराम जयपुर लश्करके निवासी थे। इनके चार पुत्र थे—जीवन-राम, सेवाराम, खुशालचन्द और गुमानीराम। इनका समय १९वीं शताब्दी-का द्वितीय पाद है। इन्होंने मिथ्यात्वखण्डन और बुद्धिविलास नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं। बुद्धिविलासके आरम्भमें कविने जयपुरके राजवंशका इतिहास लिखा है। सं० ११९१ में मुसलमानोंने जयपुरमें राज्य किया। इसके पूर्वके कई हिन्दू राजवंशोंकी नामावली दी है। इस ग्रन्थका वर्ण्यविषय विविध धार्मिक विषय, संघ, दिगम्बर पट्टावली, भट्टारकों तथा खण्डेलवाल जातिकी उत्पत्ति आदि है। इस ग्रन्थकी समाप्ति कविवरने मार्गशीर्षशुक्ला द्वादशी सं० १८२७ में की है।

टेकचंद

हिन्दी वचनिकाकारोंमें इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। टीकाकार होनेके साथ ये कवि भी हैं। कथाकोशछन्दोबद्ध, बुधप्रकाशछन्दोबद्ध तथा कई पूजाएँ पद्यबद्ध हैं। वचनिकाओंमें तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका, सं० १८३७ में और सुदृष्टि तरंगिणीकी वचनिका सं० १८३८ में लिखी है। 'षटपाहुड'की वचनिका भी इनकी उपलब्ध है।

पण्डित जगमोहनदास और पण्डित परमेष्ठी सहाय

आरानिवासी पण्डित परमेष्ठी सहाय और पण्डित जगमोहनदासको हिन्दी जैनसाहित्यके इतिहाससे पृथक् नहीं किया जा सकता है। श्री पण्डित परमेष्ठी सहायने 'अर्थप्रकाशिका' नामक एक टीका जगमोहनदासकी तत्त्वार्थविषयक जिज्ञासाकी शान्तिके लिए लिखी है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें बताया है—

पूरब इक गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम।
तामैं जिन चैत्यालय लसैं, अग्रवाल जैनी बहु बसैं॥
बहु ज्ञाता जिनके जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठी सहाय।
जैनग्रन्थ रुचि बहु केरे, मिथ्या धरम न चित्तमें घेरे॥

प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि पण्डित परमेष्ठी सहायके पिताका नाम कीर्त्तिचन्द्र था। उन्हींके पास इन्होंने आगमशास्त्रका अध्ययन किया था तथा अपनी कृति

अर्थप्रकाशिकाको जयपुर निवासी प्रसिद्ध वचनिकार पण्डित सदासुखजीके पास संशोधनार्थ भेजी थी।

पण्डित जगमोहनदास भी अच्छे कवि है। इनकी कविताओंका एक संग्रह 'धर्मरत्नोद्योत' नामसे स्व० पण्डित पन्नालालजी बाँकलीवालके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो चुका है। पण्डित सदासुखजीके समकालीन होनेसे कविका जन्म सं० १८६५के लगभग है।

मनरंगलाल

मनरंगलाल कन्नौजके निवासी थे, जातिके पल्लीवाल थे। इनके पिताका नाम कन्नोजीलाल और माताका नाम देवकी था। कन्नौजमें गोपालदासजी नामक एक धर्मात्मा सज्जन निवास करते थे। इनके अनुरोधसे ही कविने चौबीसी पाठकी रचना की है। इस प्रसिद्ध पाठका रचनाकाल वि० सं० १८५७ है। इसके अतिरिक्त इनके निम्नलिखित ग्रंथ भी उपलब्ध हैं—नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित, सप्तऋषिपूजा एवं शिखिर सम्मेदाचल माहात्म्य। शिखिर सम्मेदाचल माहात्म्यका रचनाकाल वि० सं० १८८९ है।

माधवपुर राज निवासी पण्डित डालूराम, आगरा निवासी पण्डित भूधर मिश्र भी अच्छे कवि हैं। डालूरामने गुरुपदेश श्रावकाचार और सम्यक्त्व प्रकाश तथा भूधर मिश्रने पुरुषार्थसिद्ध्युपायपर विशद टीका लिखी है।

उपर्युक्त कवियोंके अतिरिक्त आदिकालमें भी कुछ जैन कवियोंने काव्य ग्रन्थोंकी रचना की है। कवि सधारूका प्रद्युम्नचरित और कवि राजसिंहका जिनदत्तचरित प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। राजसिंहका अपरनाम रल्ह भी बताया गया है। जिनदत्तचरितकी प्रशस्तिमें लिखा है कि रल्ह कविने इस काव्यको वि० सं० १३५४ भाद्रपद शुक्ला पंचमी गुरुवारके दिन समाप्त किया। उन दिनों भारतपर अल्लाउद्दीन खिलजी शासन कर रहा था। इस प्रकार वि० सं० की १४वीं १५वीं शतीमें भी जैन कवियों द्वारा अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं।

कन्नड़ जैन कवि

दक्षिण भारतमें कन्नड़, तमिल, तेलगू, मलयालम एवं तुलु ये पाँच भाषाएँ प्रचलित हैं। इनमेंसे कन्नड़ और तमिल भाषामें पर्याप्त जैन साहित्य लिखा गया है। कन्नड़ साहित्यमें गम्भीर चिन्तन, समुन्नत हार्दिक विचार एवं हृदय-

की गहनतम भावनाओंकी अभिव्यक्ति विद्यमान है। इस साहित्यकी व्यापकताकी परिधिकी रेखाएँ कावेरीसे गोदावरीके सुरम्य अंचलको समेटती हैं। इस साहित्यमें कन्नड़ प्रदेशकी धरतीकी धड़कनें समाहित हैं। कन्नड़ साहित्यकी अभिवृद्धिमें जैन कवियोंका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

आदिपम्प

कन्नड़ साहित्यका सर्वश्रेष्ठ कवि पम्प है। इसका समय ई० सन् ९४१ है। इन्होंने 'आदिपुराण' और 'भारत' ग्रंथोंकी रचना की है। ये दोनों ग्रन्थ चम्पू काव्य हैं। पम्पने स्वयं अपने सम्बन्धमें लिखा है—"मेरे विख्यात चिर नूतन समुद्रवत गम्भीर काव्य मेरे परवर्ती कवियोंके लिए प्रमोदप्रद हैं।" पम्पके वंशज वैदिक धर्मानुयायी थे। इसके पिता अविराम देवरायने जैनधर्म स्वीकार किया था।

पम्पने आदिपुराणमें काव्यके अमृतानन्दके साथ धार्मिक सिद्धान्तोंका भी निरूपण किया है। कवि पम्पमें कल्पना शक्तिका भी प्राचुर्य है। उनका दूसरा ग्रन्थ 'विक्रमार्जुन विजय' अर्थात् 'भारत' है। कविने इस ग्रन्थमें काव्य तत्त्वोंका निर्वाह सम्यक् प्रकार किया है। नारीके नख-शिख चित्रणमें तो कवि संस्कृतके कवियोंसे भी बढ़ा-चढ़ा है। चरित्र-चित्रणमें भी कविको अपूर्व सफलता मिली है।

कवि पोन्न

'शान्तिपुराण जिनाक्षरमाले' के रचयिता पोन्न कविका समय ई० सन् ९५०के लगभग है। पोन्न प्रतिभाशाली कवि हैं। इसने शान्तिनाथपुराणमें विलक्षण उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंका प्रयोग किया है।

कवि रन्न

रन्न कविने 'अजितनाथपुराण'की रचना कर कन्नड़ साहित्यको समृद्ध बनाया है। कविके इस पुराणका रचनाकाल ई० सन् ९९३ है। कविने अपनी इस रचनामें काव्यकला, कोमल कल्पना और निविड भावोंकी अभिव्यक्तिके साथ पौराणिक तथ्योंका भी समावेश किया है। कन्नड़के पोन्न कवि यदि संस्कृतके बाणभट्ट हैं, तो रन्न वसुबन्धु। शृङ्गार और शान्तरसका सम्मिश्रण सुन्दर रूपमें पाया जाता है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे भी रन्नका यह काव्य महत्त्व-

पूर्ण है। कविका दूसरा ग्रन्थ 'साहसभीम विजय' या 'गदायुद्ध' है। इस ग्रन्थमें दश आश्वास हैं। चम्पू काव्य है। कविने महाभारतकी कथाका सिंहावलोकन कर चालुक्य नरेश आहवमल्लका चरित्र अंकित किया है। कविका जन्म ई० सन् ९४९में हुआ है।

नागचन्द्र या अभिनव पम्प

इनका समय ई० सन् ११०० है। नागचन्द्रकी उपाधि अभिनव पम्प थी। ये अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं। अभिनव पम्पने 'मल्लिनाथपुराण'की रचना की। यह उपासनाप्रिय कवि हैं। इसने संस्कृत भाषासे बहुमूल्य अलंकार और पद ग्रहणकर अपनी कविताको भूषित करनेका प्रयास किया है। अभिनव पम्पको काव्य प्रतिभा कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। कवि अभिनव पम्पके समयमें कन्ति देवी नामको उत्कृष्ट कवयित्री भी हुई हैं। कविने इस कवयित्रीके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण उद्गार व्यक्त किये हैं। अभिनव पम्पकी 'साहित्य भारतीय' 'कर्ण-पूर' 'साहित्य विद्याधर' और 'साहित्य सर्वज्ञ' आदि उपाधियाँ थीं।

ओड्डय्य

इनका समय ई० सन् ११७०के लगभग है। इन्होंने कब्बगर काव्यकी रचना की है। भाषा और विषयके क्षेत्रमें क्रान्तिकारी कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य ग्रन्थोंको केवल धर्म विशेषके प्रचारके लिए ही नहीं लिखा, प्रत्युत् काव्य रस-का आस्वादन लेनेके लिए ही काव्यका सृजन किया है। इतिवृत्त, वस्तुव्यापार वर्णन, संवाद और भावाभिव्यञ्जनकी दृष्टिसे इनके काव्यका परीक्षण किया जाये, तो निश्चय ही इनका काव्य खरा उतरेगा।

नयसेन

नयसेनका समय ई० सन् ११२५ है। इन्होंने धर्मामृत, समयपरीक्षा और धर्मपरीक्षा ग्रन्थोंकी रचना की है। इन्होंने धारवाड़ जिलेके मूलगुन्दा नामक स्थानको अपने जन्मसे सुशोभित किया था। उत्तरवर्ती कवियोंने इन्हें 'सुकवि-निकरपिकमाकन्द', 'सुकविजनमनसरोजराजहंस' और 'वात्सल्यरत्नाकर' आदि विशेषणोंसे विभूषित किया है। इनके गुरु नरेन्द्रसेन थे। इनके द्वारा रचित धर्मामृत श्रावकधर्मका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कविने इसमें धर्मोद्बोधनके हेतु कथाएँ भी लिखी हैं। इनकी भाषा संस्कृत मिश्रित कन्नड़ है। इनका परिचय विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है।

कवि जन्न

कन्नड़ साहित्यमें जन्न, रन्न, पोन्नको रत्नत्रय कहा जाता है। जन्नने ई० सन् ११७०से १२२५के बीच अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। यह होय्सल राजाओंका आस्थान कवि था। इसे कवि चक्रवर्तीकी उपाधि प्राप्त थी। पम्पकी तरह जन्न भी शूर-वीर और लेखनीके धनी हैं। उत्तरवर्ती कवियोंने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। इसके 'यशोधरचरित' और 'अनन्तनाथपुराण' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कर्णपार्य

ई० सन् ११४०के लगभग इन्होंने 'नेमिनाथपुराण'की रचना की है। इसमें समुद्र, पहाड़, नगर, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, रति, चिन्ता, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, युद्ध, जयप्राप्ति इत्यादिका सविस्तार वर्णन आया है। विप्रलम्भ शृंङ्गारके वर्णनमें तो कविने अपूर्व क्षमता प्रकट की है।

नेमिचन्द्र

'अर्धनेमिपुराण'के रचयिता कवि नेमिचन्द्र भी १३वीं शताब्दीके कवियोंमें प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होंने संस्कृत मिश्रित कन्नड़में संस्कृत छन्द लेकर अपने काव्यकी रचना की है। 'चम्पकशार्दूलवृत्त'में प्रायः समस्त ग्रन्थ लिखा गया है। अनुप्रासकी छटा तो इतनी अधिक दिखलाई पड़ती है, जिससे इसके समक्ष कन्नड़का अन्य कोई कवि नहीं ठहर सकता है।

गुणवर्म

गुणवर्मका समय ई० सन् १२२५के लगभग है। इस कविने 'पुष्पदन्तपुराण'-की रचना की है। यह ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक होते हुए भी मर्मस्पर्शी सन्दर्भोंसे युक्त है। कविने अपना भाषा विषयक पाण्डित्य तो दिखलाया ही है, साथ ही वर्णनात्मक शैलीका अद्भुत रूप भी प्रदर्शित किया है।

रत्नाकर वर्णी

आध्यात्मिक साहित्यके निर्माताओंमें कवि रत्नाकर वर्णीका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने भरतेशवैभव, रत्नाकर शतक, अपराजितशतक, आदि ग्रन्थों-की रचना की है। भरतेशवैभवका माधुर्य, तो संस्कृतके गीत गोविन्दसे भी

बढ़कर है। यह ग्रन्थ आज भी कन्नड़ प्रान्तमें लोगोंका कण्ठहार बना हुआ है। तुलसीदासके 'रामचरितमानस'के समान इसके भी दो चार पद निरक्षर भट्टाचार्योंको याद हैं। संगीतकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका अत्यधिक महत्त्व है। इस ग्रन्थका रचनाकाल ई० सन् १५५१ है। महाकाव्य और गीतिकाव्यका आनन्द इस एक ही ग्रन्थसे लिया जा सकता है।

मंगरस

मंगरसका गीतिकाव्य और प्रबन्धकाव्य निर्माताओंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ई० सन् १५०८ है। कविने 'नेमिजिनेश्वर संगीत' और 'सम्यक्त्व-कौमुदी' ग्रन्थोंकी रचना की है। नेमिजिनेश्वर संगीतमें संगीतकी अपूर्व छटा उपलब्ध होती है। सभी राग रागनियाँ उनके चरणोंपर लोटती हैं।

नागवर्म

इनका समय ९९० ई० है। इन्होंने छन्दोम्बुधि नामक छन्दशास्त्रकी रचना की है। यह ग्रन्थ संस्कृतके पिंगलछन्दशास्त्रके आधारपर लिखा गया है। आनुपूर्वी और वृत्तके नामोंमें पिंगलकी अपेक्षा इसमें पर्याप्त अन्तर है। इसमें छह सन्धियाँ हैं। कन्नड़के मात्रिक छन्द और संस्कृतके छन्दोंका सुन्दर विवेचन किया है।

द्वितीय नागवर्माने ११४५ ई० के लगभग 'वस्तुकोश' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें संस्कृत पदोंका अर्थ कन्नड़ पदोंमें बताया गया है। रीतिपर भी नागवर्माने प्रकाश डाला है और इसे काव्यके लिए आवश्यक धर्म माना है। अलंकारके अभावमें भी रीतिके रहनेसे माधुर्य और सौन्दर्य संघटित होते हैं। इन नागवर्माका 'काव्यालोचन' नामक लक्षण ग्रन्थ भी है। नागवर्मने कर्नाटक भाषाभूषण लिखकर कन्नड़के व्याकरणका भी परिचय दिया है। इस ग्रन्थमें संज्ञा, सन्धि, विभक्ति, कारक, शब्दरीति, समास, तद्धित, आख्यात नियम, अन्वय निरूपण और निपात निरूपण ये दश परिच्छेद हैं। कुल मिलाकर २८० सूत्र हैं।

केशवराज

व्याकरण ग्रन्थके निर्माताओंमें केशवराजका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ११५० ई० है। इन्होंने 'शब्द मणिदर्पण' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा है। इसमें कन्दरूपसे सूत्र लिखे गये हैं। व्याकरण नियमोंके स्पष्टीकरणके लिए उदाहरण प्राचीन कवियोंके गद्य-पद्य ग्रन्थोंसे लिये गये हैं।

अग्गल (ई० सन् ११८९)का 'चन्द्रप्रभपुराण', आचण्ण (ई० सन् ११९५) का वर्द्धमानपुराण, बन्धुवर्मा (ई० सन् १२००) का हरिवंशपुराण, पार्श्वपण्डित (ई० सन् १२०५)का पार्श्वनाथपुराण, कमलभव (ई० सन् १२३५)का शान्तिस्वरपुराण, मधुर (ई० सन् १३८५)का धर्मनाथपुराण, शान्तिकीर्ति (ई० सन् १५१९)का शान्तिनाथपुराण, दोड्डैय्य (ई० सन् १५५०)का चन्द्रप्रभपुराण, कुमुदेन्दु (ई० सन् १२७५)का रामायण, भास्कर (ई० सन् १४२४)का जीवन्धररचरित, कल्याणकीर्ति (ई० सन् १४३९)का ज्ञानचन्द्राभ्युदय, बोम्मरस (ई० सन् १४८५) का सनत्कुमारचरित, कोटेश्वर (ई० सन् १५००) का जीवन्धरषटपादि पद्मनाभ (ई० सन् १५८०)का रामपुराण, चन्द्रभ (ई० सन् १६०५)का गोमटेश्वरचरित और बाहुबली (ई० सन् १५६०)का नागकुमारचरित, भट्टाकलंक (ई० सन् १६०४)का शब्दानुशासन, नृपतुंग (ई० सन् ८१४)का कविराजमार्ग, उदयादित्य (ई० सन् ११५०)का उदयादित्यालंकार, और साल्व (ई० सन् १५५०)के रसरत्नाकर आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

जैनवैद्यक ग्रन्थोंमें सोमनाथ (ई० सन् ११५०)का कल्याणकारक, मंगराज (ई० सन् १५५०)का खगेन्द्रमणिदर्पण, श्रीधरदेव (ई० सन् १५००)का वैद्यामृत, साल्व (ई० सन् १५५०)का वैद्यसांगत्य, देवेन्द्रमुनि (ई० सन् १२००)का बालग्रहचिकित्सा, कीर्तिवर्मा (ई० सन् ११२५)का गोवैद्यग्रन्थ उपलब्ध है। ज्योतिषमें श्रीधराचार्य (ई० सन् १०४६)का जातकतिलक, शुभचन्द्र (ई० सन् १२००)का नरपिंगल और राजादित्य (ई० सन् ११२०)के व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न लीलावती, चित्रहंसुवे और जैनगणितटीकोदाहरण आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ[1] हैं।

कर्नाटककविचरितेके सम्पादक नरसिंहाचार्यने कन्नड़ जैन वाङ्मयका मूल्यांकन करते हुए लिखा—"जैन ही कन्नड़ भाषाके कवि हैं। आज तककी उपलब्ध सभी प्राचीन एवं श्रेष्ठ कृतियाँ जैन कवियोंकी ही हैं। ग्रन्थरचनामें जैनोंके प्राबल्यका काल ही कन्नड़ साहित्यकी उन्नत स्थितिका काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड़ भाषाके सौन्दर्य एवं कान्तिके विशेषतः कारणभूत हैं। उन्होंने शुद्ध और गम्भीर शैलीमें ग्रन्थ रचकर ग्रन्थरचना कौशलको उन्नत स्तरपर पहुँचाया है। प्रारम्भिक कन्नड़ साहित्य उन्हींकी लेखनी द्वारा लिखा गया है। कन्नड़ साहित्यके अध्ययनके सहायभूत छन्द,

१. कन्नड़ जैनसाहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी महासभा, तीन पोर्चुगीज, चर्चस्ट्रीट, कलकत्ता १, द्वितीय खण्ड, पृ० १२९-१३०।

बढ़कर है। यह ग्रन्थ आज भी कन्नड़ प्रान्तमें लोगोंका कण्ठहार बना हुआ है। तुलसीदासके 'रामचरितमानस'के समान इसके भी दो चार पद निरक्षर भट्टाचार्योंको याद हैं। संगीतकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका अत्यधिक महत्त्व है। इस ग्रन्थका रचनाकाल ई० सन् १५५१ है। महाकाव्य और गीतिकाव्यका आनन्द इस एक ही ग्रन्थसे लिया जा सकता है।

मंगरस

मंगरसका गीतिकाव्य और प्रबन्धकाव्य निर्माताओंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ई० सन् १५०८ है। कविने 'नेमिजिनेश्वर संगीत' और 'सम्यक्त्व-कौमुदी' ग्रन्थोंकी रचना की है। नेमिजिनेश्वर संगीतमें संगीतकी अपूर्व छटा उपलब्ध होती है। सभी राग रागनियाँ उनके चरणोंपर लोटती हैं।

नागवर्म

इनका समय ९९० ई० है। इन्होंने छन्दोम्बुधि नामक छन्दशास्त्रकी रचना की है। यह ग्रन्थ संस्कृतके पिंगलछन्दशास्त्रके आधारपर लिखा गया है। आनुपूर्वी और वृत्तके नामोंमें पिंगलकी अपेक्षा इसमें पर्याप्त अन्तर है। इसमें छह सन्धियाँ हैं। कन्नड़के मात्रिक छन्द और संस्कृतके छन्दोंका सुन्दर विवेचन किया है।

द्वितीय नागवर्माने ११४५ ई० के लगभग 'वस्तुकोश' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें संस्कृत पदोंका अर्थ कन्नड़ पदोंमें बताया गया है। रीतिपर भी नागवर्माने प्रकाश डाला है और इसे काव्यके लिए आवश्यक धर्म माना है। अलंकारके अभावमें भी रीतिके रहनेसे माधुर्य और सौन्दर्य संघटित होते हैं। इन नागवर्माका 'काव्यालोचन' नामक लक्षण ग्रन्थ भी है। नागवर्मने कर्नाटक भाषाभूषण लिखकर कन्नड़के व्याकरणका भी परिचय दिया है। इस ग्रन्थमें संज्ञा, सन्धि, विभक्ति, कारक, शब्दरीति, समास, तद्धित, आख्यात नियम, अन्वय निरूपण और निपात निरूपण ये दश परिच्छेद हैं। कुल मिलाकर २८० सूत्र हैं।

केशवराज

व्याकरण ग्रन्थके निर्माताओंमें केशवराजका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका समय ११५० ई० है। इन्होंने 'शब्द मणिदर्पण' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा है। इसमें कन्धरूपसे सूत्र लिखे गये हैं। व्याकरण नियमोंके स्पष्टीकरणके लिए उदाहरण प्राचीन कवियोंके गद्य-पद्य ग्रन्थोंसे लिये गये हैं।

अग्गल (ई० सन् ११८९)का 'चन्द्रप्रभपुराण', आचण्ण (ई० सन् ११९५) का वर्द्धमानपुराण, बन्धुवर्मा (ई० सन् १२००) का हरिवंशपुराण, पार्श्वपण्डित (ई० सन् १२०५)का पार्श्वनाथपुराण, कमलभव (ई० सन् १२३५)का शान्तिस्वरपुराण, मधुर (ई० सन् १३८५)का धर्मनाथपुराण, शान्तिकीर्ति (ई० सन् १५१९)का शान्तिनाथपुराण, दोड्डैय्य (ई० सन् १५५०)का चन्द्रप्रभपुराण, कुमुदेन्दु (ई० सन् १२७५)का रामायण, भास्कर (ई० सन् १४२४)का जीवन्धरचरित, कल्याणकीर्ति (ई० सन् १४३९)का ज्ञानचन्द्राभ्युदय, बोम्मरस (ई० सन् १४८५) का सनत्कुमारचरित, कोटेश्वर (ई० सन् १५००) का जीवन्धरषटपादि पद्मनाभ (ई० सन् १५८०)का रामपुराण, चन्द्रम (ई० सन् १६०५)का गोमटेश्वरचरित और बाहुबली (ई० सन् १५६०)का नागकुमारचरित, भट्टाकलंक (ई० सन् १६०४)का शब्दानुशासन, नृपतुंग (ई० सन् ८१४)का कविराजमार्ग, उदयादित्य (ई० सन् ११५०)का उदयादित्यालंकार, और साल्व (ई० सन् १५५०)के रसरत्नाकर आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

जैनवैद्यक ग्रन्थोंमें सोमनाथ (ई० सन् ११५०)का कल्याणकारक, मंगराज (ई० सन् १५५०)का खगेन्द्रमणिदर्पण, श्रीधरदेव (ई० सन् १५००)का वैद्यामृत, साल्व (ई० सन् १५५०)का वैद्यसांगत्य, देवेन्द्रमुनि (ई० सन् १२००)का बालग्रहचिकित्सा, कीर्तिवर्मा (ई० सन् ११२५)का गोवैद्यग्रन्थ उपलब्ध है। ज्योतिषमें श्रीधराचार्य (ई० सन् १०४६)का जातकतिलक, शुभचन्द्र (ई० सन् १२००)का नरपिंगल और राजादित्य (ई० सन् ११२०)के व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न लीलावती, चित्रहंसुवे और जैनगणिततटीकोदाहरण आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ[1] हैं।

कर्नाटककविचरितेके सम्पादक नरसिंहाचार्यने कन्नड़ जैन वाङ्मयका मूल्यांकन करते हुए लिखा—"जैन ही कन्नड़ भाषाके कवि हैं। आज तककी उपलब्ध सभी प्राचीन एवं श्रेष्ठ कृतियाँ जैन कवियोंकी ही हैं। ग्रन्थरचनामें जैनोंके प्राबल्यका काल ही कन्नड़ साहित्यकी उन्नत स्थितिका काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड़ भाषाके सौन्दर्य एवं कान्तिके विशेषतः कारणभूत हैं। उन्होंने शुद्ध और गम्भीर शैलीमें ग्रन्थ रचकर ग्रन्थरचना कौशलको उन्नत स्तरपर पहुँचाया है। प्रारम्भिक कन्नड़ साहित्य उन्हींकी लेखनी द्वारा लिखा गया है। कन्नड़ साहित्यके अध्ययनके सहायभूत छन्द,

---

१. कन्नड़ जैनसाहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी महासभा, तीन पोर्चुगीज, चर्चस्ट्रीट, कलकत्ता १, द्वितीय खण्ड, पृ० १२९-१३०।

अलंकार, व्याकरण और कोश आदि ग्रन्थ विशेषतः जैनोंके द्वारा ही रचे गये हैं।[1]

उपर्युक्त उद्धरणसे यह स्पष्ट है कि जैनसाहित्यकारोंने कन्नड़ साहित्यकी महत्ती सेवा की है। काव्य, अलंकार, व्याकरण, छन्द, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित आदि विभिन्न क्षेत्रोंमें जैनकवियोंने अमूल्य ग्रन्थरत्न प्रदान कर कन्नड़ वाङ्मय को समृद्ध किया है।

तमिलके जैन कवि और लेखक

तमिल साहित्यके महाकाव्य और लघुकाव्योंके लेखक प्रमुख रूपसे जैन कवि हैं। तमिल साहित्य संस्कृत साहित्यके समान ही प्राचीन है। व्याकरण, अलंकार, छन्द आदि विषयक ग्रन्थोंके निर्माता जैन विद्वान हैं। हम यहाँ विस्तारसे विचार न कर संक्षेपमें ही तमिलभाषामें लिखित जैन साहित्यपर प्रकाश डालनेका यत्न करेंगे। तमिलभाषाका सबसे पुराना काव्य 'कुरल्' है। इसकी गणना तमिलभाषाके आचार और नीति सम्बन्धी धर्मग्रंथोंमें की जाती है। इसे पञ्चम वेद कहा गया है। इसके रचयिता एलाचार्य माने जाते हैं। इस ग्रन्थकी रचना ई० सन्‌की प्रथम शताब्दीमें पादिरीपुलीयूर अथवा दक्षिण पाटलीपुत्र नामक स्थानमें सम्पन्न हुई है। इसमें धर्म, अर्थ और कामका विवेचन किया गया है। प्रथम अध्यायमें गृहस्थ और साधुओंके आचरण करने योग्य नियमोंका विस्तृत वर्णन आया है।

द्वितीय अध्यायमें जीवनकी आवश्यकताओं, राज्य संचालन एवं राजनीतिका वर्णन है। तृतीय अध्यायमें वास्तविक और अवास्तविक प्रेमका बड़ा ही सजीव चित्रण है। इन तीन मुख्य विषय निरूपक अध्यायोंके अतिरिक्त इस ग्रन्थमें १३३ प्रकरण और १३३० कुरल् हैं। कुरल्का अर्थ छोटा पद्य है। इस ग्रन्थपर दश प्राचीन टीकाएँ पायी जाती हैं, जिनमें सर्वाधिक प्राचीन टीका धरूमर् अथवा धर्मसेन द्वारा लिखी गयी है। ये धर्मसेन जैन विद्वान थे। कुरल् काव्यके अन्तर्गत ऐसे अनेक सिद्धान्त वर्णित हैं, जिनके आधारपर इस ग्रन्थको जैन कहा जा सकता है।

नालडियार ग्रन्थ पाण्डिराज निवासी भिन्न-भिन्न सन्तों द्वारा निर्मित हुआ है। इस ही नामके छन्दोंमें यह ग्रन्थ लिखा होनेके कारण इस ग्रन्थका नाम 'नालडियर' रक्खा गया है। इस ग्रन्थमें ४०० पद्य हैं और इनका संग्रह कुरल्

---

१. कर्नाटककविचरिते, भाग १ और २की प्रस्तावना।

की भाँति एक निश्चित नीतिके अनुसार किया गया है। इस ग्रन्थमें भी धर्म, अर्थ और कामका वर्णन आया है। इस ग्रन्थपर भी पदुमनार द्वारा लिखित एक बड़ी ही सुन्दर जैन टीका है। 'कुरल' और 'नालडियार' ये दोनों ही ग्रन्थ तमिल जनताके धर्मशास्त्र हैं।

तिरुत्तक्कतेवर

इन्होंने 'जीवकचिन्तामणि' नामक महाकाव्यकी रचना ई० सन्‌की ७वीं शतीमें की है। यह कवि जैनधर्मावलम्बी था। कहा जाता है कि यह चोल राजाकी वंश परम्परामें हुआ है। कुछ विद्वान् इस काव्यको तमिल काव्योंका पिता मानते हैं। डॉ० जी० यू० पोपके शब्दों में—

"This is on the whole the greatest existing Tamil literary monument. The great romantic epic which is at once the iliad and the Odyssey of the Tamil language, is one of the great epics of the world."

अर्थात् यह काव्य वर्त्तमान तमिल साहित्यका एक महान स्मारक है। यह अद्भुत महाकाव्य तमिलभाषाका एलियड और ओडेसी कहा जा सकता है। यह संसारके महान् काव्योंमें से एक है। इसकी रचनाके सम्बन्धमें एक आख्यान प्रचलित है। एक दिन किसीने तिरुतक्कतेवरको लक्ष्यकर कहा—"महाराज! श्रमणोंको इस संसारके देखनेसे घृणा हो गयी। वे केवल वैराग्यपूर्ण संन्यासी जीवनकी ही प्रशंसा गाते हैं। सांसारिक सुखोंको रुचिकर ढंगसे वर्णन करनेका सामर्थ्य श्रमणोंमें दिखलायी नहीं देता।" तिरुतक्कतेवरने उत्तर दिया—"तुम्हारा कथन सारहीन है। सांसारिक आनन्दोंको वर्णन करनेके सामर्थ्यका अभाव श्रमणोंमें नहीं है। किन्तु कुछ दिन रहनेवाले अनेक रोगोंसे ग्रस्त तथा अल्पज्ञानसे युक्त इस जीवनको व्यर्थ किये बिना लोग मुनिमार्ग द्वारा हित सम्पन्न करें, इसी उद्देश्यसे श्रमणोंने मुनिधर्मकी प्रशंसा की है। सांसारिक आनन्दोंका वर्णन भी काव्यमें सहज सम्भाव्य है। मैं इसके लिए प्रयास करूँगा।"

तदनन्तर तिरुक्कतेवर अपने आचार्यके पास पहुँचकर जीवन भोगोंका वर्णन करनेवाले काव्यका सृजन करनेके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने 'नरी-विरुत्तम' एक प्राचीन कथा देकर काव्यरचना करनेका आदेश दिया। तिरुतक्कतेवरने इस नीरस कथाको मनोरंजक काव्यका रूप देकर प्रस्तुत किया, जिससे आचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद देकर 'जीवक-चिन्तामणि' काव्य लिखनेका आदेश दिया।

इस काव्यका नायक जीवकन् है। इसके पिताका नाम सत्यसन्ध है। सत्यसन्धने अपना राज्य कट्टियगांरन नामक मंत्रीको सौंप कुछ दिनों के लिए विश्राम ले लिया। अवसर प्राप्तकर कट्टीयगांरनने सेनाको अपने अधीन कर राज्य हड़प लिया। सत्यसन्धकी पत्नी विजयाने एक मयूर उड़नखटोलेपर चढ़कर अपनी रक्षाकी और श्मशान भूमिमें पुत्रको जन्म दिया। कन्दूकड़न नामक व्यक्तिने उस पुत्रको ले जाकर उसका नाम जीवकन् रक्खा और उसका पालन-पोषण करने लगा। जीवकन्ने विद्याध्ययन और युद्धकलामें शीघ्र ही निष्णात होकर राजा होनेके योग्य अर्हताओंको प्राप्त किया। जीवकन्ने अपनी योग्यता प्रदर्शित कर पृथक-पृथक समयमें ८ कन्याओंसे विवाह किया। उसने वंचक कट्टियगांरनको जीतकर अपने पिताके खोये हुए राज्यको पुनः हस्तगत किया। उसने बहुत दिनों तक सांसारिक सुख भोगते हुए राज्य शासन चलाया और अन्तमें संन्यास ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त किया।

इस काव्यमें विचारोंकी महत्ता; साहित्यिक मुहावरोंके सुन्दर प्रयोग और प्रकृतिके सजीव चित्रण विद्यमान हैं। उत्तरवर्ती कवियोंने इस ग्रन्थका पूरा अनुसरण किया है। इस काव्यमें १३ अध्याय और ३१४५ पद्य हैं। निस्सन्देह वर्णन शैलीके गाम्भीर्य और सशक्त अभिव्यञ्जनाके कारण यह काव्य महाकाव्यकी श्रेणीमें परिगणित है।

इलंगोवडिगल

'शिल्पड्डिकारं' काव्यकी रचना प्रथम शताब्दीमें होनेवाले चेर राजा सिंगुट्टुवनके भाई इलंगोवडिगलने की है। शिल्पड्डिकारं शब्दका अर्थ 'नुपूरका महाकाव्य' है। इस ग्रन्थका यह नामकरण इस महाकाव्यकी नायिका कण्णकी के नुपूरके कारण हुआ है। काव्यकी कथावस्तु निम्नप्रकार है—

नायक कोवलन चोल साम्राज्यकी राजधानी कावेरी पूमपट्टिनंके एक जैन वणिकका पुत्र है। उसका विवाह कण्णकी नामकी एक अन्य धनाढ्य सेठकी कन्यासे हुआ है। कुछ दिन तक दम्पति प्रसन्नतापूर्वक एक विशाल अट्टालिकामें सुख भोगते हैं। कालान्तरमें कोवलन माधवी नामक एक नर्तकीके सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाता है और उसके साथ रहने लगता है। नर्तकीकी प्रसन्नताके लिये वह अपनी अतुल धनराशि व्यय करता जाता है और अन्तमें इतना निर्धन हो जाता है कि माधवीको देनेके लिये उसके पास कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब माधवीको यह ज्ञात हुआ कि अब कोवलनके पास धन नहीं है, तो वह उसका तिरस्कार करने लगी। उसके इस व्यवहार परिवर्तनने कोवलनकी

आँखें खोल दीं और उसे अपनी मूर्खताका आभास होने लगा। उसे अपनी सती-साध्वी पत्नीका ध्यान आया और घर लौट आया। कण्णकीने अपने निर्धन पतिको बहुत सांत्वना दी और कहा—"ये मेरे सोनेके नुपूर हैं, तुम इन्हें बेच सकते हो और इनसे जो धन प्राप्त हो, उससे व्यवसाय कर अपनी आर्थिक स्थितिको सुदृढ़ बना सकते हो। कोवलन और उसकी पत्नी कण्णकी प्रच्छन्न रूपसे नगर त्यागकर आर्यिका कम्बुदीके मार्गदर्शनमें मदुरा पहुँच गये। आर्यिका कम्बुदीने कोवलन और उसकी स्त्री कण्णकीको एक ग्वालिनके संरक्षणमें छोड़ दिया।"

प्रातःकाल होनेपर कोवलन अपनी स्त्रीका नुपूर लेकर नगरीकी ओर रवाना हुआ। मार्गमें उसे एक सुनार मिला, जो राजमहलोंमें नौकर था। उसने वह नुपूर उसे दिखलाया और पूछा क्या आप इसे उचित मूल्यमें बिकवा सकते हैं ? सुनार धूर्त था, उसने पहले ही रानीका एक नुपूर चुरा लिया था। उसे यह आशंका थी कि कहीं राज्याधिकारी मुझे बन्दी न बना लें। अतः वह कोवलनको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला—"आप कृपया यहाँ प्रतीक्षा कीजिये। मैं एक अच्छा ग्राहक लेकर आता हूँ।" सुनार सीधा महलोंमें गया और राजाको सूचित किया—"मैंने रानीके नुपूरको चुराकर ले जानेवालेका पता लगा लिया है और नुपूर उसके पास है। राजाने सैनिकोंको आदेश दिया कि चोरको मार डालो और रानीका नुपूर ले आओ। सैनिक धूर्त सुनारके साथ कोलनके पास पहुँचे और उसे प्रहार कर मार डाला।

इधर कण्णकी व्यग्रतापूर्वक अपने पतिके आगमनकी बाट जोह रही थी। उसके हृदयमें विचित्र अनुभूति हो रही थी। दिन ढलता जा रहा था और कोवलन लौटा नहीं। वह उद्विग्न होने लगी। उसने लोगोंसे सुना—"कावेरी-पूमपट्टिनम्से जो आदमी आया था वह बाजारमें मार डाला गया।" वह सुनते ही बाजारकी तरफ झपटी। वहाँ उसने अपने प्रिय पतिको मृत पाया। उसने लोगोंको यह कहते हुए सुना कि यह परदेशी राजाज्ञासे मारा गया है। वह राजभवनकी ओर दौड़ी गयी और उसने राजाके दर्शन करनेकी अनुमति माँगी, जो तत्काल स्वीकृत हो गयी। उसने राजासे कहा कि आपने मेरे पतिको मार कर बड़ा अन्याय किया है। राजाके सामने ही उसने प्रमाणित कर दिया कि उसका पति चोर नहीं था और उसके पास जो नुपूर था, वह रानीका नहीं बल्कि उसका था। राजाने दोनों नुपूरोंको तुड़वाया और देखा कि रानीके नुपूरमें मोती भरे हुए हैं, जबकि कण्णकीके नुपूरमें रत्न। इस घटनासे राजाको बड़ा धक्का लगा और वह सिंहासनसे गिरकर मर गया। कण्णकी उत्तेजित होकर

राजभवनसे बाहर हुई और अग्निदेवका आह्वान कर बोली—"यदि मैं यथार्थ में शीलवती हूं, तो मेरी प्रार्थना पूर्ण हो—स्त्रियों, बच्चों, धर्मात्माओं और रुग्ण पुरुषोंको छोड़कर यह शैतान नगर भस्म हो जाये और सम्पूर्ण दुष्ट समाप्त हो जायें।" इस प्रकार कहकर उसने अपना वाम स्तन झटका मारकर उखाड़ डाला और नगरकी ओर फेंक दिया। आश्चर्य! नगर जल उठा और शीघ्र ही भस्म हो गया। मदुराकी देवी कण्णकीके सम्मुख प्रकट होकर बोली—तुम्हारे पतिकी मृत्यु और तुम्हारी ये यातनाएँ पूर्वोपार्जित कर्मोंका फल हैं। तुम शीघ्र ही साधना द्वारा स्वर्गमें अपने पतिसे मिलोगी।

नगरको जलता हुआ छोड़कर वह पश्चिमकी ओर चेरदेशमें चली गयी और वहाँ एक पहाड़ीपर १५ दिनकी तपश्चर्या द्वारा उसने स्वर्गलाभ किया।

काव्यसिद्धान्तोंकी दृष्टिसे भी यह ग्रन्थ महनीय है। कविने रुचिर कथानकके साथ प्रौढ़ शैलीका प्रयोग किया है। रस, अलंकार, गुण आदि सभी दृष्टियोंसे यह काव्य समृद्ध है। पात्रोंका चरित्र बहुत ही सुन्दररूपमें उपस्थित किया है।

तोलामुलितेवर

तोलामुलितेवरने 'चूलामणि' लघुकाव्य लिखा है। ग्रन्थकार विजयनगर साम्राज्यमें कारवेट नगरके राजा विजयके दरबारमें राजकवि था। इस कविका समय जीवक चिन्तामणिके रचयिता तिरुक्कतेवरसे भी पूर्व है। इस काव्यमें १२ सर्ग हैं २१३१ पद्य हैं। इस ग्रन्थमें भगवान् महावीरके पूर्वभवके जीव त्रिपिष्ठ वासुदेवके जीवन और उसके साहसपूर्ण कार्योंका निर्देश है। इसके वर्णन प्रसंग जीवक चिन्तामणिके समान हैं। काव्य अत्यन्त ही सरस और जीवन मूल्योंसे सम्पृक्त है।

वामनमुनि

वामनमुनिके समयके सम्बन्धमें निश्चित जानकारी नहीं है। रचनाशैली और भाषाकी दृष्टिसे इनका समय ई० सन् १२ वीं १३ वीं शती अनुमानित होता है। इन्होंने मेमन्दरपुराण नामक ग्रन्थकी रचना की है। इस काव्यमें विमलनाथ तीर्थंकरके दो गणधर मेरु और मन्दरके पूर्वभवोंका वर्णन है। इस ग्रन्थमें जैनदर्शन, आचार और लोकानुयोगका सुन्दर विवेचन आया है। पूर्व-जन्मोंकी वर्णन पद्धति प्रभावक और शिक्षाप्रद है। इसमें संस्कृत और प्राकृतकी शब्दावली भी प्रचुर परिमाणमें प्राप्त हैं।

कुंगवेल

कुंगवेल मौलिक साहित्य सर्जक होनेके साथ अनुवादक भी हैं। इन्होंने गुणाढ्यकी बृहद्कथामें वर्णित कौशाम्बी नरेश उदयनकी जीवनी और उसके पराक्रमपूर्ण कार्योंका तमिलमें अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ साहित्यिक सौन्दर्य और काव्यप्रतिभाका खजाना है। तमिल टीकाकारोंने व्याकरण सम्बन्धी एवं मुहावरेदार भाषाका उदाहरण इसी काव्यसे प्रस्तुत किया है।

तमिल साहित्यमें जीवक चिन्तामणि, शिल्प्पडिकारं, मणिमेखले, वलैयापति और कुण्डलकेशी ये पाँच महाकाव्य माने जाते हैं। इनमें जीवकचिन्तामणि, शिल्प्पडिकारं और वलैयापति ये तीन जैनकवियों द्वारा रचित महाकाव्य हैं और शेष दो बौद्ध कवियों द्वारा रचित हैं। इन पाँच महाकाव्योंमेंसे इस समय तीन ही महाकाव्य उपलब्ध हैं। वलैयापति और कुण्डलकेशी दोनों अप्राप्त हैं।

तमिल साहित्यमें चूड़ामणि, नीलकेशी, यशोधरकाव्य, उदयनकुमार काव्य और नागकुमार काव्य ये पाँच लघुकाव्य हैं। ये पाँचों ही लघुकाव्य जैनाचार्यों द्वारा निर्मित हैं। नीलकेशीके रचयिता दार्शनिक जैन कवि हैं। इसमें १० सर्ग और ८९४ पद्य हैं। कथाकी नायिका नीलकेशी एक देवी है, जो एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भ्रमण करती रहती है और धार्मिक उपदेशकोंसे मिलकर उन्हें दार्शनिक चर्चाओंमें संलग्न रखती है और अन्तमें उन्हें शास्त्रार्थमें परास्त करती है। प्रथमसर्गमें मुनिचन्द्र नामक जैनसाधु द्वारा नीलकेशीको दी गयी जैनधर्मकी शिक्षाओंका वर्णन है। द्वितीय सर्गसे पञ्चम सर्गतक बौद्ध-दर्शनके विभिन्न व्याख्याताओंके साथ नीलकेशीके वाद-विवादका वर्णन आया है। शेष पाँच सर्गों में नीलकेशीका आजीवकों, सांख्यों, वैशेषिकों, वैदिक धर्मानुयायियों और प्रकृतवादियोंके साथ शास्त्रार्थका कथन आया है। यह एक तार्किक ग्रन्थ है। इसमें भौतिकवादके विरुद्ध आध्यात्मवादकी प्रतिष्ठा की गयी है। इस ग्रन्थपर वामनमुनि द्वारा विरचित समयदिवाकरं नामकी एक सुन्दर टीका है।

यशोधरकाव्यके रचयिताका नाम अज्ञात है। इसमें अहिंसाधर्मका विशद-निरूपण तो है ही साथ ही वैदिक क्रियाकाण्डका समालोचन भी किया गया है।

उदयनकुमार काव्यके रचयिता भी अज्ञात हैं। नागकुमारकाव्य अभीतक अप्रकाशित है।

जैनकवियोंने कुछ कविता संग्रह भी लिखे हैं। इनमें पत्तुपाट्टु, पुरनानूरु, अहनानूरु, नट्रीणाई, कुरूंतोगई आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जिनेन्द्रमालई

ज्योतिष ग्रन्थ और तिरुनुट्रन्धादि स्तोत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। तिरुक्कलम्बकम् जिनेन्द्रभगवान्की भक्ति और प्रशंसामें लिखा गया है। इन प्रधान रचनाओंके अतिरिक्त संस्कृत और तमिल मिश्रित पद्योंमें मणिप्रवाल शैलीमें निर्मित श्री पुराण, पदार्थसार, अष्टपदार्थं जीवसम्बोधनै आदि प्रधान हैं।

पच्चइयप्पाकॉलेज कांचीपुरम्के प्रोफेसर श्री सी० एस० श्री निवासाचारी एम० ए० ने लिखा है—

"प्राचीन तमिल और कर्नाटक प्रांतोंमें तमिल और कन्नड़ साहित्यकी अभिवृद्धिमें जैनविद्वानोंका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। उनके द्वारा लिखित एवं संग्रहीतकोष, व्याकरण एवं अन्य विषयोंपर अपरिमित सर्वाधिक मूल्यवान एवं उच्चकोटिके ग्रन्थ हैं। वर्तमानमें केवल उनका कुछ अंश ही शेष हैं, किन्तु जितना भी शेष है वह अपनी श्रेणीका अद्भुत, अत्यधिक संतोषप्रद है और वह शताब्दियों तक तमिल भाषाके क्रमिक विकासका आधारभूत तत्त्व रहा[1] है।

इस प्रकार जैन कवियोंने तमिल साहित्यकी श्रीवृद्धिमें अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

मराठी जैन कवि

मराठी भाषामें भी जैनकवियोंने प्रभूत साहित्यकी रचना की है। मराठी भाषामें श्रवणबेलगोलाके गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके नीचे शक संवत् ८८३ का छोटा-सा अभिलेख खुदा है, पर शक संवत् १४०० तक मराठी ग्रन्थकर्त्ताओंका नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता है। जैनकवियोंकी रचनाएँ ई० सन्की १७ वीं शतीसे प्रचुररूपमें मिलने लगती हैं। मराठी भाषामें लिखित जैनसाहित्यका अल्पांश ही उपलब्ध हो सका है। अभीतक बहुत-सा साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। हम यहाँ मराठीके प्रमुख कवि और लेखकोंका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

जिनदास

मराठी साहित्यका सबसे पहला ज्ञात कवि जिनदास है। इनके गुरुका नाम भट्टारक भुवनकीर्ति था। भुवनकीर्तिका समय शक संवत् १६४३ से १६६२ तक है। अतएव जिनदासका समय शक संवत्की १७ वीं शती है। इन्होंने हरिवंश-पुराण नामक ग्रन्थकी रचना देवगिरि (मराठवाड़ा) नामक स्थानमें की है।

१. श्री सी० एस० मल्लिनाथन, तमिल भाषाका जैनसाहित्य, प्रकाशक श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, महावीर पार्क रोड, जयपुर, पृ० २१।

इस ग्रन्थका पूर्वार्द्ध लिखकर ही कवि परलोकगामी हो गया। इसके पूर्वार्द्धमें ४० अध्याय हैं और महाभारतकी कथा संक्षेपमें[1] वर्णित है।

गुणदास या गुणकीर्ति

गुणदासका अपरनाम गुणकीर्ति भी उपलब्ध होता है। गृहस्थ अवस्थामें इनका नाम गुणदास था और त्यागी होनेपर यही गुणकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने श्रेणिकपुराण, धर्मामृत, रुक्मिणीहरण, पद्मपुराण (अपूर्ण) और एक स्फुट रचना रामचन्द्रहलदुलि लिखी है। श्रेणिकपुराण भाषाकी दृष्टिसे अपूर्व रचना है। इसमें मराठीका स्वच्छ और प्रवाहमय रूप विद्यमान है। भगवान् महावीरके समकालीन सम्राट् श्रेणिकको अद्भुत कथा वर्णित है।

धर्मामृत गद्य ग्रन्थ है, जो उपलब्ध गद्य ग्रन्थोंमें प्राचीनतम है। इसमें गृहस्थोंके आचारका सांगोपांग वर्णन है। लेखकने ९६ पाखण्डोंकी गणनाकर सरागी, देव-देवियोंका निरसन किया है। विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार-विचारों-का अध्ययन करनेके लिए यह ग्रन्थ उपादेय है। अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत और संल्लेखनाका अतिचार सहित निरूपण किया है।

'रुक्मिणीहरण' काव्यमें श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणीके हरणकी कथा वर्णित है। वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण, नेमिनाथ, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये यदुवंशके प्रसिद्ध महापुरुष थे। रुक्मिणीहरण काव्यमें कविने कृष्णके बलपौरुषके साथ उनकी राजनीतिका भी चित्रण किया है।

'पद्मपुराण'में रामकी कथा रविषेणके 'पद्मपुराण'के आधारपर गुम्फित की गयी है। इस ग्रन्थको कवि २८ अध्याय तक ही लिख सका। इस ग्रन्थमें कविने द्वादश अनुप्रेक्षाओंका वर्णन सुन्दर रूपमें किया है।

'रामचन्द्रहलदुलि'में रामके विवाहका वर्णन आया है। यह रचना गती-बद्ध है।

मेघराज

ये ब्रह्मजिनदासके प्रशिष्य और ब्रह्म शान्तिदासके शिष्य थे। मेघराज गुज प्रदेशसे आये थे। इनको उभयभाषा कवि चक्रवर्ती भी कहा गया है। ये गुज-राती और मराठी दोनों भाषाओंमें रचना करनेकी क्षमता रखते थे। इनकी

१. मराठी जैनसाहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, जैनश्वेताम्बर तेरहपन्थी महासभा, ३, पोर्चगीजचर्च स्ट्रीट, कलकत्ता १, द्वितीय खण्ड, पृ० १३७-१४०।

तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—१. यशोधरचरित २. गिरिनारयात्रा ३. और पारिखनाथभवान्तर।

यशोधरकी कथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती हिन्दी और कन्नड़ आदि भाषाओंमें लिखित उपलब्ध है। मेघराजने मराठीमें इस काव्यकी रचना कर एक नयी परम्पराका सूत्रपात किया है।

गिरिनार यात्रामें यात्रावर्णन है। इस कृतिका प्रथम चरण मराठीमें और द्वितीय चरण गुजरातीमें लिखा गया उपलब्ध होता है। पार्श्वनाथ भवान्तर कृतिमें पार्श्वनाथके पूर्वभवके सम्बन्धमें कथा वर्णितकी गयी है। इसमें उनके ९ भवोंकी कथा काव्य शैलीमें गुम्फित है।

वीरदास या पासकीर्ति

इनका गृहस्थ नाम वीरदास है और ये त्यागी होनेके पश्चात् पासकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। ये कारंजाके बलात्कारगणके भट्टारक धर्मचन्द्र द्वितीयके शिष्य हैं। इनका जन्म सोहित वाल जातिमें हुआ था। इन्होंने शक संवत् १५४९में 'सुदर्शनचरित' की रचना की है और शक संवत् १६४५में आवियाँकी। 'सुदर्शनचरित' में सेठ सुदर्शनकी कथा अंकित है। इसमें शीलव्रत और पंच-नमस्कार मन्त्रका माहात्म्य बतलाया गया है। इसमें २५ प्रसंग हैं। ओवियाँमें ७५ ओवियोंका संग्रह है। इसे बहत्तरी भी कहा गया है। इस ग्रन्थमें अका-रादि क्रमसे धर्म विषयक स्फुट विचारोंका संकलन किया गया है।

महितसागर

महितसागरका जन्म शक संवत् १६९४में और मृत्यु शक संवत् १७५४में हुई है। इन्होंने शक संवत १७२३में रविवार कथा लिखी तथा शक संवत १७३२में बालापुरमें आदिनाथ पञ्चकल्याणिक कथा लिखी है। इनकी अबतक निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं—

१. दशलक्षण
२. शोड़षकारण
३. रत्नत्रय
४. पञ्चपरमेष्ठीगुणवर्णन
५. सम्बोध सहस्रपदी
६. देवेन्द्रकीर्तिकीआवणी
७. तीर्थंकरोंके भजन
८. आरती संग्रह

देवेन्द्रकीर्ति

देवेन्द्रकीर्तिने कालिकापुराणकी रचना की है। देवेन्द्रकीर्ति मराठी-साहित्यके ऐसे कवि हैं, जिन्होंने धर्म, दर्शन और काव्यकी त्रिवेणीको एकसाथ प्रवाहित किया है। इनकी रचनाका मूलाधार प्राचीन वाङ्मय है। कवि देवेन्द्रकीर्ति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंके विद्वान् होनेके साथ गुजराती भाषाके भी विद्वान् थे।

मराठीके अन्य कवि और लेखक

मराठी-भाषामें लगभग २० अच्छे कवि और लेखक हुए हैं तथा दश ऐसे कवि हैं, जिन्होंने स्फुट रचनाएँ लिखकर वाङ्मयकी समृद्धिमें योगदान दिया है।

मेघराजके गुरुबन्धु कामराजने 'सुदर्शनपुराण' और 'चैतन्यफाग'की रचना की है। 'चैतन्यफाग' गीतात्मक रचना है और इसमें देहकी ममता त्यागनेसे आत्माकी मुक्ति होने का सन्देश वर्णित है। कामराज और मेघराजके गुरुबन्धु सूरिजनने परमहंस' नामक रूपककाव्य लिखा है। इनकी दूसरी कृति 'दानशीलतपभावनारास' भी उल्लेखनीय है।

नागोआया कारञ्जा-गद्दीके सेनगणके भट्टारक माणिक्यसेनके शिष्य थे। इन्होंने यशोधरचरित लिखा है। अभयकीर्ति लातूरकी प्रथमशाखाके भट्टारक अजितकीर्तिके शिष्य थे। इन्होंने शक संवत् १५३८ में अनन्तव्रतकथा लिखी है। इनकी एक दूसरी कृति आदित्यव्रतकथा भी उपलब्ध है।

भट्टारक अजयकीर्तिके शिष्योंमें चिमणाका नाम भी उल्लेख्य है। इन्होंने पैठनके चन्द्रप्रभ चैत्यालयमें अनन्तव्रतकथाकी रचना की है। एक आरतीसंग्रह ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखित उपलब्ध है।

जिनदासकी अपूर्ण कृति 'हरिवंशपुराण'को पुण्यसागरने १८ अध्याय और लिखकर पूर्ण किया है। जिनदास ४० अध्याय ही लिख सके थे। पुण्यसागर द्वारा यह ग्रन्थ पूर्ण होकर जैन महाभारतकी संज्ञाको प्राप्त हुआ है। पुण्यसागरकी एक अन्य कृति आदित्यवारकथा भी है। शक संवत् १५८७में सावाजीने 'सुगन्धदशमी' नामक कथा लिखी है। महीचन्द्रने शक संवत् १६१८में आशापुरमें आदिपुराणकी रचना की है। अन्य कृतियोंमें अठाईव्रतकथा, गरुड़पञ्चमीकथा, बारहमासी गीत, अर्हन्तकी आरती, नेमिनाथभवान्तर और कतिपय स्तोत्र परिगणित हैं। महाकीर्तिने शीलपताका नामक ग्रन्थ रचा है। इसमें ५५२ ओवियाँ हैं। सीताकी अग्निपरीक्षा गुम्फित है। शक संवत् १६५०में लक्ष्मीचन्द्रने माननगर के चन्द्रप्रभचैत्यालयमें मेघमालाकी कथा लिखी है। यह

कृति ८६ श्लोक प्रमाण है। इस कृतिमें संगीततत्त्वकी प्रधानता है और सार्वजनिक सभाओंमें इसका गायन किया जाता है।

जनार्दनने शक संवत् १६९०में 'श्रेणिकचरित' नामक काव्यग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थमें ४० अध्याय हैं। नगेन्द्रकीर्त्तिने पद्यसंग्रह, दयासागरने जम्बूस्वामीचरित, सम्यक्त्वकौमुदी और भविष्यदत्तबन्धुकथा एवं विशालकीर्तिने शक सं० १७२९में धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की है। गंगादासने पारिखनाथभवान्तर और आदित्यवारकथा ग्रन्थ लिखे हैं। चिन्तामणिने गुणकीर्ति द्वारा रचित अपूर्ण पद्मपुराणको पूर्ण करनेका प्रयास किया है, पर वे इसके केवल सात ही अध्याय लिख पाये हैं। जिनसागरने जीवन्धरपुराण, व्रतकथासंग्रह, भक्तामरका मराठी अनुवाद आदि रचनाएँ लिखी हैं। रत्नकीर्तिने शक सं० १७३४में ४० अध्यायोंमें उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाकी रचना की है। दयासागरने शक संवत् १७३५में हनुमानपुराण, जिनसेनने शक सं० १७४३में जम्बूस्वामीपुराण, ठकाप्पाने शक सं० १७७२में पाण्डवपुराण, सहवाने शक संवत् १६३९में नेमिनाथभवान्तर और रघुने शक सं० १७१०में सेठिमाहात्म्य नामक ऐतिहासिक कविता लिखी है।

•

उपसंहार

अंग और पूर्व-साहित्यको आचार्योंकी देन

तीर्थंकर महावीरकी आचार्यपरम्परा गौतम गणधरसे आरम्भ होती है, और यह परम्परा अंगसाहित्य और पूर्वसाहित्यका निर्माण, संवर्द्धन एवं पोषण करती चली आ रही है। यों तो अंग और पूर्व-साहित्यको परम्परा आदितीर्थंकर भगवान ऋषभदेवके समयसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरके काल तक अनवच्छिन्नरूपसे चली आयी है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अंग-साहित्यका विषय-ग्रथन प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें सिद्धान्तोंके समान रहनेपर भी अपने युगानुसार होता है। स्पष्टीकरणके लिए यों कहा जा सकता है कि उपासकाध्ययनमें प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें उपासकोंकी ऋद्धिविशेष, बोधि-लाभ, सम्यक्त्वशुद्धि, संल्लेखना, स्वर्गगमन, मनुष्यजन्म, संयम-धारण, मोक्ष-प्राप्ति आदिका निरूपण किया जाता है। पर प्रत्येक तीर्थंकरके कालमें उपा-सकोंको ऋद्धि, स्वर्गगमन आदि विषयोंमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यतः उपासकोंकी जैसी ऋद्धि, व्रतोवास एवं बोधिलाभको स्थिति ऋषभदेव-के समयमें थी, वैसी महावीरके समयमें नहीं रही होगी। इसी प्रकार अन्तः-कृतदशांगमें प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें होनेवाले अन्तःकृतकेवलियोंका जीवन-

वृत्त, तपश्चरण, केवलज्ञान आदिका वर्णन रहता है। निश्चयतः तीर्थंकर ऋषभदेवके समयके अन्तःकृतदशकेवली महावीरके अन्तःकृतदशकेवलियोंसे भिन्न हैं। अतः स्पष्ट है कि अंगसाहित्यका विषय प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें युगानुसार कुछ परिवर्तित होता है।

पूर्वसाहित्यका विषय परम्परानुसार एक-सा ही चलता रहता है। ज्ञान, सत्य, आत्मा, कर्म और अस्तिनास्तिवादरूप विचार-धारणाएँ प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थकालमें समान ही रहती हैं। अतः पूर्वसाहित्य समस्त तीर्थंकरोंके समयमें एकरूपमें वर्त्तमान रहता है। उसमें विषयका परिवर्त्तन नहीं होता है। जो शाश्वतिक सत्य हैं और जिन मूल्योंमें त्रैकालिक स्थायित्व है, उन मूल्योंमें कभी परिवर्तन नहीं होता। वे अनादि हैं। उनमें किसी भी तीर्थंकरके तीर्थकालमें किञ्चित् परिवर्त्तन दिखलाई नहीं पड़ता।

श्रुतधराचार्योंने अंग और पूर्व साहित्यकी परम्पराको जीवन्त बनाये रखनेमें अपूर्व योगदान दिया है। गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि, आर्यमंक्षु, नागहस्ति, वज्रयश, चिरन्तनाचार्य, यतिवृषभ, उच्चारणाचार्य, वप्पदेव, कुन्दकुन्द, वट्टकेर, शिवार्य, स्वामीकुमार एवं गृद्धपिच्छाचार्य आदिने कर्मप्राभृत-साहित्यका सम्वर्द्धन एवं प्रणयन किया है।

इन आचार्योंने कर्म और आत्माके सम्बन्धसे जन्य विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओंके विवेचनके लिए 'पेज्जदोसपाहुड', 'षट्खण्डागम', 'चूर्णिसूत्र', 'व्याख्यानसूत्र', 'उच्चारणवृत्ति' आदिका प्रणयन कर सिद्धान्त-साहित्यको समृद्ध किया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कर्मसाहित्यका मूल उद्गमस्थान कर्मप्रवाद नामक अष्टम पूर्व है और इस पूर्वका कथन वर्त्तमान कल्पमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवसे अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक समानरूपसे होता आया है। कर्मका स्वरूप, कर्मद्रव्य, कर्म और आत्माका सम्बन्ध, तज्जन्य अशुद्धि एवं आत्माकी विभिन्न अवस्थाओंका विवेचन कर्मसिद्धान्तका प्रधान वर्ण्य विषय है। आचार्योंने कर्म एवं आत्माके सम्बन्धको अनादि स्वीकार कर भी कर्मकी विभिन्न अवस्थाओं एवं स्वरूपोंका प्रतिपादन किया है।

गुणधर और धरसेनने कर्म-सिद्धान्तका विवेचन सूत्ररूपमें किया है। पुष्पदन्त और भूतबलिने 'षट्खण्डागम'के रूपमें सूत्रोंका अवतारकर—जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बंधसामित्तविचय, वेदना, वग्गणा और महाबन्ध, इन छह खण्डरूपोंमें सूत्रोंका प्रणयन कर कर्मसिद्धान्तका विस्तारपूर्वक निरूपण किया। अनन्तर वीरसेनाचार्य और जिनसेनाचार्यने 'धवला' एवं 'जयधवला' टीकाओं द्वारा उसकी विस्तृत व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं।

उद्‌गमस्थानमें जिस प्रकार नदीका स्रोत बहुत ही छोटा होता है और उसकी पतली धाराकी गति भी मन्द ही रहती है। पर जैसे-जैसे नदीका यह स्रोत उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी धारा बृहद् और तीव्र होती जाती है। समतल भूमिपर पहुँचकर इस धाराका आयाम स्वतः विस्तृत हो जाता है। इसी प्रकार कर्म-साहित्यकी यह धारा तीर्थंकर महावीरके मुखसे निःसृत हो गणधर-श्रुतकेवलियों एवं अन्य आचार्योंको प्राप्तकर विकसित एवं समृद्ध हुई है।

यह सार्वजनीन सत्य है कि युगके अनुकूल जीवन और जगत् सम्बन्धी आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं। विचारक आचार्य इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए नये चिन्तन और नये आयाम उपस्थित करते हैं। अतः किसी भी प्रकारके साहित्यमें विषय विस्तृत होना ध्रुव नियम है। जब किसी भी विचार-को साहित्यकी तकनीकमें ग्रथित किया जाता है, तो वह छोटा-सा विचार भी एक सिद्धान्त या ग्रन्थका रूप धारण कर लेता है। 'कर्मप्रवाद'में कर्मके बन्ध, उदय, उपशम, निर्जरा आदि अवस्थाओंका, अनुभागबन्ध एवं प्रदेशबन्धके आधारों तथा कर्मोंकी जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट स्थितियोंका कथन किया गया है। 'कर्मप्रवाद'का यह विषय आगमसाहित्यमें गुणस्थान और मार्गणाओंके भेदक्रमानुसार विस्तृत और स्पष्ट रूपमें अंकित है।

आचार्यपरम्परा और कर्मसाहित्य

पौद्‌गलिक कर्मके कारण जीवमें उत्पन्न होनेवाले रागद्वेषादि भाव एवं कषाय आदि विकारोंका विवेचन भी आगमसाहित्यके अन्तर्गत है। कर्मबन्धके कारण ही आत्मामें अनेक प्रकारके विभाव उत्पन्न होते हैं और इन विभावोंसे जीवका संसार चलता है। कर्म और आत्माका बन्ध दो स्वतन्त्र द्रव्योंका बन्ध है, अतः यह टूट सकता है और आत्मा इस कर्मबन्धसे निःसंग या निर्लिप्त हो सकती है। कर्मबन्धके कारण ही इस अशुद्ध आत्माकी दशा अर्द्धभौतिक जैसी है। यदि इन्द्रियोंका समुचित विकास न हो तो देखने और सुननेकी शक्तिके रहनेपर भी वह शक्ति जैसी-की-तैसी रह जाती है और देखना-सुनना नहीं हो पाता। इसी प्रकार विचारशक्तिके रहनेपर भी यदि मस्तिष्क यथार्थ रूपसे कार्य नहीं करता, तो विचार एवं चिन्तनका कार्य नहीं हो पाता। अतएव इस कथनके आलोकमें यह स्पष्ट है कि अशुद्ध आत्माकी दशा और उसका समस्त उत्कर्ष-अपकर्ष पौद्‌गलिक कर्मोंके अधीन है। इन कर्मोंके उपशम एवं क्षयोपशमके निमित्तसे ही जीवमें ज्ञानशक्ति उद्‌बुद्ध होती है। कर्मके क्षयोपशमकी तारतम्यता ही ज्ञानशक्तिकी तारतम्यताका कारण बनती है। इस

प्रकार श्रुतधराचार्योंने कर्मसिद्धान्तके आलोकमें आत्माको कथञ्चित् मूर्तिक एवं अमूर्तिक रूपमें स्वीकार किया है। अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण यह आत्मा चैतन्य—ज्ञान-दर्शन-सुखमय है और है अमूर्तिक। पर व्यवहारनयकी दृष्टिसे कर्मबद्ध आत्मा मूर्त्तिक है। अनादिसे यह शरीर आत्माके साथ सम्बद्ध मिलता है। स्थूल शरीरको छोड़नेपर भी सूक्ष्म कर्म शरीर इसके साथ रहता है। इसी सूक्ष्म कर्मशरीरके नाशका नाम मुक्ति है। आत्माकी स्वतन्त्र-सत्ता होनेपर भी इसका विकास अशुद्ध दशामें अर्थात् कर्मबन्धकी दशामें देहनिमित्तक है।

यह कर्मबद्ध आत्मा रागद्वेषादिसे जब उत्तप्त होती है; तब शरीरमें एक अद्भुत हलनचलन हो जाता है। देखा जाता है कि क्रोधावेगके आते ही नेत्र लाल हो जाते हैं, रक्तकी गति तीव्र हो जाती है, मुख सूखने लगता है और नथुने फड़कने लगते हैं। जब कामवासना जागृत होती है तो शरीरमें एक विशेष प्रकारका मन्थन आरम्भ हो जाता है। जब तक ये विकार या कषाय शान्त नहीं होते, तब तक उद्वेग बना रहता है। आत्माके विचारों, चिन्तनों, आवेगों और क्रियाओंके अनुसार पुद्गलद्रव्योंमें भी परिणमन होता है और उन विचारों एवं आवेगोंसे उत्तेजित हो पुद्गल परमाणु आत्माके वासनामय सूक्ष्म कर्मशरीरमें सम्मिलित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यह समझा जा सकता है कि अग्निसे तप्त लोहेके गोलेको पानीमें छोड़ा जाय, तो वह तप्त गोला जलके बहुत-से परमाणुओंको अपने भीतर सोख लेता है। जब तक वह गरम रहता है, तब तक पानीमें उथलपुथल होती रहती है। कुछ परमाणुओंको खींचता है एवं कुछको निकालता है और कुछको भाप बनाकर बाहर फेंक देता है। आशय यह है कि लौहपिण्ड अपने पार्श्ववर्ती वातावरणमें एक अजीब स्थिति उत्पन्न करता है। इसी प्रकार रागद्वेषाविष्ट आत्मामें भी स्पन्दन होता है और इस स्पन्दनसे पुद्गलपरमाणु आत्माके साथ सम्बद्ध होते हैं।

संचित कर्मोंके कारण रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं और इन रागादि भावोंसे कर्मपुद्गलोंका आगमन होता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि श्रद्धा, विवेक और चारित्रसे रागादि भावोंको नष्ट नहीं किया जाता। तात्पर्य यह कि जीवकी रागद्वेषादिवासनायें और पुद्गलकर्मबन्धकी धाराएँ बीज-वृक्षकी संततिके समान अनादिकालसे प्रचलित हैं। पूर्वसंचित कर्मके उदयसे वर्तमान समयमें रागद्वेषादि उत्पन्न होते हैं और तत्कालमें जीवकी जो लगन एवं आसक्ति होती है, वही नूतन बन्धका कारण बनती है। अतएव रागादिकी उत्पत्ति और कर्मबन्धकी यह प्रक्रिया अनादि है।

सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकर्मोंके उदयसे होनेवाले रागादि भावोंको अपने

विवेकसे शान्त करता है। वह कर्मफलोंमें आसक्ति नहीं रखता इस प्रकार पुरातन संचित कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं और किसी नये कर्मका स्थिति-अनुभागबन्ध नहीं होता है। आत्म-सत्ताकी श्रद्धा करनेवाला निष्ठावान् व्यक्ति संयम, विवेक, तपश्चरणके कारण कर्मबन्धकी प्रक्रियासे छुटकारा प्राप्त करता है। पर मिथ्यादृष्टि देहात्मवादी नित्य नई वासना और आसक्तिके कारण तीव्र स्थिति और अनुभागबन्ध करता है। जो जीव पुरुषार्थी, विवेकी और आत्मनिष्ठावान् है, वह निर्जरा, उत्कर्ष, अपकर्ष, संक्रमण आदि कर्म-करणोंको प्राप्त करता है, जिससे प्रतिक्षण बन्धनेवाले अच्छे या बुरे कर्मोंमें शुभभावोंसे शुभकर्मोंमें रसप्रकर्ष स्थित होकर अशुभकर्मोंमें रसहीनता एवं स्थितिच्छेद उत्पन्न होता है।

श्रुतधराचार्योंने कर्मसिद्धान्तके अन्तर्गत प्रतिसमय होनेवाले अच्छे-बुरे भावोंके अनुसार तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दन्तर और मन्दतम रूपोंमें कर्मकी विपाक-स्थितिका वर्णन किया है। संसारी आत्मा कर्मोंके इस विपाकके कारण ही सुख-दुखका अनुभव करती है। यह भौतिक जगत पुद्गल एवं आत्मा दोनोंसे प्रभावित होता है। जब कर्मका एक भौतिक पिण्ड अपनी विशिष्ट शक्तिके कारण आत्मासे सम्बद्ध होता है तो उसकी सूक्ष्म एवं तीव्र शक्तिके अनुसार बाह्य पदार्थ भी प्रभावित होते हैं और प्राप्त सामग्रीके अनुसार उस संचित कर्मका तीव्र, मन्द और मध्यम फल मिलता है।

कर्म और आत्माके बन्धनका यह चक्र अनादि कालसे चला आ रहा है और तब तक चलता रहेगा, जब तक बन्धहेतु रागादिवासनाओंका विनाश नहीं होता। श्रुतधर आचार्य कुन्दकुन्दने बताया है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥[1]

श्रुतधराचार्योंने स्पष्टरूपसे बताया है कि आत्मा अनादिकालसे अशुद्ध है, पर प्रयोग द्वारा इसे शुद्ध किया जा सकता है। एकबार शुद्ध होनेपर फिर इसका अशुद्ध होना संभव नहीं, यतः बाधक कारणोंके नष्ट होनेसे पुनः अशुद्धि आत्मामें

१. पञ्चास्तिकाय, कुन्दकुन्द, भारती श्रुतमण्डल ग्रंथ-प्रकाशन समिति, फल्टन सन् १९७०, गाथा—१२८ से १३० तक।

उत्पन्न नहीं हो सकती। आत्माके प्रदेशोंमें संकोच और विस्तार भी कर्मके निमित्तसे होता है। कर्म निमित्तके हटते ही आत्मा अपने अन्तिम आकारमें रह जाती है और उर्ध्वलोकके अग्रभागमें स्थित हो अपने अनन्तचैतन्यमें प्रतिष्ठित हो जाती है।

श्रुतधराचार्योंने कर्मसिद्धान्तके इस प्रसंगमें अध्यात्मवाद, तत्त्वज्ञान, अनेकान्तवाद, आचार आदिका भी विवेचन किया है। गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा आदिकी अपेक्षासे कर्मबन्ध, जीवके भाव, उनकी शुद्धि-अशुद्धि, योग-ध्यान आदिका विवेचन किया है।

नय-वादकी अपेक्षासे आत्माका निरूपण करते हुए निश्चयनयकी अपेक्षा आत्माको शुद्ध चैतन्यभावोंका कर्त्ता और भोक्ता माना है। पर व्यवहार-नयकी अपेक्षासे यह आत्मा कर्मबन्धके कारण अशुद्ध है और राग-द्वेष-मोहादि की कर्त्ता और तज्जन्य कर्मफलोंकी भोक्ता है। अतएव संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि श्रुतधराचार्योंने सिद्धान्त-साहित्यका प्रणयन कर तीर्थंकर महावीर-की ज्ञानज्योतिको अखण्ड और अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्रयास किया है।

द्वितीय परिच्छेदमें सारस्वताचार्यों द्वारा की गयी श्रुतसेवाका प्रतिपादन किया गया है। सारस्वताचार्योंमें सर्वप्रमुख आचार्य समन्तभद्र हैं। इनके पश्चात् सिद्धसेन, पूज्यपाद, पात्रकेसरी, जोइन्दु, विमलसूरि, ऋषिपुत्र, मानतुंग, रविषेण, जटासिंहनन्दि, एलाचार्य, वीरसेन, अकलंक, जिनसेन द्वितीय, विद्या-नन्द, देवसेन, अमितगति प्रथम, अमितगति द्वितीय, अमृतचन्द्र, नेमिचन्द्र आदि आचार्योंने प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोगकी रचना कर वाङ्मयको पल्लवित किया है। इन सारस्वताचार्योंने उत्पादादि-त्रिलक्षण-परिमाणवाद, अनेकान्तदृष्टि, स्याद्वाद-भाषा और आत्मद्रव्यकी स्वतन्त्र सत्ता इन चार मूल विषयोंपर विचार किया है।

दार्शनिक युग और स्याद्वाद

दार्शनिक युगके सर्वप्रथम आचार्य समन्तभद्रने सैद्धान्तिक एवं आगमिक परिभाषाओं और शब्दोंको दार्शनिक रूप प्रदान किया है। इन्होंने एकान्त-वादोंकी आलोचनाके साथ-साथ अनेकान्तका स्थापन, स्याद्वादका लक्षण, सुनय-दुर्नयकी व्याख्या और अनेकान्तमें अनेकान्त लगानेकी प्रक्रिया बतलायी है। प्रमाणका लक्षण 'स्वपरावभासक बुद्धि' को बतलाया है। समन्तभद्रने बत-लाया है कि तत्त्व अनेकान्तरूप हैं और अनेकान्त विरोधी दो धर्मोंके युगलके आश्रयसे प्रकाशमें आनेवाले वस्तुगत सात धर्मोंका समुच्चय है और ऐसे-ऐसे

अनन्त धर्मसमुच्चय विराट अनेकान्तात्मकतत्त्व–सागरमें अनन्त लहरोंके समान तरंगित हो रहे हैं और उसमें अनन्त सप्तभंगियाँसमाहित हैं। वक्ता किसी धर्मविशेषको विवक्षावश मुख्य या गौणरूपमें ग्रहण करता है। इस प्रकार समन्तभद्रने सप्तभंगीका परिष्कृत प्रयोग कर अनेकान्तकी व्यवस्था प्रदर्शित की है। यथा—

१. स्यात् सद्रूप ही तत्त्व है।
२. स्यात् असद्रूप ही तत्त्व है।
३. स्यात् उभयरूप ही तत्त्व है।
४. स्यात् अनुभय (अवक्तव्य) रूप ही तत्त्व है।
५. स्यात् सद् और अवक्तव्य रूप ही तत्त्व है।
६. स्यात् असद् और अवक्तव्य रूप ही तत्त्व है।
७ स्यात् सद् और असद् तथा अवक्तरूप ही तत्त्व है।[1]

इन सप्तभङ्गोंमें प्रथम भंग स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, द्वितीय पर-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षासे, तृतीय दोनोंकी सम्मिलित अपेक्षाओंसे, चतुर्थ दोनों सत्त्व-असत्त्वको एक साथ कह न सकनेसे, पंचम प्रथम-चतुर्थके संयोगसे, षष्ठ द्वितीय-चतुर्थके मेलसे, सप्तम तृतीय-चतुर्थके सम्मिलित रूपसे विवक्षित हैं। प्रत्येक भंगका प्रयोजन पृथक्-पृथक् रूपमें अभीष्ट है।

समन्तभद्रने सदसद्के स्याद्वादके समान अद्वैत-द्वैतवाद, शाश्वत-अशाश्वतवाद, वक्तव्य-अवक्तव्यवाद, अन्यता-अनन्यतावाद, अपेक्षा-अनपेक्षावाद, हेतु-अहेतुवाद, विज्ञान-बहिरर्थवाद, दैव-पुरुषार्थवाद, पाप-पुण्यवाद और बन्ध-मोक्षकारणवाद-पर भी विचार किया है। तथा सप्तभंगीकी योजना कर स्याद्वादकी स्थापना की है। इस प्रकार समन्तभद्रने तत्त्वविचारको स्याद्वाददृष्टि प्रदान कर विचारसंघर्षको समाप्त किया है। समन्तभद्रका अभिमत है कि तात्त्विक विचारणा अथवा आचार-व्यवहार, जो कुछ भी हो, सब अनेकान्तदृष्टिके आधारपर किया जाना चाहिए। अतः समस्त आचार और विचारकी नींव अनेकान्तदृष्टि ही है। यही दृष्टि वैयक्तिक और सामष्टिक समस्याओंके समा-धानके लिए कुञ्जी है।

समन्तभद्रको सप्तभंगीका स्वरूप आचार्य कुन्द-कुन्दसे विरासतके रूपमें प्राप्त हुआ था। उन्होंने इस रूपको पर्याप्त विकसित और सुव्यवस्थित किया है। विचारसहिष्णुता और समता लानेका उनका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

---

१. देवागम, वीर-सेवा-मन्दिरट्रस्ट प्रकाशन, डॉ० दरबारीलाल कोठिया द्वारा लिखित प्रस्तावना पृ० ४४।

समन्तभद्रके पश्चात् सिद्धसेनने नय और अनेकान्तका गंभीर, विशद एवं मौलिक विवेचन किया है। समन्तभद्रके प्रमाणके 'स्वपरावभासक लक्षण'में 'बाधविवर्जित'[1] विशेषण देकर उसे विशेष समृद्ध किया। ज्ञानकी प्रमाणता और अप्रमाणताका आधार 'मेयनिश्चय'को माना।

पात्रकेसरी और श्रीदत्तने क्रमशः 'त्रिलक्षणकदर्थन' एवं 'जल्पनिर्णय' ग्रन्थों-की रचना कर 'अन्यथानुपपन्नत्व' रूप हेतुलक्षण प्रतिष्ठित किया तथा वादका सांगोपांग निरूपण कर पर-समयमीमांसा प्रस्तुत की।

आचार्य अकलंकदेवने जैन न्यायशास्त्रकी सुदृढ़ प्रतिष्ठा कर प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो भेद बतलाये तथा प्रत्यक्षके मुख्यप्रत्यक्ष; सांव्यव-हारिक प्रत्यक्ष ये दो भेद किये हैं। परोक्षप्रमाणके भेदोंमें स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगमको बतलाया है। उत्तरकालिन आचार्योंने अकलंक-द्वारा प्रतिष्ठापित प्रमाणपद्धतिको पल्लवित और पुष्पित किया है। अकलंक-देवने लघीयस्त्रयसवृत्ति, न्यायविनिश्चयसवृत्ति, सिद्धिविनिश्चयसवृत्ति और प्रमाणसंग्रहसवृत्ति इन मौलिक ग्रन्थोंकी रचना की है। तत्त्वार्थवार्त्तिक और अष्टशती इनके टीकाग्रन्थ हैं। अकलंकने इन ग्रन्थोंमें प्रमाण और प्रमेयकी व्यवस्थामें पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुका प्रमाणविषय-त्व तथा अर्थक्रियाकारित्वके विवेचनके पश्चात् नित्यैकान्त आदिका निरसन किया है। सुनय, दुर्नय, द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदिका स्वरूपविवेचन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अकलंकके पश्चात् आचार्य विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोक-वार्तिक, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासन-परीक्षा जैसे जैन न्यायके मूर्धन्य ग्रन्थोंका प्रणयन कर जैनदर्शनको सुव्यव-स्थित बनाया है। ज्ञेयको जानने-देखने, समझने और समझानेकी दृष्टियोंका नय और सप्तभंगी द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है। विद्यानन्दने विभिन्न दार्शन-कारों द्वारा स्वीकृत आप्तोंकी समीक्षा कर आप्तत्व एवं सर्वज्ञत्वकी प्रतिष्ठा की है। इन्होंने सविकल्पक एवं निर्विकल्पक ज्ञानकी प्रामाणिकताका भी विचार किया है। अभ्यास, प्रकरण, बुद्धिपाटव आदिसे निर्विकल्पको प्रमाण नहीं माना जा सकता। स्वलक्षणरूप परमाणुपदार्थ ज्ञानका विषय तभी बन सकता है जब स्थूल बाह्य पदार्थोंका अस्तित्व स्वीकार किया जाय। विद्यानन्दने

१. प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं, बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा, मेयविनिश्चयात्॥
—न्यायावतार, सम्पादक डॉ० पी० एल० वैद्य, प्रकाशक जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई, सन् १९२८ कारिका १।

पुरुषाद्वैत, शब्दाद्वैत, विज्ञानाद्वैत, चित्राद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, सेश्वरसांख्य, निरीश्वरसांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, भाट्ट आदिके मंतव्योंकी समीक्षा की हैं। प्रमेयोंका स्पष्टीकरण बहुत ही सुन्दर रूपमें किया गया है।

द्रव्यगुण-पर्यायविषयक देन

द्रव्यविवेचनके क्षेत्रमें श्रुतधराचार्य कुन्दकुन्दने जो मान्यताएँ प्रतिष्ठित की थीं, उनका विस्तार एलाचार्य, अमृतचन्द्र, अमितगति, वीरसेन, जोइन्दु आदि आचार्योंने किया है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों और उनके गुण-पर्यायोंका निरूपण किया गया है। जीवका चैतन्य आसाधारण गुण है। बाह्य और अभ्यन्तर कारणोंसे इस चैतन्यके ज्ञान और दर्शन रूपसे दो प्रकारके परिणमन होते हैं। जिस समय चैतन्य 'स्व'से भिन्न किसी ज्ञेयको जानता है, उस समय वह ज्ञान कहलाता है। और जब चैतन्यमात्र चैतन्याकार रहता है तब वह दर्शन कहलाता है। जीवमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण पाये जाते हैं।

पुद्गलद्रव्यमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण रहते हैं। जो द्रव्य स्कन्ध अवस्थामें पूरण अर्थात् अन्य-अन्य परमाणुओंसे मिलन और गलन अर्थात् कुछ परमाणुओंका बिछुड़ना, इस तरह उपचय और अपचयको प्राप्त होता है वह पुद्गल कहलाता है। समस्त दृश्य जगत इस पुद्गलका ही विस्तार है। मूल दृष्टिसे पुद्गलद्रव्य परमाणुरूप ही है। अनेक परमाणुओंसे मिलकर जो स्कन्ध बनता है वह संयुक्तद्रव्य है। स्कन्धोंका बनाव और मिटाव परमाणुओंकी बन्धशक्ति और भेदशक्तिके करण होता है।

प्रत्येक परमाणुमें स्वभावसे एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श होते हैं। परमाणु अवस्था ही पुद्गलकी स्वाभाविक पर्याय और स्कन्ध अवस्था विभाव पर्याय है। परमाणु परमातिसूक्ष्म है, अविभागी है, शब्दका कारण होकर भी स्वयं अशब्द है। शाश्वत होकर भी उत्पाद और व्यय युक्त है।

स्कन्ध अपने परिणमनकी अपेक्षासे छह प्रकारका है—१. बादर-बादर—जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वयं न मिल सकें, वे लकड़ी, पत्थर, पर्वत, पृथ्वी आदि बादर-बादर स्कन्ध कहलाते हैं। २. बादर—जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वयं आपसमें मिल जायँ, वे बादर स्कन्ध हैं; जैसे—दूध, घी, तैल, पानी आदि। ३. बादर-सूक्ष्म—जो स्कन्ध दिखनेमें तो स्थूल हों, लेकिन छेदने-भेदने और ग्रहण करनेमें न आवें, वे छाया, प्रकाश, अन्धकार, चाँदनी आदि बादर-सूक्ष्म स्कन्ध हैं। ४. सूक्ष्म-बादर—जो सूक्ष्म होकरके भी स्थूलरूपमें दिखें, वे पाँचों इन्द्रियोंके विषय—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द सूक्ष्म-बादर स्कन्ध हैं।

५. सूक्ष्म—जो सूक्ष्म होनेके कारण इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण न किये जा सकते हों, वे कर्मवर्गणा आदि सूक्ष्म स्कन्ध हैं। ६. अतिसूक्ष्म—कर्मवर्गणासे भी छोटे द्वयणुक स्कन्ध तक अतिसूक्ष्म हैं।

समान्यतः पुद्गलके स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु ये चार विभाग हैं। अनन्तान्त परमाणुओंसे स्कन्ध बनता है। उससे आधा स्कन्धदेश और स्कन्धदेशका आधा स्कन्धप्रदेश कहलाता है। परमाणु सर्वतः अविभागी होता है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, प्रकाश, उद्योत और गर्मी आदि पुद्गलद्रव्यके ही पर्याय हैं।

अनन्त आकाशमें जीव और पुद्गलोंका गमन जिस द्रव्यके कारण होता है वह धर्मद्रव्य है। यहाँ धर्मद्रव्य पुण्यका पर्यायवाची नहीं। यह असंख्यातप्रदेशी द्रव्य है। जीव और पुद्गल स्वयं गतिस्वभाववाले हैं। अतः इनके गमन करनेमें जो साधारण कारण होता है वह धर्मद्रव्य है। यह किसी जीव या पुद्गलको प्रेरणा करके नहीं चलाता, किन्तु जो स्वयं गति कर रहा है उसे माध्यम बनकर सहारा देता है। इसका अस्तित्व लोकके भीतर तो है ही, पर लोकसीमाओंपर नियंत्रकके रूपमें है। धर्मद्रव्यके कारण ही समस्त जीव और पुद्गल अपनी यात्रा उसी सीमा तक समाप्त करनेको विवश हैं। उससे आगे नहीं जा सकते।

जिस प्रकार गतिके लिए एक साधारण कारण धर्मद्रव्य अपेक्षित है, उसी तरह जीव एवं पुद्गलोंकी स्थितिके लिए एक साधारण कारण अधर्मद्रव्य अपेक्षित है। यह लोकाकाशके बराबर है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दसे रहित, अमूर्तिक, निष्क्रिय और उत्पाद-व्ययके परिणमनसे युक्त नित्य है। अपने स्वाभाविक संतुलन रखनेवाले अनन्त अगुरुलघुगुणोंसे उत्पाद-व्यय करता हुआ यह स्थितशील जीव-पुद्गलोंकी स्थितिमें साधारण कारण होता है। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोक और अलोक विभागके सद्भावसूचक प्रमाण हैं।

समस्त जीव, अजीव आदि द्रव्योंको जो अवगाह देता है अर्थात् जिसमें ये समस्त द्रव्य युगपत् अवकाश पाते हैं, वह आकाशद्रव्य है। आकाश अनन्त-प्रदेशी है। इसके मध्य भागमें चौदह राजू ऊँचा पुरुषाकार लोक स्थित है, जिसके कारण आकाश लोकाकाश और अलोकाकाशके रूपमें विभाजित हो जाता है। लोकाकाश असंख्यातप्रदेशोंमें है। शेष अनन्त प्रदेशोंमें अलोक है, जहाँ केवल आकाश ही आकाश है। यह निष्क्रिय है और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द आदिसे रहित होनेके कारण अमूर्तिक है।

समस्त द्रव्योंके उत्पादादिरूप परिणमनमें सहकारी कालद्रव्य होता है। इसका स्वरूप 'वर्त्तना' लक्षण है। यह स्वयं परिणमन करते हुए अन्य द्रव्योंके परिणमनमें सहकारी होता है। यह भी अन्य द्रव्यों के समान उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर एक-एक कालाणुद्रव्य अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। धर्म और अधर्म द्रव्यके समान यह कालद्रव्य एक नहीं है, यतः प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर समय-भेद स्थित रहनेसे यह अनेक रत्नोंकी राशिके समान पिण्डद्रव्य है। द्रव्योंमें परत्व, अपरत्व, पुरातनत्व, नूतनत्व, अतीत, वर्त्तमान और अनागतत्त्वका व्यवहार कालद्रव्यके कारण ही होता है।

प्रत्येक द्रव्यमें सामान्य और विशेष गुण पाये जाते हैं। प्रत्येक गुणका भी प्रतिसमय परिणमन होता है। गुण और द्रव्यका कथञ्चित् तदात्म्यसम्बन्ध है। द्रव्यसे गुणको पृथक नहीं किया जा सकता। इसलिए वह अभिन्न है और संज्ञा, संख्या, प्रयोजन आदिके भेदसे उसका विभिन्न रूपसे निरूपण किया जाता है, अतः वह भिन्न है। इस दृष्टिसे द्रव्यमें जितने गुण हैं उतने उत्पाद और व्यय प्रतिसमय होते हैं। प्रत्येक गुण अपने पूर्व पर्यायको त्यागकर उत्तरपर्यायको धारण करता है। पर उन सबकी द्रव्यसे भिन्न सत्ता नहीं रहती है। सूक्ष्मतया देखनेपर पर्याय और गुणको छोड़कर द्रव्यका कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, गुण और पर्याय ही द्रव्य है। पर्यायोंमें परिवर्त्तन होनेपर भी जो एक अनच्छिन्नताका नियामक अंश है, वही तो गुण है। गुणोंको सहभावी एवं अन्वयी तथा पर्यायोंको व्यतिरेकी और क्रमभावी माना जाता है। पर्याय, गुणोंका परिणाम या विकार होती हैं।

द्रव्य, गुण और पर्यायके विवेचनके साथ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका निरूपण भी किया गया है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व दो-दो प्रकारके होते हैं—द्रव्य और भावरूप। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप आत्मपरिणामोंसे कर्मपुद्गलोंका आगमन, जिन भावोंसे होता है वे भावास्रव कहलाते हैं। और पुद्गलोंका आना द्रव्यास्रव है। भावास्रव जीवगत पर्याय है और द्रव्यास्रव पुद्गलगत। जिन कषायोंसे कर्म बन्धते हैं, वे जीवगत कषायादि भावभावबन्ध हैं और पुद्गलकर्मका आत्मसे सम्बन्ध हो जाना द्रव्यबन्ध है। भावबन्ध जीवरूप है और द्रव्यबन्ध पुद्गलरूप। व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परिषहजयरूप भावोंसे कर्मोंके आनेको रोकना भावसंवर है। और कर्मोंका रुक जाना द्रव्यसंवर है। इसी प्रकार पूर्व संचित कर्मोंका निर्जरण जिन तपादिभावोंसे होता है वे भावनिर्जरा हैं और कर्मोंका झड़ना द्रव्य-

निर्जरा है। जिन ध्यान आदि साधनोंसे मुक्ति प्राप्ति होती है वे भाव भाव-मोक्ष हैं और कर्मपुद्गलोंका आत्मासे छूट जाना द्रव्यमोक्ष है। इस प्रकार आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये पाँच तत्त्व भावरूपमें जीवके पर्याय हैं और द्रव्यरूपमें पुद्गलके। जिनके भेदविज्ञानसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है, उन आत्मा और परमें ये सातों तत्त्व समाहित हो जाते हैं। वस्तुतः जिस 'पर' की परतन्त्रताको दूर करना है और जिस 'स्व'को स्वतन्त्र होना है, उस 'स्व' और 'पर'के ज्ञानमें तत्त्वज्ञानकी पूर्णता हो जाती है।

अध्यात्मविषयक देन

जोइन्दुने आत्मद्रव्यके विशेष विवेचनक्रममें आत्माके तीन प्रकार बतलाये हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो शरीर आदि परद्रव्योंको अपना रूप मानकर उनकी ही प्रिय भोग-सामग्रीमें आसक्त रहता है वह बहिर्मुख जीव बहिरात्मा है। जिन्हें स्वपरविवेक या भेदविज्ञान उत्पन्न हो गया है, जिनकी शरीर आदि बाह्य पदार्थोंसे आत्मदृष्टि हट गयी है वे सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा हैं। जो समस्त कर्ममलकलंकोंसे रहित होकर शुद्ध चिन्मात्रस्वरूपमें मग्न हैं वे परमात्मा हैं। यह संसारी आत्मा अपने स्वरूपका यथार्थ परिज्ञान कर अन्तर्दृष्टि हो क्रमशः परमात्मा बन जाता है।

आचार्योंने चारित्र-साधनाका मुख्याधार जीवतत्वके स्वरूप और उसके समान अधिकारकी मर्यादाका तत्त्वज्ञान ही माना है। जब हम यह अनुभव करते हैं कि जगतमें वर्तमान सभी आत्माएँ अखण्ड और मूलतः एक-एक स्वतत्र समान शक्तिवाले द्रव्य हैं। जिस प्रकार हमें अपनी हिंसा रुचिकर नहीं है, उसी प्रकार अन्य आत्माओंको भी नहीं है। अतएव सर्वात्मसमत्वकी भावना ही अहिंसाकी साधनाका मुख्य आधार है। आत्मसमानाधिकरणका ज्ञान और उसको जीवनमें उतारनेकी दृढ़ निष्ठा ही सर्वोदयकी भूमिका है और इसी भूमिकासे चारित्रका विकास होता है।

अहिंसा, संयम, तपकी साधनाएँ आत्मशोधनका कारण बनती हैं। सम्यक्-श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही आत्मस्वातंत्र्यकी प्राप्तिमें कारण है।

प्रबुद्धाचार्योंने तत्त्वज्ञान, प्रमाणवाद, पुराण, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयोंका संवर्द्धन किया है। यह सत्य है कि जैसी मौलिक प्रतिभा श्रुतधर और सारस्वताचार्योंमें प्राप्त होती है; वैसी प्रबुद्धाचार्योंमें नहीं। तो भी जिनसेन प्रथम, गुणभद्र, पाल्यकीर्ति, वीरनन्दि, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, महासेन, हरिषेण, सोमदेव, वसुनन्दि, रामसेन, नयसेन, माघनन्दि, आदि आचार्योंने श्रुतकी अपूर्व साधना की है। इन्होंने चारों अनुयोगोंके विषयोंका

नये रूपमें ग्रथन, सम्पादन एवं नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत कर तीर्थंकरवाणीको समृद्ध बनाया है।

अध्यात्मके क्षेत्रमें आचार्य कुन्दकुन्दने जिस सरिताको प्रवाहित किया, उसे स्थिर बनाये रखनेका प्रयास सारस्वत और प्रबुद्धाचार्योंने किया है। इन्होंने व्यक्तित्वके विकासके लिए आध्यात्मिक और नैतिक जीवनके यापनपर जोर दिया है। जब तक मनुष्य भौतिकवादमें भटकता रहेगा, तब तक उसे सुख, शान्ति और संतोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जैन संस्कृतिका लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है; संघर्ष नहीं, शान्ति है; विषाद नहीं, आनन्द है। जीवनके शोधनका कार्य आध्यात्मिकता द्वारा ही संभव होता है। भोगवादी दृष्टिकोण मानव-जीवनमें निराशा, अतृप्ति और कुण्ठाओंको उत्पन्न करता है। जिससे शक्ति, अधिकार और स्वत्वकी लालसा अहर्निश बढ़ती जाती है। प्रतिशोध एवं विद्वेषके दावानलसे झुलसती मानवताका त्राण अध्यात्मवाद ही कर सकता है। यह अध्यात्मवाद कहीं बाहरसे आनेवाला नहीं; हमारी आत्माका धर्म है; हमारी चेतनाका धर्म है और है हमारी संस्कृतिका प्राणभूत तत्त्व।

मनुष्यजीवनमें दो प्रधान तत्त्व हैं—दृष्टि और सृष्टि। दृष्टिका अर्थ है बोध, विवेक, विश्वास और विचार। सृष्टिका अर्थ है—क्रिया, कृति, संयम और आचार। मनुष्यके आचारको परखनेकी कसौटी उसका विचार और विश्वास होता है। वास्तवमें मनुष्य अपने विश्वास, विचार और आचारका प्रतिफल है। दृष्टिकी विमलतासे जीवन अमल और धवल बन सकता है। यही कारण है कि आचार्योंने विचार और आचारके पहले दृष्टिकी विशुद्धिपर विशेष जोर दिया; क्योंकि विश्वास और विचारको समझनेका प्रयत्न ही अपने स्वरूपको समझनेका प्रयत्न है।

अपने विशुद्ध स्वरूपको समझनेके लिए निश्चयदृष्टिकी आवश्यकता है। यह सत्य है कि व्यवहारको छोड़ना एक बड़ी भूल हो सकती है। पर निश्चयको छोड़ना उससे भी अधिक भयंकर भूल है। अनन्त जन्मोंमें अनन्त बार इस जीवने व्यवहारको ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु निश्चयदृष्टिको पकड़ने और समझनेका प्रयत्न एक बार भी नहीं किया है। यही कारण है कि शुद्ध आत्माकी उपलब्धि इस जीवको नहीं हो सकी और यह तब तक प्राप्त नहीं हो सकेगी, जब तक आत्माके विभावके द्वारको पारकर उसके स्वभावके भव्यद्वारमें प्रवेश नहीं किया जायेगा।

दुःख एवं क्लेशप्रद परिणाम होनेसे पाप त्याज्य है। प्राणियोंको दुःखरूप होनेसे ही पाप रुचिकर नहीं है। पुण्य आत्माको अच्छा लगता है, क्योंकि

उसका परिणाम सुख एवं समृद्धि है। इस प्रकार सुख एवं दुःख प्राप्तिकी दृष्टिसे संसारी आत्मा पापको छोड़ता है और पुण्यको ग्रहण करता है, किन्तु विवेकशील ज्ञानी आत्मा विचार करता है कि जिस प्रकार पाप बन्धन है, उसी प्रकार पुण्य भी एक प्रकारका बन्धन है। यह सत्य है कि पुण्य हमारे जीवन-विकासमें उपयोगी है, सहायक है। यह सब होते हुए भी पुण्य उपादेय नहीं है, अन्ततः वह हेय ही है। जो हेय है, वह अपनी वस्तु कैसे हो सकती है? आस्रव होनेके कारण पुण्य भी आत्माका विकार है, वह विभाव है, आत्माका स्वभाव नहीं। निश्चयदृष्टिसम्पन्न आत्मा विचार करता है कि संसारमें जितने पदार्थ हैं, वे अपने-अपने भावके कर्त्ता हैं, परभावका कर्त्ता कोई पदार्थ नहीं। जैसे कुम्भकार घट बनानेरूप अपनी क्रियाका कर्त्ता व्यवहार या उपचार मात्रसे है। वास्तवमें घट बननेरूप क्रियाका कर्त्ता घट है। घट बननेरूप क्रियामें कुम्भकार सहायक निमित्त है, इस सहायक निमित्तको ही उपचारसे कर्त्ता कहते हैं। तथ्य यह है कि कर्त्ताके दो भेद हैं—परमार्थ कर्त्ता और उपचरित कर्त्ता। क्रियाका उपादान कारण ही परमार्थ कर्त्ता है, अतः कोई भी क्रिया परमार्थ कर्त्ताके बिना नहीं होती है। अतएव आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन आदि चेतनभावोंका ही कर्त्ता है, राग-द्वेष-मोहादिका नहीं। आचार्य नेमिचन्द्रने बताया है—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥[1]

व्यवहारनयसे आत्मा पुद्गलकर्म आदिका कर्त्ता है, निश्चयसे चेतनकर्मका, और शुद्धनयकी अपेक्षा शुद्ध भावोंका कर्त्ता है।

तथ्य यह है कि जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके साथ बन्धको प्राप्त होता है, उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है। उस अशुद्ध परिणमनमें दोनों द्रव्योंके गुण अपने स्वरूपसे च्युत होकर विकृत भावको प्राप्त होते हैं। जीवद्रव्यके गुण भी अशुद्ध अवस्थामें इसी प्रकार विकारको प्राप्त होते रहते हैं। जीवद्रव्यके अशुद्ध परिणमनका मुख्य कारण वैभाविकी शक्ति है और सहायकनिमित्त जीवके गुणोंका विकृत परिणमन है। अतएव जीवका पुद्गलके साथ अशुद्ध अवस्थामें ही बन्ध होता है, शुद्ध अवस्था होनेपर विकृत परिणमन नहीं होता। विकृत परिणमन ही बन्धका सहायकनिमित्त है।

प्रमाण और अप्रमाण विषयक देन

प्रमाणके क्षेत्रमें सारस्वताचार्य और प्रबुद्धाचार्योंने विशेष कार्य किया है।

---

१. द्रव्यसंग्रह, गाथा ८।

ज्ञान, प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था बाह्य अर्थके प्रतिभास होने और प्रतिभासके अनुसार उसके प्राप्त होने और न होनेपर निर्भर है। इन आचार्योंने आगमिक क्षेत्रमें तत्वज्ञानसम्बन्धी प्रमाणकी परिभाषाको दार्शनिक चिन्तनक्षेत्रमें उपस्थित कर प्रमाणसम्बन्धी सूक्ष्म चर्चाएँ निबद्ध की हैं। प्रमाणता और अप्रमाणताका निर्धारण बाह्य अर्थकी प्राप्ति और अप्राप्तिसे सम्बन्ध रखता है। आचार्य अकलंकदेवने अविसंवादको प्रमाणताका आधार मानकर एक विशेष बात यह बतलाई है कि हमारे ज्ञानोंमें प्रमाणता और अप्रमाणताकी संकीर्ण स्थिति है। कोई भी ज्ञान एकान्तसे प्रमाण या अप्रमाण नहीं कहा जा सकता। इन्द्रियदोषसे होनेवाला द्विचन्द्रज्ञान भी चन्द्रांशमें अविसंवादी होनेके कारण प्रमाण है, पर द्वित्व अंशमें विसंवादी होनेके कारण अप्रमाण। इस प्रकार अकलंकने ज्ञानकी एकांतिक प्रमाणता या अप्रमाणताका निर्णय नहीं किया है, यतः इन्द्रियजन्य क्षायोपशमिक ज्ञानोंकी स्थिति पूर्ण विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। स्वल्पशक्तिक इन्द्रियोंकी विचित्र रचनाके कारण इन्द्रियोंके द्वारा प्रतिभासित पदार्थ अन्यथा भी होता है। यही कारण है कि आगमिक परम्परामें इन्द्रिय और मनोजन्य मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको प्रत्यक्ष न कहकर परोक्ष ही कहा गया है।

प्रामाण्य और अप्रामाण्यकी उत्पत्ति परसे ही होती है, ज्ञप्ति अभ्यासदशामें स्वतः और अनभ्यासदशामें परतः हुआ करती है। जिन स्थानोंका हमें परिचय है उन जलाशयादिमें होनेवाला ज्ञान या मरीचि-ज्ञान अपने आप अपनी प्रमाणता और अप्रमाणता बता देता है, किन्तु अनिश्चित स्थानमें होनेवाले जलज्ञानकी प्रमाणताका ज्ञान अन्य अविनाभावी स्वतः प्रमाणभूत ज्ञानोंसे होता है। इस प्रकार प्रमाण और प्रामाण्यका विचार कर तदुपत्ति, तदाकारता, इन्द्रियसन्निकर्ष, कारकसाकल्य आदिकी विस्तारपूर्वक समीक्षा की है। प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणोंके भेदोंका प्रतिपादन कर अन्य दार्शनिकों द्वारा स्वीकृत प्रमाण-भेदोंकी समीक्षा की गयी है।

अकलंकदेवने प्रमाणसंग्रहमें श्रुतके प्रत्यक्षनिमित्तक, अनुमाननिमित्तक और आगमनिमित्तक ये तीन भेद किये हैं।[१] परोपदेशसे सहायता लेकर उत्पन्न होनेवाला श्रुत प्रत्यक्षपूर्वक श्रुत है, परोपदेश सहित हेतुसे उत्पन्न होनेवाला श्रुत अनुमानपूर्वक श्रुत और केवल परोपदेशसे उत्पन्न होनेवाला श्रुत आगम-निमित्तक श्रुत है। प्रमाणचिन्तनके पश्चात् प्रमाणाभासोंका विचार किया

१. श्रुतमविप्लवं प्रत्यक्षानमानागमनिमित्तम्—प्रमाणसंग्रह, पृ० १।

गया है । द्वैत-अद्वैतसमीक्षाके अनन्तर सर्वज्ञ-सिद्धि, स्याद्वादसिद्धि, सप्त-भंगी आदिका विचार किया गया है । निश्चयतः जैन लेखकोंकी प्रमाणमीमांसा भारतीय प्रमाणमीमांसामें अपना विशिष्ट स्थान रखती है ।

व्याकरणविषयक देन

जैनाचार्योंने भाषाको सुव्यवस्थित रूप देनेके लिए व्याकरणग्रन्थोंकी रचना की है । आचार्य देवनन्दिने अपने शब्दानुशासनमें श्रीदत्त, यशोभद्र, भूतबलि, प्रभाचन्द्र, सिद्धसेन और समन्तभद्र इन छः वैयाकरणोंके नाम निर्दिष्ट किये हैं । देवनन्दिने जैनेन्द्रव्याकरणकी रचना कर कुछ ऐसी मौलिक बातें बतलायी हैं, जो अन्यत्र प्राप्त नहीं होतीं । उन्होंने लिखा है—"स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः" (१।१।९९) शब्द स्वभावसे ही एकशेषकी अपेक्षा न कर एकत्व, द्वित्व और बहुत्वमें प्रवृत्त होता है । अतः एकशेष मानना निरर्थक है । यही कारण है कि इनका व्याकरण 'अनेकशेष' कहलाता है । इन्होंने शब्दोंकी सिद्धि अनेकान्त द्वारा प्रदर्शित की है—"सिद्धिरनेकान्तात्" (१।१।१) अर्थात् नित्यत्व, अनित्यत्व, उभयत्व, अनुभयत्व प्रभृति नाना धर्मोंसे विशिष्ट धर्मी रूप शब्दकी सिद्धि अनेकान्तसे ही संभव है । इस प्रकार देवनन्दिने अपने मौलिक विचार प्रस्तुत कर अनेक धर्मविशिष्ट शब्दोंका साधुत्व बतलाया है ।

जैनेन्द्र व्याकरणपर अभयनन्दिकृत महावृत्ति, प्रभाचन्द्रकृत शब्दांभोजभास्करन्यास, श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया और पण्डित महाचन्द्रकृत वृत्ति, ये चार टीकाएँ प्रसिद्ध हैं ।

यापनीय संघके आचार्य पाल्यकीर्तिने शाकटायनव्याकरणकी रचना की । इस व्याकरणपर सात टीकाएँ उपलब्ध हैं । अमोघवृत्ति, शाकटायनन्यास, चिन्तामणि, मणिप्रकाशिका, प्रक्रियासंग्रह, शाकटायनटीका और रूपसिद्धि । ये सभी टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं । चिन्तामणिके रचयिता यक्षवर्मा हैं और शाकटायनन्यासके प्रभाचन्द्र । प्रक्रिया-संग्रहको अभयचन्द्रने सिद्धान्तकौमुदीको पद्धतिपर लिखा है । दयापाल मुनिने लघुसिद्धान्तकौमुदीकी शैलीपर रूपसिद्धिकी रचना की है । कातन्त्ररूपमालाके रचयिता भावसेन त्रैविद्य हैं । शुभचन्द्रने चिन्तामणिनामक प्राकृतव्याकरण लिखा है । श्रुतसागरसूरिका भी एक प्राकृतव्याकरण उपलब्ध है ।

कोषविषयक देन

कोषविषयक साहित्यमें धनञ्जयकी नाममाला ही सबसे प्राचीन है । इसके अतिरिक्त अनेकार्थनाममाला और अनेकार्थनिघंटु भी इन्हींके द्वारा रचित

है। श्रीधरसेनने विश्वलोचन कोषकी रचना की है, इसका दूसरा नाम मुक्तावलीकोष है। धनमित्रने एक निघंटु-रचना लिखी है। मदनपराजयके कर्त्ता धनदेवने अनेकार्थनामक एक कोष लिखा है। आशाधरद्वारा विरचित अमरकोषकी क्रिया-कलापटीका भी ज्ञात होती है। इस प्रकार दिगम्बर परम्पराके आचार्योंने कोष-साहित्यकी अभिवृद्धि की है।

पुराण और काव्यविषयक देन

दिगम्बराचार्योंने कर्मके फलभोक्ताओंका उदाहरण उपस्थित करनेके लिए काव्य, नाटक, कथा और पुराणोंका सृजन किया है। जिस प्रकार आजका वैज्ञानिक अपने किसी सिद्धान्तको प्रमाणित करनेके लिए प्रयोगका आश्रय ग्रहण करता है और प्रयोगविधि द्वारा उसकी सत्यता प्रमाणित कर देता है, उसी प्रकार कर्मसिद्धान्तके व्यावहारिक पक्षको प्रयोगरूपमें ज्ञात करनेके लिए आख्यानात्मक साहित्यका सृजन किया जाता है। पुराण, कथा और काव्योंमें कर्मके शुभाशुभ फलकी व्यञ्जना करनेके लिए त्रेसठ शालाकापुरुषों, अन्य पुण्य पुरुषों एवं व्रताराधक पुरुषोंके जीवनवृत्त अंकित किये गये हैं। जिन व्यक्तियोंने धर्मकी आराधनाद्वारा अपने जीवनमें पुण्यका अर्जन कर स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त किया है, उनके जीवन-वृत्त साधारणव्यक्तियोंको भी प्रभावित करते हैं। इनका विषय स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम धर्मका पोषक नहीं है। इसमें जातिवादके प्रति क्रान्ति प्रदर्शित की गयी है। आश्रम-व्यवस्था भी मान्य नहीं है। समाज सागार और अनागार इन दो वर्गोंमें विभक्त है। तप, त्याग, संयम अहिंसाकी साधना द्वारा मानव-मात्र समानरूपसे आत्मोत्थान करनेका अधिकारी है। आत्मोत्थानके लिए किसी परोक्ष शक्तिकी सहायता अपेक्षित नहीं है। अपने पुरुषार्थ द्वारा कोई भी व्यक्ति सर्वांगीण विकास कर सकता है।

जैन वाङ्मयमें त्रेसठ शलाकापुरुष उपाधि या पदविशेष हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदिके 'जीवनमान' निर्धारित हैं। जो भी तीर्थंकर या चक्रवर्ती होगा, उसमें निर्धारित जीवनमूल्योंका रहना परमावश्यक है। तीर्थंकरोंके पञ्चकल्याणक और चक्रवर्तियोंकी विशिष्ट सम्पत्ति परम्परा द्वारा पठित है। अतः त्रेसठ शलाकापुरुषोंके जीवनवृत्त अंकनमें परम्परानुमोदित जीवनमूल्योंका समावेश परमावश्यक है।

जैन पुराण और काव्योंमें आत्माका अमरत्व एवं जन्म-जन्मान्तरोंके संस्कारोंकी अपरिहार्यता दिखलानेके लिए पूर्व जन्मके आख्यानोंका संयोजन किया जाता है। प्रसंगवश चार्वाक, तत्त्वोपप्लववाद प्रभृति नास्तिकवादोंका निरसन कर आत्माका अमरत्व और कर्मसंस्कारका वैशिष्ट्य निरूपित किया है। पूर्वजन्म-

के सभी आख्यान नायकोंके जीवनमें कलात्मक शैलीमें गुम्फित किये गये हैं। पुनर्जन्म, आत्माका अमरत्व, कर्मसंस्कारोंका प्रभाव, आत्म-साधना आदिका भी चित्रण किया गया है।

इस प्रकार तृतीय खण्डमें आचार्यों द्वारा पुराण और काव्योंका गुम्फन भी हुआ है। वास्तवमें प्रबुद्धाचार्योंने प्राचीन आगमोंसे आख्यानतत्त्व ग्रहण कर प्रथमानुयोगसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं।

परम्परापोषक आचार्योंमें भट्टारकोंकी गणना की गयी है। इन्होंने मन्दिर-मूर्ति-प्रतिष्ठा, साहित्य-संरक्षण और साहित्यप्रणयन द्वारा जैन संस्कृतिका प्रचार-प्रसार करनेमें अद्वितीय प्रयास किया है। बृहत् प्रभाचन्द्र, भास्करनन्दि, ब्रह्मदेव, रविचन्द्र, अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, पद्मनन्दि, सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, सोमकीर्ति, ज्ञानभूषण, अभिनव धर्मभूषण, विजयकीर्ति, शुभ-चन्द्र, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, सुमतिकीर्ति, श्रुतसागर, ब्रह्मनेमिदत्त, श्रुतकीर्ति, मलयकीर्ति प्रभृति भट्टारकोंने मन्त्र-तन्त्र, आचारशास्त्र, काव्य, पुराण विषयक रचनाएँ लिखकर तत्कालीन राजाओं और शासकोंको प्रभावित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि परम्परापोषक आचार्योंने वाङ्मयके प्रणयनमें अभूतपूर्व कार्य किया है। ह्रासोन्मुखी प्रतिभाके होनेपर भी सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, श्रुत-सागरसूरि, रत्नकीर्ति आदि ऐसे भट्टारक हैं, जिन्होंने विपुल ग्रंथराशिका निर्माण कर वाङ्मयकी अभिवृद्धिमें अपूर्व योगदान किया है।

इस तृतीय खण्डमें भट्टारकीय परम्परा द्वारा प्राप्त सामग्रीका सर्वांगीण विवेचन करनेका प्रयास किया गया।

चतुर्थ खण्डमें संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल और मराठी भाषाके जैन कवियों द्वारा लिखित साहित्यका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इन भाषाओंके शताधिक कवियोंने रस, गुण समन्वित काव्योंकी रचना की है। यह खण्ड कवियोंके इतिवृत्तको अवगत करनेकी दृष्टिसे उपादेय है। इस प्रकार प्रस्तुत 'तीर्थंकर महावीरकी आचार्यपरम्परा' ग्रन्थमें ऐसे आचार्यों और लेखकोंके इतिवृत्तोंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्होंने वाङ्मयकी सेवा की है।

आचार्यों द्वारा प्रभावित राजवंश और सामन्त

दिगम्बर जैनाचार्योंने विभिन्न राजवंशों और राजाओंको प्रभावित कर जैन शासनका उद्योत किया है। राजाओंके अतिरिक्त अमात्य, सामन्त एवं सेना-पतिओंने भी शासनके प्रचार एवं प्रसारमें योगदान किया है।

आचार्य भद्रबाहुके शिष्य मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्तने उज्जयिनीमें श्रमण-

दीक्षा ग्रहणकर दक्षिणकी ओर विहार किया। भद्रबाहुस्वामीने अपना अन्तिम समय जानकर श्रमणबेलगोलाके कटवप्र पर्वतपर समाधिमरण ग्रहण किया। चन्द्रगुप्तने भद्रबाहुस्वामीके साथ रहकर उनकी अन्तिम अवस्था तक सेवा की और वर्षों तक मुनिसंघका संचालन किया। मौर्यवंशके अहिंसक होनेका एक कारण चन्द्रगुप्तका जैन दीक्षा ग्रहण करना भी है। अशोक अपने जीवनके पूर्वार्द्धमें जैन था और उत्तरार्द्धमें वह बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ। सम्राट सम्प्रति ने तो जैन शासनके अभ्युत्थानके हेतु अनेक स्तम्भ, स्तूप एवं स्मारकोंका निर्माण कराया।

चेदिवंशके सम्राट एल खारवेलने जैन शासनकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये। उसने मगधपर आक्रमण कर बहुमूल्य रत्नादिकके साथ कलिंग जिनकी वह प्रसिद्ध मूर्ति भी उपलब्ध की, जिसे नन्दराज कलिंगसे ले आये थे। खारवेलने कुमारीपर्वतपर जैन मुनि और पण्डितगणोंका सम्मेलन बुलाया तथा जैनागमको संशोधित कर नये रूपमें निबद्ध करनेका प्रयास किया। जैनसंघने उसे भिक्षुराज, धर्मराज और खेमराजकी उपाधियोंसे विभूषित किया। उसने अपना अन्तिम जीवन कुमारीपर्वतपर स्थित अर्हत् मन्दिरमें भक्ति और धर्म ध्यानमें संलग्न किया। उसने जैन मुनियोंके लिए गुफाएँ एवं चैत्य बनवाये। खारवेल द्वारा उत्कीर्णित एक अभिलेख उदयगिरि पर्वतकी गुफामें ई० पू० १७० का मिलता है। खारवेलका स्वर्गवास ई० पू० १५२में हुआ है।

ई० सन्की द्वितीय शतीसे पंचमी शती तक गंगवंशके राजाओंने जैन शासनकी उन्नतिमें योगदान दिया है। ई० सन्की दूसरी शताब्दीके लगभग इस वंशके दो राजकुमार दक्षिण आये। उनके नाम दडिग और माधव थे। पेरूर नामक स्थानमें इनकी भेंट आचार्य सिंहनन्दिसे हुई। सिंहनन्दिने उन-दोनोंको शासन-कार्यकी शिक्षा दी। एक पाषाण-स्तम्भ साम्राज्यदेवीके प्रवेशको रोक रहा था। अतः सिंहनन्दिकी आज्ञासे माधवने उसे काट डाला। आचार्य सिंहनन्दिने उन्हें राज्यका शासक बनाते हुए उपदेश दिया—"यदि तुम अपने वचनको पूरा न करोगे, या जिन शासनको साहाय्य दोगे, दूसरोंकी स्त्रियोंका अपहरण करोगे, मद्य-मांसका सेवन करोगे, या नीचोंकी संगतिमें रहोगे, आवश्यक होनेपर भी दूसरोंको अपना धन नहीं दोगे और यदि युद्धके मैदानमें पीठ दिखाओगे, तो तुम्हारा वंश नष्ट हो जायेगा"।[१]

---

१. अन्तु समस्त-राज्यमं·······किडुगुं कुलक्रमम्।—जैन शिलालेखसंग्रह, द्वितीय भाग, अभिलेखसं० २७७, कल्लूगुड्डका लेख, पृ० ४१३।

कल्लुगुड्डके इस अभिलेखमें सिंहनन्दि द्वारा दिये गये राज्यका विस्तार भी अंकित है। दडिगने राज्य प्राप्त कर जैनधर्म और जैनसंस्कृतिके लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इसने मण्डलिनामक प्रमुख स्थानपर एक भव्य जिनालय-का निर्माण कराया, जो काष्ठ द्वारा निर्मित था। दडिगका पुत्र लघुमाधव और लघुमाधवका पुत्र हरिवर्मा हुआ। हरिवर्माने जैनशासनकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये। इसी वंशमें राजा तडङ्गाल माधवका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अविनीत हुआ। 'नोड़ मंगल-दानपत्र'से, जो उसने अपने राज्यके प्रथम वर्षमें अंकित कराया था, ज्ञात होता है कि उसने अपने परमगुरु अर्हत् विजयकीर्तिके उपदेशसे मूलसंघके चन्द्रनन्दि आदि द्वारा प्रतिष्ठापित उर्णूर जिनालयको वेन्नेलकरणि गाँव और पेरूर एवानि अडिगल जिनालयको बाहरी चुंगीका चौथाई कार्षापण दिया। श्री लुईस राइसने इस ताम्रपत्रका समय ४२५ ई० निश्चित किया है।

मर्कराके ताम्रपत्रसे अवगत होता है कि अविनीत जैनधर्मका अनुयायी था। अविनीतके पुत्र दुर्विनीतने भी जैन शासनके विकासमें सहयोग प्रदान किया। इसने कांगलि नामक स्थानपर चेन्नपार्श्वबस्ति नामक जिनालयका निर्माण कराया[1] था। दुर्विनीतके पुत्र मुक्कर या मोक्करने मोक्करवसति नामक जिनालयका निर्माण कराया था। मोक्करके पश्चात् श्रीविक्रम राजा हुआ और उसके भूविक्रम और शिवमार ये दो पुत्र हुए। शिवमारने श्रीचन्द्रसेनाचार्यको जिनमन्दिरके लिये एक गाँव प्रदान किया था।

श्रीपुरुषके पुत्र शिवमार द्वितीयने श्रवणबेलगोलाकी छोटी पहाड़ीपर चन्द्रनाथवसतिका निर्माण कराया था। मैसूर जिलेके हैगड़े देवन ताल्लुकेके हेब्बल गुप्पेके आञ्जनेय मन्दिरके निकटसे प्राप्त अभिलेखमें लिखा है कि श्री नरसिंगेरे अप्पर दुग्गमारने कोयलवसतिको भूमि प्रदान की। गंगवंशमें मरूलका सौतेला भाई मारसिंह भी शासनप्रभावनाकी दृष्टिसे उल्लेखनीय है। इसका राज्यकाल ई० सन् ९६१–९७४ है।

श्रवणबेलगोलाके अभिलेखसंख्या ३८से विदित होता है कि मारसिंहने जैनधर्मका अनुपम उद्योत किया और भक्तिके अनेक कार्य करते हुए मृत्युसे एक वर्ष पूर्व उसने राज्यका परित्याग किया और उदासीन श्रावकके रूपमें जीवन व्यतीत किया। अन्तमें तीन दिनके संल्लेखनाव्रत द्वारा वंकापुरके अपने गुरु अजितसेन भट्टारकके चरणोंमें समाधिमरण ग्रहण किया। मारसिंहने अनेक जैन विद्वानोंका संरक्षण किया।

---

१. संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग ३, खण्ड २, पृ० ४७।

गंगवंशके राजाओंके अतिरिक्त कदम्बवंशके राजाओंमें काकुस्थवर्माके पौत्र मृगेश वर्माने ५वीं शताब्दीमें राज्य किया। राज्यके तीसरे वर्षमें अंकित किये गये ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है कि इसने अभिषेक, उपलेपन, कूजन, भग्न-संस्कार (मरम्मत) और प्रभावनाके लिये भूमि दान दी। एक अन्य ताम्रपत्रसे विदित है कि मृगेशवर्माने अपने राज्यके ८वें वर्षमें अपने स्वर्गीय पिताकी स्मृतिमें पलाशिका नगरमें एक जिनालय बनवाया था और उसकी व्यवस्थाके लिये भूमि दानमें दी थी। यह दान उसने यापनियों तथा कूर्चक सम्प्रदायके नग्न साधुओंके निमित्त दिया था। इस दानके मुख्य ग्रहीता जैनगुरु दानकीर्ति और सेनापति जयन्त[१] थे। मृगेशवर्माके उत्तराधिकारी रविवर्मा और उसके भाई भानुवर्माने भी जैन शासनकी उन्नति की है। राजा रविवर्माके पुत्र हरिवर्माने अपने राज्यकालके चतुर्थ वर्ष में एक दानपत्र प्रचलित किया था, जिससे ज्ञात होता है कि उसने अपने चाचा शिवरथके उपदेशसे कूर्चक सम्प्रदायके वारिषेणाचार्यको वसन्तवाटक ग्राम दानमें दिया था। इस दानका उद्देश्य पलाशिकामें भारद्वाजवंशी सेनापतिसिंहके पुत्र मृगेशवर्मा द्वारा निर्मित जिनालयमें वार्षिक अष्टाह्निक पूजाके अवसरपर कृताभिषेकके हेतु धन दिये जानेका उल्लेख है। इसी राजाने अपने राज्यके ५वें वर्षमें सेन्द्रकवंशके राजा भानुशक्तिकी प्रार्थनासे धर्मात्मा पुरुषोंके उपयोगके लिए तथा मन्दिरकी पूजाके लिए 'मरदे' नामक गाँव दानमें दिया था। इस दानके संरक्षक धर्मनन्दि नामके आचार्य थे।

जैनाचार्योंने राष्ट्रकूट वंशको भी प्रभावित किया है। इस वंशका गोविन्द तृतीयका पुत्र अमोघवर्ष जैनधर्मका महान् उन्नायक, संरक्षक और आश्रयदाता था। इसका समय ई० सन् ८१४-८७८ है। अमोघवर्षने अपनी राजधानी मान्यखेटको सुन्दर प्रासाद, भवन और सरोवरोंसे अलंकृत किया। वीरसेनस्वामीके पट्टशिष्य आचार्य जिनसेनस्वामी इसके धर्मगुरु थे। महावीराचार्यने अपने गणितसारसंग्रहमें अमोघवर्षकी प्रशंसा की है।

आर्यनन्दिने तमिल देशमें जैनधर्मके प्रचारके लिये अनेक कार्य किये। मूर्तिनिर्माण, गुफानिर्माण, मन्दिरनिर्माणका कार्य ई० सन् की ८वीं, ९वीं शतीमें जोर-शोरके साथ चलता रहा। चितराल नामक स्थानके निकट तिरुचानट्टु नामकी पहाड़ीपर उकेरी गयी मूर्तियाँ कलाकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

होय्सल राजवंशके कई राजाओंने जैनकला और जैनधर्मकी उन्नतिके लिए

---

१. जैन शिलालेखसंग्रह, द्वितीय भाग, अभि० सं० ९९, पृ० ७३।

अनेक कार्य किये हैं। अंगडीसे प्राप्त अभिलेखमें विनयादित्य होय्सलके कार्यों-का ज्ञान प्राप्त होता है। श्रवणबेलगोलाके गंधवारण वसतिके अभिलेखसे अवगत होता है कि विनयादित्यने सरोवरों और मन्दिरोंका निर्माण कराया था। यह विनयादित्य चालुक्यवंशके विक्रमादित्य षष्ठका सामन्त था। इसकी उपाधि 'सम्यक्त्वचूड़ामणि' थी। इसने जीर्णोद्धारके साथ अनेक मन्दिरोंका निर्माण कराया था।

होय्सल नरेशोंमें विष्णुवर्द्धन भी जैन शासनका प्रभावक हुआ है। शासनकी उन्नति करनेवाले सामन्तोंमें राष्ट्रकूट सामन्त लोकादित्यका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका समय शक संवत्‌की ८वीं शताब्दी है। यह बंकेयरसका पुत्र था और राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण द्वितीय अकालवर्षके शासनके अन्तर्गत वनवास देशके बंकापुरका शासक था।

दक्षिण भारतमें जैनधर्मको सुदृढ़ बनानेमें जिनदत्तरायका भी हाथ है। इसने जिनदेवके अभिषेकके लिए कुम्भसिकेपुर गाँव प्रदान किया था। तोला-पुरुष विक्रम शान्तरने सन् ८९७ ई०में कुन्दकुन्दान्वयके मौनीसिद्धान्त भट्टारकके लिए वसतिका निर्माण कराया था। यह वही विक्रम शान्तर है, जिसने हुम्मच-में गुड्डद वसतिका निर्माण कराया था और उसे बाहुबलिको भेंट कर दिया था। भुजबल शान्तरने अपनी राजधानी पोम्बुच्चमें भुजबल शान्तर जिनालय-का निर्माण कराया था और अपने गुरु कनकनन्दिदेवको हरवरि ग्राम प्रदान किया था। उसका भाई नन्नि शान्तर भी जिनचरणोंका पूजक था। वीर शान्तरके मन्त्री नगुलरसने भी अजितसेन पण्डितदेवके नामपर एक वसतिका शिलान्यास कराया था। यह नयी वसति राजधानी पोम्बुच्चमें पंचवसतिके सामने बनवायी गयी थी। भुजबल गंग पेरम्माडि वर्मदेव (सन् १११५ ई०) मुनिचन्द्रका शिष्य था और उसका पुत्र नन्नियगंग (सन् ११२२ ई०) प्रभाचन्द्र सिद्धान्तका शिष्य था।

११वीं शतीमें कोंगालवोंने जैनधर्मकी सुरक्षा और अभिवृद्धिके लिए अनेक कार्य किये हैं। सन् १०५८ ई०में राजेन्द्र कोंगालवने अपने पिताके द्वारा निर्मा-पित वसतिको भूमि प्रदान की थी। राजेन्द्र कोंगालवका गुरु मूलसंघ काणूरगण और तगरिगणगच्छका गण्डविमुक्त सिद्धान्तदेव था। राजेन्द्रने अपने गुरुको भूमि प्रदान की थी। इस वंशके राजाओंने सत्यवाक्य जिनालयका निर्माण कराया था और उसके लिए प्रभाचन्द्र सिद्धान्तको गाँव प्रदान किया था। कालनने नेमिस्वर वसतिका निर्माण कराकर उसके निमित्त अपने गुरु कुमार-कीर्ति त्रैविद्यके शिष्य पुन्नागवृक्ष मूलगणके महामण्डलाचार्य विजयकीर्तिको

भूमि प्रदान की थी। इस भूमिकी आयसे साधुओं तथा धार्मिकोंको भोजन एवं आवास दिया जाता था।

नगरखण्डके सामन्त लोकगाबुण्डने सन् ११७१ ई०में एक जैन मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी अष्टप्रकारी पूजाके लिए मूलसंघ काणूरगण, तिन्तिणीगच्छके मुनिचन्द्रदेवके शिष्य भानुकीर्ति सिद्धान्तदेवको भूमि प्रदान की थी। १३वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें होनेवाला कुचीराजाका नाम भी उल्लेखनीय है। यह पद्मसेन भट्टारकका शिष्य था।

जैनधर्मके संरक्षक और उन्नतिकारकोंमें वीरमार्तण्ड चामुण्डरायका नाम भी उल्लेखनीय है। विष्णुवर्द्धनके सेनापति वोप्पने भी जैन शासनके उत्थानमें योगदान दिया है। ई० सन् की १२वीं शताब्दीमें सेनापति हुल्लने भी मन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण कराया है। राजा नरसिंहके सेनापति शान्तियण्ण और इनके पुत्र वल्लाल द्वितीयके सेनापति रेचमय्यकी गणना भी जैनसंस्कृतिके आश्रयदाताओंमें की जाती है। रेचमय्यने आरसीयकेरेमें सहस्रकूट चैत्यालय-का निर्माण कराया था। बल्लाल द्वितीयके मन्त्री नागदेवने श्रवणबेलगोलाके पार्श्वदेवके सामने एक रंगशाला तथा पाषाणका चबूतरा बनवाया था।

इस प्रकार दिगम्बराचार्योंने दक्षिण भारतमें सभी राजवंशोंको प्रभावित किया और अनेक राजवंशोंको जैनधर्मका अनुयायी बनाया। उत्तरमें मौर्य, लिच्छवि, ज्ञातृवंश, चेदिवंश आदिके साथ गुर्जरेश्वर कुमारपाल आदि भी उल्लेख्य हैं।

•

चतुर्थ परिच्छेद

पट्टावलियाँ

नन्दीसङ्घ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छकी प्राकृत-पट्टावली

श्रीत्रैलोक्याधिपं नत्वा स्मृत्वा सद्गुरु-भारतीम् ।
वक्ष्ये पट्टावलीं रम्यां मूलसंघगणाधिपाम् ॥१॥
श्रीमूलसंघप्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे ।
बलात्कारगणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके ॥२॥
कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठं उत्पन्नं श्रीगणाधिपम् ।
तमेवात्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जनाः ॥३॥

मैं तीनों लोकके स्वामी श्रीजिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर तथा सद्गुरु-की वाणीका स्मरण कर मूलसंघगणकी पट्टावलीको कहता हूँ। श्रीमूलसङ्घके नन्दीनामक सुन्दर आम्नायमें बलात्कारगणके सरस्वतीगच्छके कुन्दकुन्दनामक वंशमें जो गणोंके अधिपति उत्पन्न हुए, उनका वर्णन करता हूँ, सज्जन लोग सुनें।

अन्तिम-जिण-णिव्वाणे केवलणाणी य गोयम-मुणिदो
बारह-वासे य गये सुधम्मसामी य संजादो ॥१॥
तह बारह-वासे पुण संजादो जम्बुसामि मुणिणाहो ।
अठतीस-वास रहियो केवलणाणी य उक्किट्ठो ॥२॥
बासठि-केवल-वासे तिण्हि मुणी गोयम-सुधम्म-जम्बू य ।
बारह बारह दो जण तिय दुगहीणं च चालीसं ॥३॥

अन्तिम श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणके बाद गौतमस्वामी केवलज्ञानी हुए, जो बारह वर्ष तक रहे। इसके बाद बारह वर्ष तक सुधर्माचार्य केवलज्ञानी हुए। इसके बाद जम्बूस्वामी ३८ वर्षों तक केवली रहे। इस प्रकार ६२ वर्षों तक तीन केवली गौतम, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी हुए।

सुयकेवलि पंच जणा बासठि-वासे गये सुसंजादा ।
पढमं चउदह वासं विण्हुकुमारं मुणेयव्वं ॥४॥
नन्दिमित्त वास सोलह तिय अपराजिय वास वावीसं ।
इग-हीण-वीस वासं गोवद्धन भद्दबाहु गुणतीसं ॥५॥
सद सुयकेवलणाणी पंच जणा विण्हु नन्दिमित्तो य ।
अपराजिय गोवद्धण तह भद्दबाहु य संजादा ॥६॥

श्रीमहावीर स्वामीके ६२ वर्ष बाद पाँच श्रुतकेवली हुए। प्रथम विष्णुकुमार चौदह वर्ष तक श्रुतकेवली रहे, इसके बाद सोलह वर्ष नन्दिमित्र, बाईस वर्ष अपराजित, उन्नीस वर्ष गोवर्द्धन और उनतीस वर्ष तक महात्मा भद्रबाहु श्रुत-केवली हुए। इस प्रकार सौ वर्षोंमें पाँच श्रुतकेवली हुए—विष्णुकुमार, नन्दि-मित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु।

सद-बासट्ठि सुवासे गएसु उप्पण्ण दह सुपुव्वधरा ।
सद-तिरासि वासाणि य एगादह मुणिवरा जादा ॥७॥
आयरिय विशाख पोट्ठल खत्तिय जयसेण नागसेण मुणी ।
सिद्धत्थ धित्ति विजयं बुहिलिङ्ग देव धमसेणं ॥८॥
दह उगणीस य सत्तर इकवीस अट्ठारह सत्तर ।
अट्ठारह तेरह बीस चउदह चोदय कमेणेयं ॥९॥

श्रीमहावीर स्वामीके १६२ वर्ष बाद १८३ वर्ष तक दस पूर्वके धारी ग्यारह मुनिवर हुए—१० वर्षों तक विशाखाचार्य, १९ वर्षों तक प्रोष्ठिलाचार्य, १७ वर्षों तक क्षत्रियाचार्य, २१ वर्षों तक जयसेनाचार्य, १८ वर्षों तक नागसेनाचार्य, १७ वर्षों तक सिद्धार्थाचार्य, १८ वर्षों तक धृतसेनाचार्य, १३ वर्षों तक विजया-

चार्य, २० वर्षों तक बुद्धिलिंगाचार्य, १४ वर्षों तक देवाचार्य और चौदह वर्षों तक धर्मसेनाचार्य हुए।

अन्तिम-जिण-णिव्वाणे तिय-सय-पणचाल-वास जादेसु।
एगादहंगधारिय पंच जणा मुणिवरा जादा ॥१०॥
नक्खत्तो जयपालग पंडव धुवसेन कंस आयरिया।
अठारह वीस-वासं गुणचालं चोद बत्तीसं ॥११॥
सद तेवीस वासे एगादह अङ्गधरा जादा ॥

श्रीवीरस्वामीके निर्वाणके ३४५ वर्ष बाद १२३ वर्षों तक ग्यारह अंगके धारी पाँच मुनिवर हुए—१८ वर्षों तक नक्षत्राचार्य, बीस वर्षों तक जयपालचार्य, ३९ वर्षों तक पाण्डवाचार्य, १४ वर्षों तक ध्रुवसेनाचार्य और ३२ वर्षों तक कंसाचार्य। इस प्रकार १२३ वर्षोंमें पाँच ग्यारह अंगके धारी हुए।

वासं सत्तावणदिय दसंग नव-अंग अट्ठ-धरा ॥१२॥
सुभद्धं च जसोभद्दं भद्दबाहु कमेण च।
लोहाचय्य मुणीसं च कहियं च जिणागमे ॥१३॥
छह अट्ठारहवासे तेवीस वावण (पणास) वास मुणिणाहं।
दस-नव-अट्ठंग-धरा वास दुसदवीस सधेसु ॥१४॥

इसके बाद ९७ वर्षों तक दस अंग, नव अंग तथा आठ अंगोंके धारी क्रमशः ६ वर्षों तक सुभद्राचार्य, १८ वर्षों तक यशोभद्राचार्य, २३ वर्षों तक भद्रबाहु और ५० वर्षों तक लोहाचार्य मुनि हुए। इसके बाद ११८ वर्षों तक एकाङ्गधारी रहे।

पंचसये पणसठे अन्तिम-जिण-समय-जादेसु।
उप्पण्णा पंच जणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥१५॥
अहिबल्लि माघनन्दि य धरसेणं पुप्फयंत भूदबली।
अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस वीस वास पुणो ॥१६॥

श्रीवीरनिर्वाणसे ५६५ वर्ष बाद एक अंगके धारी पाँच मुनि हुए। २८ वर्षों तक अहिबल्याचार्य, २१ वर्षों तक माघनन्द्याचार्य, उन्नीस वर्ष तक धरसेनाचार्य तीस वर्ष तक पुष्पदन्ताचार्य और २० वर्षों तक भूतबली आचार्य हुए।

इग-सय-अठारवासे इयंग-धारी य मुणिवरा जादा।
छ-सय-तिरासिय वासे णिव्वणा अंगहित्ति कहिय जिणे ॥१७॥

एक सौ अठारह वर्षों तक एक अंगके धारी मुनि हुए। इस प्रकार ६८३ वर्षों तक अंगके धारी मुनि हुए।

अब मूलसंघका पाठ वर्णित होता है।

श्रीमहावीरके निर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमादित्यका जन्म हुआ। विक्रम-जन्मके दो वर्ष पूर्व सुभद्राचार्य और विक्रम राज्यके ४ वर्ष बाद भद्रबाहुस्वामी पट्टपर बैठे। भद्रबाहु स्वामीके शिष्य गुप्तिगुप्त हुए। इनके तीन नाम हैं— गुप्तिगुप्त, अर्हद्‌बली और विशाखाचार्य। इनके द्वारा निम्नलिखित चार संघ स्थापित हुए।

नन्दीवृक्षके मूलसे वर्षायोग धारण करनेसे नन्दिसङ्घ हुए। इनके नेता माघनन्दी हुए अर्थात् इन्होंने ही नन्दीसंघ स्थापित किया। जिनसेननामक तृणतलमें वर्षायोग करनेसे एक ऋषिका नाम वृषभ पड़ा। इन्होंने ही वृषभ-संघ स्थापित किया। जिन्होंने सिंहकी गुफामें वर्षायोगको धारण किया, उनने सिंहसंघ स्थापित किया और जिसने देवदत्तानामको वेश्याके नगरमें वर्षायोग धारण किया, उसने देवसंघ स्थापित किया।

इसी प्रकार नन्दीसंघ पारिजातगच्छ बलात्कारगणमें नन्दी, चन्द्रकीर्ति और भूषण नामके मुनि हुए।

उनमें श्रीवीरसे ४९२ वर्ष बाद, सुभद्राचार्यसे २४ वर्ष बाद, विक्रम-जन्मसे बाईस वर्ष बाद और विक्रम-राज्यसे ४ वर्ष बाद द्वितीय भद्रबाहु हुए।

सत्तरि-चउ-सद-युत्तो तिणकाला विक्कमो हवई जम्मो।
अठ-वरस बाललीला सोडस-वासेहि भम्मिए देसे ॥१८॥
पणरस-वासे रज्जं कुणन्ति मिच्छोवदेससंयुत्तो।
चालीस-वरस जिणवर-धम्मं पालीय सुरपयं लहियं ॥१९॥

अर्थात् श्री वीरनिर्वाणके ४७० वर्ष बाद विक्रमका जन्म हुआ। आठ वर्षों तक इन्होंने बाललीला की, सोलह वर्षों तक देश भ्रमण किया और ५६ वर्षों तक अन्यान्य धर्मोंसे निवृत्त होकर जिनधर्मका पालन किया।

श्रुतधर-पट्टावली

शक सं० ५२२

अथ खलु सकलजगदुदय-करणोदित-निरतिशय-गुणास्पदीभूत-परमजिन-शासन-सरस्समभिवर्द्धित-भव्यजन-कमलविकसन-वितिमिर-गुण-किरण-सहस्रमहोति-महावीर-सवितरि परिनिर्वृते भगवत्परमर्षि-गौतम-गणधर-साक्षाच्छिष्य लोहार्य्य-जम्बु- विष्णुदेवापराजित- गोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख- प्रोष्ठिल-कृत्तिकार्य्य जयनागसिद्धार्थधृतिषेणबुद्धिलादि - गुरुपरम्परीणक्कमाभ्यागत- महापुरुषसन्तति-समवद्योतितान्वय-भद्रबाहु-स्वामिना उज्जयन्यामष्टाङ्गमहानिमित्त-तत्त्वज्ञेन

त्रकाल्य-दर्शिना निमित्तेन द्वादश-संवत्सर-काल-वैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्व्वस्सङ्घ उत्तरापथाद्दक्षिणापथम्प्रस्थितः क्रमेणैव जनपदमनेक-ग्राम-शत-सङ्ख्यं मुदितजन-धन-कनक-सस्य-गो-महिषा-जावि-कुल-समाकीर्ण्णम्प्राप्तवान्[1][।] अतः आचार्य्यः प्रभाचन्द्रो नामावनितल-ललामभूतेऽथास्मिन्कटवप्र - नामकोपलक्षिते विविध-तरुवर-कुसुम- दलावलि- विरचना- शबल-विपुल- सजल- जलद- निवह-नीलोपल-तलेवराह-द्वीपि-व्याघ्रर्क्ष-तरक्षु-व्याल- मृगकुलोपचितोपत्यक- कन्दरदरी-महागुहा-गहनाभोगवति समुत्तुङ्ग-शृङ्गे सिखरिणि जीवितशेषमल्पतर-कालमवबुध्यात्मनः सुचरित-तपस्समाधिमाराधयितुमापृच्छ्य निरवसेषेण सङ्घं विसृज्य शिष्येणैकेन पृथुलतरास्तीर्ण्ण-तलासु शिलासु शीतलासु स्वदेहं संन्यस्याराधितवान् क्रमेण सप्त-शतमृषीणामाराधितमिति जयतु जिन-शासनमिति ।

इस अभिलेखमें तीर्थङ्कर महावीरके निर्वाणके बाद गौतम गणधर, लोहाचार्य, जम्बुस्वामि ये तीन केवली और विष्णुदेव, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु ये श्रुतकेवली तथा विशाख, प्रोष्ठिल, कृत्तिकार्य, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, बुद्धिल ये आठ आचार्य दश पूर्वके धारी हुए हैं। श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामिने अपने अष्टाङ्गनिमित्तज्ञानसे उज्जयिनीमें यह अवगत कर लिया कि बारह वर्षका उत्तरापथमें दुष्काल होने वाला है। अतएव वे धन-धान्यसे सम्पन्न अपने संघके साथ दक्षिणापथको चले गये। इस परम्परामें प्रभाचन्द्र नामक एक बहुज्ञ आचार्य हुए।

इस अभिलेखमें इन्द्रभूति, गौतम गणधर, सुधर्म या लोहाचार्य और जम्बुस्वामि इन तीन केवलियोंका उल्लेख है। इन केवलियोंके पश्चात् विष्णु, अपराजित, नन्दिमित्र, गोवर्द्धन और भद्रबाहु श्रुतकेवली हुए हैं। पर प्रस्तुत अभिलेखमें विष्णुदेव, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु इन चार ही श्रुत-केवलियोंके नाम आए हैं। अन्य अभिलेखों तथा हरिवंशपुराणादि ग्रन्थोंमें दशपूर्वी ग्यारह बतलाए हैं। पर इस अभिलेखमें आठ ही दशपूर्वियोंका उल्लेख आया है। हरिवंशपुराणमें तृतीय दशपूर्वीका नाम क्षत्रिय लिखा हुआ है जबकि इस अभिलेखमें कृत्तिकार्य बताया है। विजय, गंगदेव और धर्मसेन इन तीन दशपूर्वियोंके नाम छूटे हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि इस अभिलेखकी आचार्य-परम्परा अपूर्ण है। इसमें ख्यातिप्राप्त आचार्योंका ही उल्लेख किया गया है।

गणधरादिपट्टावली

इन्द्रभूतिरग्निभूतिर्वायुभूतिः सुधर्मकः
मौर्यमौड्यौ पुत्रमित्रावकम्पनसुनामधृक् ॥१॥

---

१. जैनशिलालेखसंग्रह, प्रथमभाग, अभिलेखसंख्या १।

अन्धवेल: प्रभासश्च रुद्रसंख्यान् मुनीन् यजे।
गौतमं च सुधर्मञ्च जम्बूस्वामिनमूर्ध्वगम् ॥२॥
श्रुतकेवलिनोऽन्यांश्च विष्णुनन्द्यपराजितान्।
गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्वधरं यजे ॥३॥
विशाखप्रोष्ठिलनक्षत्रजयनागपुरस्सरान्।
सिद्धार्थधृतिषेणाह्वौ विजयं बुद्धिबलं तथा ॥४॥
गंगदेवं धर्मसेनमेकादश तु सुश्रुतान्।
नक्षत्रं जयपालाख्यं पाण्डुं च ध्रुवसेनकम् ॥५॥
कंसाचार्यपुरोऽगीयज्ञातारं प्रयजेऽन्वहम्।
सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुं मुनीश्वरम् ॥६॥
लोहाचार्यं पुरापूर्वज्ञान चक्रधरं नमः।
अर्हद्बलिं भूतबलिं माघनन्दिनमुत्तमम् ॥७॥
धरसेनं मुनीन्द्रञ्च पुष्पदन्त-समाह्वयम्।
जिनचन्द्रं कुन्दकुन्दमुमास्वामिनमर्चये ॥८॥
समन्तभद्रस्वाम्यार्यं शिवकोटिं शिवायनम्।
पूज्यपादं चैलाचार्यं वीरसेनं श्रुतेक्षणम् ॥९॥
जिनसेनं नेमिचन्द्रं रामसेनं सुतार्किकान्।
अकलंकानन्त-विद्यानन्द-मणिक्यनन्दिनः॥
प्रभाचन्द्रं रामचन्द्रं वासुवेन्दुमवासिनम्।
गुणभद्रादिकानन्यानपि श्रुततपःपारगान्॥
वीरांगदां तानर्घ्येण सर्वान् सम्भावयाम्यहम् ॥[1]

इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, सुधर्मक, मौर्य, मौड्य, पुत्र, मित्र, अकंपन नामवाले तथा अन्धबेल, प्रभास इन ग्यारह गणधरोंकी मैं पूजा करता हूँ। मोक्षमार्गी गौतम, सुधर्म, जम्बूस्वामीकी पूजा करता हूँ। विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु श्रुतकेवलियोंकी पूजा करता हूँ। दशपूर्वधर श्रीविशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव, धर्मसेनाचार्यंकी मैं पूजा करता हूँ। नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, कंसाचार्य, सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, लोहाचार्यमें ये पूर्वधर आचार्य हुए हैं। अर्हद्बलि, भूतबलि, माघनन्दि, धरसेन, पुष्पदन्त, जिनचन्द्र- कुन्दकुन्द, उमास्वामी इन आचार्योंकी पूजा करता हूँ। समन्तभद्र, शिवकोट्याचार्य, शिवायन, पूज्यपाद, ऐलाचार्य, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचंद्र,

---

१. जयसेन-प्रतिष्ठापाठ।

रामसेन, अकलंक, अनन्त, विद्यानन्द, मणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, वासवेन्दु, गुणभद्र, वीरांगद आदि आचार्योंकी पूजा करता हूँ।

तिलोयपण्णत्तीके आधारपर आचार्य-परम्परा

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी।
जादो तस्सिं सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥१४७६॥
तम्मि कद-कम्म-णासे जंबूसामि त्ति केवली जादो।
तत्थ वि सिद्धि-पवण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥१४७७॥
बासट्ठी वासाणि गोदमपहुदीण णाणवंताणं।
धम्मपयट्टणकाले परिमाणं पिंडरूवेणं ॥१४७८॥
कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणरिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणा य ॥१४७९॥
पण्णसमणेसु चरिमो बइरजसो णाम ओहिणाणीसु।
चरिमो सिरिणामो सुदविणयसुसीलादिसंपण्णो ॥१४८०॥
मउडधरेसु चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य ॥१४८१॥
तत्तो मउडधरा दु प्पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥१४८१॥
णंदो य णंदिमित्तो विदियो अवराजिदो तइज्जो य।
गोवद्धणो चउत्थो पंचमओ भद्दबाहु त्ति ॥१४८२॥
पंच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगम्मि विक्खादा।
ते बारसअंगधरा तित्थे सिरिवड्ढमाणस्स ॥१४८३॥
पंचाण मेलिदाणं कालपमाणं हवेदि वाससदं।
वीदम्मि य पंचमए भरहे सुदकेवली णत्थि ॥१४८४॥
पढमो विसाहणामो पुट्ठिल्लो खत्तिओ जओ णागो।
सिद्धत्थो धिदिसेणो विजओ बुद्धिल्लगंगदेवा य ॥१४८५॥
एक्करसो य सुधम्मो दस पुव्वधरा इमे सुविक्खदा।
पारंपरिओवगदो तेसीदि सदं च ताण वासाणि ॥१४८६॥
सव्वेसु वि कालवसा तेसु अदीदेसु भरह-खेत्तम्मि।
वियसंतभव्वकमला ण संति दसपुव्विदिवसयरा ॥१४८७॥
णक्खत्तो जयपालो पंडुय-धुवसेण-कंसआइरिया।
एक्कारसंगधारी पंच इमे वीरतित्थम्मि ॥१४८८॥
दोण्णि सया वीसजुदा वासाणं ताण पिंडपरिमाणं।
तेसु अतीदे णत्थि हु भरहे एक्कारसङ्गधरा ॥१४८९॥
पढमो सुभद्दणामो जसभद्दो तह य होदि जसबाहू।
तुरिमो य लोहणामो एदे आयार-अंगधरा ॥१४९०॥

सेसेक्करसंगाणं चोद्दसपुव्वाणमेक्कदेसधरा ।
एक्कसयं अट्ठारसवासजुदं ताण परिमाणं ॥१४९१॥
तेसु अदीदेसु तदा आचारधरा ण होंति भरहम्मि ।
गोदममुणिपहुदीणं वासाणं छस्सदाणि तेसीदी[1] ॥१४९२॥

जिस दिन भगवान् महावीर सिद्ध हुए, उसी दिन गौतम गणधर केवलज्ञानको प्राप्त हुए। पुनः गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुधर्मस्वामी केवली हुए ॥१४७६॥

सुधर्मस्वामीके कर्म नाश करके अर्थात् मुक्त होनेपर जम्बूस्वामी केवली हुए। पश्चात् जम्बूस्वामीके भी सिद्धिको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुबद्धकेवली नहीं रहे ॥१४७७॥

गौतमादिक केवलियोंके धर्मप्रवर्तन-कालका प्रमाण पिण्डरूपसे बासठ वर्ष है ॥१४७८॥

केवलज्ञानियोंमें अन्तिम श्रीधर कुण्डलगिरिसे सिद्ध हुए और चारणऋषियोंमें अन्तिम सुपार्श्वचन्द्र नामक ऋषि हुए ॥१४७९॥

प्रज्ञाश्रमणोंमें अन्तिम वज्रयश और अवधिज्ञानियोंमें अन्तिम श्रुत, विनय एवं सुशीलादिसे सम्पन्न श्रीनामक ऋषि हुए ॥१४८०॥

मुकुटधरोंमें अन्तिम चन्द्रगुप्तने जिनदीक्षा धारण की। इसके पश्चात् मुकुटधारी प्रव्रज्याको ग्रहण नहीं करते ॥१४८१॥

प्रथम नन्दी, द्वितीय नन्दिमित्र, तृतीय अपराजित, चतुर्थ गोवर्द्धन और पंचम भद्रबाहु इस प्रकार ये पाँच पुरुषोत्तम जगमें 'चौदहपूर्वी' इस नामसे वीख्यात हुए। ये बारह अंगोंके धारक पाँचों श्रुतकेवली श्रीवर्धमान स्वामीके तीर्थमें हुए ॥१४८२, १४८३॥

इन पाँचों श्रुतकेवलियोंका काल मिलाकर सौ वर्ष होता है। पाँचवें श्रुतकेवलीके पश्चात् फिर भरतक्षेत्रमें कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ ॥१४८४॥

विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दश पूर्वके धारी विख्यात हुए हैं। परम्परासे प्राप्त इन सबका काल एकसौ तेरासी १८३ वर्ष है ॥१४८५, १४८६–

कालके वश इन सब श्रुतकेवलियोंके अतीत होनेपर भरतक्षेत्रमें भव्यरूपी कमलोंको विकसित करनेवाले दशपूर्वधररूप सूर्य फिर नहीं हुए ॥१४८७॥

नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच आचार्य वीर भगवान्के तीर्थमें ग्यारह अंगके धारी हुए ॥१४८८॥

---

१. तिलोयपण्णत्ती—शोलापुर-संस्करण, गाथा ४–१४७६-१४९२।

इनके कालका प्रमाण पिण्डरूपसे दोसौ बीस वर्ष है। इनके स्वर्गस्थ होनेपर फिर भरतक्षेत्रमें कोई ग्यारह अंगोंके धारक नहीं रहे ॥१४८९॥

सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचारांगके धारक हुए ॥१४९०॥

उक्त चारों आचार्य आचारांगके सिवाय शेष ग्यारह अंग और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक थे। इनके कालका प्रमाण एकसौ अठारह ११८ वर्ष है ॥१४९१॥

इनके स्वर्गस्थ होनेपर भरतक्षेत्रमें फिर कोई आचारांगके धारक नहीं हुए। गौतममुनि प्रभृतिके कालका प्रमाण छहसौ तेरासी वर्ष होता है ॥१४९२॥

धवलामें निबद्ध श्रुतपरम्परा

को होदि त्ति सोहम्मिमदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासि-सहियभादुत्तिदयपरिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणविसोहिणा वड्ढमाणजिणिददंसणे पणट्ठासंखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीय वंदिय हियएण जिणं झाइय पडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिदलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बह्मणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवाय-वियाहपण्णत्ति-णाहधम्म -कहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस - मण्णवायरण-विवाय-सुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म-दसवेयालि-उत्तरज्झयण -कप्पववहार-कप्पाकप्प- महाकप्प- पुंडरीय- महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाणमंगबज्झाणं च सावणमास-बहुल-पक्ख-जुगादिपडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदिभडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो। उत्तं च—

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि ॥४०॥

एवं उत्तरतंतकत्तारपरूवणा कदा।

संपहि उत्तरोत्तरतंतकत्तारपरूवणं कस्सामो। तं जहा—कत्तियमासकिण्णपक्खचोद्दस-रत्तीए पच्छिमभाए महदि महावीरे णिव्वुदे संते केवलणाणसंताणहरो गोदमसामी जादो। बारहवरसाणि केवलविहारेण विहरिय गोदमसामिम्हि णिव्वुदे संते लोहज्जाइरिओ केवलणाणसंताणहरो जादो। बारहवासाणि केवलविहारेण विहरिय लोहज्जभडारए णिव्वुदे संते जंबूभडारओ केवलणाणसंताणहरो जादो। अट्ठत्तीसवस्साणि केवलविहारेण विहरिय जंबूभडारए परिणिव्वुदे संते केवलणाणसंताणस्स वोच्छेदो जादो भरहक्खेत्तम्मि अत्थमिदि। एवं महावीरे

णिव्वाणं गदे बासट्ठिवरसेहि केवलणाणदिवायरो भरहम्मि ।६२।३। णवरि तक्काले-सयलसुदणाणसंताणहरो विण्हुआइरियो जादो। अत्तुट्टसंताणरूवेण णंदिआइरिओ अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे सकलसुदधारया जादा। एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालसमासो वस्ससदं ।१००।५। तदो भद्दबाहुभडारए सग्गं गदे संते भरहक्खत्तम्मि अत्थमिओ सुदणाणसंपुण्णमियंको, भरहखेत्तमावूरियमण्णाणं-धयारेण। णवरि एक्कारसण्णमंगाणं विज्जाणुपवादपेरंतदिट्ठिवादस्स य धारओ विसाहाइरिओ जादो। णवरि उवरिमचत्तारि वि पुव्वाणि वोच्छिण्णाणि तदे-गदेसधारणादो। पुणो तं विगलसुदणाणं पोट्ठिल्ल-खत्तिय-जय-णाग-सिद्धत्थ-धिदि-सेण-विजय-बुद्धिल्ल-गंगदेव-धम्मसेणाइरियपरंपराए तेयासीदिवरिससयाइमागं-तूण वोच्छिण्णं ।१८३।११। तदो धम्मसेणभडारए सग्गं गदे णट्ठे दिट्ठिवादुज्जोए एक्कारसण्णमंगाणं दिट्ठिवादेगदेसस्स य धारयो णक्खत्ताइरियो जादो। तदो तमेक्कारसंगं सुदणाणं जयपाल-पांडु-ध्रुवसेण-कंसो त्ति आइरियपरंपराए वीसु-त्तरबेसदवासाइमागंतूण वोच्छिण्णं। २२०।५। तदो कंसाइरिए सग्गं गदे वोच्छिण्णे एक्कारसंगुज्जोए सुभद्दाइरियो आयारंगस्स सेसंग-पुव्वाणमेगदेसस्स य धारओ जादो। तदो तमायारंगं पि जसभद्द-जसबाहु-लोहाइरियपरंपराए अट्ठा-रहोत्तरवरिससयमागंतूण वोच्छिण्णं ।११८-४। सव्वकालसमासो तेयासीदीए अहिय छस्सदमेत्तो ।६८३।। पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्तहत्तरिवासेसु। ७७। अवणिदेसु पंचमासाहियपंचुत्तरछस्सदवासाणि हवंति। एसो वीरजिणिंदणिव्वाण-गददिवसादो जाव सगकालस्स आदी होदि तावदियकालो।—धव० ४. १. ४४, पृ० १२९–१३२

'उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या हैं?' ऐसे सौधर्मेन्द्रके प्रश्नसे संदेहको प्राप्त हुए, पाँचसौ, पाँच सौ शिष्योंसे सहित तीन भ्राताओंसे वेष्टित, मानस्त-म्भके देखनेसे ही मानसे रहित हुए, वृद्धिको प्राप्त होनेवाली विशुद्धिसे संयुक्त, वर्धमान भगवान्‌के दर्शन करनेपर असंख्यात भवोंमें अर्जित महान् कर्मोंको नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेवकी तीन प्रदक्षिणा करके, पँचमृष्टियोंसे अर्थात् पाँच अंगोंद्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वँदना करके एवं हृदयसे जिनभगवानका ध्यानकर संयमको प्राप्त हुए, विशुद्धिके बलसे अन्तर्मुहुर्तके भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधरके लक्षणोंसे संयुक्त तथा जिनमुखसे निकले हुए बीजपदोंके ज्ञान-से सहित ऐसे गौतमगोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मणद्वारा चूँकि आचारांग, सूत्र-कृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासका-ध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिक दशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाक-सूत्रांग व दृष्टिवादांग इन बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार,

कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धका इन चौदह अंगबाह्य प्रकीर्णकोंकी श्रावण मासके कृष्णपक्षमें युगके आदिम प्रतिपदा दिनके पूर्वाह्णमें रचना की गयी थी, अतएव इन्द्रभूति भट्टारकवर्धमानजिनके तीर्थमें ग्रन्थकर्त्ता हुए। कहा भी है—

वर्षके प्रथम मास व प्रथम पक्ष श्रावणकृष्णकी प्रतिपदाके पूर्व दिनमें अभिजित् नक्षत्रमें तीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥ ४० ॥

इस प्रकार उत्तरतंत्रकर्त्ताकी प्ररूपणा की।

अब उत्तरोत्तर तंत्रकर्त्ताओंकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिके पिछले भागमें अतिशय महान् महावीर भगवान्के मुक्त होनेपर केवलज्ञानकी सन्तानको धारण करने वाले गौतम स्वामी हुए। बारह वर्ष तक केवलविहारसे विहार करके गौतमस्वामीके मुक्त हो जानेपर लोहार्य आचार्य केवलज्ञानपरम्पराके धारक हुए। बारह वर्ष केवलविहारसे विहार करके लोहार्य भट्टारकके मुक्त हो जानेपर जम्बूभट्टारक केवलज्ञानकी परम्पराके धारक हुए। अड़तीस वर्ष केवलविहारसे विहार करके जम्बूभट्टारकके मुक्त हो जानेपर भरतक्षेत्रमें केवलज्ञानपरम्पराका विच्छेद हो गया। इस प्रकार भगवान् महावीरके निर्वाणको प्राप्त होने पर बासठ वर्षोंसे केवलज्ञानरूपी सूर्य भरतक्षेत्रमें अस्त हुआ [६२ वर्षमें ३ के०]। विशेष यह है कि उस कालमें सकलश्रुतज्ञानकी परम्पराको धारण करने वाले विष्णु आचार्य हुए। पश्चात् अविच्छिन्न सन्तानस्वरूपसे नन्दि आचार्य, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये सकलश्रुतज्ञानके धारक हुए। इन पाँच श्रुतकेवलियोंके कालका योग सौ वर्ष है [१०० वर्षमें ५ श्रु० के०] पश्चात् भद्रबाहु भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर भरतक्षेत्रमें श्रुतज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्र अस्तमित हो गया। अब भरतक्षेत्र अज्ञान अन्धकारसे परिपूर्ण हुआ। विशेष इतना है कि उस समय ग्यारह अंगों और विद्यानुवादपर्यन्त दृष्टिवाद अंगके भी धारक विशाखाचार्य हुए। विशेषता यह है कि इसके आगेके चार पूर्व उनका एक देश धारण करनेसे व्युच्छिन्न हो गये। पुनः वह विकल श्रुतज्ञान प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन इन आचार्योंकी परम्परासे एकसौ तेरासी वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [१८३ वर्षमें ११ एकादशांग-दशपूर्वधर]। पश्चात् धर्मसेन भट्टारकके स्वर्गको प्राप्त होनेपर दृष्टिवाद-प्रकाशके नष्ट हो जानेसे ग्यारह अंगों और दृष्टिवादके एकदेश धारक नक्षत्राचार्य हुए। तदनन्तर वह एकादशांग श्रुतज्ञान जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस इन आचार्योंकी परम्परासे दोसौ बीस वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया [२२० वर्षमें ५ एकादशांगधर]। तत्पश्चात् कंसाचार्यके स्वर्गको प्राप्त होने

पर ग्यारह अंगरूप प्रकाशके व्युच्छिन्न हो जानेपर सुभद्राचार्य आचारांगके और शेष अंगों एवं पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। तत्पश्चात् वह आचारांग भी यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य्यकी परम्परासे एकसौ अठारह वर्ष आकार व्युच्छिन्न हो गया [११८ वर्षमें ४ आचारांगधर]। इस सब कालका योग छह सौ तेरासी वर्ष होता है। [६२ + १०० + १८३ + २२० + ११८ = ६८३]। पुनः इसमें सात मास अधिक सतत्तर वर्षोंको [७७ वर्ष ७ मास] कम करनेपर पाँच मास अधिक छहसौ पांच वर्ष होते हैं। यह, वीर जिनेन्द्रके निर्वाण प्राप्त होनेके दिनसे लेकर जबतक शककालका प्रारम्भ होता है, उतना काल है।

तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति। तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं। तेण वि जंबूसामिस्स संचारिदं। परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया। अपरिवाडीए पुण सयल-सुद-पारगा संखेज्ज-सहस्सा। गोदमदेवो लोहज्जाइरियो जंबूसामी य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धिसंपण्णा सयल-सुय-सायर-पारया होऊण केवलणाणमुप्पाइय णिव्वुइं पत्ता। तदो विण्हू णंदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच वि चोद्दस-पुव्व-हरा। तदो विसाहइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थदेवो धिदिसेणो विजयाइरियो बुद्धिलो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे पुरिसोली-कमेण एक्कारस वि आइरिया एक्कारसण्हमंगाणं उप्पायपुव्वादि-दसण्हं पुव्वाणं च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्हं पुव्वाणमेग-देश-धरा य। तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पांडुसामी धुवसेणो कंसाइरियो त्ति एदे पुरिसोलीकमेण पंच वि आइरिया एक्कारसंग-धारया जादा, चोद्दसण्हं पुव्वाणमेग-देस-धारया। तदो सुभद्दो जसभद्दो जसबाहू लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि वि आइरिया आयारंग-धरा सेसंग-पुव्वाणमेग-देश-धारया। तदो सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेग-देसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो। —धव० १. १. १, पृ० ६५–६७

वर्धमान तीर्थङ्करके निमित्तसे गौतम गणधर श्रुतपर्यायसे परिणत हुए, इसलिए द्रव्यश्रुतके कर्त्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई। उन गौतम गणधरने दोनों प्रकारका श्रुतज्ञान लोहाचार्यको दिया। लोहाचार्यने जम्बूस्वामीको दिया। परिपाटीक्रमसे ये तीनों ही सकलश्रुतके धारण करने वाले कहे गये हैं। और यदि परिपाटीक्रमकी अपेक्षा न की जाय, तो संख्यात हजार सकलश्रुतके धारी हुए।

गौतमस्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही सात प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त और सकलश्रुतरूपी सागरके पारगामी होकर अन्तमें केवलज्ञान-

को उत्पन्न कर निर्वाणको प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँचों ही आचार्यपरिपाटीक्रमसे चौदह पूर्वके पाठी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थदेव, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी-क्रमसे ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दश पूर्वोके धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटीक्रमसे सम्पूर्ण ग्यारह अंगोंके और चौदह पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य ये चारों ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांगके धारक और शेष अंग तथा पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अंग और पूर्वोका एकदेश आचार्य परम्परासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ।

काष्ठासंघकी उत्पत्ति

जैनाम्नायमें देश-कालानुसार कई संघ प्रचलित हुए। किन्तु भिन्न-भिन्न पट्टावलियाँ, धर्म्मग्रन्थ सैद्धान्तिग्रन्थ, और पुराणोंका मंगलाचरण तथा प्रशस्ति देखनेसे यह निश्चित होता है कि सब संघोंका आदि संघ "मूल संघ" ही है। शायद इसी संकेतसे इस संघके आदिमें "मूल" शब्द जोड़ दिया गया है। हमारे इस कथनकी पुष्टि इन्द्रनन्दि सिद्धान्तीकृत "नीतिसार" ग्रन्थके निम्नलिखित श्लोकोंसे भी होती है।

"पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनु सितपटः काष्ठसंघस्ततो हि
तावाभूद्भाविगच्छाः पुनरजनि ततो यापुनीसंघ एकः।
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेन-नन्दी च संघौ
स्यातां सिंहाख्यसंघोऽभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः॥

अर्थात् पहले मूलसंघमें श्वेतपट गच्छ हुआ, पीछे कष्ठासंघ हुआ। इसके कुछ ही समयके बाद यापनीय गच्छ हुआ। तत्पश्चात् क्रमशः सेनसंघ, नन्दीसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ हुआ। अर्थात् मूलसंघसे ही काष्ठासंघ, सेनसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ हुए।

"अर्हद्बलीगुरुश्चक्रे संघसंघटनं परम्।
सिंहसंघो नन्दिसंघः सेनसंघस्तथापरः॥
देवसंघ इति स्पष्टं स्थान-स्थितिविशेषतः।

अर्थात् अर्हद्बल्याचार्यने देशकालानुसार सिंह, नन्दी, सेन और देवसंघकी स्थापना की।

इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मूलसंघ पूर्वोक्त संघोंका स्थापक है। पीछे लोहाचार्यजीने काष्ठासंघकी स्थापना की। यह काष्ठासंघ खास करके 'अग्रोहे' नगरके अग्रवालोंके ही सम्बोधार्थ स्थापित किया गया।

इसके कई लेख दिल्लीकी भट्टारक-गद्दियोंमें अब तक मौजूद हैं। उन्हींके आधारपर यह संक्षिप्त परिचय लिखा जाता है।

दिगम्बराचार्य लोहाचार्यजी दक्षिण देश भद्दलपुरमें विराजमान थे। विहार करते-करते अग्रोहेके निकटवर्त्ती हिसारमें पहुँचे। वहाँ उन्हें कोई असाध्य रोग हुआ था, जिससे वे मूर्च्छित हो गये। वहाँके श्रावकोंने उन्हें संन्यास-मरण-स्वीकार कराया। इसके बाद कर्म्मसे स्वतः लंघन होनेके कारण त्रिदोष पाक होनेसे अपने आप निरोगी हो गये। निरोगी होनेपर जब इन्हें होश हुआ, तो इन्होंने भ्रामरी वृत्ति (भिक्षावृत्ति)से आहार करना विचारा। पीछे "श्रीसंघ"-ने उनसे कहा कि महाराज! हम लोगोंने आपकी रुग्णावस्था तथा मूर्च्छितावस्थामें यावज्जीवन आपसे संन्यास-मरणकी प्रतिज्ञा करवाई है और आहारका भी परित्याग करवाया है। अतः यह संघ आपको आहार नहीं दे सकता है। यदि आप नवीन संघ स्थापित कर कुछ जैनी बनावें, तो आप वहाँ आहार कर सकते हैं तथा वे दान दे सकते हैं। तत्पश्चात् प्रायश्चित्तादि शास्त्रोंके प्रमाणसे उक्त वृत्तान्त सत्य जान लोहाचार्यजी वहाँसे विहार कर अग्रोहे नगरके बाह्य स्थानमें पहुँचे। वहा एक बड़ा पुराना ऊँचा ईंटका पयाजा था। उसीके ऊपर बैठकर ध्यान-निमग्न हुए। अनभिज्ञ लोग अद्वितीय साधुको वहाँ आये हुए देखकर दूरसे ही बड़े आदरके साथ प्रणाम करने लगे। मुनि महाराजके आनेकी धूम सारे नगरमें फैल गयी। हजारों स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये। कारण-विशेषसे एक वृद्धा श्राविका भी किसी दूसरे नगरसे आई थी। यह भी नगरमें महात्मा आये हुए सुन उनके दर्शनोंके लिए वहाँ आई। यह बुढ़िया दिगम्बराचार्यके वृत्तान्तको जानती थी, इसलिए ज्यों ही इसने महात्माको देखा, त्यों ही समझ गई कि ये तो हमारे श्री दिगम्बर गुरु हैं। बस, अब देर क्या थी। धीरे-धीरे वह पयाजेपर चढ़ गई और मुनि महाराजके निकट जाकर बड़ी विनयके साथ "नमोस्तु-नमोस्तु" कहकर यथास्थान बैठ गई। मुनिराज लोहाचार्यजीने भी 'धर्म्मवृद्धि' कहकर धर्म्मोपदेश दिया। यह घटना देख सबोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि अहोभाग्य इस बुढ़ियाका कि ऐसे महात्मा इससे बोले। अब सब मुनि महाराजके निकट उपस्थित हुए। मुनि महाराजने सबोंको श्रावकधर्म-

का उपदेश दिया। व्याख्यान सुननेके साथ ही सबका चित्त व्रत ग्रहण करनेके लिए उतारू हो गया। पहले अग्रवंशीय राजा दिवाकरने अपने कुटुम्बियोंके साथ श्रावकधर्मको स्वीकार किया और पीछे इनकी देखा-देखी सवालाख अग्रवालोंके घर जैनी हो गये।

पहले छानकर पानी पीना, रात्रिमें भोजन नहीं करना और देवदर्शन कर भोजन करना, ये तीन मुख्य व्रत जैनियोंके बतलाये गये। उसी समय सवालाख अग्रवालोंके घरोंमें छन्ने रखे गये, रात्रिभोजनका त्याग कराया गया और दर्शनके लिए एक काष्ठकी प्रतिमा बनाकर स्थापित की गई। उसी समयसे अग्रोहेके अग्रवालश्रावकोंकी संज्ञा काष्ठासङ्घी पड़ी। इनका काष्ठासङ्घ, माथुरगच्छ, पुष्करगण, हिसारपट्ट और लोहाचार्य्याम्नाय प्रचलित हुई। यह नवीन काष्ठासङ्घ जब स्थापित किया गया, तो इस सङ्घसे लोहाचार्यजीके आहारका लाभ हुआ और जैनधर्मकी वृद्धि हुई। इस संघकी पट्टावली अन्यत्र प्रकाशित है। इस सङ्घके पट्टपर उस समयसे लेकर आज तक बराबर अग्रवाल जातिके ही भट्टारक अभिषिक्त होते आते हैं।

काष्ठासंघस्य गुर्वावली

संप्राप्तसंसारसमुद्रतीरं जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणिपत्य वीरम्।
समीहिताप्त्यै सुमनस्तरूणां नामावलीं वच्मितमां गुरूणाम् ॥१॥
श्रीवर्द्धमानस्य जिनेश्वरस्य शिष्यास्त्रयः केवलिनो बभूवुः।
जम्बूस्वकम्बूज्ज्वलकीर्त्तिपूरः श्रीगौतमः साधुवरः सुधर्म्मा ॥२॥
विष्णुस्ततोऽभूदगणभृत्सहिष्णुः श्रीनन्दिमित्रोऽजनि नन्दिमित्रं।
गणिश्च तस्मादपराजिताख्यो गोवर्द्धनः साधुसुभद्रबाहुः ॥३॥
पञ्चापि वाचं यममौलिरत्नान्येतेन केषां मुनयो नमस्याः।
यत्कण्ठपीठेषु चतुर्दशापि पूर्वाणि सर्वैः सुखमाभजन्ति ॥४॥
ततो विशाखोऽन्धतगच्छशाखं वन्दे मुनिं प्रोष्ठिलनामकञ्च।
गणेश्वरौ क्षत्रियनागसेनौ जयाभिधानं मुनिपुंगवञ्च ॥५॥
सिद्धार्थसंज्ञो व्यजनिष्ट शिष्टस्तत्स्मात्प्रकृष्टो धृतषेणनामा।
अभून्मुनीशो विजयः सुधीमान् श्रीगंगदेवोऽपि च धर्मसेनः ॥६॥
अभूवन्मुनयस्सर्वे दशपूर्वधरा इमे।
भव्याम्भोजवनोद्बोधानन्यमार्त्तण्डमण्डलाः ॥७॥
ततः सनक्षत्रमुनिस्तपस्वी जयोदितोभूज्जयपालसंज्ञः।
अमी समीहां परिपूरयन्तु ममोऽपि पाण्डु-ध्रुवसेन-कंसा ॥८॥

एतं एकादशाङ्गानां पारं गमयति प्रथा ।
काष्ठसंघे श्रियांहारा माथुरे पुष्करे गणे ॥९॥
सुभद्रो थयशोभद्रो भद्रबाहुर्गणाग्रणी: ।
लोहाचार्य्येति विख्याता: प्रथमाङ्गाब्धिपारगा: ॥१०॥
जगत्प्रियोऽभूज्जयसेनसाधु: श्रीवीरसेनो हतकर्म्मवीर: ।
स ब्रह्मसेनोऽपि च रुद्रसेनस्ततोऽप्यूभूतां मुनिकुञ्जरौ तौ ॥११॥
श्रीभद्रसेनो मुनिकीर्त्तिसेनस्तपोनिधानं जयकीर्त्तिसाधु: ।
सद्विश्वकीर्त्तिभृं तविश्वकीर्ति: यस्य त्रिसन्ध्यं स भवेन्नमस्य: ॥१२॥
तातोप्यभयकीर्त्याख्यो भूतिसेनो महामुनि: ।
भावकीर्ति: लसद्भावो विश्वचन्द्राभिध: सुधी: ॥१३॥
अभूत्ततोऽसावभयादिचन्द्र: श्रीमाघचन्द्रो मुनिवृन्दवन्द्य: ।
तं नेमिचन्द्रं विनयादिचन्द्रं श्रीबालचन्द्रं प्रणत: प्रणौमि ॥१४॥
यज्ञे त्रिभुवनचन्द्रं त्रिभुवनभवनोपगूढ़विमलयशा ।
गणिरामचन्द्रनामा गणत्तिगण: पण्डितैरेव ॥१५॥
त्रिविधविद्याविशदाशयो य: सिद्धान्ततत्त्वामृतपानलीन: ।
धन्यो मुनि: श्रीविजयेन्दुनामा ततोऽभवद्भावितपुण्यमार्ग: ॥१६॥
मुनि: यश:कीर्त्तिरभूद्यशस्वी विश्वाभयाद्योभयकीर्त्तिरासीत् ।
ततो महासेनमुनि: सकुन्दकीर्त्तिश्च कुन्दोपमकीर्त्तिभार: ॥१७॥
त्रिभुवनचन्द्रमुनिन्द्रमुदारं रामसेनमपि दलितविकारं ।
हर्षषेणनवकल्पविहारं वन्दे संयमलक्ष्मीधारम् ॥१८॥
तस्मादजायत सदायतचित्तवृत्तिरुत्पन्नमुन्नतमनोरथबल्लरीक: ।
संसारवारिनिधिपारगबुद्धिभारो
गच्छाधिपो गुणखनिगुंणसेननामा ॥१९॥
ततस्तप:श्रीभरभाविताङ्ग: कन्दर्पदर्पापहृचि-तचार: ।
कुमारवच्छीलकलाविशाल: कुमारसेनो मुनिरस्तदुष्ट: ॥२०॥
प्रतापसेन: स्वतप:प्रतापी सन्तापित: शिष्टतमान्तराशि: ।
तत्पट्टश्रृङ्गारस्ववर्णभूषा बभूव भूय: प्रसरत्प्रभाव: ॥२१॥
श्रीमन्माहवसेनसाधुममहं ज्ञानप्रकाशोल्लसत् ।
स्वात्मालोकनिलोयमात्मपरमानन्दोर्म्मि: संवर्म्मिनम् ॥२२॥
ध्यायामि स्फुरदुग्रकर्मनिगणोच्छेदाय विश्वग्भवा ।
वर्ते गुप्तिगृहे वसन्नरहरहमुंक्त्यै स्पृहावानिव ॥२३॥
मम जनिजनताश: क्षिप्तदुष्कर्मपाश: ।
कृतशुभगतिवास: प्रोद्गतात्मप्रकाश: ।

जयति विजयसेनः प्रास्तकन्दर्पसेनः
तदनु मनुजवन्द्यः सर्वभावैरनिन्द्यः ॥२३॥
अधिगताखिलशास्त्ररहस्यदृक् ममतजान मनागपि सेवितः ।
बहुतपश्चरणो मलधारिणो विजयसेनमुनिः परिवर्ण्यते ॥२४॥

तत्पट्टपूर्वाचलचण्डरश्मिमु नीश्वरोऽभून्नयसेननामा ।
तपो यदीयं जगतां त्रयेऽपि जेगीयते साधुजनैरजस्रम् ॥२५॥
यद्यस्ति शक्तिगु णवर्णनायां मुनीशतुः श्रीनयसेनसूरेः ।
तदा विहायान्यकथां समस्तां मासोपवासं परिवर्णयन्तु ॥२६॥

शिष्यस्तदोऽस्ति निरस्तदोषः श्रेयांससेनो मुनिपुण्डरीकः ।
अध्यात्ममार्गे खलु येन चित्तं निवेशितं सर्वमपास्य कृत्यं ॥२७॥
श्रेयांससेनस्य मुनेर्महीयस्तपः प्रभावाः परितः स्फुरन्ति ।
यद्दर्शनाद्दर्पखिलं (?) प्रयाति दारिद्र्यमाशु प्रणतस्य (?) गेहात् ॥२८॥

तत्पट्टधारी सुकृतानुसारी सन्मार्गचारी निजकृत्यकारी ।
अनन्तकीर्तिमु निपुंगवोऽत्र जीयाज्जगल्लोकहितप्रदाता ॥२९॥
अनन्तकीर्त्तिः स्फुरितोरुकीर्त्तिः शिष्यस्तदीयो जयतीह लोके ।
यस्याशये मानसवारितुल्ये श्रीजैनधर्म्मोऽम्बुजवत्प्रफुल्लः ॥३०॥

प्रसमरवरकीर्तेः सर्वतोऽनन्तकीर्तेः
गगनवसनपट्टे राजते तस्य पट्टे ।
सकलजनहितोक्तिः जैनतत्त्वार्थवेदी
जगति कमलकीर्त्तिः विश्वविख्यातकीर्त्तिः ॥३१॥
जयति कमलकीर्त्तिः विश्वविख्यातकीर्त्तिः ।
प्रकटितयतिमूर्त्तिः सर्वसंघस्य पूर्तिः ।
यदुदयमहिमानं प्राप्य सर्वेऽप्यमानं
दधति भविकलोकाः प्रीतिमुत्तानयोगाः ॥३२॥

अध्यात्मनिष्ठः प्रसरत्प्रतिष्ठः कृपावरिष्ठः प्रतिभावरिष्ठः ।
पट्टे स्थितस्य त्रिजगत्प्रशस्यः श्रीक्षेमकीर्तिः कुमुदेन्दुकीर्त्तिः ॥३३॥
तत्पट्टोदयभूधरेऽतिमहति प्राप्तोदयादुर्ज्जयं ।
रागद्वेषमदान्धकारपटलं सञ्चित्करैर्दारुपान् ।
श्रीमान् राजितहेमकीर्त्तितरणिः स्फीतां विकासश्रियं
भव्याम्भोजचये दिगम्बरपथालङ्कारभूतां दधत् ॥३४॥
कुमुदविशदकीर्त्तिर्हेमकीर्त्ति (!) सुपट्टे
विजितमदनमायः शीलसम्पत्सहायः ।

मुनिवरगणवन्द्यो विश्वलोकैरनिन्द्यो
जयति कमलकीर्त्तिः जैनसिद्धान्तवादी ॥३५॥
महामुनिपुरन्दरः शमितरागद्वेषाङ्कुरः
स्फुरत्परमचिन्तनः स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित् ।
यशःप्रसरभासुरो जयति हेमकीर्त्तीश्वरः
समस्तगुणमण्डितः कमलकीर्त्तिसूरिर्महान् ॥३६॥

एवं पूज्यगुरुक्रमोत्तमलसन्नामावली पद्धतौ ।
यज्जिह्वाधिगतां दधाति परमानन्दामृतोत्कण्ठुलाम् ।
सोऽवश्यं भवसंभवं परिभवं त्यक्त्वा विवादाशयम् ।
प्राप्नोत्याशु पदं परं विलभते चानन्तकीर्त्तिश्रियम् ॥३७॥
श्रीमत्काष्ठोदयगिरिहरिर्वादिमाभंगसिन्धुः ।
मिथ्यात्वागाशनिरिव गतोशेषजीवादितत्वः ।
कामक्रोधावुदयमरुत श्रीकुमारादिसेनः
स्यात् श्रीमान् जयति सुपदो हेमचन्द्रो मुनीन्द्रः ॥३८॥

शास्त्रप्रवीणो मुनिहेमचन्द्रः
तत्त्वार्थवेत्ता यतिमण्डनोऽभूत् ।
तत्पट्टचन्द्रो मुनिपद्मनन्दिः
जीयात्तनौ सेवितपादपद्मः ॥३९॥
ब्राह्मी-सिन्धु कुमुद्वतिपतिरमौ जैनाम्बुजाऽहस्करः
स्याद्वादामृतवर्द्धकः शशधरः रत्नत्रयालिङ्गितः
जीयाच्छ्रीमुनिपद्मनन्दिसगुरोः पट्टोदयाद्रौ हरिः
शान्तिकीर्त्तिभृतां वरो गुणनिधिः सूरिर्यशःकीर्त्तिराट् ॥४०॥

यशःकीर्त्तिमुनीन्द्रपट्टाब्जभानुः
शुभे काष्ठसंघान्वये शोभमानः ।
शरच्चन्द्रकुन्दस्फुरत्कान्तकीर्त्तिः
जयी स्फीतसूरीश्वरः क्षेमकीर्त्तिः ॥४१॥

विद्वान् साधुशिरोमणिर्गुणनिधिः सौजन्यरत्नाकरो
मिथ्यात्वाचलछेदनैककुलिशो विख्यातकीर्त्तिर्भुवि ।
श्रीमच्छ्रीयशकीर्त्तिसूरिसुगुरोः पट्टाम्बुजाहस्करः
श्रीसंघस्य सदाकरोनुकुशलः श्रीक्षेमकीर्त्तिः गुरुः ॥४२॥
श्रीमच्छ्रीक्षेमकीर्त्तिः सकलगुणनिधिर्विष्टपे भूरिपूज्यः ।
तेषां पट्टे समोदः समजनमुनिभिः स्थापितो शास्त्रविद्भिः ।

श्रीरे हिसारे सुयतिततिवराः सत्क्रियोद्योतपुञ्जे
सोऽनन्दं तासु सेव्यस्त्रिभुवनपुरतः कीर्तिपः सूरिराजः ॥४३॥
श्रीमन्माथुरगच्छभालतिलकः स्फुर्य्यत्सतामग्रणीः
सद्बोधादिगुणैरतुच्छसुखदैः युक्तः श्रियालङ्कृतः।
पाताले दिवि भूतले च भविकैस्संसेव्यमानोऽनिशम्
जीयाच्छ्रीत्रिभुवनकीर्त्तिसुरगुरुर्वन्द्यो बुधैस्सर्वदा ॥४४॥
धात्रीमण्डलमंडनस्तु जयतात् श्रीसहस्रकीर्त्तिगुरुः।
राजद्राजकयातिसाहिविदितो भट्टारकाभूषणः।
वर्षे वह्नि नगांकचन्द्रकमिते शुच्चार्यनग्ने दिने।
पट्टे भूत्संचयस्य वै त्रिभुवनाद्याकीर्त्तिपट्टे स्थिते ॥४५॥
सहस्रवत्कातुलपक्षभावा सहस्ररश्मिस्तु चकास्ति नित्यं।
सहस्रकीर्त्तिस्सगतैकमूर्त्तिर्गरूपमाभः खलुरत्नपूर्त्तिः ॥४६॥
यत्पाण्डित्यमवेत्य मण्डितमहीखण्डप्रचण्डोद्भटम्।
सद्ग्रन्थ्यव्यवहारनिर्गणविदं ज्ञानैकगम्याशयम्।
सर्वैः सौगतिकैः समेत्य विधिवत् भट्टारकाख्ये वरे
पट्टे पण्डितमण्डलीनुतमयः पूज्यः प्रपूज्यैरपि ॥४७॥
महीचन्द्रश्चन्द्र सुहृदयहृदान्ते हि सुधिया
स्वकान्तेवासिभ्योऽविरतमनघं दानविहितम्।
निजे दीप्यनज्ञानैः सुगतिविदुषां पुण्यपरिधिः
यशोराशिं लोकेष्ववहितमनाः पूर्णमकरोत् ॥४८॥
पट्टस्यास्य महीचन्द्रशिष्यो देवेन्द्रकीर्त्तिराट्।
ख्यातिमुद्घोषयामास जगत्यद्भुतसद्गुणैः ॥४९॥
विदितसुकृतकीर्तेर्दिव्यदेवेन्द्रकीर्तेः
मुनिवरशुभपट्टं धर्मसत्कान्तिखण्डम्।
तदनु भविकपूज्यः श्रीजगत्कीर्त्तिपूज्यः
शुभसदनमकार्षीद्दिव्यसद्राशिरासीत् ॥५०॥
अनन्तस्याद्वादारविषु कलकण्ठः पिकवरः
प्रसादः पुण्यानां गुणसरसिजानां मधुकरः।
जगत्कीर्तेश्शिष्यो ललितसत्कीर्त्तिबुधवरः
समापत्तत्पट्टं सुकृतनिजपट्टं सुयतिवरः ॥५१॥
जिनमतशुभहृदवीचिष्वनिशं मज्जनप्रमाणनयवेदी।
तदनु च पट्टेऽध्यासच्छ्रीमान् राजेन्द्रकीर्त्तिसुधिरेषः ॥५२॥

एषो निजगुरुपट्टं प्राप्याध्यासीन्मुनीन्द्रशुभकीर्त्तिः ।
युगयुगश्वेद्विकवर्षे वीरस्याहो गतो हि सुरलोकं ॥५३॥

काष्ठासङ्घकी पट्टावलीका भाषानुवाद

संसाररूपी समुद्रका पार जिन्होंने पाया है, ऐसे जिनेन्द्र श्रीवीरनाथ स्वामी-को नमस्कारकर मैं अपने अर्थकी सिद्धिके लिये अपने गुरुओंका नाम कहता हूँ ॥१॥

श्री वर्द्धमान भगवानके तीन शिष्य केवली हुए। जम्बूस्वामी, गौतमस्वामी और सुधर्माचार्य ॥२॥

इनके बाद नमस्कार करने योग्य श्रीविष्णुमुनि, श्रीनन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच समस्त चौदह पूर्वके वेत्ता हुए अर्थात् श्रुतकेवली हुए ॥३॥४॥

इनके विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रियाचार्य, नागसेन, जयसेन, धृतिषेण, विजय, गङ्गदेव, धर्मषेण ये सब मुनि दश पूर्वके धारी और भव्य-कमल-प्रकाशन सूर्य्य हुए ॥५॥६॥७॥

नक्षत्राचार्य, जयपालाचार्य, मुनीन्द्र पाण्डुनामाचार्य्य, ध्रुवसेनाचार्य्य, कंसाचार्य्य ये मुनि एकादशांग अर्थात् ग्यारह अङ्गके धारी हुए ॥८॥९॥

सुभद्राचार्य्य, यशोभद्र, भद्रबाहु और लोहाचार्य्य ये एक अङ्गके धारी हुए ॥१०॥

इन लोहाचार्य्य स्वामीके (१) जयसेन, (२) श्रीवीरसेन, (३) ब्रह्मसेन, (४) रुद्रसेन, (५) भद्रसेन, (६) कीर्त्तिसेन, (७) जयकीर्त्ति, (८) विश्वकीर्त्ति, (९) अभयसेन, (१०) भूतसेन, (११) भावकीर्त्ति, (१२) विश्वचन्द्र, (१३) अभयचन्द्र, (१४) माघचन्द्र, (१५) नेमिचन्द्र, (१६) विनयचन्द्र, (१७) बालचन्द्र, (१८) त्रिभुवनचन्द्र, (१९) रामचन्द्र, (२०) विजयचन्द्र ॥११॥१२॥१३॥॥१४॥१५॥१६॥

इनके (२१) यशःकीर्त्ति, (२२)अभयकीर्त्ति, (२३)महासेन, (२४) कुन्दकीर्त्ति, (२५) त्रिभुवनचन्द्र, (२६) रामसेन, (२७) हर्षषेण, (२८) गुणसेन हुए ॥१७॥१८॥१९॥

इनके कामदर्पदलन (२९)श्रीकुमारसेन, (३०) प्रतापसेन, हुए। ॥२०॥२१॥

इनके पट्टपर महातपस्वी, परमोत्कृष्ट आत्मध्यानके ध्याता (३१) श्री माहवसेन हुए ॥२२॥

इनके पट्टपर(३२)विजयसेन, (३३) नयसेन, (३४)श्रेयांससेन, (३५) अनन्त-कीर्ति इन दिगम्बर मुनियोंके पट्टपर सर्वलोकहितकारी जैन सिद्धान्तके अपूर्व ज्ञाता

विस्तारित है कीर्त्ति जिनकी, ऐसे (३६) श्रीकमलकीर्त्ति हुए। ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥

यह कमलकीर्त्ति सर्व सङ्घकी रक्षा करनेवाले और इनकी महिमा पाकर बड़े-बड़े मानियोंने भी मान छोड़ दिया और भव्योंको प्रीति उत्पन्न करने वाले हुए। इनकी जय हो ॥३२॥

इनके पट्टपर (३७) क्षेमकीर्त्ति, इनके अति महान् पट्टरूपी पर्वतपर उदय होकर दुर्जय मोहान्धकारका नाश करनेवाले (३८) श्रीहेमकीर्त्ति हुए ॥३३॥ ॥३४॥

इनके (३९) कमलकीर्त्ति, (४०) कुमारसेन, (४१) हेमचन्द्र, (४२) पद्मनन्दि, (४३) यशःकीर्त्ति, (४४) क्षेमकीर्त्ति, (४५) त्रिभुवनकीर्त्ति, (४६) सहस्रकीर्त्ति, (४७) महीचन्द्र, (४८) देवेन्द्रकीर्त्ति, (४९) जगत्कीर्त्ति, (५०) ललितकीर्त्ति, (५१) राजेन्द्रकीर्त्ति, (५२) मुनीन्द्रशुभकीर्त्ति हुए ॥३५ से ५३ ॥

इस पट्टावलीके भावानुवादमें जिन आचार्योंके विशेषणोंसे कुछ ऐतिहासिक महत्व है, उनका वर्णन किया है। शेष आचार्योंकी केवल नामावली ही अङ्कित की गयी है।

श्रुतधर-पट्टावली

णमिऊण वड्ढमाणं ससुरासुरवंदिदं विगयमोहं ।[1]
वरसुदयुरुपरिवाडिं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥१॥
विउलगिरितुंगसिहरे जिणिंदइंदेण वढ्ढमाणेण ।
गोदममुणिस्स कहिदं पमाणणयसंजुदं अत्थं ॥२॥

तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण ।
गणधरसुधम्मणा खलु जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं ॥३॥
चदुरमलबुद्धिसहिदे तिण्णेदे गणधरे गुणसमग्गे ।
केवलणाणपईवे सिद्धि पत्ते णमंसामि ॥४॥

णंदी य णंदिमित्तो अवराजिदमुणिवरो महातेओ ।
गोवड्ढणो महप्पा महागुणो भद्दबाहू य ॥५॥
पंचेदे पुरिसवरा चउदसपुव्वी हवंति णायव्वा ।
बारसअंगधरा खलु वीरजिणिंदस्स णायव्वा ॥६॥

---

१. जंबूदीवपण्णत्ती १।८–१७।

तह य विसाखायरिओ पोट्ठिल्लो खत्तिओ यजयणामो ।
णागो सिद्धत्थो वि य घिदिसेणो विजियणामो य ॥७॥
बुद्धिल्ल गंगदेवो धम्मस्सेणो य होइ पच्छिमओ ।
पारंपरेण एदे दसपुव्वधरा समक्खादा ॥८॥
णक्खत्तो जसपालो पंडू धुवसेण कंसआयरिओ ।
एयारसंगधारी पंच जणा होंति णिद्दिट्ठा ॥९॥
णामेण सुभद्द जसभद्दो तह य होइ जसबाहू ।
आयारधरा णेया अपच्छिमो लोहणामो य ॥१०॥
आइरियपरंपरया सायर दीवाण तह य पण्णत्ती ।
संखेवेण समत्थं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥११॥

सुर एवं असुरोंसे वंदित और मोहसे रहित वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार करके उत्तम श्रुतके धारक गुरुओंकी परंपराको अनुक्रमसे कहता हूँ ॥१॥

विपुलाचल पर्वतके उन्नत शिखरपर जिनेन्द्र भगवान् वर्धमान स्वामीने प्रमाण और नयसे संयुक्त अर्थका गौतममुनिको उपदेश दिया । उन्होंने (गौतम-गणधरने) लोहार्यको, और लोहार्य अपरनाम सुधर्मगणधरने जम्बूस्वामीको उपदेश दिया ॥२-३॥

चार निर्मल बुद्धियों (कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, संभिन्नश्रोत्रबुद्धि, और पदानुसारिणी बुद्धि) से सहित, गुणोंसे परिपूर्ण, केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट द्वीपकसे संयुक्त और सिद्धिको प्राप्त इन तीनों गणधरोंको नमस्कार करता हूँ ॥४॥

नन्दि, नन्दिनित्र, महातेजस्वी अपराजित मुनीन्द्र, महात्मा गोवर्धन और महागुणोंसे युक्त भद्रबाहु, ये पाँच श्रेष्ठ पुरुष चौदह पूर्वोंके धारक अर्थात् श्रुतकेवली थे, ऐसा जानना चाहिये । वीर जिनेन्द्रके (तीर्थमें) इन्हें बारह अंगोंके धारक जानना चाहिये ॥५-६॥

तथा विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और अन्तिम धर्मसेन ये परम्परासे दस पूर्वोंके धारक कहे गये हैं ॥७-८॥

नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवषेण और कंसाचार्य ये पाँच जन ग्यारह अंगों-के धारक निर्दिष्ट किये गये हैं ॥९॥

सुभद्र मुनी, यशोभद्र, यशोबाहु और अन्तिम लोहाचार्य ये चार आचार्य आचारांगके धारी जानना चाहिये ॥१०॥

आनुपूर्वीके अनुसार आचार्यपरम्परासे प्राप्त सागर-द्वीपोंकी समस्त प्रज्ञप्ति-को संक्षेपमें कहता हूँ ॥११॥

मेघचन्द्र-प्रशस्तिः[1]

(शक सं० १०३७)

(दक्षिणमुख)

भद्रं भूयाज्जिनेन्द्राणां शासनायाघनाशिने ।
कुतीर्थ-ध्वान्तसङ्घातप्रभिन्नघनभानवे ॥१॥
श्रीमन्नामेयनाथाद्यमलजिनवरानीकसौधोरुवार्द्धि-
प्रध्वस्ताघ-प्रमेय-प्रचय-विषय-कैवल्यबोधोरु-वेदिः ।
शस्तस्यात्कारमुद्राशबलितजनतानन्दनादोरुघोषः
स्थेयादाचन्द्रतारं परमसुखमहावीर्य्यवीचीनिकायः ॥२॥
श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्ग्गाः श्रीगौतमाद्याः प्रभविष्णवस्ते
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धियुक्तास्तत्सन्ततौ नन्दिगणे बभूव ॥३॥
श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्दः ।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्रसञ्जातसुचारणर्द्धिः ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य्यशब्दोत्तरगृद्धपिञ्छः ।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिञ्छमुनिपस्य बलाकपिञ्छः
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्त्तिकीर्त्तिः ।
चारित्रचुञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥६॥
तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डित-यतिश्चारित्रचक्रेश्वर-
स्तर्क्कव्याकरणादिशास्त्रनिपुणस्साहित्यविद्यापतिः ।
मिथ्यावादिमदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टकण्ठीरवो
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्प्पदर्प्पापहः ॥७॥
तच्छिष्यास्त्रिशता विवेकनिधयश्शास्त्राब्धिपारङ्गता-
स्तेषूत्कृष्टतमा द्विसप्ततिमितास्सिद्धान्तशास्त्रार्थक-
व्याख्याने पटवो विचित्रचरितास्तेषु प्रसिद्धो मुनिः
नानानूननयप्रमाणनिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिकः ॥८॥
अजनि महिपचूडारत्नराराजिताङ्घ्रि-
र्व्विजितमकरकेतूद्दण्डदोद्दण्डगर्व्वः ।
कुनयनिकरभूध्रानीकदम्भोलिदण्ड-
स्स जयतु विबुधेन्द्रो भारतीभालपट्टः ॥९॥

---

१. जैन शिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, मा० दि० ग्र०, अभिलेख संख्या–४७ ।

तच्छिष्यः कलधौतनन्दिमुनिपस्सैद्धान्तचक्रेश्वरः
पारावारपरीतधारिणिकुलव्याप्तोरुकीर्त्तीश्वरः ।
पञ्चाक्षोन्मदकुम्भिकुम्भदलनप्रोन्मुक्तमुक्ताफल-
प्रांशुप्राञ्चितकेसरी बुधनुतो वाक्कामिनीवल्लभः ॥१०॥
तत्पुत्रको महेन्द्रादिकीर्त्तिर्म्मदनशङ्करः ।
यस्य वाग्देवता शक्ता श्रौतीं मालामयूयुजत् ॥११॥
तच्छिष्यो वीरनन्दी कवि-गमक-महावादि वाग्मित्वयुक्तो
यस्य श्रीनाकसिन्धुस्त्रिदशपतिगजाकाशसङ्काशकीर्त्तिं ।
गायन्त्युच्चैर्दिग्दिगन्ते त्रिदशयुवतयः प्रीतिरागानुबन्धात्
सोऽयं जीयात्प्रमादप्रकरमहिधराभीलदम्भोलिदण्डः ॥१२॥
श्रीगोल्लाचार्य्यनामा समजनि मुनिपश्शुद्धरत्नत्रयात्मा
सिद्धात्माद्यर्थ-सार्थ-प्रकटनपटु-सिद्धान्त-शास्त्राब्धि-वीची
सङ्घातक्षालितांहः प्रमदमदकलालोढबुद्धिप्रभावः
जीयाद् भूपाल-मौलि-द्युमणि-विदलिताङ्घ्रिपब्जलक्ष्मीविलासः ॥
पेर्ग्गडे चावराजे बरेदं मङ्गल ॥

(पश्चिममुख)

वीरणन्दिविबुधेन्द्रसन्ततौ नूत्नचन्दिलनरेन्द्रवंश-
चूडामणिः प्रथितगोल्लदेशभूपालकः किमपि कारणेन सः ॥१४॥
श्रीमत्त्रैकाल्योगी समजनि महिकाकायलग्नातनुत्रं
यस्याभूद्वृष्टिधारा निशित-शर-गणा ग्रीष्ममार्त्तण्डबिम्बं ।
चक्रं सद्वृत्तचापाकलितयतिवरस्याघशत्रून्विजेतुं
गोल्लाचार्य्यस्य शिष्यस्स जयतु भुवने भव्यसत्कैरवेन्दुः ॥१५॥
तपस्सामर्थ्यतो यस्य छात्रोऽभूद्ब्रह्मराक्षसः ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुञ्चन्ति च महाग्रहाः ॥१६॥
प्राज्याज्यतां गतं लोके करञ्जस्य हि तैलकं
तपस्सामर्थ्यतस्तस्य तपः किं वर्ण्णितुं क्षमं ॥१७॥
त्रैकाल्य-योगि-यतिपाग्र-विनेयरत्न-
स्सिद्धान्तवार्द्धिपरिवर्द्धनपूर्णचन्द्रः ।
दिग्नागकुम्भलिखितोज्ज्वलकीर्त्तिकान्तो
जीयादसावभयनन्दिमुनिर्ज्जगत्यां ॥१८॥
येनाशेषपरीषहादिरिपवस्सम्यग्जिताः प्रोद्धताः
येनाप्ता दशलक्षणोत्तममहाधर्म्माख्यकल्पद्रुमाः

येनाशेष-भवोपताप-हननस्वाध्यात्मसंवेदनं
प्राप्तं स्यादभयादिनन्दिमुनिपस्सोऽयं कृतार्थो भुवि ॥१९॥
तच्छिष्यस्सकलागमार्थनिपुणो लोकज्ञतासंयुत-
स्सच्चारित्रविचित्रचारुचरितस्सौजन्यकन्दाङ्कुरः
मिथ्यात्वाब्जवनप्रतापहननश्रीसोमदेवप्रभु-
र्ज्जीयात्सत्सकलेन्दुनाममुनिपः कर्माटवीपावकः ॥२०॥
अपि च सकलचन्द्रो विश्वविश्वम्भरेश-
प्रणुतपदपयोजः कुन्दहारेन्दुरोचिः ।
त्रिदशगजसुवज्रव्योमसिन्धुप्रकाश-
प्रतिभविशदकीर्त्तिर्व्वाग्विधूकर्णपूरः ॥२१॥
शिष्यस्तस्य दृढव्रतश्शमनिधिस्सत्संयमाम्भोनिधि
शीलानां विपुलालयस्समितिभिर्य्युक्तस्त्रिगुप्तिश्रितः ।
नानासद्गुणरत्नरोहणगिः प्रोद्यत्तपोजन्मभूः
प्रख्यातो भुवि मेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यचक्राधिपः ॥२२॥
त्रैविद्ययोगीश्वर-मेघचन्द्रस्याभूत्प्रभाचन्द्रमुनिस्सुशिष्यः ।
शुम्भद्व्रताम्भोनिधिपूर्णचन्द्रो निर्द्धूतदण्डत्रितयो विशल्यः ॥२३॥
पुष्पास्त्रानून-दानोत्कट-कट-करटिच्छेदछेद-दृप्यन्मृगेन्द्रः
नानाभव्याब्जषण्डप्रतति-विकसन-श्रीविधानैकभानुः ।
संसाराम्भोधिमध्योत्तरणकरणतौयानरत्नत्रयेशः
सम्यग्जैनागमार्थान्वितविमलमतिः श्रीप्रभाचन्द्रयोगी ॥२४॥

(उत्तरमुख)

श्रीभूपालकमौलिलालितपदस्संज्ञानलक्ष्मीपति-
श्चारित्रोत्करवाहनश्शितयशश्शुभ्रातपत्राञ्चितः ॥
त्रैलोक्याद्भुतमन्मथारिविजयस्संद्धर्म्मचक्राधिपः
पृथ्वीसंस्तवतूर्य्यघोषनिनदत्रैविद्यचक्रेश्वरः ॥२५॥
सैद्धान्तेद्धशिरोमणिः प्रशमवद्व्रातस्य चूडामणिः ।
शब्दौघस्य शिरोमणिः प्रविलसत्तर्क्कज्ञचूडामणिः
प्रोद्यत्संयमिनां शिरोमणिरुदञ्चद्भव्यरक्षामणि-
र्ज्जीयात्सन्नुतमेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यचूडामणिः ॥२६॥
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रयमिनः प्रत्युर्म्मभासि प्रिया
वाग्देवी दिसहावहित्थहृदया तद्वाश्यकर्म्मार्त्थिनी ।
कीर्त्तिर्व्वारिधिदिक् कुलाचलकुले स्वादात्मा प्रष्टुम-
प्यन्वेष्टुं मणिमन्त्रतन्त्रनिचयं सा सम्भ्रमा भ्राम्यति ॥२७॥

तर्क्कन्यायसुवज्रवेदिरमलार्हत्सूक्तितन्मौक्तिकः
शब्दग्रन्थविशुद्धशंखकलितस्स्याद्वादसद्विद्रुमः
व्याख्यानोर्ज्जितघोषणर् प्रविपुलप्रज्ञोद्धवीचीचयो
जीयाद्विश्रुतमेघचन्द्रमुनिपस्त्रैविद्यरत्नाकरः ।।२८।।
श्रीमूलसंघ-कृत-पुस्तक-गच्छ-देशी
प्रोद्यद्गणाधिपसुतार्क्किकचक्रवर्ती ।
सैद्धान्तिकेश्वरशिखामणिमेघचन्द्र-
स्त्रैविद्यदेव इति सद्विबुधा (:) स्तुवन्ति ।।२९।।

सिद्धान्ते जिन-वीरसेन-सदृशः शास्याब्ज-भा-भास्करः
षट्तर्क्केष्वकलङ्कदेव विबुधः साक्षादयं भूतले ।
सर्व्व-व्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादस्स्वयं
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चाननः ।।३०।।
रुद्राणीशस्य कण्ठं धवलयति हिमज्योतिषो जातमङ्कं
पीतं सौवर्ण्णशैलं शिशुदिनपतनुं राहुदेहं नितान्तं ।
श्रीकान्तावल्लभाङ्गकमलभववपुर्म्मेघचन्द्रव्रतीन्द्र
त्रैविद्यस्याखिलाशावलयनिलयसत्कीर्त्तिचन्द्रातपोऽसौ ।।३१।।

मुनिनाथं दशधर्म्मधारिदृढषट्-त्रिंशद्गुणं दिव्य-वा-
णनिधानं निनगिक्षुचापमलिनीज्यासूत्रमोरेन्दे पू-
विन बाणङ्गलुमय्दे हीननधिकङ्गाक्षेपममाप्पुं दा-
व नयं दर्प्पक मेघचन्द्रमुनियोल् माण्निन्नदोद्दर्प्पमं ।।३२।।
मृदुरेखाविलासं चावराज-बलहृदल् वरेदुद बिरुदरूवारिमुख-
तिलकगङ्गाचारि कण्डरिसिद शुभचन्द्र सिद्धान्तदेवरगुड्ड ।

(पूर्वमुख)

श्रवणीयं शब्दविद्यापरिणति महनीयं महातर्क्कविद्या-
प्रवणत्वं श्लाघनीयं जिननिगदित-संशुद्धसिद्धान्तविद्या-
प्रवणप्रागल्भ्यमेन्देन्दुपचितपुलकं कीर्त्तिसल् कूर्त्तुं-विद्व-
न्निवहं त्रैविद्यनाम-प्रविदितनेसेदं मेघचन्द्रव्रतीन्द्र ।।३३।।
क्षमेगीगल् जौवनंतीविदुदतुलतप श्रीगे लावण्यमीगल्
समसन्दिद्दर्त्तु तन्नि श्रुतवधुगधिक प्रौढियाय्तीगलेन्द-
न्दे महाविख्यातियं ताल्दिदनमलचरित्रोत्तमंभव्यचेतो-
रमणं त्रैविद्यविद्योदितविशदयशं मेघचन्द्रव्रतीन्द्र ।।३४।।
इदे हंसीबृन्दमीण्टल् बगेदपुदु चकोरीचयं चञ्चुविन्दं

कट्टुकल् साद्दंप्पुदीशं जडेयोलिरिसलेन्दिद्दंपं सेज्जेगरल्
पदेदप्पं कृष्णनेम्बन्तेसेदु बिस-नसत्कन्दलीकन्दकान्तं
पुदिदत्ती मेघचन्द्रव्रतितिलकजगद्वर्त्तिकीर्त्तिप्रकाश ॥३५॥

पूजितविदग्धविबुधस-
माजं त्रैविद्य-मेघचन्द्र-व्रति-रा-
राजिसिदं विनमितमुनि-
राजं वृषभगणभगणताराराजं ॥३६॥

सक वर्ष १०३७ नेय मन्मथसंवत्सरद मार्ग्गसिर सुद्ध १४ वृहवारं धनुलग्नद पूर्वाह्णदारुघलिगेयप्पागलु श्रीमूलसङ्घद देसिगगणद पुस्तकगच्छद श्रीमेघचन्द्र-त्रैविद्यदेवर्त्तम्मवशानकालमनरिदु पल्यङ्काशनदोलिद्दु आत्मभावनेयं भाविसुत्तु देवलोकक्के सन्दराभावनेयेन्तप्पुदेन्दोडे ॥

अनन्त-बोधात्मकमात्मतत्त्वं निधाय चेतस्यपहाय हेयं ।
त्रैविद्यनामा मुनिमेघचन्द्रो दिवं गतो बोधनिधिर्व्विशिष्टाम् ॥३७॥

अवरप्रशिष्यरशेष-पद-पदार्थ-तत्त्व-विदरु सकलशास्त्रपारावारपारगरुं गुरु-कुलसमुद्धरणरुमप्प श्रीप्रभाचन्द्र-सिद्धान्त देवर्त्तम्म गुरुगल्गे परोक्षविनेयं कारण-मागि-श्रीकव्वप्पु-तीर्त्थदल् तम्म गुड्डं ॥

समधिगतपञ्चमहाशब्द महासामन्ताधिपति महाप्रचण्डदण्डनायक वैरिभय-दायकं गोत्रपवित्रं बुधजनमित्र स्वामिद्रोहगोधूमघरट्टसंग्रामजत्तलट्ट विष्णुवर्द्धन-भूपालहोय्सलमहाराज राज्यसमुद्धरण कलिगलाभरण श्रीजैनधर्म्मामृताम्बुधि-प्रवर्द्धन-सुधाकर सम्यक्तरत्नाकर श्रीमन्महाप्रधानं दण्डनायकगङ्गराजनुमातन मनस्सरोवरराजहंसे भव्यजनप्रसंसे गोत्र-निधाने रुक्मिणीसमाने लक्ष्मीमति-दण्डनायकितियुमन्तवरिन्दमतिशय महाविभूतियिं सुभलग्नदोलु प्रतिष्ठेय माडि-सिदर् आमुनीन्द्रोत्तमर् ईनिसिधिगेयन् अवर तपः प्रभावमेन्तप्पुद्देन्दोडे ॥

समदोद्यन्मार-गन्ध-द्विरद-दलन १—कण्ठीरवं क्रोध-लोभ
द्रुम-मूलच्छेदनं दुर्द्धरविषय शिलाभेद-वज्र-प्रपातं ।
कामनीयं श्रीजिनेन्द्रागमजलनिधिपारं प्रभाचन्द्र-सिद्धान्तमु—
नीन्द्रं मोहविध्वंसनकरनेसेदं धात्रियोल् योगिनाथ ॥३८॥
चावराजं बरेद ॥

मत्तिन मातवन्तिरलि जीर्ण्णजिनाश्रयकोटियं क्रमं
वेत्तिरे मुन्निनन्तिरतितुर्ग्गलोलं नेरे माडिसुत्तम—
त्युत्तमपात्रदानदोदवं मेरेवुत्तिरे गंगवाडितो—
म्बत्तरु सासिरं कोपणमादुद गंगणदण्डनाथनिं ॥३९॥

सोमयनें कैकोण्डुदो
सौभाग्यद्-कणियेनिप्प लक्ष्मीमतियि-
न्दीभुवनतलदोला हा-
रामयभेसज्यशास्त्र-दान-विधान ॥४०॥

इस प्रशस्तिमें कुन्दकुन्दाचार्य, गृद्ध्रपिच्छ, बलाक्पिच्छ, गुणनन्दि, देवेन्द्र सैद्धान्तिक और कलधौतनन्दिका उल्लेख आया है। कलधौतनन्दिके पुत्र महेन्द्र-कीर्त्ति हुए, जिनकी आचार्यपरम्परामें क्रमसे वीरनन्दि, गोल्लाचार्य, त्रैकाल्य-योगि, अभयनन्दि और सकलचन्द्र मुनि हुए। इस अभिलेखमें आचार्योंके तप एवं प्रभावका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। त्रैकाल्ययोगीके विषयमें कहा जाता है कि इनके तपके प्रभावसे एक ब्रह्मराक्षस इनका शिष्य बन गया था। इनके स्मरणमात्रसे बड़े-बड़े भूत भागते थे, और इनके प्रतापसे करञ्जका तेल घृतमें परिवर्त्तित हो गया था। सकलचन्द्रमुनिके शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य हुए, जो सिद्धान्तमें वीरसेन, तर्कमें अकलंक और व्याकरणमें पूज्यपादके तुल्य विद्वान थे। शक सं० १०३७ मार्गशीर्ष, शुक्ला चतुर्दशी, गुरुवार, मन्यतसम्वत्सरको धनुलगन पूर्वाह्ण समयमें इन्होंने सध्यानपूर्वक शरीरका त्याग किया। मेघचन्द्र देशीगण, पुस्तकगच्छके आचार्य थे। इनके प्रमुख शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव थे, जो विभिन्न विषयोंके ज्ञाता, वादियोंके मदको चूर करनेवाले प्रतापी और मोह-अन्धकारको ध्वंस करनेवाले थे। इन्होंने महाप्रधान दण्डनायक गंगराज द्वारा माघचन्द्र त्रैवेद्यकी निषधा तैयार करायी। इस अभिलेखमें नन्दिगणका उल्लेख आया है और इसी गणके अन्तर्गत पद्मनन्दि, कुन्दकुन्द आदिका निर्देश किया है।

मल्लिषेण-प्रशस्ति

(शक सं० १०५० ई०, सन् ११२८)

इस पट्टावलिमें मूलरूपसे मल्लिषेण मलधारिदेवके समाधिमरणका निर्देश आया है। चन्द्रगिरि पर्वत (कटवप्र) के पार्श्वनाथमन्दिर (वसति) के नवरंगमें यह प्रशस्ति अङ्कित की गई है। आचार्योंके इतिहासकी दृष्टिसे इस प्रशस्तिका मूल्य अधिक है। ७२ पद्योंमें दिगम्बर परम्पराके समस्त प्रसिद्ध आचार्योंका नाम आया है। प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

(उत्तरमुख)

श्रीमन्नाथकुलेन्दुरिन्द्र-परिषद्वन्द्यश्श्रुत-श्री-सुधा-
धारा-धौत-जगत्तमोऽपह-पह-महः पिण्ड-प्रकाण्डं महत्।

यस्मान्निर्म्मल-धर्म्म-वार्द्धि-विपुलश्रीर्व्वर्द्धमाना सतां
भर्त्तु र्भव्य-चकोर-चक्रमवतु श्रीवर्द्धमानो जिनः ॥१॥

जीयादर्त्थयुतेन्द्रभूतिविदिताभिख्यो गणी गौतम—
स्वामी सप्तमहर्द्धिभिस्त्रिजगतीमापादयन्पादयोः ।
यद्बोधाम्बुधिमेत्य वीर-हिमवत्कुत्कीलकण्ठाद्बुधा—
म्भोदात्ता भुवनं पुनाति वचन-स्वच्छन्दमन्दाकिनी ॥२॥

तीर्थेश-दर्शनभवन्नय-दृक्सहस्र-विस्रब्ध-बोध-वपुषश्श्रुतकवेलीन्द्राः ।
निर्म्भिन्दतां विबुध-वृन्द-शिरोभिवन्द्यास्फूर्ज्जद्वचः कुलिशतः कुमताद्रि-
मुद्राः ॥३॥

वर्ण्यः कथन्नु महिमा भण भद्रबाहो र्म्मोहोरु-मल्ल-मद-मर्द्दन-वृत्तबाहोः ।
यच्छिष्यताप्तसुकृतेन स चन्द्रगुप्त श्शुश्रूष्यतेस्म सुचिरं वन-देवताभिः ॥४॥

वन्द्योविभुर्भ्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः
कुन्द-प्रभा-प्रणयि-कीर्त्ति-विभूषिताशः ।
यश्चारु-चारण-कराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥५॥

वन्द्यो भस्मक-भस्म-सात्कृति-पटुः पद्मावती-देवता-
दत्तोदात्त-पदस्व-मन्त्र-वचन-व्याहूत-चन्द्रप्रभः ।
आचार्य्यस्सः समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ॥६॥

चूर्णि ॥ यस्यैवंविधा वादारम्भसंरम्भविजृम्भिताभिव्यक्तयस्सूक्तयः ॥
वृत्त ॥ पूर्व्वं पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये काञ्चीपुरे वैदिशे ।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहु-भटं-विद्योत्कटं सङ्कटं
वादार्त्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूल-विक्रीडितं ॥७॥

अवटु-तटमटति झटति स्फुट-पटु-वाचाटधूर्ज्जटेरपि जिह्वा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कथान्येषां ॥८॥

योऽसौ घाति-मल-द्विषद्बल-शिला-स्तम्भावली-खण्डन-
ध्यानासिः पटुरर्हतो भगवतस्सोऽस्य प्रसादीकृतः ।

---

१. जैनशिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, अभिलेखसंख्या ५४ ।

छात्रस्यापि स सिंहनन्दि-मुनिना नोचेत्कथं वा शिला–
स्तम्भोराज्यरमागमाध्व-परिघस्तेनासिखण्डो घनः ॥९॥
वक्रग्रीव-महामुनेर्दृश-शतग्रीवोऽप्यहीन्द्रो यथा–
जातं स्तोतुमलं वचोबलमसौ किं भग्न-वाग्मि-व्रजं ।
योऽसौ शासन-देवता-बहुमतो ह्री-वक्त्र-वादि-ग्रह-
ग्रीवोऽस्मिन्नथ-शब्द-वाच्यमवदद् मासान्समासेन षट् ॥१०॥
नवस्त्रोत्रं तत्र प्रसरति कवीन्द्राः कथमपि
प्रणामं वज्रादौ रचयत परन्नन्दिनि मुनौ ।
नवस्तोत्रं येन व्यरचि सकलार्हत्प्रवचन–
प्रपञ्चान्तर्भाव-प्रवण-वर-सन्दर्भसुभगं ॥११॥
महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्तयासीत्
पद्मावती सहाया त्रिलक्षण-कदर्थनं कर्त्तुं ॥१२॥
सुमति-देवममुं स्तुतयेन वस्सुमति-सप्तकमाप्ततया कृतं ।
परिहृतापथ-तत्त्व-पथार्त्थिनां सुमति-कोटि-विवर्त्तिभवार्त्तिहृत् ॥१३॥
उदेत्य सम्यग्दिशि दक्षिणस्यां कुमारसेनो मुनिरस्तमापत् ।
तत्रैव चित्रं जगदेक-भानोस्तिष्ठत्यसौ तस्य तथा प्रकाशः ॥१४॥
धर्म्मार्थकामपरिनिर्वृतिचारुचिन्तश्चिन्तामणिः प्रतिनिकेतमकारि येन ।
स स्तूयते सरससौख्यभुजा-सुजातश्चिन्तामणिर्म्मुनिवृषा
न कथं जनेन ॥१५॥
चूडामणिः कवीनां चूडामणि-नाम-सेव्य-काव्य-कविः ।
श्रीवर्द्धदेव एव हि कृतपुण्यः कीर्त्तिमाहर्त्तुं ॥१६॥
चूर्ण्णि ॥ य एवमुपश्लोकितो दण्डिना ॥
जह्नोः कन्यां जटाग्रेण बभार परमेश्वरः ।
श्रीवर्द्धदेव सन्धत्से जिह्वाग्रेण सरस्वतीं ॥१७॥
पुष्पास्त्रस्य जयो गणस्य चरणम्भूमृच्छिखा-घट्टनं
पद्भ्यामस्तु महेश्वरस्तदपि न प्राप्तुं तुलामीश्वरः ।
यस्याखण्ड-कलावतोऽष्ट-विलसद्दिक्पाल-मौलि-स्खलत्-
कीर्त्तिस्वस्सरित्तो महेश्वर इह स्तुत्यस्य कैस्स्यान्मुनिः ॥१८॥
यस्सप्तति-महा-वादान् जिगायान्यानथामितान् ।
ब्रह्मरक्षोऽर्चितस्सोऽर्च्यो महेश्वर-मुनीश्वरः ॥१९॥
तारा येन विनिर्ज्जिता घट-कुटी-गूढावतारा समं
बौद्धैर्य्यो धृत-पीठ-पीडित-कुदृग्देवात्त-सेवाञ्जलिः ।

प्रायश्चित्तमिवाङ्घ्रि-वारिज-रज-स्नानं च यस्याचरत्
दोषाणां सुगतस्स कस्य विषयो देवाकलङ्कः कृती ॥२०॥
चूर्ण्णि ॥ यस्येदमात्मनोऽनन्य-सामान्य-निरवद्य-विद्या-विभवोप-
वर्ण्णनमाकर्ण्यते ॥
राजन्साहसतुङ्ग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्ल्लभाः ।
त्वद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नाना-शास्त्र-विचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः ॥२१॥
नमो मल्लिषेण-मलधारि-देवाय ॥

(पूर्वमुख)

राजन्सर्व्वारि-दर्प्प-प्रविदलन-पटुस्त्वं यथात्र प्रसिद्ध-
स्तद्वत्ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिल-मदोत्पाटनः पण्डितानां ।
नो चेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा सन्ति सन्तो महान्तो
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेष-शास्त्रो यदि स्यात् ॥२२॥
नाहङ्कार-वशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्य-बुद्धया मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धोघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः ॥२३॥
श्रीपुष्पसेन-मुनिरेव पदम्महिम्नो देवस्य यस्य समभूत्स भवान्सधर्म्मा ।
श्रीविभ्रमस्य भवन्ननु पद्मदेव पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा ॥२४॥
विमलचन्द्रमुनीन्द्र-गुरोर्ग्गुरुप्रशमिताखिलवादिमदं पदं ।
यदि यथावदवैष्यत पण्डितैर्न्ननु तदान्ववदिष्यत वाग्विभोः ॥२५॥
चूर्ण्णि ॥ तथाहि । यस्यायमापादित-वरवादि-हृदय-शोकः पत्रा-
लम्बन-श्लोकः ॥
पत्रं शत्रु-भयङ्करोरु-भवन-द्वारे सदा सञ्चरत्
नाना-राज-करीन्द्र-वृन्द-तुरग-व्राताकुले स्थापितम् ।
शैवान्पाशुपतांस्तथागतसुतान्कापालिकान्कापिला-
नुद्दिश्योद्धत-चेतसा-विमलचन्द्रांशाम्बरेणादरात् ॥२६॥
दुरित-ग्रह-निग्रहाद्भयं यदि भो भूरि-नरेन्द्र-वन्दितम् ।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजतश्श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ॥२७॥
घट-वाद-घटा-कोटि-कोविदः कोविदां प्रवाक् ।
परवादिमल्ल-देवो देव एव न संशयः ॥२८॥

चूर्ण्णि ।। येनेयमात्म-नामधेय-निरुक्तिरुक्ता नाम पृष्टवन्तं कृष्णराजं प्रति ।।
गृहीत-पक्षादितरः परस्मात्तद्वादिनस्ते परवादिनस्स्युः ।
तेषां हि मल्लः परवादिमल्लस्तन्नाममन्नाम वदन्ति सन्तः ।।२९।।
आचार्यवर्यो यतिरार्यदेवो राद्धान्त-कर्त्ता ध्रियतां स मूर्ध्नि ।
यस्स्वर्ग्ग-यानोत्सव-सीम्नि कायोत्सर्ग्गस्थितः कायमुदुत्ससर्ज्ज ।।३०।।
श्रवण-कृत-तृणोऽसौ संयमं ज्ञातु-कामैः
शयन-विहित-वेला-सुप्तलुप्तावधानः ।
श्रुतिमरभसवृत्योन्मृज्य पिच्छेन शिश्ये
किल मृदु-परिवृत्या दत्त-तत्कीटवर्त्मा ।।३१।।
विश्वं यश्श्रुत-बिन्दुनावरुरुधे भावं कुशाग्रीयया
बुध्येवाति-महीयसा प्रवचसा बद्धं गणाधीश्वरैः ।
शिष्यान्प्रत्यनुकम्पया कृशमतीनैदं युगीनान्सुगी-
स्तं वाचार्च्चत चन्द्रकीर्त्ति-गणिनं चन्द्राभ-कीर्त्तिं बुधाः ।।३१।।
सद्धर्म्म-कर्म्म-प्रकृतिप्रणामाद्यस्योग्र-कर्म्मप्रकृतिप्रमोक्षः ।
तन्नानिकर्म्म-प्रकृतिन्नमामो भट्टारकं दृष्ट-कृतान्त-पारम् ।।३३।।
अपि स्व-वाग्व्यस्त-समस्त-विद्यस्त्रैविद्यशब्देऽप्यनुमन्यमानः ।
श्रीपालदेवः प्रतिपालनीयस्सतां यतस्तत्व-विवेचनी धीः ।।३४।।
तीर्त्थं श्रीमतिसागरो गुरुरिला-चक्रं चकार स्फुर-
ज्योतिः पीत-तमर्पयः-प्रविततिः पूतं प्रभूताशयः
यस्माद्भूरि-परार्द्ध्य-पावन-गुण-श्रीवर्द्धमानोल्लस-
द्रत्नोत्पत्तिरिला-तलाधिप-शिरश्शृंगारकारिण्यभूत् ।।३५।।
यत्राभियोक्तरि लघुर्ल्लघु-धाम-सोम-सौम्यांगभृत्स च भवत्यपि भूति-भूमिः ।
विद्या-धनञ्जय-पदं विशदं दधानो जिष्णुः स एव हि
महा-मुनि हेमसेनः ।।३६।।
चूर्ण्णि ।। यस्यायमवनिपति-परिषद्-निग्रह-मही-निपात-भीति-
दुस्थ-दुर्गर्व-पर्वतारूढ-प्रतिवादिलोकः प्रतिज्ञाश्लोकः ।।
तर्के व्याकरणे कृत- श्रमतया धीमत्तयाप्युद्धतो
मध्यस्थेषु मनीषिषु क्षितिभृतामग्रे मया स्पर्द्धया ।
यः कश्चित्प्रतिवक्ति तस्य विदुषो वाग्मेय-भंगं परं
कुर्वेऽवश्यमिति प्रतीहि नृपते हे हेमसेनं मतं ।।३७।।
हितैषिणां यस्य नृणामुदात्त-वाचा निबद्धा हित-रूप-सिद्धिः ।
वन्द्यो दयापाल-मुनिः स वाचा सिद्धस्सताम्मूर्द्धनि यः प्रभावैः ।।३८।।

यस्य श्रीमतिसागरो गुरुरसौ चञ्चद्यशश्चन्द्रसूः
श्रीमान्यस्य स वादिराज-गणभृत्स ब्रह्मचारीविभोः।
एकोऽतीव कृती स एव हि दयापालव्रती यन्मन-
स्यास्तामन्य-परिग्रह-ग्रह-कथा स्वे विग्रहे विग्रहः ॥३९॥
त्रैलोक्य-दीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोदगादिह।
जिनराजत एकस्मादेकस्माद्वादिराजतः ॥४०॥

आरुह्याम्बरमिन्दु-बिम्ब-रचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्चमरीज-राजि-रुचयोऽभ्यर्ण च यत्कर्णयोः।
सेव्यः सिंहसमर्च्य-पीठ-विभवः सर्व-प्रवादि-प्रजा-
दत्तोच्चैर्जयकार-सार-महिमा श्रीवादिराजो विदां ॥४१॥

चूर्णि ॥ यदीय-गुण-गोचरोऽयं वचन-विलास-प्रसरः कवीनां।
नमोऽर्हते ॥

(दक्षिणमुख)

श्रीमच्चालुक्य-चक्रेश्वर-जयकटके वाग्वधू-जन्मभूमौ
निष्काण्डर्डिण्डिमः पर्यटति पटु-रटो वादिराजस्य जिष्णोः।
जह्यद्वाद-दर्पो जहिहि गमकता गर्व-भूमा जहाहि
व्याहारेष्यां जहीहि स्फुट-मृदु-मधुर-श्रव्य-काव्यावलेपः ॥४२॥

पाताले व्यालराजो वसति सुविदितं यस्य जिह्वा-सहस्रं
निर्गन्ता स्वर्गतोऽसौ न भवति धिषणो वज्रभृद्यस्य शिष्यः।
जीवेतान्तावदेतौ निलय-वल-वशाद्वादिनः केऽत्र नान्ये
गर्वं निर्मुच्य सर्वं जयिनमिन-समे वादिराजं नमन्ति ॥४३॥

वाग्देवीं सुचिरप्रयोग-सुदृढ-प्रेमाणमप्यादरा-
दादत्ते मम पार्श्वऽयमधुना श्रीवादिराजो मुनिः
भो-भो पश्यत पश्यतैप यमिनां किं धर्म इत्युच्चकै-
रब्रह्मण्य-पराः पुरातनमुनेर्वाग्वृत्तयः पान्तु वः ॥४४॥

गंगावश्विर-शिरो-मणि-बद्ध-सन्ध्या-रागोल्लसच्चरण-चारुनखेन्दुलक्ष्मीः।
श्रीशब्दपूर्व-विजयान्त-विनूत-नामा धीमानमानुष-गुणोऽस्ततमः
प्रभांशु ॥४५॥

चूर्णि ॥ स्तुतो हि स भवानेप श्रीवादिराज-देवेन ॥
यद्विधा-तपसोः प्रशस्तमुभयं श्रीहेमसेनमुनौ
प्रागीसित्सुचिराभियोग-बलतो नीतं परामुन्नतिं।

प्रायः श्रीविजये तदेतदखिलं तत्पीठिकायां स्थिते
संक्रान्तं कथमन्यथानतिचिराद्विद्येदृगीदृक् तपः ॥४६॥
विद्योदयोऽस्ति न मदोऽस्ति तपोऽस्ति भास्व-
न्नोग्रत्वमस्ति विभुतास्ति न चास्ति मानः ।
यस्य श्रये कमलभद्र-मुनीश्वरन्तं
यः ख्यातिमापदिह-शाम्यदघैर्गुणौघैः ॥४७॥
स्मरणमत्र पवित्रतमं मनो भवति यस्य सतामिह तीर्त्थिनां
तमत्तिनिर्मलमात्म-विशुद्धये कमलभद्रसरोवरमाश्रये ॥४८॥
सर्वांगैर्यमिहालिलिङ्ग-सुमहाभागं कलौ भारति
भास्वन्तं गुण-रत्न-भूषण-गणैरप्यग्रिमं योगिनां ।
तं सन्तस्तुवतामलंकृत-दयापालाभिधानं महा-
सूरिं भूरिधियोऽत्र पण्डित-पदं यत्रैव युक्तं स्मृताः ॥४९॥
विजित-मदन-दर्पः श्रीदयापालदेवो
विदित-सकल-शास्त्रो निर्जिताशेषवादी ।
विमलतर-यशोभिर्व्याप्त-दिक्-चक्रवालो
जयति नत-महीभृन्मौलिरत्नारुणाङ्घ्रिः ॥५०॥
यस्योपास्य पवित्र-पाद-कमल-द्वन्द्वन्नृपः पोय-सलो
लक्ष्मीं सन्निधिमानयत्स विनयादित्यः कृताज्ञाभुवः ।
कस्तस्यार्हति शान्तिदेव-यमिनस्सामर्थ्यमित्थं तथे-
त्याख्यातुं विरला खलु स्फुरदुरु-ज्योतिर्दशास्तादृशाः ॥५१॥
स्वामीति पाण्ड्य-पृथिवी-पतिना निसृष्ट-
नामाप्त-दृष्टि-विभवेन निज-प्रसादात् ।
धन्यस्स एव मुनिराहवमल्लभूमु-
गास्थायिका-प्रथित-शब्द-चतुर्मुखाख्यः ॥५२॥
श्रीमुल्लूर-विडूर-सारवसुधा-रत्नं स नाथो गुणै-
नाक्षूणेन महीक्षितामुरु-महःपिण्डश्शिरो-मण्डनः ।
आराध्यो गुणसेन-पण्डित-पतिस्स स्वास्थ्यकामैर्ज्जना
यत्सूक्तागद-गन्धतोऽपि गलित-ग्लानिं गतिं लम्भिताः ॥५३॥
वन्दे वन्दितमादरादहरहस्स्याद्वाद-विद्या-विदां
स्वान्त-ध्वान्त-वितानं-धूनन-विधौ भास्वन्तमन्यं भुवि ।
भक्त्या त्वाजितसेन-मानतिकृतां यत्सन्नियोगान्मनः-
पद्मं सद्म भवेद्विकास-विभवस्योन्मुक्त-निद्रा-भरं ॥५४॥

मिथ्या-भाषण-भूषणं परिहरेतौद्धत्य·······न्मुञ्चत
स्याद्वादं वदतानमेत विनयाद्वादीभ-कण्ठीरवं ।
नो चेत्तद्गु····गर्ज्जित-श्रुति-भय-भ्रान्ता स्थ यूयं यत-
स्तूर्णं निग्रह-जीर्णकूपः-कुहरे वादि-द्विपाः पातिनः ॥५५॥
गुणाः कुन्द-स्पन्दोड्डमर-समरा वागमृतवाः-
प्लव-प्राय-प्रेयः प्रसर-सरसा कीर्त्तिरिव सा ।
नखेन्दु-ज्योत्स्नाङ्घ्रेर्न्नृप-चय-चकोर-प्रणयिनी
न कासां श्लाघानां पदमजितसेनव्रतिपतिः ॥५६॥
सकल-भुवनपालानम्र-मूर्द्धावबद्ध-
स्फुरित-मुकुट-चूडालीढ-पादारविन्दः ।
मदवखिल-वादीभेन्द्र-कुम्भ-प्रभेदी
गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंहः ॥५७॥

चूर्णि ॥ यस्य संसार-वैराग्य-वैभवमेवंविधास्स्ववाचस्सूचयन्ति ।
प्राप्तं श्रीजिनशासनं त्रिभुवने यद्दुर्ल्लभं प्राणिनां
यत्संसार-समुद्र-मग्न-जनता-हस्तावलम्बायितं ।
यत्प्राप्ताः परनिर्व्यपेक्ष-सकल-ज्ञान-श्रियालङ्कृता-
स्तस्मात्किं गहनं कुतो भयकशः कावात्र देहे रतिः ॥५८॥
आत्मैश्वर्यं विदितमधुनानन्त-बोधादि-रूपं
तत्सम्प्राप्त्यै तदनु समयं वर्त्ततेऽत्रैव चेतः ।
त्यक्तान्यस्मिन्सुरपति-सुखे चक्रि-सौख्ये च तृष्णा
तत्तुच्छार्थैरलमलमधी-लोभनैर्ल्लोकवृत्तैः ॥५९॥
अजानन्नात्मानं सकल-विषय-ज्ञानवपुषं
सदा शान्तं स्वान्तःकरणमपि तत्साधनतया ।
वहो-रागद्वेषैः कलुषितमनाः कोऽपि यततां
कथं जानन्नेनं क्षणमपि ततोऽन्यत्र यतते ॥६०॥

(पश्चिममुख)

चूर्णि ॥ यस्य च शिष्ययोः कविताकान्त-वादिकोलाहलापरनामधेययोः शान्तिनाथपद्मनाम-पण्डितयोरखण्डपाण्डित्यगुणोपवर्ण्णनमिदमसम्पूर्णं ॥
त्वामासाद्य महाधियं परिगता या विश्व-विद्वज्जन-
ज्येष्ठाराध्य-गुणा चिरेण सरसा वैदग्ध्य-सम्पद्गिरां ।
कृत्स्नाशान्त-निरन्तरोदित-यशश्श्रीकान्तशान्तेन तां
वक्तुं सापि सरस्वती प्रभवति ब्रूमः कथन्तद्वयं ॥६१॥

व्यावृत्त-भूरि-मद-सन्तति विस्मृतेर्ष्या-
पारुष्यमात्त-करुणारुत्ति-कान्दिशीकं ।
धावन्ति हन्ति परवादिगजास्त्रसन्तः
श्रीपद्मनाभ-बुध-गन्ध-गजस्य गन्धात् ।।६२।।
दीक्षा च शिक्षा च यतो यतीनां जैनं तपस्तापहरन्दधानात्
कुमारसेनोऽवतु यच्चरित्रं श्रेयः पथोदाहरणं पवित्रम् ।।६३।।

जगद्भूरिम-घस्मर-स्मर-मदान्ध-गन्ध-द्विप-
द्विधाकरण-केसरी-चरण-भूष्य-भूभृच्छिखः ।
द्वि-षड्-गुण-वपुस्तपश्चरण-चण्ड-धामोदयो
दयेत मम मल्लिषेण-मलधारिदेवो गुरुः ।।६४।।
वन्दे तं मलधारिणं मुनिपतिं मोह-द्विषद्-व्याहृति-
व्यापार-व्यवसाय-सार-हृदयं सत्संयमोरु-श्रियं ।
यत्कायोपचयीभवन्मलमपि प्रव्यक्त-भक्ति-क्रमा-
नम्राकम्र-मनो-मिलन्मलमषि-प्रक्षालनैकक्षमं ।।६५।।

अतुच्छ-तिमिर-च्छटा-जटिल-जन्म-जीर्णाटवी
दवानल-तुला-जुषां पृथु-तपः-प्रभाव-त्विषां ।
पदं पद-पयोरुह-भ्रमित-भव्य-भृङ्गावलि-
र्ममोल्लसतु मल्लिषेण-मुनिराण्मनो-मन्दिरे ।।६६।।
नैर्मल्याय मलाविलाङ्गमखिल-त्रैलोक्य-राज्यश्रिये
नैष्किञ्चन्यमतुच्छ-तापहृदयेन्यञ्चद्भुताशन्तपः ।
यस्यासौ गुण-रत्न-रोहण-गिरिः श्रीमल्लिषेणो गुरु-
र्वन्द्यो येन विचित्र-चारु-चरितैर्द्धात्री पवित्री-कृता ।।६७।।

यस्मिन्नप्रतिमा क्षमाभिरते यस्मिन्दया निर्दया-
श्लेषो यत्र-समत्वधीः प्रणयिनी यत्रास्पृहा सस्पृहा ।
कामं निर्वृति-कामुकस्वयमथाप्यग्रेसरो योगिना-
माश्चर्याय कथन्न नाम चरितैश्श्रीमल्लिषेणो मुनिः ।।६८।।
यः पूज्यः पृथिवीतले यमनिशं सन्तस्स्तुवन्त्यादरात्
येनानङ्ग-धनुर्जितं मुनिजना यस्मै नमस्कुर्वते ।
यस्मादागम-निर्णयो यमभृतां यस्यास्ति जीवे दया
यस्मिन्श्रीमलधारिणि व्रतिपतौ धर्मोऽस्ति तस्मै नमः ।।६९।।
धवल-सरस-तीर्थे सैष सन्यास-धन्यां
परिणतिमनुतिष्ठं नन्दिमां निष्ठितात्मा ।

व्यसृजदनिजमङ्गं भंगमंगोद्भवस्य
ग्रथितुमिव समूलं भावयन्भावनाभिः ॥७०॥

चूर्णि ॥ तेन श्रीमदजितसेन-पण्डित-देव-दिव्य-श्रीपाद-
कमल-मधुकरीभूतभावेन महानुभावेन जैनागमप्रसिद्धसल्लेखना-
विधि-विसृज्यमान-देहेन समाधि-विधि-विलोकनोचित-करण-
कुतूहल-मिलित-सकल-संघ-सन्तोष-निमित्तमात्मान्तःकरण-
परिणति-प्रकाशनाय निरवद्यं पद्यमिदमाशु विरचितं ॥
आराध्य रत्नत्रयभागभोक्तं विधाय निश्शल्यमशेषजन्तोः
क्षमां च कृत्वा जिनपादमूले देहं परित्यज्य दिवं विशामः ॥७१॥

शाके शून्य-शराम्बरावनिमिते संवत्सरे कीलके
मासे फाल्गुनके तृतीयदिवसे वारे सिते भास्करे ।
स्वातौ श्वेत-सरोवरे सुरपुरं यातो यतीनां पति-
र्मध्याह्ने दिवसत्रयानशनतः श्रीमल्लिषेणो मुनिः ॥७२॥

श्रीमन्मलधारि-देवरगुड्डंविरुद-लेखक-मदनमहेश्वरं
मल्लिनाथं बरेदं विरुद-रूवारि-मुख-तिलकं गंगाचारि
कण्डरिसिदं ॥

प्रशस्तिके प्रथम पद्यमें वर्धमानजिनका स्मरण किया है। अनन्तर सप्त-ऋद्धिधारी गौतम गणधर, मोहरूपी विशाल मल्लके विजेता भद्रबाहु और उनके शिष्य चन्द्रगुप्त, कुन्दपुष्पकी कान्तिके समान स्वच्छ कीर्त्तिरश्मियोंसे विभूषित कुन्दकुन्दाचार्य, बादमें 'धूर्जटि' की जिह्वाको स्थगित करनेवाले समन्तभद्र, सिंहनन्दी, वादियोंके समूहको परास्त करनेवाले एवं छह मास तक 'अथ' शब्दका अर्थ करनेवाले वक्रग्रीव, नवीन स्तोत्रकी रचना करनेवाले वज्रनन्दी 'त्रिलक्षणकदर्थन' ग्रन्थके कर्ता पात्रकेसरी, 'सुमतिसप्तक'के कर्ता सुमतिदेव, महाप्रभावशाली कुमारसेनमुनि, पुरुषार्थचतुष्टयके निरूपक—'चिन्तामणि' ग्रन्थके कर्ता चिन्तामणि, कविचूडामणि श्रीवर्द्धदेव चूडामणि, सत्तर-वादि-विजेता तथा ब्रह्मराक्षसके द्वारा पूजित महेश्वरमुनि, साहसतुंग नरेशके सम्मुख हिमशीतल नरेशकी सभामें बौद्धोंके विजेता अकलंकदेव, अकलंकके सधर्मा—गुरुभाई पुष्पसेन, समस्त वादियोंको प्रशमित करनेवाले विमलचन्द्रमुनि, अनेक राजाओं द्वारा वन्दित इन्द्रनन्दि, अन्वर्थ नामवाले परवादिमल्लदेव, कायोत्सर्ग-मुद्रामें तपस्या करनेवाले आर्यदेव, श्रुतबिन्दुके कर्ता चन्द्रकीर्त्ति, कर्मप्रकृति-भट्टारक, पार्श्वनाथचरितके रचयिता वादिराज, उनके गुरु मतिसागर और प्रगुरु श्रीपालदेव, विद्याधनंजय महामुनि हेमसेन, 'रूपसिद्धि' व्याकरणग्रन्थके

कर्ता दयापालमुनि, वादिराज द्वारा स्तुत्य श्रीविजय, कमलभद्रमुनि, महासूरि दयापालदेव, विनयादित्य होयसल नरेश द्वारा पूज्य शान्तिदेव, गुणसेन पण्डित-पति, स्याद्वादविद्याविद् अजितसेन, स्याद्वादके प्रतिपादक (स्याद्वादसिद्धिकार) वादीभ-सिंह तथा इनके शिष्य शान्तिनाथ अपरनाम कविताकान्त और पद्म-नाभ अपरनाम वादि-कोलाहल, यतियोंके दीक्षा-शिक्षादाता कुमारसेन और अजितसेन पण्डितदेवके शिष्य महाप्रभावशाली मल्लिषेण मलधारिका उल्लेख है। प्रशस्तिमें आचार्योंकी नामावली गुरु-शिष्यपरम्पराके अनुसार नहीं है। अतः पूर्वापर सम्बन्ध और समय-निर्णयमें यथेष्ट सहायता इनसे नहीं मिल पाती है। इतना तो अवश्य सिद्ध है कि इस प्रशस्तिसे अनेक आचार्यों और लेखकोंके सम्बन्धमें मौलिक तथ्य इस प्रकारके उपलब्ध होते हैं, जिनसे उनका प्रामाणिक इतिवृत्त तैयार किया जा सकता है।

देवकीर्ति-पट्टावलिः[1]

(शक संवत् १०८५)

श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्गाः श्रीगौतमाद्याः प्रभविष्णवस्ते
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धियुक्तास्तत्सन्ततौ बोधनिधिर्बभूव ॥१॥
[श्री] भद्रस्ससर्वतो यो हि भद्रबाहुरिति श्रुतः।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमपरमो मुनिः ॥२॥
चन्द्र-प्रकाशोज्वल-सान्द्र-कीर्त्तिः श्रीचन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभिराराधितः स्वस्य गणो मुनीनां ॥३॥
तस्यान्वये भू-विदिते बभूव यः पद्मनन्दिप्रथमाभिधानः।
श्रीकोण्डकुन्दादि-मुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत-चारणर्द्धिः ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य-शब्दोत्तरगृद्धपिच्छः।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेष-पदार्थ-वेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्त्तिकीर्त्तिः।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपाल-मौलि-
माला-शिलीमुख-विराजितपादपद्मः ॥६॥
एवं महाचार्य-परम्परायां स्यात्कारमुद्राङ्कितत्तत्त्वदीपः।
भद्रस्समन्ताद् गुणतो गणीशस्समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥७॥
ततः ॥

१. जैन शिलालेखसंग्रह, अभिलेख संख्या ४०।

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो बुद्धया महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः ।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पाद-युगं यदीयं ॥८॥
जैनेन्द्रं निज-शब्द-भोगमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः ।
छन्दस्सूक्ष्मधियं समाधिशतक-स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
मारव्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥९॥
ततश्च ॥

(पश्चिममुख)

अजनिष्टाकलङ्कं यज्जिनशासनमादितः ।
अकलङ्कं बभौ येन सोऽकलङ्को महामतिः ॥१०॥
इत्याद्युद्धमुनीन्द्रसन्ततिनिधौ श्रीमूलसंघे ततो
जाते नन्दिगण-प्रभेदविलसद्देशीगणे विश्रुते ।
गोल्लाचार्य इति प्रसिद्ध-मुनिपोऽभूद्गोल्लदेशाधिपः
पूर्वं केन च हेतुना भवभिया दीक्षां गृहीतस्सुधीः ॥११॥
श्रीमत्त्रैकाल्ययोगी समजनि महिका काय-लग्ना तनुत्रं
यस्याभूद्वृष्टि-धारा निशित-शर-गणा ग्रीष्ममार्त्तण्डबिम्बं ।
चक्रं सद्वृत्तचापाकलित-यति-वरस्याघशत्रून्विजेतुं
गोल्लाचार्यस्य शिष्यस्स जयतु भुवने भव्यसत्कैरवेन्दुः ॥१४॥
तच्छिष्यस्य ॥
अविद्धकर्णादिकपद्मनन्दिसैद्धान्तिकाख्योऽजनि यस्य लोके ।
कौमारदेव-व्रतिताप्रसिद्धिर्जीयात्तु सो ज्ञान-निधिस्सुधीरः ॥१५॥
तच्छिष्यः कुलभूषणाख्ययतिपश्चारित्रवारान्निधि-
स्सिद्धान्ताम्बुधिपारगो नतविनेयस्तत्सधर्म्मो महान् ।
शब्दाम्भोरुहभास्करः प्रथिततर्क्कग्रन्थकारः प्रभा-
चन्द्राख्यो मुनिराज-पण्डितवरः श्रीकुण्डकुन्दान्वयः ॥१६॥
तस्य श्रीकुलभूषणाख्यसुमुनेश्शिष्यो विनेयस्तुत-
स्सद्वृत्तः कुलचन्द्रदेवमुनिपस्सिद्धान्तविद्यानिधिः ।
तच्छिष्योऽजनि माघनन्दिमुनिपः कोल्लापुरे तीर्थकृ-
द्राद्धान्तार्णवपारगोऽचलधृतिश्चारित्रचक्रेश्वरः ॥१७॥
एले मार्वि बनवब्जदि तिलिगोलं माणिक्यदि मण्डना-
वलिताराघिर्पनि नभं शुभदमा गिर्प्पन्तिरिद्दं तुनि-
र्म्मलवीगल् कुलचन्द्रदेवचरणाम्भोजातसेवाविनि-

हिमवत्कुत्कील-मुक्ताफल-तरलतरत्तार-हारेन्दुकुन्दो-
पमकीर्त्ति-व्याप्तदिग्मण्डलनवनत-भू-मण्डलं भव्य-पद्मो-
ग्र-मरीचीमण्डलं पण्डित-तति-विनतं माघनन्द्याख्यवाचं
यमिराजं वाग्वधूटीनिटिलतटहृटन्नूत्नसद्रत्नप·······॥१९॥
·······त मद-रदनिकुलमं भरदिं निर्भ्भेदिसल्के····सरियेनिपं
वरसंयमाब्धिचन्द्रं धरेयोल्····माघनन्दि-सैद्धान्तेश ॥२०॥
तच्छिष्यस्य

अवर गुड्डुगलु सामान्तकेदारनाकरस दानश्रेयांस सामन्त निम्ब-
देव जगदोर्ब्बगण्ड सामन्तकामदेव ॥

(उत्तरमुख)

गुरुसैद्धान्तिकमाघनन्दिमुनिपं श्रीमच्चमूवल्लभं
भरतं छात्रनपारशास्त्रनिधिगल् श्रीभानुकीर्त्तिप्रभा-
स्फुरितालङ्कृत-देवकीर्त्ति-मुनिपर्शिशष्यज्जंगन्मण्डन-
र्द्दोरिय गण्डविमुक्तदेवनिनगिन्नीनामसैद्धान्तिकर् ॥२१॥
क्षीरोदादिव चन्द्रमा मणिरिव प्रख्यात-रत्नाकरात्
सिद्धान्तेश्वरमाघनन्दियमिनो जातो जगन्मण्डनः।
चारित्रै कनिधानधामसुविनम्रो दीपवर्त्ती स्वयं
श्रीमद्गण्डविमुक्तदेवयतिपस्सैद्धान्तचक्राधिपः ॥२२॥

अवर सधर्म्मर् ।

आवों वादिकथात्रयप्रवणदोल् विद्वज्जनं मेच्चे वि-
द्यावष्टम्भनप्पुकेय्दु परवादिक्षोणिमृत्पक्षमं ।
देवेन्द्रं कडिवन्दर्दि कडिदेले स्याद्वादविद्यास्त्रदिं
त्रैविद्यश्रुतकीर्त्तिदिव्यमुनिवोल् विख्यातियं ताल्दिदों ॥२३॥

श्रुतकीर्त्ति-त्रैविद्य—

व्रति राघवपाण्डवीयमं विभु (बु) धचम-
त्कृतियेनिसि गत प्रत्या-
गतदिं पेल्दमलकीत्तियं प्रकटि सिदं ॥२४॥

अवरग्रजरु ॥

यो बौद्धक्षितिभृत्करालकुलिशश्चार्व्वाकमेघान (नि) ली
मीमांसा-मत-वर्त्ति-वादि-मदवन्मातङ्ग-कण्ठीरवः ॥
स्याद्वादाब्धि-शरत्समुद्गतसुधा-शोचिस्समस्तैस्स्तु-
त्स श्रीमान्भुवि भासते कनकनन्दि-ख्यात-योगीश्वरः ॥२५॥

बेताली मुकुलीकृताञ्जलिपुटा संसेवते यत्पदे
झोट्टिङ्गः प्रतिहारको निवसति द्वारे च यस्यान्तिके ।
येन क्रीडति सन्ततं नुततपोलक्ष्मीर्यश (:) श्रीप्रिय-
स्सोऽयं शुम्भति देवचन्द्रमुनिपो भट्टारकोघाग्रणीः ॥२६॥

अवर सधर्म्मर्म्माघनन्दि त्रैविद्य-देवरु-विद्याचक्रवर्त्ति-श्रीमद्देवकीर्त्ति-पण्डित-देवर शिष्यरु श्रीशुभचन्द्रत्रैविद्यदेवरुं गण्डविमुक्तवादि चतुर्म्मुख-रामचन्द्र-त्रैविद्यदेवरुं वादिवज्राङ्कुश-श्रीमदकलङ्कत्रैविद्यदेवरुमापरमेश्वरन-गुड्डुगलु माणिक्यभण्डारि भरियाने दण्डनायकरुं श्रीमन्महाप्रधानं सर्व्वाधिकारिपिरिय-दण्डनायकंभरतिमयङ्गलुं श्रीकरणद हेग्गडे बूचिमयङ्गलुं जगदेकदानि हेग्गडे कोरय्यनुं ॥

अकलङ्क-पितृ-वाजि-वंश-तिलक-श्री-यक्षराजं निजा-
म्बिके लोकाम्बिके लोक-वन्दिते सुशीलाचारे दैवं दिवी-
श-कदम्ब-स्तुतु-पाद-पद्मनरुहं नाथं यदुक्षोणिपा-
लक-चूडामणि नारसिङ्गनेनलेन्तोम्पुल्लनोहुल्लपं ॥२७॥

श्रीमन्महाप्रधानं सर्व्वाधिकारे हिरियभण्डारि अभिनवगङ्गदण्डनायक-श्री-हुल्लराजं तम्म गुरुगलप्पश्रीकोण्डकुन्दान्वयद श्रीमूलसङ्घद देशियगणद पुस्तक-गच्छद श्रीकोल्लापुरद श्रीरुपनारायणन बसदिय प्रतिविद्धद श्रीमत्केल्लङ्गेरेय प्रतापपुरवं पुनर्म्मरणवं माडिसि जिननाथपुरदलु कल्ल दानशालेयं माडिसिद श्रीमन्महामण्डलाचार्यद्देवकीर्त्तिपण्डितदेवर्ग्गे परोक्षविनयवागि निशिदियं माडि-सिद अवर शिष्यर्लक्खणन्दि-माधवत्रिभुवनदेवर्महादान-पूजाभिषेक-माडि प्रतिष्ठेयं माडिदरु मङ्गलमहा श्री श्री श्री

इस अभिलेखमें गौतम गणधरसे लगाकर मुनिदेवकीर्त्ति पण्डितदेवतक आचार्य-परम्परा दी गई है। इस पट्टावलिमें गौतम स्वामी, भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त, कोण्डकुन्द–पद्मनन्दि प्रथम, गृध्रपिच्छाचार्य, बलाक्पिच्छ, वादिसिंह समन्तभद्र, पूज्यपाद-देवनन्दि प्रथम, अकलङ्क, गोल्लाचार्य, त्रैकाल्ययोगी, अविद्धकर्ण-पद्म-नन्दि (कौमारदेव)। उनके दो शिष्य कुलभूषण और प्रभाचन्द्र, कुलभूषणकी परम्परामें कुलचन्द्रदेव, माघनन्दि मुनि (कोल्लापुरीय), गण्डविमुक्तदेव। गण्ड-विमुक्तदेवके दो शिष्य भानुकीर्त्ति और देवकीर्त्तिके नाम आये हैं। देवकीर्तिका समाधिमरण शक सं० १०८५में हुआ है। इस अभिलेखमें कनकनन्दि और देव-चन्द्रके भ्राता श्रुतकीर्त्ति त्रैवेद्य मुनिकी प्रशंसा की गई है। इन्होंने देवेन्द्र सदृश विपक्ष-वादियोंको पराजित किया और एक चमत्कारी काव्य 'राघवपाण्डवीय' की रचना की। यह कृति आदिसे अन्त और अन्तसे आदिको ओर पढ़ी जा

सकती है। श्रुतकीर्त्तिकी प्रशंसा नागचन्द्रकृत रामचन्द्रचरितपुराण (पम्प रामायणके प्रथम आश्वासमें चौबीसवें-पच्चीसवें पद्योंमें) भी अङ्कित है। इस काव्यकी रचना शक सं० १०२२के लगभग हुई है।

प्रतापपुरकी रूपनारायण वस्तिका जीर्णोद्धार और जिननाथपुरमें एक दान-शालाका निर्माण करनेवाले महामण्डलाचार्य देवकीर्त्ति पण्डितदेवके स्वर्गवास होने पर यादववंशी नारसिंह नरेशके मंत्री हुल्लप्पने निषद्याका निर्माण कराया, जिसकी प्रतिष्ठा देवकीर्त्ति आचार्यके शिष्य लक्खनन्दि, माधव और त्रिभुवन-देवने दानसहित की।

इस अभिलेखमें तीन बातें बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह है कि इसमें गौतम गणधरकी परम्परामें भद्रबाहु और भद्रबाहुके अन्वयमें चन्द्रगुप्त-का उल्लेख आया है। तथा चन्द्रगुप्तके अन्वयमें कोण्डकुन्द (कुन्दकुन्द) का कथन है। नन्दिसंघकी पट्टावलिमें भद्रबाहु, गुप्तिगुप्त, माघनन्दि, जिनचन्द्र और इसके पश्चात् कोण्डकुन्दका नाम आया है। इन्द्रनन्दि श्रुतावतारके अनुसार कोण्डकुन्द आचार्योंमें हुए हैं, जिन्होंने अङ्गज्ञानके लोप होनेके पश्चात् आगम-ज्ञानको ग्रन्थबद्ध किया।

मूलसङ्घके अन्तर्गत नन्दिगणमें जो देशीगणप्रभेद हुआ, उसमें गोल्लदेशा-धिपके आचार्य गोल्लाचार्य हुए हैं और इन्हींकी परम्परामें देवकीर्त्तिका जन्म हुआ है।

नयकीर्त्ति-पट्टावलि[1]

(शक सं० १०८९)

श्रीमन्मुनीन्द्रोत्तमरत्नवर्ग्गाः श्रीगौतमाद्याः प्रभविष्णवस्ते।
तत्राम्बुधौ सप्तमहर्द्धि-युक्तास्तत्सन्ततौ नन्दिगणे बभूव ॥३॥

श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्य्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्रसञ्जातसुचारणर्द्धिः ॥४॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसावाचार्य्य-शब्दोत्तरगृद्धपिञ्छः।
तदन्वये तत्सदृसो (शो)ऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थ-वेदी ॥५॥
श्रीगृद्धपिञ्छ-मुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽप्यनिष्ट भुवनत्रय-वर्त्ति-कीर्त्तिः।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
माला-शिलीमुख-विराजित-पाद-पद्मः ॥६॥

---

१. जैनशिलालेखसंग्रह, प्रथम भाग, अभिलेखसंख्या ४२।

तच्छिष्यो गुणनन्दि-पण्डितयतिश्चारित्रचक्रेश्वर-
स्तर्क्क-व्याकरणादि-शास्त्र-निपुणस्साहित्य-विद्यापतिः।
मिथ्यावादिमदान्ध-सिन्धुर-घटासङ्घट्टकण्ठीरवो
भव्याम्भोज-दिवाकरो विजयतां कन्दर्प-दर्प्पापहः ॥७॥
तच्छिष्यास्त्रिशता विवेक-निधयश्शास्त्राब्धिपारङ्गता-
स्तेषूत्कृष्टतमाः द्विसप्ततिमितास्सिद्धान्त-शास्त्रार्थक-
व्याख्याने पटवो विचित्र-चरितास्तेषु प्रसिद्धो मुनि-
र्न्नानानून-नय-प्रमाणनिपुणो देवेन्द्र-सैद्धान्तिकः ॥८॥

अजनि महिपचूडा-रत्नराराजिताङ्घ्रि-
र्व्विजित-मकरकेतूद्दण्ड-दोर्द्दण्ड-गर्व्वः।
कुनय-निकर-भूद्ध्रानीक-दम्भोलि-दण्ड-
स्स जयतु विबुधेन्द्रो भारती-भाल-पट्टः ॥९॥

तच्छिष्यः कलधौतनन्दिमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वरः
पारावार-परीत-धारिणि-कुलव्याप्तोरुकीर्त्तीश्वरः।
पञ्चाक्षोन्मद-कुम्भि-कुम्भ-दलन-प्रोन्मुक्त-मुक्ताफल-
प्रांशु-प्राञ्चितकेसरी बुधनुतो वाक्कामिनी-वल्लभः ॥१०॥
अवर्गे रविचन्द्र-सिद्धान्तविदस्सम्पूर्ण्णचन्द्रसिद्धान्तमुनि-
प्रवरखरवर्गे शिष्यप्रवर श्रीदामनन्दि-सन्मुनि-पतिगल् ॥११॥
बोधित-भव्यरस्त-मदनर्म्मद-वर्ज्जित-शुद्ध-मानसर्
श्रीधरदेवरेम्बररगंग्र-तनूभवरादरा यश-
श्रीधरर्वाद शिष्यरवरोल् नेगल्दर्म्मलधारिदेवरं
श्रीधरदेवरं नत-नरेन्द्र-ति (कि) रीट-तटार्च्चितक्रमर् ॥१२॥
आनम्रावनिपाल-जालकशिरो-रत्न-प्रभा-भासुर-
श्रीपादाम्बुरुह-द्वयो वर-तपोलक्ष्मीमनोरञ्जनः।
मोह-व्यूह-महीद्ध्र-दुर्द्धर-पविः सच्छीलशालिज्जग-
त्ख्यातश्रीधरदेव एष मुनिपो भाभाति भूमण्डले ॥१३॥
तच्छिष्यर् ॥
भव्याम्भोरुह-षण्ड-चण्ड-किरणः कर्पूर-हार-स्फुर-
त्कीर्त्तिश्रीधवलीकृताखिलदिशाचक्रश्चरित्रोन्नतः।

(दक्षिणमुख)

भाति श्रीजिन-पुङ्गव-प्रवचनाम्भोराशि-राका-शशी
भूमौ विश्रुत-माघनन्दिमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वरः ॥१४॥

तच्छिष्यर् ॥
सच्छीलश् शरदिन्दु-कुन्द-विशदं-प्रोद्यद्यश-श्रीपति-
दृप्यंद्दृप्यंक-दर्प्प-दाव-दहन-ज्वालालि-कालाम्बुदः।
श्रीजैनेन्द्र-वचः पयोनिधि-शरत्सम्पूर्ण्ण-चन्द्रः क्षितौ
भाति श्रीगुणचन्द्र-देव-मुनियो राद्धान्त-चक्राधिपः ॥१५॥
तत्सधर्मर् ॥
उद्भूते नुत-मेघचन्द्र-शशिनि प्रोद्यद्यशश्चन्द्रिके
संवर्द्धेत तदस्तु नाम नितरां राद्धान्त-रत्नाकरः।
चित्रं तावदिदं पयोधि-परिधि-क्षोणौ समुद्वीक्ष्यते
प्रायेणात्र विजृम्भते भरत-शास्त्राम्भोजिनी सन्ततं ॥१६॥
तत्सधर्म्मर् ॥
चन्द्र इव धवल-कीर्त्तिर्द्धवलीकुरुते समस्त-भुवनं यस्य
तच्चन्द्रकीर्त्तिसञ्ज्ञ-भट्टारक-चक्रवर्त्तिनोऽस्य विभाति ॥१७॥
तत्सधर्म्मर् ॥
नैयायिकेभ-सिंहो मीमांसकतिमिर-निकरनिरसन-तपनः।
बौद्ध-वन-दाव-दहनोजयति महानुदयचन्द्रपण्डितदेवः ॥१८॥
सिद्धान्त-चक्रवर्त्ती श्रीगुणचन्द्रव्रतीश्वरस्य बभूव
श्रीनयकीर्त्तिमुनीन्द्रों जिनपति-गदिताखिलार्थवेदी शिष्यः ॥१९॥

स्वस्त्यनवरत-विनत-महिप-मुकुट-मौक्तिक-मयूख-माला-सरोमण्डनीभूत-चारु-चरणार-विन्दरुं। भव्यजन-हृदयानन्दरुं। कोण्डकुन्दान्वय-गगन-मार्त्तण्डरुं। लीला-मात्र-विश्रितोच्चण्ड-कुसुमकाण्डरुं। देशीय-गण-गजेन्द्र-सान्द्र-मद-धाराव-भासरुं। वितरणविलासरुं। श्रीमद्गुणचन्द्र-सिद्धान्त-चक्रवर्त्ति-चारुतर-चरण सरसीरुह-षट्चरणरुं। अशेष-दोषदूरीकरणपरिणतान्तःकरणरुमप्प श्रीमन्नय-कीर्त्ति-सिद्धान्त-चक्रवर्त्ति गलेन्तप्परेन्दडे ॥

साहित्य-प्रमदा-मुखाब्जमुकुरश्चारित्र-चूडामणि-
श्रीजैनागम-वार्द्धि-वर्द्धन-सुधाशोचिस्समुद्भासते।
यश्शल्य-त्रय-गारव-त्रय-लसद्दण्ड-त्रय-ध्वंसक-
स्स श्रीमान्नयकीर्त्ति देवमुनिपस्सैद्धान्तिकाग्रेसरः ॥२०॥
माणिक्यनन्दिमुनिपः श्रीनयकीर्त्तिव्रतीश्वरस्य सधर्म्मः।
गुणचन्द्रदेवतनयो राद्धान्त-पयोधि-पारगो-भुवि भाति ॥२१॥
हार-क्षीर-हराट्टहास-हलभृत्कुन्देन्दु-मन्दाकिनी
कर्प्पूर-स्फटिक-स्फुरद्वरयशो-धौतत्रिलोकोदरः।

उच्चण्ड-स्मर-भूरि-भूधरपविः ख्यातो बभूव क्षितौ
स श्रीमान्नयकीर्त्ति देवमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वरः ॥२२॥
शाके रन्ध्रनववसुचन्द्रमसिदुन्दुभ्याख्य संवत्सरे
वैशाखे धवले चतुर्द्दशदिने वारे च सूर्य्यात्मजे ।
पूर्व्वाह्णे प्रहरे गतेऽर्द्धसहिते स्वर्ग्गं जगामात्मवान्
विख्यातो नयकीर्त्ति-देव-मुनिपो राद्धान्तचक्राधिपः ॥२३॥
श्रीमज्जैन-वचोब्धि-वर्द्धन-विधुस्साहित्यविद्यानिधिस्

(पश्चिम मुख)

सर्प्पद्दर्प्पक-हस्ति-मस्तक-लुठत्प्रोत्कण्ठ-कण्ठीरवः ।
स श्रीमान् गुणचन्द्रदेवतनयस्सौजन्यजन्यावनि
स्थेयात् श्रीनयकीर्त्ति देवमुनिपस्सिद्धान्तचक्रेश्वरः ॥२४॥
गुरुवादं खचराधिपंगे बलिगं दानक्के बिण्पिंगे तां
गुरुवादं सुर-भूधरक्के नेगल्दा कैलास-शैलक्के तां ।
गुरुवादं विनुतंगे राजिसुविरुङ्गोलङ्गे लोकक्के सद्
गुरुवादं नयकीर्त्ति देवमुनिपं राद्धान्त-चक्राधिपं ॥५॥

तच्छिष्यर् ॥

हिमकर-शरदभ्र-क्षीर-कल्लोल-जाल-स्फटिक-सित-यश-श्रीशुभ-दिक्-चक्रवालः ।
मदन-मद-तिमिस्र-श्रेणितीव्रांशुमाली जयति निखिल-वन्द्यो मेघचन्द्रः व्रतीन्द्रः ॥२६॥

तत्सधर्म्मर् ॥

कन्दर्प्पाहवकर्पातोद्धुरतनुत्राणोपमोरस्थली
चञ्चद्भूरमला विनेय-जनता-नीरेजिनी-भानवः ।
त्यक्ताशेष-बहिर्व्विकल्प-निचयाश्चारित्र-चक्रेश्वरः
शुम्भन्त्यण्णितटाक-वासि-मलधारि-स्वामिनो भूतले ॥२७॥

तत्सधर्म्मर् ॥

षट्-कर्म्म-विषय-मन्त्रे नानाविध-रोग-हारि-वैद्ये च ।
जगदेकसूरिरेष श्रीधरदेवो बभूव जगति प्रवणः ॥२८॥

तत्सधर्म्मर् ॥

तर्क्क-व्याकरणागम-साहित्य-प्रभृति-सकल-शास्त्रार्थज्ञः ।
विख्यात-दामनन्दि-त्रैविद्य-मुनीश्वरो-धराग्रे जयति ॥२९॥

श्रीमज्जैनमताब्जिनीदिनकरो नैय्यायिकाभ्रानिल-
श्चार्व्वाकावनिभृत्करालकुलिशो बौद्धाब्धिकुम्भोद्भवः ।
यो मीमांसकगन्धसिन्धुरशिरोनिर्भेदकण्ठीरव-
स्स विद्योत्तमदामनन्दिमुनिपस्सोऽयं भुवि भ्राजते ॥३०॥

तत्सधर्म्मर ॥

दुग्धाब्धि-स्फटिकेन्दु-कुन्द-कुमुद-व्याभासि-कीर्त्तिप्रिय-
स्सिद्धान्तोदधि-वर्द्धनामृतकरः पारात्थर्य-रत्नाकरः ।
ख्यात-श्री-नयकीर्त्तिदेवमुनिपश्रीपाद-पद्म-प्रियो
भात्यस्यां भुवि भानुकीर्त्ति-मुनिपस्सिद्धान्तचक्राधिपः ॥३१॥
उरगेन्द्र-क्षीर-नीराकर-रजत-गिरि-श्रीसितच्छत्र-गङ्गा-
हरहासैरावतेम-स्फटिक-वृषभ-शुभ्राभ्रनीहार-हारा-
मर-राज-श्वेत-पङ्केरुह-हलधर-वाक्-शङ्ख-हंसेन्दु-कुन्दो-
त्करचञ्चत्कीर्त्तिकान्तं घेरयोलेसेदनी भानुकीर्त्ति-व्रतीन्द्रं ॥३२॥

तत्सधर्म्मर् ॥

सद्वृत्ताकृति-शोभिताखिलकला-पूर्ण्ण-स्मर-ध्वंसकः
शश्वद्विश्व-वियोगि-हृत्सुखकर-श्रीबालचन्द्रो मुनिः ।
वक्रेणोन-कलेन-काम-सुहृदा चञ्चद्वियोगिद्विषा
लोकेस्मिन्नुवमीयते कथमसौ तेनाथ बालेन्दुना ॥३३॥
उच्चण्ड-मदन-मद-गज-निर्भेद-पटुतर-प्रताप-मृगेन्द्रः
भव्य-कुमुदौघ-विकसन-चन्द्रो भुवि भाति बालचन्द्रः मुनीन्द्रः ॥३४॥
ताराद्रि-क्षीर-पूर-स्फटिक-सुर-सरित्तारहारेन्दु-कुन्द-
श्वेतोद्यत्कीर्त्ति-लक्ष्मी-प्रसर-धवलिताशेषदिक्-चक्रवालः ।
श्रीमत्सिद्धान्त-चक्रेश्वर-नुत-नयकीर्त्ति-व्रतीशाङ्घ्रिभक्तः

(उत्तरमुख)

श्रीमान्भट्टारकेशो जगति विजयते मेघचन्द्र-व्रतीन्द्रः ॥३५॥
गाम्भीर्ये मकराकरो वितरणे कल्पद्रुमस्तेजसि
प्रोच्चण्ड-द्युमणिः कलास्वपि शशी धैर्य्ये पुनर्मन्दरः ।
सर्व्वोर्व्वी-परिपूर्ण्ण-निर्म्मल-यशो-लक्ष्मी-मनो-रञ्जनो
भात्यस्यां भुवि माघनन्दिमुनिपो भट्टारकाग्रेसरः ॥३६॥
वसुपूर्ण्णसमस्ताशः क्षितिचक्रे विराजते ।
चञ्चत्कुवलयानन्द-प्रभाचन्द्रो मुनीश्वरः ॥३७॥

तत्सधर्म्मर ॥

उच्चण्डग्रहकोटयो नियमितास्तिष्ठन्ति येन क्षितौ
यद्वाग्जातसुधारसोऽखिलविषव्युच्छेदकश्शोभते ।
यत्तन्त्रोद्धविधिः समस्तजनतारोग्याय संवर्त्तते
सोऽयं शुम्भति पद्मनन्दिमुनिनाथो मन्त्रवादीश्वरः ॥३८॥

तत्सधर्म्मर् ॥

चञ्चच्चन्द्र-मरीचि-शारद-घन-क्षीराब्धि-ताराचल-
प्रोद्यत्कीर्त्ति-विकास-पाण्डुर-तर-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरः ।
वाक्कान्ता-कठिन-स्तन-द्वय-तटी-हारो गभीरस्थिरं
सोऽयं सन्नुत-नेमिचन्द्र-मुनिपो विभ्राजते भूतले ॥३९॥
भण्डाराधिकृतः समस्त-सचिवाधीशो जगद्विश्रुत-
श्रीहुल्लो नयकीर्त्तिदेव-मुनि-पादाम्भोज-युग्मप्रियः ।
कीर्त्ति-श्री-निलयः परार्त्थ-चरितो नित्यं विभाति क्षितौ
सोऽयं श्रीजिनधर्म्म-रक्षणकरः सम्यक्त्व-रत्नाकरः ॥४०॥

श्रीमच्छ्रीकरणाधिपस्सचिवनाथो बिश्व-विद्वन्निधि-
श्चातुर्व्वर्ण्ण-महान्नदान-करणोत्साही क्षितौ शोभते ।
श्रीनीलो जिन-धर्म्म-निर्म्मल-मनास्साहित्य-विद्याप्रिय-
स्सौजन्यैक-निधिश्शशाङ्क-विशद-प्रोद्यद्यश-श्रीपतिः ॥४१॥
आराध्यो जिनपो गुरुश्च नयकीर्त्ति-ख्यात-योगीश्वरो
जोगाम्बा जननी तु यस्य जनक (:) श्रीबम्बदेवो विभुः ।
श्रीमत्कामलता-सुता-पुरपतिश्रीमल्लिनाथस्सुतो
भात्यस्यां भुवि नागदेव-सचिवश्चण्डाम्बिकावल्लभः ॥४२॥
सुर-गज-शरदिन्दु-प्रस्फुरत्कीर्त्तिशुभ्री
भवदखिल-दिगन्तो-वाग्वधू-चित्तकान्तः ।
बुध-निधि-नयकीर्त्ति-ख्यात-योगीन्द्र-पादा-
म्बुज-युगकृत-सेवः शोभते नागदेवः ॥४३॥
ख्यातश्रीनयकीर्त्तिदेवमुनिनाथानां पयः प्रोल्लस-
त्कीर्त्तीनां परमं परोक्ष-विनयं कर्तुं निषध्यालयं ।
भक्त्याकारयदाशशाङ्क-दिनकृत्तारं स्थिरं स्थायिनं
श्रीनागस्सचिवोत्तमो निजयशश्रीशुभ्रदिग्मण्डलः ॥४४॥

इस अभिलेखमें नागदेव मंत्री द्वारा अपने गुरु श्रीनयकीर्त्ति श्रीयोगीन्द्रदेव की निषद्या-निर्माण कराये जानेका उल्लेख है। नयकीर्त्ति मुनिका स्वर्गवास श०

सं० १०९९ वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको हुआ था। इन नयकीर्त्ति योगीन्द्रदेवकी विस्तृत गुरुपरम्परा इस अभिलेखमें आयी है। बताया है—

पद्मनन्दि अपर नाम कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामि-गृध्रपिच्छाचार्य, बलाकपिच्छ, गुणनन्दि, देवेन्द्र सैद्धान्तिक, कलधौतनन्दि, रविचन्द्र अपरनाम सम्पूर्णचन्द्र, दामनन्दि मुनि, श्रीधरदेव, मलधारिदेव, श्रीधरदेव, माघनन्दिमुनि, गुणचन्द्रमुनि, मेघचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति भट्टारक और उदयचन्द्र पण्डितदेव हुए। नयकीर्त्ति गुणचन्द्र मुनिके शिष्य थे और उनके सधर्मा गुणचन्द्रमुनिके पुत्र माणिक्यनन्दि थे। उनकी शिष्यमण्डलीमें मेघचन्द्र व्रतीन्द्र, मलधारिस्वामि, श्रीधरदेव, दामनन्दि त्रैविद्य, भानुकीर्त्ति मुनि, बालचन्द्रमुनि, माघनन्दिमुनि, प्रभाचन्द्र मुनि, पद्मनन्दि मुनि और नेमिचन्द्र मुनि थे।

इस अभिलेखमें नन्दिगण कुन्दकुन्दान्वयकी परम्परा अङ्कित की गई है।

प्रथम शुभचन्द्रकी गुर्वावली

श्रीमानशेषनरनायक-वन्दिता-ङ्घ्रीः श्रीगुप्तिगुप्त (१) इति विश्रुत-नामधेयः।
यो भद्रबाहु (२) मुनिपुंगव-पट्टपद्मः सूर्य्यः स वो दिशतु निर्म्मलसंघवृद्धिम् ॥१॥
श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽतिरम्यः।
तत्राऽभवत्पूर्व-पदांशवेदी श्रीमाघनन्दी (३) नर-देव-वन्द्यः ॥२॥

पट्टे तदीये मुनिमान्यवृत्तो जिनादिचन्द्र (४) स्समभूदतन्त्रः—
ततोऽभवत्पञ्चसुनामधाम श्रीपद्मनन्दी मुनिचक्रवर्ती ॥३॥

आचार्य्यः कुन्दकुन्दाख्यो (५) वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्य्यो गृद्धपिच्छः पद्मनन्दीति तन्नुतिः ॥४॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तृत्व-प्रकटीकृतसन्मनाः।
उमास्वाति (६) पदाचार्यो मिथ्यात्वतिमिरांशुमान् ॥५॥

लोहाचार्य (७) स्ततो जातो जातरूपधरोऽमरैः।
सेवनीयः समस्ताऽर्थविबोधनविशारदः ॥६॥
ततः पट्टद्वयी जाता प्राच्युदीच्युपलक्षणात्।
तेषां यतीश्वराणां स्युर्नामानीमानि तत्त्वतः ॥७॥
यशःकीर्त्ति (८) र्यशोनन्दी (९) देवनन्दी (१०) महामतिः।
पूज्यपादः पराख्येयो गुणनन्दी (११) गुणाकरः ॥८॥

वज्रनन्दी (१२) वज्रवृत्तिस्तार्किकाणां महेश्वरः।
कुमारनन्दी (१३) लोकेन्दुः (१४) प्रभाचन्द्रो (१५) वचोनिधिः ॥९॥

नेमिचन्द्रो (१६) भानुनन्दी (१७) सिंहनन्दी (१८) जटाधरः ।
वसुनन्दी (१९) वीरनन्दी (२०) रत्ननन्दी (२१) रतीशमित् ॥१०॥
माणिक्यनन्दी (२२) मेघेन्दुः (२३) शान्तिकीर्त्ति (२४) महायशाः ।
मेरुकीर्त्ति (२५) महाकीर्ति (२६) विश्वनन्दी (२७) विदाम्बरः ॥११॥

श्रीभूषणः (२८) शीलचन्द्रः (२९) श्रीनन्दी (३०) देशभूषणः (३१) ।
अनन्तकीर्त्ति (३२) धर्मादिनन्दी (३३) नन्दीति शासनः ॥१२॥
विद्यानन्दी (३४) रामचन्द्रो (३५) रामकीर्त्ति (३६) रनिन्द्यावाक् ।
अभयेन्दु (३७) नरचन्द्रो (३८) नागचन्द्रः (३९) स्थिरव्रतः ॥१३॥
नयनन्दी (४०) हरिश्चन्द्रो (४१) महीचन्द्रो (४२) मलोज्झितः ।
माधवेन्दु (४३) लक्ष्मीचन्द्रो (४४) गुणकीर्त्ति (४५) गुणाश्रयः ॥१४॥

गुणचन्द्रो (४६) वासवेन्दु (४७) लोकचन्द्रः (४८) स्वतत्त्ववित् ।
त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्त्याख्यो (४९) वैयाकरणः भास्करः ॥१५॥
भानुचन्द्रो (५०) महाचन्द्रो (५१) माघचन्द्रः (५२) क्रियागुणीः ।
ब्रह्मनन्दी (५३) शिवनन्दी (५४) विश्वचन्द्रः (५५) स्तपोधनः ॥१६॥
सैद्धान्तिको हरिनन्दी (५६) भावनन्दी (५७) मुनीश्वरः ।
सुरकीर्त्ति (५८) विद्याचन्द्रः (५९) सुरचन्द्रः (६०) श्रियांनिधिः ॥१७॥
माघनन्दी (६१) ज्ञाननन्दी (६२) गङ्गनन्दी (६३) महत्तमः ।
सिंहकीर्त्ति (६४) हेमकीर्त्ति (६५) श्चारुनन्दी (६६) मनोज्ञधीः ॥१८॥
नेमिनन्दी (६७) नाभिकीर्त्ति (६८) नरेन्द्रादि (६९) यशःपरम् ।
श्रीचन्द्रः (७०) पद्मकीर्त्तिश्च (७१) वर्द्धमानो (७२) मुनीश्वरः ॥१९॥
अकलङ्क (७३) श्चन्द्रगुरुर्ललितकीर्ति (७४) रुत्तमः ।
त्रैविद्यः केशवश्चन्द्र (७५) श्चारुकीर्त्तिः (७६) सुधार्मिकः ॥२०॥

सैद्धान्तिकोऽभयकीर्त्ति (७७) वनवासी महातपाः ।
बसन्तकीर्त्ति (७८) र्व्याघ्राहिसेवितः शीलसागरः ॥२१॥
तस्य श्रीवनवासिनस्त्रिभुवन प्रख्यात(७९) कीर्तेरभूत् ।
शिष्योऽनेकगुणालयः समयम-ध्यानापगासागरः ।
वादीन्द्रः परवादि-वारणगण-प्रागल्भविद्रावणः ।
सिंहः श्रीमति मण्डयेति विदितस्त्रैविद्यविद्यास्पदम् ॥२२॥

विशालकीर्त्ति (८०) वरवृत्तमूर्तिस्तपोमहात्मा शुभकीर्त्ति (८१) देवः ।
एकान्तराद्युग्र तपोविधाना द्धातेव सन्मार्गविधेर्विधाने ॥२३॥
श्रीधर्म (८२) चन्द्रोऽजनि तस्य पट्टे हमीरभूपालसमर्चनीयः ।
सैद्धान्तिकः संयमसिन्धुचन्द्रः प्रख्यातमाहात्म्यकृतावतारः ॥२४॥

तत्पट्टेऽजनि रत्नकीर्त्ति (७३) रनघः स्याद्वादविद्यांबुधिः ।
नानादेश-विवृत्तशिष्यनिवहः प्राच्यांघ्रियुग्मो गुरुः ।।
धर्माधर्मकथासुरक्तधिषणः पापप्रभाबाधको
बालब्रह्मतपःप्रभावमहितः कारुण्यपूर्णाशयः ।।२५।।
अस्ति स्वस्तिसमस्तसङ्घतिलकः श्रीनन्दिसंघोऽतुलो
गच्छस्तत्र विशालकीर्त्तिकलितः सारस्वतीयः परः ।।
तत्र श्रीशुभकीर्त्तिमहिमा व्याप्ताम्बरः सन्मतिः ।
जीयादिन्दुसमानकीर्त्तिरमलः श्रीरत्नकीर्त्तिगुरुः ।।२६।।

पट्टे श्रीरत्नकीर्त्तिरनुपमतपसः पूज्यपादीयशास्त्रः ।
व्याख्याविख्यातकीर्त्तिगुणगणनिधिपः सत्क्रियाचारुचंचुः ।।
श्रीमानानन्दधामप्रतिबुधनुतमामानसंदायिवादो ।
जीयादाचन्द्रतारं नरपतिविदितः श्रीप्रभाचन्द्र (८४) देवः ।।२७।।
श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वत् प्रतिष्ठाप्रतिभागरिष्टः ।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दी (८५) ।।२८।।
हंसो ज्ञानमरालिकासमसमाश्लेषप्रभूताद्भूता
नन्दंक्रीड़ति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्वतः ।।
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्द्धनविधौ श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभाः
पट्टेसूरिमतमल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनिः ।।२९।।

महाव्रतपुरन्दरः प्रशमदग्धरागाङ्कुरः
स्फुरत्परमपौरुषः स्थितिरशेषशास्त्रार्थवित् ।।
यशोभरमनोहरीकृतसमस्तविश्वम्भरः
परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः ।।३०।।
पद्मनन्दिमुनीन्द्रेण वंश-वाणी-वसुन्धरा
सन्नयासपदवीन्यास पादन्यासैः पवित्रिता ।।३१।।

श्रीपद्मनन्दिपदपङ्कज-भानुरुद्धो
जय्यो जिताद्भुतमदो विदितार्थबोधः ।।
ध्वस्तान्धकारनिकटो जयतान्महात्मा
भट्टारकः सकलकीर्त्तिरतिप्रसिद्धः (८६) ।।३२।।
सुयति-भुवनकीर्त्ति (८७) स्तत्पदाब्जार्कमूर्त्तिः
परमतपसि निष्ठः प्राप्तसर्वप्रतिष्ठः ।
मुनिगणनुतपादो निर्जितानेकवादः
स्ववतु सकलसङ्घान् नाशिताऽनेकविघ्नान् ।।३३।।

प्रोद्यज्ज्ञानकरस्तपोभरधरः सद्बोधतार्थो धुरो
नानान्यावरो यतीश्वतरो वादीन्द्रभूभृत्वसरुः।
तत्पट्टोन्नतिकृन्निरस्तनिःकृतिः श्रीज्ञानभूषो (८८) यतिः
पायाद्वो निहृताहितः परमसज्जैनावनीशैः स्तुतः ॥३४॥

विजयकीर्त्ति (८९) यतिर्जितमत्सरो
विदितगौमट्टसारपरागमः।
जयति तत्पदभासितशासनो
निखिलतार्किकतर्कविचारकः ॥३५॥

यः पूज्यो नृपमल्लिसैरवमहादेवेन्द्रमुख्यैर्नृपैः
षट्तर्कागमशास्त्रकोविदमतिश्रीग्रद्यशश्चन्द्रमाः।
भव्याम्भोरुहभास्करः शुभकरः संसारविच्छेदकः
सोऽव्याच्छ्रीविजयादिकीर्त्तिमुनिपो भट्टारकाधीश्वरः ॥३६॥

तत्पट्टकैरवविकाशनपूर्णचन्द्रः
स्याद्वादभाषितविबोधितभूमिपेन्द्रः।
अव्यादगुणान् सुशुभचन्द्र (९०) इति प्रसिद्धो
रम्यान् वहून् गुणवतो हि सुतत्वबोधः ॥३७॥

जायीत् षट्तर्कचंचुप्रवणगुणनिधिस्तत्पदाम्भोजभृङ्गः
शुम्भद्वादीनकुम्भोद्भटविकटसटाकुण्ठकण्ठीरवेन्दुः।
श्रीमत्सु सौभचन्द्रः स्फुटपटुविकटाटोपवैकुण्ठसुनुः
हन्ता चिद्रूपवेत्ता विदितसकल सच्छास्त्रसारः कृपालुः ॥३८॥

तत्पट्टचारुशतपत्रविकाशनेन
पुण्यप्रवालघनवर्द्धनमेघतुल्यः।
व्याख्यामितावलिसुतोषित-भव्यलोको
भट्टारकः सुमतिकीर्त्ति (९१) रतिप्रबुद्धः ॥३९॥

ज्ञात्वा संसारभावं विहितवरतपो मोक्षलक्ष्मी सुकांक्षी
स्याद्वादी शान्तिमूर्त्तिर्मदनमदहरो विश्वतत्त्वैकवेत्ता।
सुज्ञानं दानमेतद्वित्तरति गुणनिधिर्मोहमातङ्गसिंहो
जीयाद्भट्टारकोऽसौ सकलयतिपतिः श्रीसुमत्यादिकीर्त्तिः ॥४०॥

तत्पट्टतामरसरंजनभानुमूर्त्तिः
स्याद्वादवादकरणेन विशालकीर्त्तिः।
भाषासुधारससुपुष्टितभव्यवर्णो
भट्टारकः सुगुणकीर्त्ति (९२) गुरुर्गणार्च्यः ॥४१॥

प्राज्ञो वादीभसिंहः सकलगुणनिधिर्ध्वस्तदोषः कृपालुः ।
शान्तो मोक्षाभिकाङ्क्षी विशदतरमतिः कल्पकान्तिः कलावान् ॥
क्षिप्ताशन्तर्कवेत्ता शुभतरवचनः सर्वलोकस्थितिज्ञः ।
श्रीमानीषः कृतज्ञो जयति जगति सः श्रीगुणाद्यन्तकीर्त्तिः ॥४२॥

तत्पट्टपङ्कजविकाशनपद्मबन्धुः-
र्जीयात्कुवादिमुखकैरवपद्मबन्धुः ।
कान्त्या क्षमा तिमिरनाशनपद्मबन्धुः
श्रीवादिभूषण (९३) गुरुर्जितपद्मबन्धुः ॥४३॥

यो नानागमशब्दतर्कनिपुणो जैनेनृंपैः पूजितः
कर्णाटे कलिकालगौतमसमो भट्टारकाधीश्वरः ॥
हेयाहेयविचारबुद्धिकलितो रत्नत्रयालंकृतः
सः श्रीमान् शुभचन्द्रवद्धि श्रयते श्रीवादिभूष्यो गुरुः ॥४४॥

तत्पट्टपुष्पंकरभासनमित्रमूर्त्तिः
कुज्ञानपङ्कपरिशोषणमित्रमूर्त्तिः ।
निःशेषभव्यहृदयाम्बुजमित्रमूर्त्तिः
भट्टारको जगति भाति सुरामकीर्त्तिः (९४) ॥४५॥

स्याद्वादन्यायवेदी हृतकुमतिमदस्त्यक्तदोषो गुणाब्धिः ।
श्रीमच्चिद्रूपवेत्ता विमलतरसुवाक् दिव्यमूर्त्तिः सुकीर्त्तिः ॥
साक्षाच्छ्रीशारदायाः गच्छपतिगरिमा भूपवन्द्यो गुणज्ञः
पायाद्भट्टारकोऽसौ सकलसुखकरो रामकीर्त्तिर्गणेन्द्रः ॥४६॥
शास्त्राभ्यासनिबन्धनादिषु पटुः रामादिकीर्त्तिस्तत-
स्ततपट्टे यशकीर्त्तिनाम सततं विभ्राजते धर्म्मभाक् ।
ध्यानाभ्यासकरः सुनिर्मलमनास्तर्कादिकाव्यामृतः
भव्यानां प्रतिबोधनार्थनिपुणः सर्वकलायां रतः ॥४७॥

तत्पट्टपङ्कजविकाशनभानुमूर्त्ति-
र्विद्याविभूषित-समन्वित-बोधचन्द्रः ।
स्याद्वाद-शास्त्र-परितोषित-सर्वभूपो
भट्टारकः समभवद्यशपूर्वकीर्त्तिः (९५) ॥४८॥
तत्पट्टवारिजविकाशनतिग्मरश्मिः
पापानबोधतिमिर-क्षय-तिग्मरश्मिः
पायात्सुभव्य-भर-पद्मसुतिग्मरश्मिः
श्रीपद्मनन्दिमुनिपो जिततिग्मरश्मिः ॥४९॥

नानाऽनेकान्तनीत्या जितकुमतशठो विश्वतत्त्वैकवेत्ता
शुद्धात्मध्यानलीनो विगतकलिमलो राजसेव्यक्रमाब्जः ।
शास्त्राब्धिपोतप्रख्यो विमलगुणनिधी रामकीर्तेः सुपट्टे
पायाद्वः श्रीप्रसिद्धये जगति यतिपतिः पद्मनन्दी (९६) गणीशः ॥५०॥

तत्पट्टपद्मविकचीकरणैकमित्रः
सद्बोधबोधितनृपो विलसच्चरित्रः ।
भट्टारको भुवि विभात्यवबोधनेत्रः
देवेन्द्रकीर्त्ति (९७) रतिशुद्धमतिः पवित्रः ॥५१॥

श्रीसर्वज्ञोक्तशास्त्राऽध्ययनपटुमतिः सर्वथैकान्तभिन्नः
चिद्रूपो भाति वेत्ता क्षितिपतिमहितो मोक्षमार्गस्य नेता ।
भव्याब्जोद्बोधभानुः परहितनियतः पद्मनन्दीन्द्रपट्टे
जीयाद्भट्टारकेन्द्रः क्षितितलविदितो देवेन्द्रकीर्त्तिः ॥५२॥

तत्पट्टनीरजविकाशनकर्मसाक्षी
पापान्धकारविनिवारणकर्मसाक्षी
दुर्वादिदुर्वनकैरवकर्मसाक्षी
श्रीक्षेमकीर्त्ति (९८) मुनिपो जितकर्मसाक्षी ॥५३॥

हेयाहेयविचारणाङ्कितमतिर्वादीन्द्रचूडामणिः
स्फुर्य्यद्विश्वजनीनवृत्तिरनिशं सम्यक्त्वतालंकृतः ।
सद्वाक्यामृतरञ्जिताखिलनृपो देवेन्द्रकीर्तेः पदे
जीव्याद्वर्षपरः शतं क्षितितले श्रीक्षेमकीर्त्तिर्गरुः ॥५४॥

तत्पट्टकोकनद-मोदन-चित्रभानुः
दुःकर्मदुस्तरसुनाशन-चित्रभानुः ।
भव्यालि-तामरस-रंजन-चित्रभानुः
जीयान्नेरन्द्रवरकीर्त्ति (९९) सुचित्रभानुः ॥५५॥

श्रीमत्स्याद्वादशास्त्रावगमवरमतिः शान्तमूर्त्तिर्मनोज्ञः
दिव्यत्स्वत्मोपलब्धिः प्रहृतकलिमलो मोक्षमार्गस्य नेता ।
सर्वज्ञाभासवेदालिमकलमदरुत् क्षेमकीर्त्तेः सुपट्टे
सूरिः श्रीमन्नेरन्द्रो जयति पटुगुणः कीर्त्तिशब्दाभियुक्तः ॥५६॥

तत्पट्टवारिधिविवर्द्धनपूर्णचन्द्रः
पुष्यायुधेभहरिणाधिपतिर्वितेन्द्रः ।
सद्बोधवारिजविकाशनवासरेन्द्रः
भट्टारको विजयकीर्त्ति (१००) रसौ मुनीन्द्रः ॥५७॥

स्याद्वादामृतवर्षणैकजलदो मिथ्यान्धकारांशुमान्
भास्वन्मूर्त्तिनरेन्द्रकीर्त्तिसुसरो पट्टावलीक्ष्माधिपः।
नानाशास्त्रविचारचारूचतुरः सन्मार्गसंवर्त्तको
जीयात् श्रीविजयादिकीर्त्तिरमलो दद्याच्च सन्मंगलं ॥५८॥

तत्पट्टपंकजविकाशनपंकजेन्द्रः
स्याद्वादसिन्धुवरवर्द्धनपूर्णचन्द्रः ।
वादीन्द्रकुम्भमदवारणसन्मृगेन्द्रः
भट्टारको जयति निर्मलनेमिचन्द्रः (१०१) ॥५९॥

नानान्यायविचारचारूचतुरो वादीन्द्र-चूडामणिः
षट्तर्कागमशब्दशास्त्रनिपुणो स्फुर्जद्यशश्चन्द्रमाः :।
स्वात्मज्ञानविकाशनैकतरणिः श्रीनेमिचन्द्रो गुरुः
सद्भट्टारकमौलिमण्डनमणिर्जीव्यात्सहस्रं समाः ॥६०॥

तत्पट्टपंकज-विकाशन-सूर्य्यरूपः
शास्त्रामृतेन परितोषित-सर्वभूपः ।
सच्छास्त्रकैरव-विकाशन-चन्द्रमूर्त्तिः
भट्टारकः समभवत् वरचन्द्रकीर्त्तिः (१०२) ॥६१॥

श्रीमान्नाभिनरेन्द्रसुनुचरणाम्भोजद्वये भक्तिमान्
नानाशास्त्रकलाकलापकुशलो मान्यः सदा भूभृतां ।
नित्यं ध्यानपरो महाव्रतधरो दाता दयासागरः
ब्रह्मज्ञान-परायणस्समभवत् श्रीचन्द्रकीर्त्तिः प्रभुः ॥६२॥

पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणीः
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ।
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोऽभवत्
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ॥६३॥

समस्त राजाओंसे पूजित पादपद्मवाले, मुनिवर भद्रबाहु स्वामीके पट्ट-कमलको उद्योत करनेमें सूर्य्यके समान श्रीगुप्तिगुप्त मुनि आप लोगोंको शुभ-सङ्गति दें ॥१॥

श्रीमूलसङ्घमें नन्दिसङ्घ हुआ, नन्दिसङ्घमें अतिरमणीय बलात्कार-गण हुआ, और उस गणमें पूर्वके जाननेवाले मनुष्य और देवोंके वन्दनीय श्रीमाघ-नन्दि स्वामी हुए ॥२॥

उनके पट्टपर मुनिश्रेष्ठ जिनचन्द्र हुए और इनके पट्टपर पाँच नाम-धारक मुनिचक्रवर्त्ती श्रीपद्मनन्दि स्वामी हुए ॥३॥

कुन्दकुन्द, वक्रग्रीव, एलाचार्य्य, गृद्धपिच्छ और पद्मनन्दी उनके ये पाँच नाम हुए ॥४॥

उनके पट्टपर दशाध्यायी-तत्त्वार्थसूत्रके प्रसिद्ध कर्त्ता मिथ्यात्व-तिमिरके लिए सूर्य्य समान उमास्वाति (उमास्वामी) आचार्य हुए ॥५॥

उनके पट्टपर देवोंसे पूजित समस्त अर्थके जानने वाले श्रीलोहाचार्य्य हुए ॥६॥

यहाँसे इस नन्दिसङ्घमें दो पट्ट हो गये, पूर्व और उत्तरभेदसे (अर्थात् यहाँसे लोहाचार्य्यकी पट्टवलीका क्रम काष्ठासङ्घमें चला गया और यह अनुक्रम नन्दिसंघका रहा) जिनके नाम क्रमसे यह हैं ॥७॥

यशःकीर्त्ति, यशोनन्दी, देवनन्दी-पूज्यपाद, अपरनाम गुणनन्दी हुए ॥८॥

तार्किकशिरोमणि वज्रवृत्तिके धारक वज्रनन्दी, कुमारनन्दी, लोकचन्द्र और प्रभाचन्द्र हुए ॥९॥

नेमिचन्द्र, भानुनन्दी, सिंहनन्दी, वसुनन्दी, वीरनन्दी और रत्ननन्दी हुए ॥१०॥

माणिक्यनन्दी, मेघचन्द्र, शान्तिकीर्त्ति, मेरुकीर्त्ति, महाकीर्त्ति, विश्वनन्दी हुए ॥११॥

श्रीभूषण, शीलचन्द्र, श्रीनन्दी, देशभूषण, अनन्तकीर्त्ति, धर्म्मनन्दी, हुए ॥१२॥

विद्यानन्दी, रामचन्द्र, रामकीर्त्ति, अभयचन्द्र, नरचन्द्र, नागचन्द्र, हुए ॥१३॥

नयनन्दी, हरिश्चन्द्र (हरिनन्दी), महीचन्द्र, माधवचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, गुण-कीर्त्ति हुए ॥१४॥

गुणचन्द्र, वासवेन्दु (वासवचन्द्र), लोकचन्द्र और त्रैविध्यविद्याधीश्वर वैया-करणभास्कर श्रुतकीर्त्ति हुए ॥१५॥

भानुचन्द्र, महाचन्द्र, माघचन्द्र, ब्रह्मनन्दी, शिवनन्दी, विश्वचन्द्र हुए ॥१६॥

सैद्धान्तिक हरनन्दी, भावनन्दी, सुरकीर्त्ति, विद्यानन्द, सूरचन्द्र हुए ॥१७॥

माघनन्दी, ज्ञाननन्दी, गंगनन्दी, सिंहकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति और चारुकीर्त्ति हुए ॥१८॥

नेमिनन्दी, नाभकीर्त्ति, नरेन्द्रकीर्त्ति, श्रीचन्द्र, पद्मकीर्त्ति, वर्द्धमानकीर्त्ति हुए ॥१९॥

अकलंकचन्द्र, ललितकीर्त्ति, त्रैविद्यविद्याधीश्वर केशवचन्द्र, चारुकीर्त्ति हुए ॥२०॥

सैद्धान्तिक महातपस्वी अभयकीर्त्ति और वनवासी महापूज्य वसन्तकीर्त्ति हुए ॥२१॥

जगत्प्रख्यातकीर्त्ति उन श्रीवनवासी वसन्तकीर्त्ति आचार्य्यके शिष्य अनेक गुणोंके स्थान, यम, नियम, तपश्चरण, महाव्रतादि-नदियोंके सागर, पर-वादिगजविदारण-सिंह और वादीन्द्र भुवनविख्यात विद्याधीश्वर श्रीविशाल-कीर्त्ति हुए और उनके पट्टधर श्रेष्ठ चरित्रमूर्त्ति एकान्तरादि-उग्रतपोविधानमें ब्रह्माके समान सन्मार्गप्रवर्त्तक श्रीशुभकीर्त्ति हुए ॥२३॥

इनके पट्टपर हमीरमहाराजसे पूजनीय संयमसमुद्रको बढ़ानेमें चन्द्रमासमान प्रसिद्ध सैद्धान्तिक श्री धर्म्मचन्द्र हुए ॥२४॥

उनके पट्टपर यतिपति स्याद्वादविद्यासागर रत्नकीर्त्ति हुए, जिनके शिष्य अनेक देशोंमें विस्तरित हैं, वे धर्म्मकथाओंके कर्त्ता बालब्रह्मचारी श्रीरत्नकीर्त्ति गुरु जयवन्त रहें ॥२५॥

समस्त संघोंमें तिलक श्रीनन्दिसंघमें शुभकीर्त्तिसे प्रसिद्ध निर्म्मल सार-स्वतीय गच्छमें चन्द्रमासमान दिगन्तविश्रामकीर्त्ति श्रीरत्नकीर्त्तिगुरु जयवन्त रहें ॥२६॥

इनके पट्टपर, श्रीपूज्यपादस्वामीके ग्रन्थोंकी टीका करनेसे पायी है प्रसिद्धि जिन्होंने, नानागुण विभूषित, वादविजेता, अनेक राजाओंसे पूजित श्रीप्रभाचन्द्र-चन्द्रदेवतारास्थिति-पर्य्यन्त जयवन्त रहें ॥२७॥

श्रीप्रभाचन्द्रदेवके पट्टपर विशुद्ध सिद्धान्तरत्नाकर और अनेक जिनप्रति-माओंकी प्रतिष्ठा करानेवाले श्रीपद्मनन्दी हुए ॥२८॥

जिनके शुद्ध हृदयमें अभेदभावसे आलिङ्गन करती हुई ज्ञानरूपी हँसी आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती है। जिन्होंने जिनदीक्षा धारण कर जिनवाणी और पृथ्वीको पवित्र किया है, वह परमहंस निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली अशेषशास्त्रज्ञ सर्व-हितपरायण मुनिश्रेष्ठ श्रीपद्मनन्दी मुनि जयवन्त रहें ॥२९॥३०॥३१॥

श्रीपद्मनन्दीके शिष्य अनेक वादियोंमें प्राप्तविजय, उपदेशसे अज्ञानतम-दलन करनेवाले जगत्प्रसिद्ध श्रीसकलकीर्त्ति भट्टारककी जय रहे ॥३२॥

श्रीमान् सकलकीर्त्ति आचार्य्यके पट्टधर श्रीभुवनकीर्त्तिमुनि, परमतपस्वी अनेक मुनिगणोंसे सेवित, अनेक वादोंमें जिनधर्म्मकी प्रभावना करनेवाले समस्त-संघोंकी रक्षा करें ॥३३॥

उनके शिष्य ज्ञानशाली, तपोभूमि, नीतिज्ञ, अनेक जैन राजाओंसे स्तुत, श्री ज्ञानभूषणयति सबकी रक्षा करें ॥३४॥

तत्पदसेवी, निखिल-तार्किकचूडामणि, श्रीगोमट्टसार आदि महाशास्त्रज्ञ विजयकीर्ति हुए ॥३५॥

मल्लिसेरव, महादेवेन्द्र प्रभृति मुख्य राजाओं द्वारा पूजित, तर्कादिषट् शास्त्रके ज्ञाता, यशःशाली, भवदुःखभञ्जन वह विजयकीर्ति मुनि हम सबकी रक्षा करें ॥३६॥

भव्योंको आनन्द देनेमें पूर्णचन्द्र, स्याद्वादन्यायसे अनेक राजाओंको जैन बनाने वाले, श्री विजयकीर्त्तिके शिष्य, जगत्प्रसिद्ध, भारतेन्दु, षट्तर्कवागीश, वादिरूप हस्तियोंको सिंह, प्रकट-दुःखप्रद भयङ्कर कर्मसन्ततिको नाशकरने वाले, आत्मानुभवी, समस्तशास्त्रपारङ्गत, दयालु, श्रीशुभचन्द्राचार्य्य, समस्त मुनिगणोंकी रक्षा करें ॥३७॥३८॥

श्री शुभचन्द्राचार्य्यके पट्टधर, भद्र लोगोंको उपदेशामृतवर्षी, श्रीसुमतिकीर्त्ति भट्टारक हुए ॥३९॥

संसारको क्षणभंगुर जानकर मोक्षाभिलाषी हो तपस्वी हुए वे यतिपति श्रीसुमतिकीर्त्तिदेव, मोह-कामादिशत्रु-विजयी, जयवन्त रहें ॥४०॥

उनके पट्टधर सूर्य्यसमान, स्याद्वादविद्यामें निपुण, विशाल कीर्त्तिवाले, अपनी अमृतवाणीसे भव्यगणोंकी पुष्टि करनेवाले मुनिगणसे पूजित, श्रीगुण-कीर्त्ति आचार्य्य हुए ॥४१॥

विद्वद्वृन्द, विशुद्धमति, मुमुक्षु, मधुरवचन, व्यवहारवेत्ता, तर्कशास्त्रज्ञ वह श्रीमान् गुणकीर्त्ति इस जगत्में जयवन्त रहें ॥४२॥

उनके पट्टकमलको विकसित करनेमें पद्मबन्धु, कुवादियोंके मुखकुमुदोंको मुद्रित करनेमें सूर्य्य, अन्धकार नष्ट करनेमें तपन, सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी श्रीमान् वादिभूषण यतिवर चिरंजीवी रहे ॥४३॥

अनेकन्यायशास्त्रवेत्ता, अनेक जैन नृपोंसे पूजित, कर्णाटक देशको सुशोभित करनेवाले, कलिकालमें गौतमगणधरके समान, रत्नत्रयविभूषित, श्रीशुभचन्द्रा-चार्य्य समानप्रभाशाली, श्रीवादिभूषणगुरु वर्त्तमान रहें ॥४४॥

उनके पट्टकमलको विकसित करनेवाले, अज्ञानको शोषणकरनेवाले, भव्य-कमलोंके सूर्य्य श्रीरामकीर्त्तिभट्टारक हुए ॥४५॥

वह व्याकरणादि सर्वशास्त्रनिपुण, श्रीस्याद्वादन्यायायवेदी, राजमान्य, सर-स्वतीयगच्छपति रामकीर्त्ति भट्टारक इस जगत्में अलङ्कृत रहें ॥४६॥

उनके पट्टपर सर्वशास्त्रके जाननेवाले सर्वकलासम्पन्न, श्रीयशःकीर्त्ति हुए ॥४७॥४८॥

अज्ञान-तिमिरनाशक, भव्यजीवप्रतिबोधक, श्रीयशःकीर्त्तिके पट्टको प्रसारनेवाले, सूर्य्यातिशायी तेजस्वी, श्रीपद्मनन्दी हुए ॥४९॥

वह श्रीमान् पद्मनन्दी मुनि कुवादिवादविजयी, शुद्धात्मलीन, निर्म्मलचरित्र, शास्त्रसमुद्रपारगामी, राजमान्य, श्रीरामकीर्त्तिके पट्टको अलंकृत करें ॥५०॥

उनके पट्टधर, अनेक राजाओंको सम्बोधनेवाले, बुद्धिशाली, श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति हुए। वह श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति गुरु जगत्प्रसिद्ध अनेक राजाओंसे मानित सदा कल्याण करें ॥५१॥५२॥

उनके पट्टपर पापतिमिरविनाशक, श्रीक्षेमकीर्त्ति मुनि हुए। वह क्षेमकीर्त्ति मुनि वस्तुके हेयोपादेयतामें प्रवरबुद्धि, प्राणिमात्र-हिताकांक्षी, वचन माधुरीसे समस्त राजाओंको अनुरञ्जित करनेवाले इस पृथ्वीतल पर अनेक शतवर्ष जीव्यमान रहें ॥५३॥५४॥

उनके पट्टपर दुष्कर्महत्ता, भव्य-कमलोंके अपूर्व सूर्य्य, श्रीनरेन्द्रकीर्त्ति जयवन्त रहें, जो श्रीस्याद्वादशास्त्रज्ञ, स्फूर्य्यमाण, अध्यात्म-रसास्वादी, मोक्षमार्गको दिखानेवाले, सर्वज्ञमन्य-कुवादि-वादियोंके मदहर्त्ता हुए ॥५६॥

इनके पट्टरूपी समुद्रको बढ़ानेमें पूर्णचन्द्रके समान, कामहस्तिविदारण-गजेन्द्र, सम्यक्ज्ञानपद्मविकाशी-सूर्य्य, उपदेशवृष्टि करनेमें मेघतुल्य, मिथ्यान्धकार नष्ट करनेमें अतिशायी भानु, अनेकशास्त्रपारगामी श्रीविजयकीर्त्ति हमारा मंगल करें ॥५७॥५८॥

उनके पट्टपर वादीन्द्रचूड़ामणि श्रीनेमिचन्द्राचार्य्य हुए। वह षट्शास्त्र-पारंगत, दिक्प्रसरितयशोभागी, आत्मज्ञान-रस-निर्भर, यतिशिरोमणि, हजारों वर्ष जीवित रहें ॥५९॥६०॥

उनके शिष्य, अनेक राजसभामें सम्मानित, श्रीचन्द्रकीर्त्ति भट्टारक हुए, जो श्रीऋषभदेव-चरणभक्तिपरायण, नित्यध्यानाध्ययनमें लीन, दयाके समुद्र, महाव्रती, आत्मानुभवी और गुणशाली थे तथा जिन्होंने इस भारतभूमिको सुशोभित किया ॥६१॥६२॥

श्रीपद्मनन्दी गुरुने बलात्कारगणमें अग्रसर होकर पट्टारोहण किया है और जिन्होंने पाषाणघटित सरस्वतीको ऊर्ज्जयन्तगिरि पर वादिके साथ वादित कराया (बुलवाया) है, तबसे ही सारस्वत गच्छ चला। इसी उपकृतिके स्मरणार्थ उन श्रीपद्मनन्दी मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६३॥

द्वितीय शुभचन्द्रकी पट्टावली

स्वस्ति श्रीजिननाथाय स्वस्ति श्रीसिद्धसूरयः ।
स्वस्ति पाठक-सूरिभ्यां स्वस्ति श्रीगुरवे नमः ॥१॥
मङ्गलं भगवानर्हन् मंगलं सिद्धसूरयः ।
उपाध्यायस्तथा साधुर्जैनधर्म्मोऽस्तु मंगलम् ॥२॥
स्वस्ति श्रीमूलसंघेऽवनितिलकनिभे मोक्षमार्गैकदीपे
स्तुत्ये भू-खेचराद्यैर्विशदतरगणे श्रीबलात्कारनाम्नि ॥
गच्छे श्रीशारदायाः पदमवगमचरित्राद्यलङ्कारवन्तो ।
विख्याता गौतमाद्या मुनिगणवृषभा भूतलेऽस्मिञ्जयन्तु ॥३॥

स्वस्ति श्रीमन्महावीरतीर्थंकर-मुखकमल-विनिर्गत-दिव्यध्वनि-धरण-प्रकाश-प्रवीण-गौतमगणधरान्वय-श्रुतकेवलि-समालिङ्गित-श्रीभद्रबाहुयोगीन्द्राणाम् ॥४॥

तद्वंशाकाश-दिनमणि-सीमन्धरवचनामृतपान-सन्तुष्टचित्त-श्रीकुन्दकुन्दाचार्याणाम् ॥५॥

तदाम्नायधरणधुरीण-कवि-गमक-वादि-वाग्मि-चतुर्विध- पाण्डित्यकला-निपुण-बौद्ध-नैयायिक-सांख्य-वैशेषिक-भट्ट-चार्वाक-मताङ्गीकार - मदोद्यत - परवादि-गज-गण्ड-भैरव (भेदक) श्रीपद्मनन्दिभट्टारकाणाम् ॥६॥

तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्तानां, एकावलि-द्विकावलि-कनकावलि-रत्नावलि-मुक्तावलि-सर्वतोभद्र-सिंहविक्रमादि-महातपो-वज्र-विनाशित-कर्म्मपर्वतानाम्, सिद्धान्तसार-तत्त्वसार-यत्याचाराद्यनेकराद्धान्तविधातृणाम्, मिथ्यात्व-तमो-विनाशैकमार्त्तण्डानाम्, अभ्युदयपूर्व-निर्वाणसुखावश्यविधायि-जिनधर्माम्बुधि-विवर्द्धन-पूर्णचन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरणसमर्थन-निर्ग्रन्थाचार्यवर्य्याणाम्, श्री-श्री-श्रीसकलेकीर्त्तिभट्टारकाणाम् ॥७॥

तत्पट्टाभरणानेकदक्षमौख्य(ढय)-निष्पादन-सकल-कलाकलाप-कुशल-रत्न-सुवर्णरौप्यपित्तलाश्मप्रतिमा-यन्त्रप्रासादप्रतिष्ठायात्रार्चन-विधानोपदेशार्ज्जितकीर्त्तिकपूरपूरित-त्रैलोक्यविवराणाम्, महातपोधनानां श्रीमद्भुवनकीर्त्तिदेवानाम् ॥८॥

तत्पट्टोदयाचलभास्कराणां, गुर्जरदेशप्रथमसागारधर्म्मवरिष्ठ-सद्धर्मनिष्ठानाम्, अहीरदेशाङ्गीकृतैकादशप्रतिमापवित्रीकृतगात्राणां, वाग्वरदेश-स्वीकृतदुर्द्धर-महाव्रतभारधुरन्धराणां, कर्णाटदेशोत्तुङ्गचैत्यचैत्यालयावलोकनार्जितमहापुण्यानाम्, तौलवदेशमहावादीश्वरराजवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्याद्यनेकविरुदावलिविराजमान-यतिसमूहमध्यसप्राप्तप्रतिष्ठानाम्, तैलङ्गदेशोत्तम-नरवृन्द-वन्दितचरणकमलानाम्, द्राविडदेशाप्तविदग्धवदनारविन्दविनिर्गतस्तवानाम्, महाराष्ट्रदेशार्ज्जितेन्दु-कुन्द-कुवलयोज्ज्वलयशोराशीनाम्, सौराष्ट्रदेशो-

त्मोपासक-वर्ग-विहितापूर्वमहोत्सवानाम्, रायदेशनिवासिसम्यग्दर्शनोपेत-प्राणिसङ्घातकप्रमाणीकृतवाक्यानाम्, मेदपाटदेशानेकमुग्धाङ्गीवर्गप्रतिबोधकानाम्, मालवदेशभव्यजिसपुण्डरीकबोधन-दिनकरावतारणाम्, मेवातदेशागमाध्यात्मरहस्यव्याख्यानरञ्जितविविधविबुधोपासकानां, कुरुजाङ्गलदेशप्राण्यज्ञानरोगापहरण-वैद्यानाम्, तूरवदेशषट्दर्शनतर्काध्ययनोद्भूताऽखर्वगर्वाकुमितहृदयप्रज्ञावदन्तर्लब्ध-विजयानां, विराटदेशोभयमार्गदर्शकानां, नमियाडदेशाधिकृतजिनधर्मप्रभावानां, नवसहस्राद्यनेकधर्मोपदेशकानां, टगराटहडीवटीनागरचलप्रमुखाऽनेकजनपद-प्रतिबोधन-निमित्त-विहित-विहाराणां, श्रीमूलसङ्घे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे डिल्ली (दिल्ली) सिंहासनाधीश्वराणां, प्रतापाक्रान्तदिङ्मण्डलाऽऽखण्डनसमानभैरवनरेन्द्रविहितातिभक्तिभाराणां, अष्टाङ्गसम्यक्त्वाद्यनेकगुणगणालङ्कृतश्रीमदिन्द्रभूपालमस्तकन्यस्तचरणसरोरुहाणां, गजान्तलक्ष्मीध्वजान्तपुण्य - नाट्यान्तभोग - समुद्रान्तभूमिभागरक्षकसामन्तमस्तकघृष्टक्रमाग्रमेदिनीपृष्ठराजाधिराजश्रीदेवरायसमाराधितचरणवारिजानां, जिनधर्मधारकमुदिपालराय-रामनाथराय-बोमरसराय-कलपराय-पाण्डुरायप्रभृतिअनेकमहीपालार्च्चितकमलयुगलानाम्, विहितानेकतीर्थयात्राणां, मोक्षलक्ष्मीवशीकरणानर्घ्यरत्नत्रयालंकृतगात्राणां, व्याकरण-छन्दोलङ्कार-साहित्य-तर्कागमाध्यात्मप्रमुखशास्त्रसरोजराज-हंसानां, शुद्धध्यानामृतपानलालसानां, वसुन्धराचार्याणाम्, श्रीमद्भट्टारकवर्य्यश्रीज्ञानभूषणभट्टारकदेवानाम् ॥९॥

तत्पट्टाम्भोजभास्कराणां, कारितानेकसविवेकजीर्णनूतन-जिनप्रासादोद्धरणधीराणां, समुपदिष्ट-विशिष्टाक्लिष्टप्रतिष्ठजिनबिम्बप्रकाराणां, अङ्गवङ्गकलिङ्ग-तौलव-मालव-मरहठ-सौराष्ट्र-गुर्ज्जर-वाग्वर-रायदेश-मेदपाट-प्रमुख-जनपदजनजेगीयमानयशोराशीनां, जैनराजान्यराजपूजित-पादपयोजानां, अभिनवबालब्रह्मचारीश्रीभट्टारकविजयकीर्त्तिदेवानाम् ॥१०॥

तत्पट्टप्रकटचतुर्विधसंघ-समुद्रोल्लासन-चन्द्राणां, प्रमाणपरीक्षा-पत्रपरीक्षापुष्पपरीक्षापरीक्षामुख-प्रमाणनिर्णय-न्यायमकरन्द-न्यायकुमुदचन्द्रोदय-न्यायविनिश्चयालङ्कार-श्लोकवार्त्तिक-राजवार्त्तिकालङ्कार-प्रमेयकमलमार्त्तण्ड-आप्तमीमांसा-अष्टसहस्री - चिन्तामणि - मीमांसाविवरण - वाचस्पतितत्त्वकौमुदीप्रमुखकर्कशतर्क-जैनेन्द्र- शाकटायनेन्द्र- पाणिनि-कलाप-काव्य- स्पष्ट - विशिष्ट-सुप्रतिष्ठाष्टसुलक्षण-विचक्षणत्रैलोक्यसार- गोम्मटसार- लब्धिसार-क्षपणासार- त्रिलोकप्रज्ञप्तिसुविज्ञप्त्याध्यात्मकष्टसहस्रीछन्दोलङ्कारादिशास्त्रसरित्पतिपारप्राप्तानां, शुद्धचिद्रूप-चिन्तन-विनाशि-निद्राणां, सर्वदेशविहरावाप्तानेकभद्राणां, विवेकविचार-चातुर्य्य-गाम्भीर्य्य-धैर्य्य-वीर्य्यगुणगणसमुद्राणां, उत्कृष्टपात्राणां, पालि-

तानेकश(स)च्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणाम्, सकलविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणां, गौड़वादितमःसूर्य-कलिङ्गवादिजलदसदागति-कर्णाटवादिप्रथमवचनखण्डनसमर्थ - पूर्ववादिमत्तमातङ्गमृगेन्द्र-तौलवादिविडम्बनवीर - गुर्जरवादिसिन्धुकुम्भोद्भव-मालववादिमस्तकशूल-जितानेकाखर्वगर्वत्राटनवज्राधराणां ज्ञातसकलस्वसमयपरसमयशास्त्रार्थानां, अङ्गीकृतमहाव्रतानाम्, अभिनवसार्थकनामधेयश्रीशुभचन्द्राचार्याणाम् ॥११॥

तत्पट्टप्रवीणोत्कृष्टमति - विराजमान - सुनिश्चितासम्भवबाधकप्रामाणादिसाधन - निकरसंसाधितासाधारणविशेषणत्रयालिंगितपरमात्मराजकुञ्जरबन्धुबदनाम्भोजप्रकटीभूतपरमागमवार्द्धिवर्द्धनसुधाकराणाम्, परवादिवृन्दारकवृन्दवन्दित-विशद-पादपङ्करुहाणां बालब्रह्मचारिभट्टारकश्रीसुमतिकीर्त्तिदेवानाम् ॥१२॥

तत्पट्टाम्बुज-विकाशन-मार्त्तण्डानां, पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-त्रिगुप्त्यष्टाविंशतिमूलगुणसंयुक्तानां, व्याख्यामृत-पोषित-जिनवर्गाणां, निजकर्मभूरुहदारुणधरणप्रवीणानाम् परमात्मगुणातिशयपरीक्षितविश्वज्ञ-स्वरूपाणाम्, विशदविज्ञान-विनिश्चित-सामान्यविशेषात्मककार्थसमर्थानां, परमपवित्रभट्टारकश्रीगुणकीर्त्तिदेवानाम् ॥१३॥

तत्पट्टकुमुद-प्रकाशन-शुद्धाकराणां, अंग-वंग-तिलंग-कलिंग-वेट-भोट-लाट-कुङ्कण-कर्णाट-मरहट्ट-चीन-चोल-हब्ब-खुरासाण-आरब-त्तौलक-तिलात-मेदपाट-मालव-पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तर- गुर्जर-वाग्वर-रायदेस-नागर- चाल-मरुस्थल-स्फूरदंगि- कोशल- मगध- पल्लव-कुरुजांगल-कांची-लाभ्रुस-पुट्टौट-काशी-कलिंग-सौराष्ट्र काश्मीर-द्राविड-गौड़-कामरू-मलत्ताण- मुंगी-पठाण- बुगलाण-हडावट्ट-सपादलक्ष-सिन्धु-सिग्घुल-कुन्तल-केरल-मंगल-जालौरगंगल-सुंतल-कुरल-जांगल-पंचालन-नट्ट-घट्ट-खेट्ट-कोरट्ट-वेणुतट-कलिकोट-मरहट्ट-कौरट्ट-चैरदट-खैरट्ट-स्मैरतट्ट-महाराष्ट्र-विराट-किराट-नमेद-सिन्धुतट-गंगेतट-पल्लव-मल्लवार-कपोठ-गौड़वाड़-तिंगल-किंगल-मलयम-मरुमेखल-नेपाल-हैवतरुल-संखल-करल-वरल-मोरल-श्रीमाल-नेखलपिच्छल-नारल- डाहलताल-तमाल-सौमाल- गौमाल- रोमाल- तोमल-केमाल-हेमाल-देहल-सेहल-टमाल-कमाल-किरात-मेवात-चित्रकूट- हेमकूट-चूरंड-मुरंड-उद्रयाणा-आद्रभ्राद्र - पुलिन्द्र - सुराट्र - प्रमुखदेशार्ज्जितेन्दु-कुवलयोज्जल-यशोराशीनां, सकलशास्त्रसमुद्रपारप्राप्तानां, समग्रविद्रज्जन-नमित-चरणपङ्करुहाणां, व्यख्यामृतपेषित-सकलभव्यवर्गाणां, सकलतार्किकशिरोमणीनां, दिल्लीसिंहासनाधीश्वराणाम्, सार्थकनामाविराजमान-अभिनवभट्टारकश्रीवादिभूषणदेवानाम् ॥१४॥

पट्टावलीका भाषानुवाद

श्री जिननाथको स्वस्ति हो, सिद्धाचार्योंको स्वस्ति हो, पाठक और आचार्यों-को स्वस्ति हो तथा श्रीगुरुको स्वस्ति हो ॥१॥

अर्हन्तदेव मङ्गलस्वरूप हैं। सिद्धाचार्यगण मंगलस्वरूप हैं और उपाध्याय, साधु तथा जैनधर्म मंगलमय हैं ॥२॥

मोक्षका मार्ग दिखानेके लिये अनन्यप्रदीप, भूखेचरोंसे स्तुत्य, भूतलमें तिलकस्वरूप, श्रीमूलसंघके अति उज्ज्वल बलात्कारनामक गणके सरस्वती-गच्छमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रसे समलंकृत प्रसिद्ध गौतम आदि गणधर इस भूतलमें जयवन्त हों ॥३॥

श्रीमहावीर स्वामीके मुखकमलसे निकली हुई दिव्यध्वनिको धारण और प्रकाशन करनेमें प्रवीण गौतम गणधरके वंशधर श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी हुए ॥४॥

इनके वंशाकाशके सूर्य श्रीसीमन्धरके वचनामृतके पानसे सन्तुष्ट चित्तवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्य हुए ॥५॥

इनके आम्नायको धारण करनेमें अग्रगण्य, कविता, गमकता वादिता और वाग्मिता आदि चार प्रकारकी पाण्डित्यकलामें निपुण, बौद्ध नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक और चार्वाक मतको माननेवाले वादिगजके लिये सिंहके समान श्री पद्मनन्दि भट्टारक हुए ॥६॥

इनके शिष्योंमें अग्रगण्य और अनेक शास्त्रसमुद्रमें पारंगत, एकावली, द्विकावली, कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र और सिंहविक्रमादि बड़ी-बड़ी तपस्यारूपी वज्रसे कर्मरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेवाले, सिद्धान्त-सार, तत्त्वसार और अनेक यत्याचारके सिद्धान्तग्रन्थोंको बनानेवाले, मिथ्यात्व-रूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्य, कुशलतापूर्वक मोक्षलक्ष्मीके सुखको प्रकटित करनेवाले, जिनधर्मरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये पूर्णचन्द्रमाके सदृश, यथोक्त चरित्रका आचरण और समर्थन करनेवाले दिगम्बराचार्य श्री सकल-कीर्ति भट्टारक हुए ॥७॥

इनके पट्टके भूषणतुल्य सभी कलाओंमें कुशल, रत्न, सुवर्ण, रौप्य, पित्तल, तथा पाषाणकी प्रतिमा, यन्त्र और प्रासादकी प्रतिष्ठा और अर्चन-विधान जन्य कीर्ति-कर्पूरसे त्रिभुवन-विवरको पूरित करनेवाले, महातपस्वी श्रीभुवनकीर्त्ति-देव हुए ॥८॥

इनके पट्टरूपी उदयाचलके लिये सूर्यके समान, गुर्जर देशमें सर्वप्रथम सागारधर्मका प्रचार करनेवाले, अहीरदेशमें स्वीकृत एकादश प्रतिमा (क्षुल्लक पद) से पवित्र शरीरवाले, वाग्वरदेशमें अंगीकृत दुर्धर महाव्रत (मुनिपद) के भारको धारण करनेवाले, कर्णाटक देशमें ऊँचे-ऊँचे चैत्यालयोंके दर्शनसे महापुण्यको उपार्जित करनेवाले, तौलव देशके महावादीश्वर विद्वज्जन-चक्रवर्तियोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले, तिलंग देशके सज्जनोंसे पूजित चरण-कमलवाले, द्रविड़ देशके सुविज्ञोंसे स्तुति किये जानेवाले, महाराष्ट्र देशमें उज्ज्वल यशका विस्तार करनेवाले, सौराष्ट्र देशके उत्तम उपासकोंसे महोत्सव मनाये जानेवाले, सम्यग्दर्शनसे युक्त रायदेशके निवासी प्राणिसमूहसे प्रमाणी-कृत वाक्यवाले, मेदपाट देशके अनेक मूढ़ोंको समझानेवाले, मालवदेशके भव्योंके हृदय-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान, मेवातदेशके अन्यान्य विज्ञ उपासकोंको अपने आध्यात्मिक व्याख्यानोंसे रंजित करनेवाले, कुरुजांगल देशके प्राणियोंके अज्ञानरूपी रोगको हटानेके लिये सद्वैद्यके समान, तुरवदेशमें षड्दर्शन-न्याय आदिके अध्ययनसे उत्पन्न अखर्व गर्व करने वालोंको दबाकर विजय प्राप्त करनेवाले, विराट् देशमें उभय मार्गको प्रदर्शित करनेवाले, नमियाड़ देशमें जिनधर्मकी अत्यन्त प्रभावना और नव हजार उपदेशकोंको नियत करनेवाले, टग, राट, हड़ोवटी, नागर और चाल आदि अनेक जनपदोंमें ज्ञानप्रचारके लिये विहार करनेवाले, श्रीमूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके दिल्ली-सिंहासनके अधिपति, अपने प्रतापसे दिङ्मण्डलको आक्रमण करनेवाले, अष्ट-अंगयुक्त सम्यक्त्व आदि अनेक गुणगणसे अलंकृत और श्रीमत् इन्द्र भूपालोंसे पूजित चरणकमलवाले, गजान्त लक्ष्मी, ध्वजान्त पुण्य, नाट्यान्त भोग, समुद्रान्त भूमिभागके रक्षक सामन्तोंके मस्तकसे घृष्ट चरणकमलवाले श्रीदेवरायराजसे पूजित पादपद्मवाले, जिनधर्मके आराधक मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरस-राय, कलपराय, पाण्डुराय आदि अनेक राजाओंसे अर्चित चरणयुगलवाले, अनेक तीर्थयात्राओंको करनेवाले, मोक्षलक्ष्मीको वशीभूत करनेवाले, रत्नत्रयसे सुशोभित शरीरवाले, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, साहित्य, न्याय और अध्यात्म-प्रमुख शास्त्ररूपी मानसरोवरके राजहंस, शुद्ध ध्यानरूपी अमृतपानकी लालसा करनेवाले और वसुन्धराके आचार्य श्रीमद्भट्टारकवर्य्य श्री ज्ञानभूषण हुए ॥५॥

जो इनके पट्टरूपी पद्मके लिये सूर्यके समान हैं, विवेकपूर्वक अनेक जीर्ण अथवा नूतन जिन-प्रासादोंका उद्धार करानेवाले हैं, अनेक प्रकारके जिन-बिम्बकी प्रतिष्ठाका उपदेश देनेवाले हैं, जिनकी यशोराशिका मान अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, तौलव, भालव और मेदपाट आदि देशोंके निवासियोंने किया है, जिनके

चरणकमल जैन राजाओं तथा अन्य राजाओंसे पूजे गये हैं, ऐसे अभिनव बाल-ब्रह्मचारी श्री भट्टारक विजयकीर्तिदेव हुए ॥१०॥

जो इनके पट्टरूपी पयोनिधको उल्लसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, पुष्पपरीक्षा, परीक्षामुख, प्रमाणनिर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचन्द्रोदय, न्यायविनिश्चयालङ्कार, श्लोकवार्तिक, राजवार्त्तिकालङ्कार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तमीमांसा, अष्टसहस्री, चिन्तामणि, मीमांसाविवरण, वाचस्पतिकी तत्त्वकौमुदी आदि कर्कश न्याय, जैनेन्द्र, शाकटायन, इन्द्र, पाणिनि, कलाप, काव्यादिमें विचक्षण हैं, त्रैलोक्यसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, अध्यात्माष्टसहस्री और छन्द, अलङ्कारादि शास्त्रसमुद्रके पारगामी हैं, शुद्धात्माके स्वरूपके चिन्तनसे निद्राको विनष्ट करनेवाले हैं, सब देशोंमें विहार करनेसे अनेक कल्याणोंको पानेवाले हैं, विवेक-विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता आदि गुणगणके समुद्र हैं, उत्कृष्ट-पात्र हैं, अनेक छात्रोंका पालन करनेवाले हैं, उत्तम-उत्तम यात्राओंके करनेवाले हैं, विद्वन्मण्डलीमें सुशोभित शरीरवाले हैं, गौड़वादियोंके अन्धकारके लिए सूर्यके समान हैं, कलिंगके वादिरूपी मेघोंके लिये वायुके समान हैं, कर्नाटके वादियोंके प्रथम वचनका खण्डन करनेमें परम समर्थ हैं, पूर्वके वादिरूपी मातंगके लिये सिंहके समान हैं, तौलके वादियोंकी विडम्बनाके लिये वीर हैं, गुर्जरवादिरूपी समुद्रके लिये अगस्त्यके समान हैं, मालववादियोंके लिये मस्तकशूल हैं, अनेक अभिमानियोंके गर्वका नाश करनेवाले हैं, स्वसमय और परसमयके शास्त्रार्थको जाननेवाले हैं और महाव्रतको अंगीकार करनेवाले हैं, ऐसे अभिनव सार्थक नामवाले श्रीशुभचन्द्राचार्य हुए ॥११॥

इनके पट्टपर जो अलौकिक बुद्धिसे युक्त हैं, सुनिश्चित और असम्भव बाधकप्रमाणादि साधनसमूहसे संसाधित, तीनों असाधारण विशेषणोंसे परमात्माको सिद्ध करनेवाले हैं, परमागमरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, जिनके स्वच्छ चरणकमल परवादियोंके समूहसे अर्चित हैं, ऐसे बालब्रह्मचारी श्री भट्टारक सुमतिकीर्त्तिदेव हुए ॥११॥

इनके पट्टरूपी कमलके लिये सूर्यके समान, पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति और अट्ठाईस मूलगुणोंसे युक्त, अपने उपदेशरूपी अमृतसे भव्योंको परिपुष्ट करनेवाले, कर्मरूपी भयङ्कर पर्वतको चूर्ण करनेमें समर्थ, परमात्म-गुणोंकी अतिशय परीक्षासे सर्वज्ञका स्वरूप माननेवाले और समुज्ज्वल विज्ञानके बलसे सामान्य और विशेषरूप वस्तुको समझनेवाले परमपवित्र भट्टारक श्रीगुणकीर्त्तिदेव हुए ॥१२॥

इनके पट्टरूपी कुमुदको प्रकाशित करनेके लिये चन्द्रमाके सामन, अङ्ग, वङ्ग, तैलङ्ग, कलिङ्ग, वेट, भोट, लाट, कुंकल, कर्णाट, मरहट, चीन, चोल्ह, हव्व, खुरखाण, आरब, तौलात, मेदपाट, मालव, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, गुर्जर, वाग्वर, रायदेश, नागर, चाल, मरुस्थल, स्फुरदंगि, कोशल, मगध, पल्लव, कुरुजांगल, काञ्ची, लाबुस, पुद्रोट, काशी, कलिङ्ग, सौराष्ट्र, काश्मीर, द्राविड़, गौड़, कामरू, मलत्ताण, मुंगी, पठाण, बुगलाण, हडावट्ट, सपादलक्ष, सिन्धु, सिन्धुल, कुन्तल, केरल, मंगल, जालोर, गंगल, सुन्तल, कुरल, जांगल, पंचालन, नट्ट, घट्ट खेट्ट, कोरट्ट, वेणुतट, कलिकोट, मरहट्ट, कौरट्ट, चैरट्ट, खेरट्ट, स्मैरतट्ट, महाराष्ट्र, विराट, किराट, नमेद, सिन्धुतट, गंगेतट, पल्लव, मल्लवार, कवोट, गौड़वाड़, तिगल, किंगल, मलयम, मरुमेखल, नेपाल, हैवतरुल, संखल, करल, बरल, मोरल, श्रीमाल, नेखल, पिच्छल, नारल, डाहल, ताल, तमाल, सौमाल, गौमाल, रोमाल, तोमल, केमाल, हेमाल, देहल, सेहल, टमाल, कमाल, किरात, मेवात, चित्रकूट, हेमकूट, चुरंड, मुरंड, उद्रयाण, आद्रमाद्र, पुलिन्द्र और सुराद्र आदि देशोंमें इन्दु और कुवलयके समान स्वच्छ यशोराशिको उपार्जित करनेवाले, सभी शास्त्ररूपी समुद्रमें पारंगत, अपनी व्याख्या-सुधा-धारासे सभी भव्यजनोंको पुष्ट करने वाले और सभी तार्किकोंके शिरोमणि दिल्ली-सिंहासनके अधीश्वर सार्थक नामवाले अभिनव भट्टारक श्रीवादिभूषणदेव हुए ॥१३॥

श्रुतमुनि-पट्टावलि[1]

(शक सं० १३५५ ई० सन् १४३३)

(प्रथममुख)

श्री जयत्यजय्यमाहात्म्यं विशासितकुशासनं ।
शासनं जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैकशासनं ॥१॥
अपरिमितसुखमनल्पावगममयं प्रबलबलहृतातङ्क(म्) ।
निखिलावलोकविभवं प्रसरतु हृदये परं ज्योतिः ॥२॥

उद्दीप्ताखिलरत्नमुद्धृतजडं नानानयान्तर्गृहं
स स्यात्कारसुधाभिलिप्तिजनिभृत्कारुण्यकूपोच्छ्रितं ।
आरोप्य श्रुतयानपात्रममृतद्वीपं नयन्तः परा—
नेते तीर्त्थंकृतो मदीयहृदये मध्ये भवाब्ध्यासतां ॥३॥

---

१. जैन शिलालेखसंग्रह, प्रथमभाग, अभिलेख-संख्या १०८, पृष्ठसंख्या १९५-२०७।

तत्राभवत् त्रिभुवनप्रभुरिद्धवृद्धिः
श्रीवर्द्धमानमुनिरन्तिम-तीर्त्थनाथः ।
यद्देहदीप्तिरपि सन्निहिताखिलानां
पूर्व्वोत्तराश्रितभवान् विशदीचकार ॥४॥

तस्याभवच्चरमचिज्जगदीश्वरस्य
यो यौव्वराज्यपदसंश्रयतः प्रभूतः ।
श्रीगौतमो गणपतिर्भ्भगवान्वरिष्ठः
श्रेष्ठैरनुष्ठितनुतिर्म्मुनिभिस्स जीयात् ॥५॥

तदन्वये शुद्धिमति प्रतीते समग्रशीलामलरत्नजाले ।
अभूद्यतीन्द्रो भुवि भद्रबाहुः पयःपयोधाविव पूर्णचन्द्रः ॥६॥

भद्रबाहुरग्रिमः समग्रबुद्धिसम्पदा
शुद्धसिद्धशासनं सुशब्द-बन्ध-सुन्दरं ।
इद्धवृत्तसिद्धिरत्र बद्धकर्म्मभित्तपो-
वृद्धिवर्द्धितप्रकीर्त्तिरुद्दधे महर्द्धिकः ॥७॥

यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिह पश्चिमोऽपि ।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता सर्व्वश्रुतार्त्थप्रतिपादनेन ॥८॥

तदीय-शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तः समग्रशीलानतदेववृद्धः ।
विवेश यत्तीव्रतपःप्रभाव-प्रभूत-कीर्त्तिर्भ्भुवनान्तराणि ॥९॥

यदीयवंशाकरतः प्रसिद्धादभूददोषा यतिरत्नमाला ।
बभौ यदन्तर्म्मणिवन्मुनीन्द्रस्स कुण्डकुन्दोदितचण्ड-दण्डः ॥१०॥

अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्त्थवेदी ।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्त्थजातं मुनिपुङ्गवेन ॥११॥

स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृद्धपक्षान् ।
तदाप्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्य्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छं ॥१२॥

तस्मादभूद्योगिकुलप्रदीपो बलाकपिच्छः स तपोमहर्द्धिः ।
यदङ्गसंस्पर्शनमात्रतोऽपि वायुर्व्विषादीनमृतीचकार ॥१३॥

समन्तभद्रोऽजनि भद्रमूर्त्तिस्ततः प्रणेता जिनशासनस्य ।
यदीयवाग्वज्रकठोरपातश्चूर्ण्णीचकार प्रतिवादिशैलान् ॥१४॥

श्रीपूज्यपादो धृतधर्म्मराज्यस्ततो सुराधीश्वर-पूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥१५॥

धृतविश्वबुद्धिरयमत्र योगिभिः
कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकैः ।

जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्
स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्ण्णितः ॥१६॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि-
र्ज्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शप्रभावा-
त्कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥१७॥

ततः परं शास्त्रविदां मुनीना-
मग्रेसरोऽभूदकलङ्कसूरिः ।
मिथ्यान्धकारस्थगिताखिलार्त्थाः
प्रकाशिता यस्य वचोमयूखैः ॥१८॥

तस्मिन्गते स्वर्ग्गभुवं महर्षौ दिवः पतीन्नर्त्तुमिव प्रकृष्टान् ।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि सङ्घभेदाः ॥१९॥

स योगिसङ्घश्चतुरः प्रभेदानासाद्य भूयानविरुद्धवृत्तान्
बभावयं श्रीभगवान्जिनेन्द्रश्चतुर्म्मुखानीव मिथस्समानि ॥२०॥
देव-नन्दि-सिंह-सेन-सङ्घभेदवर्त्तिनां
देशभेदतः प्रबोधभाजि देवयोगिनां ।
वृत्ततस्समस्ततोऽविरुद्धधर्म्मसेविनां
मध्यतः प्रसिद्ध एष नन्दिसङ्घ इत्यभूत् ॥२१॥

नन्दिसङ्घे सदेशीयगणे गच्छे च पुस्तके
इंगुलेशबलिर्ज्जीयान्मंगलीकृतभूतलः ॥२२॥

तत्र सर्व्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्व्विजितेन्द्रिय-
स्सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्ध-कीर्त्तिकलापकः ।
विश्रुत-श्रुतकीर्त्ति-भट्टारकयतिस्समजायत
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥२३॥

कृत्वा विनेयान्कृतकृत्यवृत्तीन्निधाय तेषु श्रुतभारमुच्चैः ।
स्वदेहभारं च भुवि प्रशान्तस्समाधिभेदेन दिवं स भेजे ॥२४॥

(द्वितीयमुख)

गते गगनवाससि त्रिदिवमत्र यस्योच्छ्रिता
न वृत्तगुणसंहृतिर्व्वसति केवलं तद्यशः ।
अमन्दमदमन्मथप्रणमदुग्रचापोच्चल-
त्प्रतापहृतिकृत्तपश्चरणभेदलब्धं भुवि ॥२५॥

श्रीचारुकीर्त्तिमुनिरप्रतिमप्रभाव-
स्तस्मादभून्निजयशोधवलीकृताशः।
यस्याभवत्तपसि निष्ठुरतोपशान्ति-
श्चित्ते गुणे च गुरुता कृशता शरीरे ॥२६॥
यस्तपोवल्लिभिर्व्वेल्लिताघद्रुमो
वर्त्तयामास सारत्रयं भूतले।
युक्तिशास्त्रादिकं च प्रकृष्टाशय-
श्शब्दविद्याम्बुधेर्वृद्धिकृच्चन्द्रमा ॥२७॥
यस्य योगीशिनः पादयोस्सर्व्वदा
संगिनीमिन्दिरां पश्यतश्शार्ङ्गिणः।
चिन्तयेवाभवत्कृष्णता वर्ष्मणः
सान्यथा नीलता किं भवेत्तत्तनोः ॥२८॥
येषां शरीराश्रयतोऽपि वातो रुजः-प्रशान्ति वितताम तेषां।
बल्लालराजोत्थितरोगशान्तिरासीत्किलैतत्किमु भेषजेन ॥२९॥
मुनिर्म्मनीषा-बलतो विचारितं समाधिभेदं समवाप्य सत्तमः।
विहाय देहं विविधापदां विवेश दिव्यं वपुरिद्धवैभवं ॥३०॥
अस्तमायाति तस्मिन्कृतिनि यर्म्य-
म्णि नाभविष्यत्तदा पण्डितयति-
स्सोमः वस्तु मिथ्यातमस्तोमपिहितं
सर्व्वमुत्तमैरित्ययं वक्तृभिरुपाधोपि ॥३१॥
विबुधजनपालकं कुबुध-मत-हारकं।
विजितसकलेन्द्रियं भजत तमलं बुधाः ॥३२॥
धवल-सरोवर-नगरजिनास्पदमसदृशमाकृततदुरुतपोमहः ॥३३॥
यत्पादद्वयमेव भूपतिततिश्चक्रे शिरोभूषणं
यद्वाक्यामृतमेव कोविदकुलं पीत्वा जिजीवानिशं।
यत्कीर्त्या विमलं बभूव भुवनं रत्नाकरेणावृतं
यद्विद्या विशदीचकार भुवने शास्त्रार्त्थजातं महात् ॥३४॥
कृत्वा तपस्तीव्रमनल्पमेधास्सम्पाद्य पुण्यान्यनुपप्लुतानि।
तेषां फलस्यानुभवाय दत्तचेता इवाप त्रिदिवं स योगी ॥३५॥
तस्मिन्जातो भून्नि सिद्धान्तयोगी
प्रोद्यद्वाचा वर्द्धयन् सिद्धशास्त्रं।

शुद्धे व्योम्नि द्वादशात्मा करोर्घ-
र्य्यंद्वत्पद्मव्यूहमुन्निद्रयन्स्वैः ॥३६॥

दुर्व्वाद्युक्तं शास्त्रजातं विवेकी वाचानेकान्तार्थसम्भूतया यः ।
इन्द्रोऽग्न्या मेघजालोत्थया भूवृद्धां भूभृत्संहतिं वा विभेद ॥३७॥

यद्वत्पदाम्बुजनतावनिपालमौलि-
रत्नांशवोऽनिशममुं विदधुः सरागं ।
तदन्न वस्तु न वधून्नं च वस्त्रजातं
नो यौव्वनं न च बलं न च भाग्यमिद्धं ॥३८॥

प्रविश्य शास्त्राम्बुधिमेष धीरो जग्राह् पूर्व्वं सकलार्थरत्नं ।
परेऽसमर्थास्तदनुप्रवेशादेकैकमेवात्र न सर्व्वमापुः ॥३९॥

सम्पाद्य शिष्यान्स मुनिः प्रसिद्धा-
नध्यापयामास कुशाग्रबुद्धीन् ।
जगत्पवित्रीकरणाय धर्म्मं-
प्रवर्त्तनायाखिलसंविदे च ॥४०॥

कृत्वा भक्तिं ते गुरोस्सर्वशास्त्रं
नीत्वा वत्सं कामधेनुं पयो वा ।
स्वीकृत्योच्चैस्तत्पिबन्तोऽतिपुष्टाः
शक्तिं स्वेषां ख्यापयामासुरिद्धां ॥४१॥

तदीयशिष्येषु विदांवरेषु गुणैरनेकैः श्रुतमुन्यभिख्यः ।
रराज शैलेषु समुन्नतेषु स रत्नकूटैरिव मन्दराद्रिः ४२॥
कुलेन शीलेन गुणेन मत्या शास्त्रेण रूपेण च योग्य एषः ।
विचार्य्यं तं सूरिपदं स नीत्वा कृतक्रियं स्वं गणयाञ्चकार ॥४३॥
अथैकदा चिन्तयदित्यनेनाः स्थितिं समालोक्य निजायुषोऽल्पं ।
समर्प्यं चास्मिन् स्वगणं समर्थे तपश्चरिष्यामि समाधियोगं ॥४४॥
विचार्य्यं चैवं हृदये गणाग्रणीर्न्निवेदयामास विनेयबान्धवः ।
मुनिः समाहूय गणाग्रवर्त्तिनं स्वपुत्रमित्थं श्रुतवृत्तशालिनं ॥४५॥

(तृतीयमुख)

मदनन्वयादेष समागतोऽयं गणो गुणानां पदमस्य रक्षा ।
त्वयांग मद्वत्क्रियतामितीष्टं समर्प्पयामास गणी गणं स्वं ॥४६॥
गुरुविरहसमुद्यद्दुःखदूनं तदीयं
मुखं गुरुवचोभिस्स प्रसन्नीचकार ।

सपदि विमलिताब्द-श्लिष्ट-प्रांसु-प्रतानं
किमधिवसति योषिन्मन्दफूत्कारवातैः ॥४७॥

कृतिततिहितवृत्तस्सत्त्वगुप्तिप्रवृत्तो
जितकुमतविशेषश् शोषिताशेषदोषः ।
जितरतिपति-सत्वस्तत्त्व-विद्या-प्रभुत्व-
स्सुकृतफल-विधेयं सोऽगमद्दिव्यभूयं ॥४८॥

गतेऽत्र तत्सूरिपदाश्रयोऽयं
मुनीश्वरस्सङ्घमवर्द्धयत्तराम् ।
गुणैश्च शास्त्रैश्चरितैरनिन्दितैः
प्रचिन्तयन्तद्गुरुपादपङ्कजम् ॥४९॥

प्रकृत्य कृत्यं कृतसङ्घरक्षो विहाय चाकृत्यमनल्पबुद्धिः ।
प्रवर्द्धयन् धर्म्ममनिन्दितं तद्गुरूपदेशान् सफलीचकार ॥५०॥

अखण्डयदयं मुनिर्व्विमलवाग्भिरत्युद्धान्
अमन्द-मद-सञ्वरत्कुमत-वादिकोलाहलान् ।
भ्रमन्नमरभूमिभृद् भ्रमितवारिधिप्रोच्चलत्
तरंग-ततिविभ्रम-ग्रहण-चातुरीभिर्भुवि ॥५१॥

का त्वं कामिनि कथ्यतां श्रुतमुनेः कीर्त्तिः किमागम्यते
ब्रह्मन् मत्प्रियसन्निभो भुवि बुधस्सम्मृग्यते सर्व्वतः ।
नेन्द्रः किं स च गोत्रभिद् धनपतिः किं नास्त्यसौ किन्नरः
शेषः कुत्र गतस्स च द्विरसनो रुद्रः पशूनां पतिः ॥५२॥

वाग्देवताहृदय-रञ्जन-मण्डनानि
मन्दार-पुष्प-मकरन्दरसोपमानि ।
आनन्दिताखिलजनान्यमृतं वमन्ति
कर्णेषु यस्य वचनानि कवीश्वराणां ॥५३॥

समन्तभद्रोऽप्यसमन्तभद्रः
श्री-पूज्यपादोऽपि न पूज्यपादः ।
मयूरपिञ्चछोऽप्यमयूरपिञ्च्छ-
श्चित्रं विरुद्धोऽप्यविरुद्ध एषः ॥५४॥

एवं जिनेन्द्रोदितधर्म्ममुच्चैः प्रभावयन्तं मुनि-वंश-दीपिनं ।
अदृश्यवृत्त्या कलिना प्रयुक्तो वधाय रोगस्तमवाप दूतवत् ॥५५॥

यथा खलः प्राप्य महानुभावं तमेय पश्चात्कबलीकरोति ।
तथा शनैस्सोऽयमनुप्रविश्य वपुर्व्वबाधे प्रतिबद्धवीर्य्यः ॥५६॥

अङ्गान्यभूवन् सकृशानि यस्य न च व्रतान्यद्भुत-वृत्त-भाजः ।
प्रकम्पमापद्वपुरिद्धरोगान्न चित्तमावस्यकमत्यपूर्व्वं ॥५७॥
स मोक्ष-मार्ग्गे रुचिमेष धीरो मुदं च धर्म्मे हृदये प्रशान्ति ।
समादधे तद्विपरीतकारिण्यस्मिन् प्रसर्प्पत्यधिदेहमुच्चैः ॥५८॥
अङ्गेषु तस्मिन् प्रविजृम्भमाणे
निश्चित्य योगी तदसाध्यरूपतां ।
ततस्समागत्य निजाग्रजस्य
प्रणम्य पादाववदत् कृताञ्जलिः ॥५९॥
देव पण्डितेन्द्र योगिराज धर्म्मवत्सल
त्वत्पद-प्रसादतस्समस्तमर्जितं मया ।
मद्यशः श्रुतं व्रतं तपश्च पुण्यमक्षयं
किं ममात्र वर्त्तित-क्रियस्य कल्प-काङ्घिणः ॥६०॥
देहतो विनात्र कष्टमस्ति किं जगत्त्रये
तस्य रोग-पीडितस्य वाच्यता न शब्दतः ।
देय एव योगतो वपु-र्व्विसर्ज्जन-क्रम-
स्साधु-वर्ग-सर्व्व-कृत्य-वेदिनां विदांवर ॥६१॥
विज्ञाप्य कार्य्यं मुनिरित्थमर्थ्यं
मुहुर्म्मुहुर्व्वारयतो गणीशात् ।
स्वीकृत्य सल्लेखनमात्मनीनं
समाहितो भावयाति स्म भाव्यं ॥६२॥
उद्यद्-विपत-तिमि-तिमिङ्गिल-नक्र-चक्र
प्रोतुंग-मृत्यमृति-भीम-तरंग-भाजि ।
तीव्राजवञ्जव-पयोनिधि-मध्य-भागे
क्लिश्नात्यहर्न्निशमयं पतितस्स जन्तुः ॥६३॥
इदं खलु यदङ्गकं गगन-वाससां केवलं
न हेयमसुखास्पदं निखिल-देह-भाजामपि ।
अतोऽस्य मुनयः परं विगमनाय बद्धाशया
यतन्त इह सन्ततं कठिन-काय-तापादिभिः ॥६४॥
अयं विषयसञ्चयो विषमशेषदोषास्पदं
स्पृशज्जनिजुषामहो बहुमवेषुसम्मोहकृत् ।

अतः खलु विवेकिनस्तमपहाय सर्व्वंसहा
विशन्ति पदमक्षयं विविधकर्म्म-हान्युत्थितं ॥६५॥

(चतुर्थमुख)

उद्दीप्त-दुःख-शिखि-संगतिमङ्गयष्टि
तीव्राजवञ्जव-तपातप-ताप-तप्तां ।
स्रक्-चन्दनादिविषयामिष-तैल-सिक्तां
को वावलम्ब्य भुवि सञ्चरति प्रबुद्धः ॥६६॥

स्रष्टुः स्त्रीणामनेसां सृष्टितः किं
गात्रस्याधोभूमिसृष्ट्या च किं स्यात् ।
पुत्रादीनां शत्रु-कार्य्यं किमर्त्थं
सृष्टेरित्थं व्यर्त्थता धातुरासीत् ॥६७॥

इदं हि बाल्यं बहु-दुःख-बीज-
मियं वयःश्रीर्घन-राग-दाहा ।
स वृद्धभावोऽमर्षास्त्रशाला
दशेयमङ्गस्य विपत्फला हि ॥६८॥

लब्धं मया प्राक्तन-जन्मपुण्यात्
सुजन्म सद्गात्रमपूर्व्वबुद्धिः ।
सदाश्रयः श्रीजिन-धर्म्मसेवा
ततो विना मा च परः कृती कः ॥६९॥

इत्थं विभाव्य सकलं भुवन-स्वरूपं
योगी विनश्वरमिति प्रशमं दधानः ।
अर्द्धविमीलितदृगस्खलितान्तरंगः
पश्यन् स्वरूपमिति सोऽवहितः समाधौ ॥७०॥

हृदय-कमल-मध्ये सैद्धमाधाय रूपं
प्रसरदमृतकल्पैर्म्मूलमन्त्रैः प्रसिञ्चन् ।
मुनि-परिषदुदीर्ण्ण-स्तोत्र-घोषैस्सहैव
श्रुतमुनिरयमङ्गं स्वं विहाय प्रशान्तः ॥७१॥

अगमदमृतकल्पं कल्पमल्पीकृतैना
विगलितपरिमोहस्तत्र भोगाङ्गकेषु ।
विनमदमर-कान्तानन्द-बाष्पाम्बु-धारा-
पतन-हृत-रजोऽन्तर्द्धाम-सोपानरम्यं ॥७२॥

यतो याते तस्मिन् जगदजनि शून्यं जनिभृतां
मनो-मोह-ध्वान्तं गत-बलमपूर्वप्रतिहतं
व्यदीप्युद्यच्छोको नयन-जल-मुष्णं विरचयन्
वियोगः किं कुर्यादिह न महतां दुस्सहतरः ॥७३॥
पादा यस्य महामुनेरपि न कैर्भूभृच्छिरोभिर्धृता
वृत्तं सन्न विदांवरस्य हृदयं जग्राह कस्यामलं ।
सोऽयं श्रीमुनि-भानुमान् विधिवशादस्तं प्रयातो महान्
यूयं तद्विधिमेव हन्त तपसा हन्तुं यतध्वं बुधाः ॥७४॥

यत्र प्रयान्ति परलोकमनिन्द्यवृत्ता-
स्स्थानस्य तस्य परिपूजनमेव तेषां ।
इज्या भवेदिति कृताकृतपुण्यराशेः
स्थेयादित्यं श्रुतमुनेस्सुचिरं निषद्या ॥७५॥
इशु-शर-शिखि-विधु-मित-शक-
परिधावि-शरद्द्वितीयगाषाढ़े
सित-नवमि-विधु-दिनोदयजुषि
सविशाखे प्रतिष्ठितेयमिह ॥७६॥
विलीन-सकल-क्रियं विगत-रोधमत्यूर्ज्जितं
विलङ्घित-तमस्तुला-विरहितं विमुक्ताशयं ।
अवाङ्-मनस-गोचरं विजित-लोक-शक्त्यग्रिमं
मदीय-हृदयेऽनिशं वसतु धाम दिव्यं महत् ॥७७॥
प्रबन्ध-ध्वनि-सम्बन्धात्सद्रागोत्पादन-क्षमा ।
मंगराज-कवेर्व्वाणी वाणीवीणायतेतरां ॥७८॥

भाषानुवाद

१. कुशासनका विध्वंस करनेवाला मुक्तिलक्ष्मीका एक शासन और अजेय है माहात्म्य जिसका, ऐसा समुज्ज्वल जैन शासन जयशाली होवे ।

२. सब सुखोंका मूल और सब प्रकारके आतंकों (मनोवेदनाओं)को दूर करनेवाली प्रकाशमय ज्योति हमारे हृदयमें फैले ।

३. रत्नत्रयके प्रकाश करनेवाले, मूर्खता हटानेवाले, विविध नयके विवेचक और स्याद्वाद-सुधासे वितृप्त ये तीर्थङ्कर हमारे हृदयमें विराजमान होवें ।

४. त्रिभुवनमें विख्यात अन्तिम तीर्थनाथ श्री वर्धमानस्वामी हुए । इनकी देहकी कान्तिने सभी सृष्टिको प्रकाशित कर दिया ।

५. इनके रहते-रहते मुनियोंसे वंदित श्रेष्ठ संघाधिपति श्रीमान् गौतम मुनि हुए।

६-८. इन्हींके समुज्ज्वल वंशमें समुद्रसे चन्द्रमाके समान यतिराज श्री भद्रबाहुस्वामी हुए। इनकी कीर्त्ति तथा सिद्धशासन भूमण्डलमें व्याप्त थे। यद्यपि भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली, मुनीश्वरों(श्रुतकेवलियों)के अन्तमें हुए, तो भी ये सभी पण्डितोंके नायक तथा श्रुत्यर्थ प्रतिपादन करनेसे सभी विद्वानोंके पूर्ववर्त्ती थे।

९–१०. इन्होंके शिष्य शीलवान् श्रीमान् चन्द्रगुप्त मुनि हुए। इनकी तीव्र तपस्या उस समय भूमण्डलमें व्याप्त हो रही थी। इन्हींके वंशमें बहुतसे यतिवर हुए, जिनमें प्रखर तपस्या करनेवाले, मुनीन्द्र कुन्दकुन्दस्वामी हुए।

११–१३. तत्पश्चात् सभी अर्थको जाननेवाले उमास्वातिनामके मुनि इस पवित्र आम्नायमें हुए, जिन्होंने श्री जिनेन्द्र-प्रणीत शास्त्रको सूत्ररूपमें रूपान्तर किया। सभी प्राणियोंके संरक्षणमें तत्पर योगी उमास्वाति मुनिने गृध्रपक्षको धारण किया। तभीसे विद्वद्गण उन्हें गृध्रपिच्छाचार्य कहने लगे। इन योगी महाराजकी परम्परामें प्रदीपरूप महर्द्धिशाली तपस्वी बलाकपिच्छ हुए। इनके शरीरके संसर्गसे विषमयी हवा भी उस समय अमृत (निर्विष) हो जाती थी।

१४. इसके बाद जिनशासनके प्रणेता भद्रमूर्त्ति श्रीमान् समन्तभद्रस्वामी हुए। इनके वाग्वज्रके कठोर पातने वादिरूपी पर्वतोंको चूर्ण-चूर्ण कर दिया था।

१५–१७. इनकी परम्परामें श्री धर्मराज पूज्यपाद स्वामी हुए, जिनके बनाए हुए शास्त्रोंमें जैनधर्मका बहुत ही महत्त्व मालूम होता है। इन्होंने निरन्तर कृतकृत्य होकर संसार-हितैषिणी बुद्धिको धारण किया। अनंगके ताप हरनेवाले साक्षात् जिनभगवान्के जैसे विदित होनेसे लोगोंने इनका नाम 'जिनेन्द्र' रखा। औषधशास्त्रमें परम प्रवीण, विदेह-जिनेन्द्रदर्शनसे पवित्र होनेवाले श्रीमान् पूज्यपाद मुनि जयशाली रहें। इनके चरणकमलके धौत जलके संसर्गसे कृष्ण-लोहा भी सुवर्ण हो जाता था।

१८–१९ इनके बाद शास्त्रवेत्ता मुनियोंमें अग्रेसर अकलंकसूरि हुए। इन्हींके वाङ्मयरूपी किरणोंसे मिथ्यांधकारसे आच्छादित अर्थ संसारमें प्रकाशित हुआ। इनके स्वर्ग जानेपर इनकी परम्पराके मुनिसंघोंमे कई भेद (फूट) हुए।

२०. इनके बाद श्रीमान् योगी जिनेन्द्र भगवान् अविरुद्ध वृत्तिवाले चार संघोंको पाकर परस्पर समान चार मुखके ऐसे उन्हें समझकर शोभने लगे।

२१. क्रमशः देव, नन्दि, सिंह और सेन ये चार संघ निर्मित हुए, जिनमें नन्दिसंघ बड़ा प्रसिद्ध था।

२२. नन्दिसंघमें देशीयगण, पुस्तकगच्छके स्वामी इङ्गुलेश्वर, जिन्होंने सारे भूतलको मंगलमय कर दिया है, विजयशाली होवें।

२३–२५. उसी नन्दिसंघमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले, इन्द्रिय निग्रही, स्याद्वादमतके प्रचार करनेसे कीर्त्तिकलापको पानेवाले, प्रसिद्ध यतिवर श्रुतकीर्त्ति भट्टारक हुए, जिनकी प्रभामयी वचनामृतकिरणोंसे सारा अज्ञानांधकार विनष्ट हो गया। विनयी सज्जनोंको कृतकृत्य बनाकर तथा उनपर श्रुत-शास्त्रका भार समर्पित कर और पृथ्वीपर अपनी देहका भार रखकर समाधि-पूर्वक शान्त होकर उन्होंने स्वर्गधामको अलङ्कृत किया।

२६. उन महात्मा दिगम्बरके स्वर्ग चले जानेपर इस भूतलपर उनकी कीर्त्ति स्थिररूपसे रह गयी।

२७. इनके शिष्य अप्रतिम प्रतापशाली श्रीचारुकीर्त्ति मुनि हुए। इन्होंने अपने सुयशसे दिशाओंको भी समुज्ज्वल कर दिया। इनकी तपस्यामें निष्ठुरता, चित्तमें शान्ति, गुणमें गुरुता तथा शरीरमें कृशताकी मात्रा दिन-दिन बढ़ने लगी।

२८. जिनके तपरूपी वल्लीसे वलयित होकर वृक्षरूपी संसारमें रत्नत्रयका प्रचार होने लगा। इनकी युक्ति, शास्त्रादि तथा प्रकृष्टाशय विद्याम्बुधिके बढ़ानेके लिए चन्द्रमाके तुल्य थे।

२९. जिस योगिसिंह महात्माके चरणकमलोंकी सदा सेवा करनेवाली लक्ष्मी-को देखकर (अहो मुझे यह कैसे मिले) ईर्ष्यासे विष्णुका सारा शरीर काला हो गया, नहीं तो उनके काले होनेकी दूसरी वजह नहीं थी।

३०. जिनके शरीरके सम्पर्कमात्रसे ही सभी रोगोंकी शान्ति हो जाती थी। लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छूटा है, दवासे क्या ?

३१. मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपद्का स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया।

३२. इनके स्वर्ग चले जानेपर उन जैसा कोई विद्वान् नहीं हुआ। उस समय यह संसार अज्ञानांधकारसे आवृत्त था। ऐसा उत्तम वक्ताओंने कहा।

३३. इसलिए कुमतान्धकारके विनाशक अपनी सभी इन्द्रियोंको जीतनेवाले

और विद्वद्गणोंके रक्षक उन महात्माको हे विद्वद्वर्य्य ! भजो।

३४. जिनके चरणकमलको राजाओंने शिरोभूषण बनाया, जिनके वचनामृतका पानकर पण्डितगण अहर्निश जीते थे, जिनकी कीर्त्तिरूपी समुद्रसे परिवेष्टित होकर यह पृथ्वीतल धवलित हुआ और जिनकी विद्याने भूतलमें शास्त्रोंको विशद् बना दिया।

३५ वे महात्मा योगिराज एक चित्त होकर बड़ी कठिन तपस्याको करके तथा बहुत पुण्य इकट्ठा करके उन्हीं पुण्योंको उपभोग करनेके लिए स्वर्गको चले गये।

३६. उनके स्वर्ग चले जानेपर अपनी शास्त्रमयी वाणीसे सिद्धशास्त्रोंको शृङ्खलित करते हुए, शुद्धाकाशमें वर्त्तमान, शास्त्ररूपी पद्मोंको विकसित करते हुए सूर्य्यकेसे सिद्धांतयोगीने सज्जनोंके मनको प्रफुल्लित किया।

३७. इन्द्रका वज्र जिस प्रकार पर्वतोंका भेदन करता है उसी प्रकार इन्होंने एकान्त अर्थसे युक्त दुर्वादियोंकी उक्तिको खण्ड-खण्ड कर दिया।

३८. उनके चरणोंपर गिरे हुए राजाओंकी मुकुट-मणिकी धूलियोंने जिस प्रकारसे इनको रागवान् बनाया था, उस तरह सांसारिक वस्तु, स्त्री, वस्त्र तथा यौवनादि उनको रागी नहीं कर सके।

३९. ये महात्मा शास्त्ररूपी समुद्रमें प्रविष्ट होकर अनेक अर्थरूप रत्न निकाल लाये और उन रत्नोंको अपने शिष्योंको वितरित कर दिया।

४०. इन्होंने संसारको पवित्र करनेके लिए तथा धर्म्मका प्रचार होनेके लिए अपने शिष्योंको कुशाग्रबुद्धि बनाकर पढ़ाया।

४१. जिस प्रकार बछड़ा गायसे दूध ग्रहण करता है, उसी प्रकार गुरुमें असीम भक्तिकर उन सबोंने उनसे सब शास्त्रोंको ग्रहण कर संसारमें अपनी खूब कीर्त्ति फैलायी।

४२. जिस प्रकार समुन्नत पर्वतोंमें रत्नकूटोंसे मन्दराचल पर्वत शोभता है, उसी प्रकार उनके सकलशास्त्रवेत्ता शिष्योंमें अनेक गुणों द्वारा श्रुतमुनि शोभाको प्राप्त हुए।

४३. कुल, शील, गुण, मति, शास्त्र और रूप इन सबोंमें इन्हें योग्य समझकर सूरिपद दिया।

४४. इसके बाद सांसारिक स्थितिको सोचते हुए इन्होंने अपनी आयु थोड़ी जानकर यह विचारा कि अगर मेरा गण समर्थ हो जावे, तो मैं समाधियोग्य तपस्या करूँगा।

२१. क्रमशः देव, नन्दि, सिंह और सेन ये चार संघ निर्मित हुए, जिनमें नन्दिसंघ बड़ा प्रसिद्ध था।

२२. नन्दिसंघमें देशीयगण, पुस्तकगच्छके स्वामी इङ्गुलेश्वर, जिन्होंने सारे भूतलको मंगलमय कर दिया है, विजयशाली होवें।

२३–२५. उसी नन्दिसंघमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले, इन्द्रिय निग्रही, स्याद्वादमतके प्रचार करनेसे कीर्त्तिकलापको पानेवाले, प्रसिद्ध यतिवर श्रुतकीर्त्ति भट्टारक हुए, जिनकी प्रभामयी वचनामृतकिरणोंसे सारा अज्ञानांधकार विनष्ट हो गया। विनयी सज्जनोंको कृत्कृत्य बनाकर तथा उनपर श्रुत-शास्त्रका भार समर्पित कर और पृथ्वीपर अपनी देहका भार रखकर समाधि-पूर्वक शान्त होकर उन्होंने स्वर्गधामको अलङ्कृत किया।

२६. उन महात्मा दिगम्बरके स्वर्ग चले जानेपर इस भूतलपर उनकी कीर्त्ति स्थिररूपसे रह गयी।

२७. इनके शिष्य अप्रतिम प्रतापशाली श्रीचारुकीर्त्ति मुनि हुए। इन्होंने अपने सुयशसे दिशाओंको भी समुज्ज्वल कर दिया। इनकी तपस्यामें निष्ठुरता, चित्तमें शान्ति, गुणमें गुरुता तथा शरीरमें कृशताकी मात्रा दिन-दिन बढ़ने लगी।

२८. जिनके तपरूपी वल्लीसे वलयित होकर वृक्षरूपी संसारमें रत्नत्रयका प्रचार होने लगा। इनकी युक्ति, शास्त्रादि तथा प्रकृष्टाशय विद्याम्बुधिके बढ़ानेके लिए चन्द्रमाके तुल्य थे।

२९. जिस योगिसिंह महात्माके चरणकमलोंकी सदा सेवा करनेवाली लक्ष्मी-को देखकर (अहो मुझे यह कैसे मिले) ईर्ष्यासे विष्णुका सारा शरीर काला हो गया, नहीं तो उनके काले होनेकी दूसरी वजह नहीं थी।

३०. जिनके शरीरके सम्पर्कमात्रसे ही सभी रोगोंकी शान्ति हो जाती थी। लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छूटा है, दवासे क्या ?

३१. मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपद्का स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया।

३२. इनके स्वर्ग चले जानेपर उन जैसा कोई विद्वान् नहीं हुआ। उस समय यह संसार अज्ञानांधकारसे आवृत्त था। ऐसा उत्तम वक्ताओंने कहा।

३३. इसलिए कुमतान्धकारके विनाशक अपनी सभी इन्द्रियोंको जीतनेवाले

और विद्वद्गणोंके रक्षक उन महात्माको हे विद्वद्वर्य्य ! भजो ।

३४. जिनके चरणकमलको राजाओंने शिरोभूषण बनाया, जिनके वचनामृतका पानकर पण्डितगण अहर्निश जीते थे, जिनकी कीर्त्तिरूपी समुद्रसे परिवेष्टित होकर यह पृथ्वीतल धवलित हुआ और जिनकी विद्याने भूतलमें शास्त्रोंको विशद् बना दिया ।

३५. वे महात्मा योगिराज एक चित्त होकर बड़ी कठिन तपस्याको करके तथा बहुत पुण्य इकट्ठा करके उन्हीं पुण्योंको उपभोग करनेके लिए स्वर्गको चले गये ।

३६. उनके स्वर्ग चले जानेपर अपनी शास्त्रमयी वाणीसे सिद्धशास्त्रोंको शृङ्खलित करते हुए, शुद्धाकाशमें वर्त्तमान, शास्त्ररूपी पद्मोंको विकसित करते हुए सूर्य्यकेसे सिद्धांतयोगीने सज्जनोंके मनको प्रफुल्लित किया ।

३७. इन्द्रका वज्र जिस प्रकार पर्वतोंका भेदन करता है उसी प्रकार इन्होंने एकान्त अर्थसे युक्त दुर्वादियोंकी उक्तिको खण्ड-खण्ड कर दिया ।

३८. उनके चरणोंपर गिरे हुए राजाओंकी मुकुट-मणिकी धूलियोंने जिस प्रकारसे इनको रागवान् बनाया था, उस तरह सांसारिक वस्तु, स्त्री, वस्त्र तथा यौवनादि उनको रागी नहीं कर सके ।

३९. ये महात्मा शास्त्ररूपी समुद्रमें प्रविष्ट होकर अनेक अर्थरूप रत्न निकाल लाये और उन रत्नोंको अपने शिष्योंको वितरित कर दिया ।

४०. इन्होंने संसारको पवित्र करनेके लिए तथा धर्म्मका प्रचार होनेके लिए अपने शिष्योंको कुशाग्रबुद्धि बनाकर पढ़ाया ।

४१. जिस प्रकार बछड़ा गायसे दूध ग्रहण करता है, उसी प्रकार गुरुमें असीम भक्तिकर उन सबोंने उनसे सब शास्त्रोंको ग्रहण कर संसारमें अपनी खूब कीर्त्ति फैलायी ।

४२. जिस प्रकार समुन्नत पर्वतोंमें रत्नकूटोंसे मन्दराचल पर्वत शोभता है, उसी प्रकार उनके सकलशास्त्रवेत्ता शिष्योंमें अनेक गुणों द्वारा श्रुतमुनि शोभाको प्राप्त हुए ।

४३. कुल, शील, गुण, मति, शास्त्र और रूप इन सबोंमें इन्हें योग्य समझकर सूरिपद दिया ।

४४. इसके बाद सांसारिक स्थितिको सोचते हुए इन्होंने अपनी आयु थोड़ी जानकर यह विचारा कि अगर मेरा गण समर्थ हो जावे, तो मैं समाधियोग्य तपस्या करूँगा ।

४५. मनमें ऐसा सोचकर श्रुत-वृत्तशाली अपने गणाग्रवर्त्ती पुत्रको बुलाकर कहा कि :—

४६. हमारी वंश-परम्परासे ये गण चले आते हैं, इसलिए तुम भी इनको रक्षा करो, ऐसा कहकर गणीने अपने गणको उनके सुपुर्द किया।

४७. असह्य विरहजन्य दुःखसे ये बहुत दुःखी हुए, किन्तु इनके गुरुने कोमल वचनोंसे इनको प्रसन्न किया।

४८. अच्छे-अच्छे सुकृत कार्यको करनेवाले, कुमति तथा दोषको समूल नष्ट करनेवाले और कामदेवकी तत्त्वविद्याको जीतनेवाले ये दिव्य स्वर्गधाम-को गये।

४९–५०. उनके स्वर्गधाम चले जानेपर सूरिपदको धारण करनेवाले ये अपने संघकी शनैः शनैः वृद्धि करने लगे। किन्तु गुणोंको, शास्त्रोंको तथा उनके अनिन्द्य चरित्रोंको बार-बार स्मरण कर सदा अपने गुरुके चरणकमलकी ही चिन्ता करते थे।

५१. कृत्यको करके, अपने संघकी रक्षा करके तथा अपने अनिन्दित धर्म्मको उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए इन्होंने अपने गुरुके उपदेशको सफल किया।

५२. इन्हीं मुनिने अपनी विमल वाक्धारासे उद्धत वादियोंको शमन करते हुए संसारमें अपने धर्म्मका प्रचार किया।

५३. हे कामिनी ! तू कौन है ? क्या श्रुतमुनिकी कीर्त्ति तू इधर आ रही है ? क्या इन्द्र है, नहीं, यह तो गोत्रभिद् है। कुवेर तो नहीं है ? किन्तु यह किन्नर नहीं मालूम पड़ता है। ब्रह्मन् ! मैं अपने ऐसे किसी विद्वान् मुनिको चारों तरफ खोज रहा हूँ।

५४. सरस्वती देवीके हृदयको रञ्जित करनेवाली, मन्दार तथा मकरन्दके रसके सदृश और सभी संसारको आनन्दित करनेवाली कवीश्वरोंकी सुमधुर वाणी सबके कानोंमें अमृतधाराको भरती है।

५५. समन्तभद्र होते हुए भी असमन्तभद्र, श्रीपूज्यपाद होते हुए भी अपूज्य-पाद और मयूरपिच्छ धारण करते हुए भी मयूरपिच्छको नहीं धारण करनेवाले हुए। आश्चर्य है कि इनमें विरुद्ध अविरुद्ध दोनों प्रवृत्तियाँ थीं।

५६. इस प्रकार जिनेन्द्रद्वारा कहे गये धर्म्मकी बड़ी वृद्धि हुई, किन्तु पीछेसे गुप्त रीतिसे कलिकालसे प्रयुक्त जो रोग (पंचम कालका प्रभाव) है वह धर्म्ममें बाधा पहुँचाने लगा।

५७. जैसे दुष्ट सज्जनको अपनी सेवासे मुग्धकर पीछे सर्वग्रास करनेको

तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार पञ्चम कालका प्रभाव मुनियोंके प्रभावको रोककर उनके धर्म्म-कार्य्यमें बाधा पहुँचाने लगा।

५८–५९. जिनके अङ्गोंके खिन्न होने पर व्रतादिक नियम ज्यों-के-त्यों बने रहे, उस महात्माने मोक्षमें रुचि, धर्म्ममें हर्ष और हृदयमें शान्तिको अवधारित किया।

६०. अनन्तर महात्माने अपने शरीरमें रोगको बढ़ते हुए देखकर और उसको असाध्य समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राताके निकट आकर प्रणाम करके कहा।

६१–६२. हे पण्डितप्रवर योगिराज ! आपकी कृपासे मैंने सभी दोषोंको प्रक्षालित किया, यशको विस्तृत किया और बहुतसे व्रतोंको किया, परन्तु रोगग्रस्त शरीर रहनेकी अपेक्षा अब इस भूतलमें नहीं रहना ही अच्छा है।

६३. मुनिने संघको भी ऐसी सूचना देकर संघके बार बार रोकनेपर भी अन्तिम क्रिया—संल्लेखनाको सम्पादित कर अन्तिम समाधि लगायी।

६४ भयङ्कर विपत्तिरूप ग्रहादि जीवोंसे तथा मृत्युरूपी लहरोंसे युक्त व्यग्रतारूपी समुद्रके बीचमें गिरकर यह जीव रात-दिन क्लेशको पा रहा है।

६५. दिगम्बर जैन तथा सभी देहधारियोंके लिए यह दुःखमय शरीर त्याज्य ही समझना चाहिये। इसीसे मुनि-गण पुनर्जीवन रोकनेके लिए काय-कष्टकर अनेक तपस्यायें करते हैं।

६६ यह विषय-सञ्चय भीषण दोषका स्थान समझना चाहिए। इसलिए सहिष्णु विवेकी सांसारिक विषयको छोड़कर विविध कर्मको नष्ट करनेके लिए अक्षयपदको प्राप्त होते हैं।

६७. बड़े उद्दीप्त दुःखाग्निसे तप्त, अनेक रोगोंसे युक्त और माला, चन्दन आदि विषम पदार्थोंसे संवलित इस शरीरके धारण करनेसे संसारमें क्या लाभ है ?

६८. पापमयी स्त्रीकी सृष्टिसे क्या ? शरीरके नीचे सृष्टि करनेसे क्या प्रयोजन ? और पुत्रादिकोंमें शत्रुता क्यों रख छोडी गयी ? इसलिए मैं समझता हूँ कि ब्रह्माकी सृष्टि व्यर्थ ही है।

६९. पहले बाल्यावस्था ही दुःखका बीज है, तत्पश्चात् युवावस्थाको भी रोगका अड्डा ही समझना चाहिए और वृद्धावस्थाको भी ऐसा ही विषमय समझकर यह मानना पड़ता है कि इस शरीरकी दशा ही विपत्ति-परिणामको दिखानेवाली है।

७०. प्राक्तन जन्मके पुण्यसे मैंने सुन्दर शरीर, सुन्दर मनुष्य-जन्म, तथा

अच्छी बुद्धि पायी हैं, इसलिये मुझे सज्जनोंकी संगति, और श्रीजिनधर्म्मकी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि इनके बिना आदमी कृती नहीं हो सकता।

७१. सारे संसारका स्वरूप जानकर, योगिराट्–'सभी संसार विनश्वर है' ऐसा कहकर शान्तिको धारण करते हुए आधी आँखें मीचकर स्वरूपको देखते हुए समाधिको प्राप्त हुए।

७२. अपने हृदय-कमलमें स्वच्छ रूपको धारण कर तथा अमृतसदृश उन मूलमन्त्रोंसे सींचते हुए श्रुतमुनिने स्तोत्र-पाठके साथ-साथ शान्तिपूर्वक अपने शरीरको छोड़ा।

७३. जिनके उत्पन्न होनेपर अज्ञानान्धकारावृत्त यह संसार ज्ञानवान् होकर हर्षयुक्त हुआ, सो आज उन्हींके स्वर्ग जानेपर लोग उष्ण उच्छ्वास ले-लेकर आँखोंसे शोकाश्रुधारा बहा रहे हैं। ठीक है, बड़ोंका वियोग दुस्सह होता ही है।

७४. इन महामुनिके चरण-कमल प्राय: सभी राजाओंने शिरोधृत किए तथा इनकी सच्चरित्रता भी अपने हृदयमें सभी ऋषिवर्य्योंने गृहीत की। वही महात्मा आज भाग्यवश परलोकको चल बसे, इसलिये आप लोग भी उन्हींकेसे सद्धर्म्म-कार्योंको पालन करनेके लिये अवतरित होनेकी कोशिश करें।

७५. जिन महात्माओंके चरित्र अनिन्द्य हैं, वे जिस स्थानमें परलोकको जाते हैं उस स्थानकी भी पूजा करनी उन्हींकी पूजा करनी है, इसलिए जिन-धर्म्म-प्रचारक श्रुतमुनिका यह स्थान (निषद्या) सदा बना रहे।

७६. शक १३६५ वैशाख शुक्ल नवमी बुधवारको इन्होंने स्वर्गको प्रस्थान किया।

७७. सभी क्रियाको शान्त करनेवाला, अज्ञानान्धकारको हटानेवाला, सभी आशयसे रहित और अवाङ्-मनस-गोचर संसारमें सभी शक्तिको जीतनेवाला जो कोई दिव्य तेज है, वह मेरे हृदयमें सदा रहे।

७८. इस प्रबन्धकी ध्वनिसे सम्बन्ध रखनेवाली, तथा सच्चे प्रेमको उत्पन्न करनेवाली मङ्गराजकी वाणी वीणाकी-सी होवे।

सेनगण-पट्टावली

बद्धाष्टकर्मनिर्घाटनपटुशुद्धेद्धराद्धान्तप्रभाबोधितनवखण्डमण्डनश्रीनेमिसेन-सिद्धान्तीनाम् ॥२०॥

अतीवघोरतररतरांतपनसंतप्तत्रैलोक्यप्राणिगणतापनिवारणकारणच्छत्रायमान-श्रीमच्छ्रीछत्रसेनाचार्याणाम् ॥२१॥

उग्रदीप्ततप्तमहातपोयुक्तार्यसेनानाम् ॥२२॥

संयमसंपन्नश्रीलोहसेनभट्टारकाणाम् ॥२३॥

नवविधबालब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकपरब्रह्मध्यानाधीनश्रीब्रह्मसेनतपोधनानाम् ॥२४॥

भव्यजनकमलसूरसेनभट्टारकाणाम् ॥२५॥

दारुसंघसंशयतमोनिमग्नाशाधरश्रीमूलसंघोपदेशपितृवनस्वर्यातिकमलभद्र-भट्टारकाणाम् ॥२६॥

सारत्रयसंपन्नश्रीदेवेन्द्रसेनमुनिमुख्यानाम् ॥२७॥

विहारनगरीप्रवेशसमयसारस्कन्धाष्टकथनाल्पाख्यानबाणबाधाहरणगंगामध्य-पट्टाभिषेकनिरूपकत्रैविद्यकुमारसेनयोगीश्वराणाम् ॥२८॥

अंगवादिभङ्गशील-कडि(लि)ङ्गवादिकालानल-काश्मीरवादिकल्पान्तग्रीष्म-नैपालवादिस्वापानुग्रहसमर्थ-गौडवादिब्रह्मराक्षस-वालेवादिकोलाहल-द्राविड़वादि-त्राटनशील-तिलिङ्गवादिकलङ्ककारी-दुस्तरवादिमस्तकशूल- उड्डीयदेशेऽश्वगज-पतिसभासन्निविष्टप्रचण्डयमदण्डसुण्डालसुण्डादण्डखण्डनकालदण्डमण्डलदोर्दण्ड-मण्डितश्रीदुर्लभसेनाचार्याणाम् ॥२९॥

• तपःश्रीकर्णावतंसश्रीषेणभट्टारकाणाम् ॥३०॥

दुर्वार-दुर्वादिगर्वखर्वपर्वतचूर्णीकृतकुलिशायमानदक्षपरिराजलक्ष्मीसेनभट्टार-काणाम् ॥३१॥

नवलक्षधनुराधीशदशसप्तलक्षदक्षिणकर्णाटकराजेन्द्रचूडामौक्तिकमालाप्रभा-मधूनी(?)जलप्रवाहप्रक्षालितचरणनखबिम्बश्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥३२॥

अलकेश्वरपुराद्भुरवच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वरयवनरायशिरोमणिमह-म्मदपातशाहसुरत्राणसमस्यापूर्णादखिलदृष्टिनिपातेनाष्टादशवर्षप्रायप्राप्तदेवलोक-श्रीश्रुतवीरस्वामिनाम् ॥३३॥

भंभेरीपुरधनेश्वरभट्टभ्रष्टीकृतानलनिहितयज्ञोपवीतादिविजितसिंहब्रह्मदेव-सधर्म्मशर्मकर्मनिर्मलान्तःकरणश्रीमच्छ्रीधरसेनाचार्याणाम् ॥३४॥

हावभावविभ्रमविलासविलासाविभ्रमश्रृंगारभृङ्गीसमालिङ्गितबालमुग्धयौव-नविदग्धाखिलाङ्गनामनोवाक्कायनवविधबालब्रह्मचर्यव्रतोपेतश्रीदेवसेनभट्टार-काणाम् ॥३५॥

अनेकभव्यजनचातकनिकरजृषाधिकारकरणमधुरवाग्धारासारसयुतनूतनतन-पितृसदृशश्रीदेवसेनभट्टारकाणाम् ॥३६॥

तत्पट्टोदयाचलप्रभाकरनित्याद्येकान्तवादिप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डवचनाम्बर-षट्दर्शनस्थापनाचार्यषट्तर्कचक्रेश्वरडिल्लि (दिल्ली) सिंहासनाधीश्वरसार्वभौम-

साभिमानवादीभसिंहाभिनवत्रैविद्यश्रीमच्छ्रीसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥३७॥

तत्पट्टवार्द्धिवर्द्धनैकपूर्णचन्द्रायमानाभिनववादिसंस्कृतसर्वज्ञप्राकृतसंस्कृतपरमेश्वरवज्रपंजरसमानानाम्, अंगवंगकलिंगकाश्मीरकाम्भोजकर्णाटकमगधपालतुरलचेरल (मलह्) केरभाटंजितविद्वज्जनसेवितचरणारविन्दानां श्रीमूलसंघवृषभसेनान्वयपुष्करगच्छविरुदावलिविराजमानश्रीमद्गुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥३८॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिवाकरायमाणश्रीमत्कर्णाटकदेशस्थापितधर्मामृतवर्षणजलदायमानधीरतपश्चरणाचरणप्रवीणश्रीवीरसेनभट्टारकाणाम् ॥३९॥

विगताभिमानतपगतकषायांगादिविविधग्रन्थकरणैककुशलताभिमानश्रीयुक्तवीरभट्टारकाणाम् ॥४०॥

तत्पट्टे सर्वज्ञवचनामृतस्वादकृतात्मकायसद्धर्मोदधिवर्द्धनैकचन्द्रायमाणतर्ककर्कशपुष्करायमाणमन्मथमथनसमुद्भूतत्रिविधवैराग्यभावितभागधेयजनजनितसपर्याश्रीमाणिकसेनभट्टारकाणाम् ॥४१॥

तत्पट्टोदयाचलदिवाकरायमाणानेकशब्दार्थान्वयनिश्चयकरणविद्वज्जनसरोजविकाशनैकपटुतरायमानश्रीगुणसेनभट्टारकाणाम् ॥४२॥

तदनुसकलविद्वज्जनपूजितचरणकमलभव्यजनचित्तसरोजनिवासलक्ष्मीसदृशलक्ष्मीसेनभट्टारकाणाम् ॥४३॥

विबुधविविधजनमनइन्दीवरविकाशनपूर्णशशिसमानानां कविगमकवादवाग्मित्वचातुर्विधपाण्डित्यकलाविराजमानानां, नयनियमतपोबलसाधितधर्मभारधुरंधराणां, अखिलसुखकरणसोमसेनभट्टारकारणाम् ॥४४॥

मिथ्यामततमोनिवारणमाणिक्यरत्नसमदिव्यरूपश्रीमाणिक्यसेनभट्टारकाणाम् ॥४५॥

आशीविषदुष्टकर्कशमहारोगमदगजकेसरिसिंहसमानानां, अनेकनरपतिसेवितपादपद्मश्रीगुणभद्रभट्टारकाणाम् ॥४६॥

तत्पट्टे कुमुदवनविकाशनैकपूर्णचन्द्रोदयायमानललितविलासविनोदितत्रिभुवनोदरस्थविबुधकदम्बकचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोधरधवलितदिङ्मंडलानां, श्रीमदभिनवसोमसेनभट्टारकाणाम् ॥४७॥

तत्पट्टे महामोहान्धकारतमसोपगूढ़भुवनभवलग्नजनताभिदुस्तरकैवल्यमार्गप्रकाशनदीपकानां, कर्कशतार्किककणादवैयाकरणबृहत्कुम्भीकुम्भपाटनलंपटधियां निजस्वस्याचरणकणखञ्जायितचरणयुगाद्रेकाणां, श्रीमद्भट्टारकवर्यसूर्यश्रीजिनसेनभट्टारकाणाम् ॥४८॥

तत्पट्टोदयाचलप्रकाशकरदिवाकरायमाण-श्रीमज्जिनवरवदनविनिर्गतसप्त-भङ्गीनवनयोय(वचनोप)मनयात्मकद्वादशांगाब्धिवर्द्धनैकषोडशकलापरिपूर्णचन्द्राय-मानाज्ञानजाड्यमुद्रितभव्यजनचित्तसरससरसीरुहप्रबोधकस्ववचनरचनाडम्बरचारु-चातुरीचमत्कृतत्सुरगुरुप्रख्यायमाणस्वगणाग्रावलिसिंचनधारायमाणकोटिमुकुटमहा-वादिराजराजेश्वरकाव्यचक्रवर्त्तिश्रीमच्छ्रीसमन्तभद्रभट्टारकाणाम् ॥४९॥

श्रीमद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यवर्यमहावादवादीपितामहविद्वज्जनचक्रवर्तिकडि-कडिवाणपरिग्रहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षसेनगणाग्रगण्यपुष्पकरगच्छविरुदावलि-विराजमान दिल्लि(दिल्ली)सिंहासनाधीश्वरछत्रसेनतपोऽभ्युदयसमृद्धिसिध्यर्थं भव्यजनैः क्रियमाणैः जिनेश्वराभिषेकमवधारयन्तु सर्वे जनाः॥ इति सेन-पट्टावली ॥

भाषानुवाद

बन्धकारक अष्टकर्मोंसे छुड़ानेमें चतुर शुद्ध और वर्द्धित सिद्धान्तकी शोभा-से बोधित नवखण्डोंकी शोभा श्रीमान् नेमिसेन सिद्ध हुए ॥२०॥

भयंकर तापसे तप्त तीनों लोकोंके प्राणियोंके तापको दूर करनेवाले तथा उस तापको हटानेके लिए छत्रके समान श्री छत्रसेनाचार्य हुए ॥२१॥

अत्यधिक प्रकाशमान तथा तीव्र महातपसे युक्त श्री आर्यसेन आचार्य हुए ॥२२॥

अत्यन्त संयमी श्री लोहाचार्य भट्टारक हुए ॥२३॥

नव प्रकारके ब्रह्मचर्यव्रतके साथ परमेश्वरके ध्यानमें लीन श्री ब्रह्मसेन महातपस्वी हुए ॥२४॥

कमलरूपी भव्यजनोंके लिये सूर्यके समान श्री सूरसेन भट्टारक हुए ॥२५॥

काष्ठासंघके संशयरूपी अन्धकारमें डूबे हुओंको आशा प्रदान करनेवाले श्री मूलसंघके उपदेशसे पितृलोकके वनरूपी स्वर्गसे उत्पन्न श्री कमलभद्र भट्टा-रक हुए ॥२६॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयसे युक्त श्री मुनीश्वर देवेन्द्रजी हुए ॥२७॥

विहारनगरमें प्रवेशके समय सारस्कन्धाष्टकके कथनका आल्पाख्यान, वाण-बाधाका हरण और गंगके मध्य पट्टाभिषेक करनेवाले त्रैविद्य श्री योगीश्वर कुमारसेन हुए ॥२८॥

अंगवादियोंके लिये भंगशील, कलिंगवादियोंके लिये कालाग्नि, काश्मीर-वादियोंके लिये प्रलयकालकी उष्णता, नैपालवादियोंके लिये शाप-क्षमा करनेमें समर्थ, द्राविड़वालोंके लिये त्रोटनशील, गौड़वादियोंके लिये ब्रह्मराक्षस, केवल वादियोंके लिये कोलाहल, तैलंगवादियोंके लिये शिरोव्यथा, उड्डोयदेशमें गज, अश्व आदिके स्वामी, सभामें प्रविष्ट उग्र यमदण्ड, गजराजके सुण्डादण्डको छिन्न-भिन्न करनेवाले तथा कालदण्डके समान शोभित बाहुवाले श्री दुर्लभ-सेनाचार्य हुए ॥२९॥

तपस्याको ही कर्णभूषण माननेवाले श्रीमान श्रीषेण भट्टारक हुए ॥३०॥

दुर्वार्य दुर्वादियोंके गर्वरूपी पर्वतको चूर्ण करनेके लिये वज्रके समान दक्ष परिराज श्रीलक्ष्मीसेन भट्टारक हुए ॥३१॥

नवलक्ष धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिणके कर्नाटकीय सत्रह लाख राजाओंके मस्तकोंकी मणिमालाकी प्रभासे उद्भासित, मधुजलकी धारामें धुले हुए चरण-नखबिम्बवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुए ॥३२॥

अलकेश्वरपुरके भरोच नगरमें राजेश्वरस्वामी यवनराजाओंमें श्रेष्ठ मोहम्मद बादशाहकी रक्षाकी समस्याकी पूर्तिसे तथा दृष्ट होनेसे अठारह वर्षकी अवस्थामें स्वर्गगामी श्री श्रुतवीर स्वामी हुए ॥३३॥

भंभेरीपुरमें धनेश्वर भट्टसे भ्रष्टकर्म हुए अग्निमें फेंके हुए यज्ञोपवीतादिके द्वारा जीते हुए ब्रह्मदेवके धर्मके सुखसे शुद्धान्तःकरण श्रीमान् धरसेनाचार्य हुए ॥३४॥

हाव, भाव, विभ्रम और विलासकी शोभाके शृंगाररूपी भृङ्गीसे आलिंगित, बाल, मुग्ध और युवती नागरिक स्त्रियोंसे मन वचन कायसे मुक्त तथा नव प्रकारके ब्रह्मचर्यसे युक्त श्री देवसेन भट्टारक हुए ॥३५॥

अनेक शुभचिन्तक मनुष्यरूपी चातकके समूहको प्रसन्न करनेवाले मधुवात-की धारासे मुक्त नया शरीर बनानेवाले श्री देवसेन भट्टारक हुए ॥३६॥

उनके पट्टके उदयाचलके सूर्य, नित्यादि एकान्तवादियोंके प्रथम वचनके खण्डनकारक, उग्र विस्तारवाले छहों दर्शनके स्थापनके आचार्य, छःतर्कशास्त्रके स्वामी, दिल्ली-सिंहासनके अधिपति, सार्वभौम, अभिमानयुक्त वादीरूप हाथीके लिये सिंहके समान त्रिकालज्ञ श्री सोमसेन आचार्य हुए ॥३७॥

उनके पट्टकी वृद्धिसे पूर्ण चन्द्रमाके समान, अभिनववादी, संस्कृतके ज्ञाता प्राकृत और संस्कृत भाषाके स्वामी, वज्रपंजरके तुल्य अंग, बंग, कलिंग, काश्मीर, कम्भोज, कर्नाटक, मगध, पाल, तुरल, चेरल और केरलके जीते हुए

विद्वानोंसे सेवित चरणवाले श्री मूलसेन वृषभवंश, पुष्करगच्छकी विरुदावलीमें विराजमान गुणभद्र भट्टारक हुए ॥३८॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलके सूर्य कर्नाटक देशमें स्थापित किये गये धर्मको अमृतवर्षासे मेघके समान कठोर तपस्या करनेमें निपुण श्री वीरसेन भट्टारक हुए ॥३९॥

अभिमानरहित तपस्यासे नष्ट रागवाले, अंगादि विविध ग्रन्थ रचनेके पाण्डित्यके गर्वसे युक्त श्रीयुत वीर भट्टारक हुए ॥४०॥

उनके पट्टमें सर्वज्ञदेवके वचनामृतके स्वादसे सच्चे धर्मरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान, अपने शरीरको कर्कश तर्कोंसे कमलके समान बनानेवाले तथा मदनको मथन करनेसे त्रिविध वैराग्यको प्रकट करनेवाले, भावी भाग्यशाली जनोंसे पूजित श्री माणिकसेन भट्टारक हुए ॥४१॥

इनके पट्टरूपी उदयाचलपर सूर्यके समान, अनेक शब्द, अर्थ तथा अन्वयका निश्चय करनेवाले, विद्वज्जन-सरोजके प्रस्फुटित करनेमें अत्यन्त पटु श्री गुणसेन भट्टारक हुए ॥४२॥

इसके बाद सभी विद्वज्जनोंसे पूजित पादपद्मवाले और भव्यजनोंके चित्त-सरोजमें लक्ष्मीके समान निवास करनेवाले श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक हुए ॥४३॥

देवता तथा विविध जनोंके मनकुमुदको प्रकाशित करनेमें पूर्ण चन्द्रमाके समान, काव्य, न्याय, शास्त्रार्थ तथा वाग्मिता चतुर्विध पाण्डित्य-कलासे विराजमान, यम, नियम और तपोबलसे साधित धर्मके भारको धारण करनेवाले और सभीको सुखसम्पन्न करनेवाले श्री सोमसेन भट्टारक हुए ॥४४॥

मिथ्यामतके तमका निवारण करनेवाले, माणिक्यरत्न तथा रत्नत्रयसे युक्त श्री माणिक्यसेन भट्टारक हुए ॥४५॥

आशीविष सर्पके लिये दुष्ट कर्कश महोरगके समान, मत्त हस्तीके लिये सिंहके समान तथा अनेक राजाओंसे पूजित चरणकमलवाले श्री गुणभद्र भट्टारक हुए।

उन्हींके पट्टपर जनरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रोदयके समान, सुन्दर विलाससे विनोदित त्रिभुवन स्थित विबुध-समूहके लिये चन्द्रमाकी किरणोंके समान, यशोधरसे दिङ्मण्डलको भी उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् अभिनव सोमसेन भट्टारक हुए ॥४७॥

उनके पट्टपर महामोहान्धकारसे ढके हुए, संसारके जनसमूहको दुस्तर कैवल्यमार्गको प्रकाशित करनेमें दीपकके समान, दुर्द्धर्ष नैयायिक कणाद और

वैयाकरणोंके बृहत् कुम्भका उत्पाटन करनेमें उद्यत बुद्धिवाले भट्टारकवर्योंमें सूर्यके समान श्री जिनसेन भट्टारक हुए।

उनके पट्टरूपी उदयाचलको प्रकाशित करनेके लिये सूर्यके समान, श्री जिनेन्द्र भगवानके मुखसे विनिर्गत सप्तभङ्गी और नय आदिसे युक्त द्वादशांग रूपी समुद्रका वर्द्धन करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाके समान, अज्ञान और जड़तासे मुद्रित भव्यजनोंके चित्तसरोजको विकसित करनेवाले, अपने वचनकी रचना-चातुरीके आडम्बरसे बृहस्पतिको भी चमत्कृत करनेवाले, अपने गणाग्रवल्ली-को सींचनेके लिये धाराके समान, करोड़ों मुकुटवादियोंके राजराजेश्वर, काव्य-चक्रवर्ती श्री समन्तभद्र भट्टारक हुए ॥४९॥

श्रीमान् राजेश्वर गुरु वसुन्धराचार्य महावादियोंके पितामह, विद्वानोंमें चक्रवर्ती कड़ि-कड़ि (?) वाण परिग्रह विक्रमादित्य मध्याह्नके समय, कल्पवृक्षके समान, सेनगणके अग्रगण्य, पुष्करगच्छ-विरुदावलीसे विराजमान दिल्ली-सिंहासन-के अधिपति छत्रसेनकी तपस्याका अभ्युदय करनेवाली समृद्धिकी सिद्धिके लिये भव्यजनोंके द्वारा किये गये जिनेश्वराभिषेकको सब लोग अवधारण करें ॥५०॥

विरुदावली

"स्वस्ति श्रीजिननाथाय, स्वस्ति श्रीसिद्धसूरिणे (?)।
स्वस्ति पाठकसाधुभ्यां, स्वस्ति श्रीगुरवे तथा ॥१॥
मंगलं भगवानर्हन् मंगलं सिद्धसूरयः।
उपाध्यायस्तथा साधुर्जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥२॥
सद्धर्मामृतवर्षहर्षितजगज्जन्तुर्यथाम्भोधरः।
स्थैर्यान्मेरुरगाधताब्धिखनिसारोह्यपारक्षमः॥
दुर्वारस्मरवारिवाहपवनः शुम्भत्प्रभाभास्करः।
चन्द्रः सौम्यतया सुरेन्द्रमहितो वीरः श्रियो वः क्रियात् ॥३॥
स्वस्ति श्रीमूलसंघे प्रवरबलगणे कुन्दकुन्दान्वये च।
विद्यानन्दिप्रबन्धुं विमलगुणयुतं मल्लिभूषं मुनीन्द्रम् ॥
लक्ष्मीचन्द्रं यतीन्द्रं विबुधवरनुतं वीरचन्द्रं स्तुवेऽहम्।
श्रीमज्ज्ञानादिभूषं सुमतिसुखकरं श्रीप्रभाचन्द्रदेवम् ॥४॥

श्री जिननाथ मंगलमय हों, श्रीसिद्ध और सूरि मंगलमय हों, उपाध्याय और साधु मंगलमय हों और श्री गुरु मंगलमय हों ॥१॥

भगवान् अर्हंत मंगलमय हों, सिद्ध और आचार्य मंगलमय हों, उपाध्याय, साधु तथा जैनधर्म मंगलमय हों ॥२॥

सद्धर्म (जैनधर्म) रूपी अमृतकी वृष्टिसे जगत्‌के जीवोंको हर्षित करने वाले, अतएव मेघके समान, स्थिरतामें मेरु पर्वतके समान, अगाधतामें समुद्रके समान, संसारके सारका ऊहापोह करके पार जानेमें समर्थ, दुर्दमनीय कामदेव रूपी मेघमण्डलके लिए पवनस्वरूप, शुभ्र-दीप्तिके कारण सूर्यके समान, सौम्यता-के कारण चन्द्रमाके समान और देवताओंके अधिपति इन्द्र द्वारा पूजित (वे भगवान) वीर आप लोगोंका कल्याण करें ॥३॥

मंगलमय श्री मूलसंघमें श्रेष्ठ बलात्कारगणमें और कुन्दकुन्दकी शिष्य परम्परामें विद्यानन्दीके श्रेष्ठ बन्धु, शुभ गुणोंसे युक्त मल्लिभूषण मुनीन्द्रकी, लक्ष्मीचन्द्र यतीन्द्रकी, देवताओंसे वन्दित वीरचन्द्रकी और ज्ञान आदि गुणोंसे भूषित, सुमति तथा सुख देनेवाले श्रीप्रभाचन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

स्वस्ति श्रीवीरमहावीरातिवीरसन्मतिवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेववदनारविन्द-विनिर्गतदिव्यध्वनिप्रकाशनप्रवीणश्रीगौतमस्वामीगणधरान्वयश्रुतकेवलिश्रीमद्भद्र-बाहुयोगीन्द्राणां श्रीमूलसंघसंजनितनन्दिसंघप्रकाशबलात्कारगणाग्रणीपूर्वापरांश-वेदिश्रीमाघनन्दिभट्टारकाणां तत्पट्टकुमुदवनविकाशनचन्द्रायमानसकलसिद्धान्ता-दिश्रुतसागरपारंगतश्रीजिनचन्द्रमुनीन्द्राणाम् ॥१॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिवाकरश्रीएलाचार्यगृध्रपिच्छवक्रग्रीवपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्य-वर्य्याणाम् ॥२॥

दशाध्यायसमाक्षिप्तजैनागमतत्त्वार्थसूत्रसमूह-श्रीमदुमास्वातिदेवानाम् ॥३॥

सम्यक्‌दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणविचारचातुरीचमत्कारचमत्कृतचतुरवरनि-करचतुरशीतिसहस्रप्रमितिबृहदाराधनासारकर्तृ श्रीलोहाचार्याणाम् ॥४॥

अष्टादशवर्णविरचितप्रबोधसारादिग्रन्थश्रीयशःकीर्तिमुनीन्द्राणाम् ॥५॥

कुन्देन्दुहारतुषारकाशसंकाशयशोभरभूषितश्रीयशोनन्दीश्वराणाम् ॥६॥

मंगलमय श्रीवीर, महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान, तीर्थंकर परमदेवके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य वाणीको प्रकाशित करनेमें निपुण श्री गौतम-स्वामी गणधरके शिष्य श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु योगीन्द्रके श्रीमूलसंघसे उत्पन्न नन्दिसंघका प्रकाशस्वरूप बलात्कारगणमें अग्रेसर तथा पूर्व एवं अपर अंशको जाननेवाले श्रीमाघनन्दी भट्टारकके और उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करनेवाले चन्द्रस्वरूप सम्पूर्ण सिद्धान्त आदि आगमरूपी समुद्रके पारंगत श्री जिनचन्द्र मुनीन्द्रके ॥१॥

उनके पट्टरूपी उदयाचलपर उदित सूर्यके समान श्री एलाचार्य, गृध्र-पिच्छ, वक्रग्रीव, पद्मनन्दी और कुन्दकुन्दाचार्यवरोंके ॥२॥

जैनागमके सारको दश अध्यायोंमें "तत्त्वार्थसूत्र"के रूपमें प्रस्तुत करनेवाले श्रीमान् उमास्वातिदेवके ॥३॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तपस्या और विचारचातुर्यके चमत्कारसे चतुर लोगोंके समूहको चमत्कृत करनेवाले चौरासी हजार श्लोक परिमित 'बृहदाराधनासार'की रचना करनेवाले श्री लोहाचार्यके ॥४॥

अष्टादश वर्णों द्वारा 'प्रबोधसार' आदि ग्रन्थोंके रचयिता श्री यशःकीर्ति मुनिवरके ॥५॥

इन्दु, कुमुदकी माला, तुषार (हिम) और काश नामक तृणके समान स्वच्छ यशःपुञ्जसे भूषित श्रीयशोनन्दीश्वरके ॥६॥

जैनेन्द्रमहाव्याकरणश्लोकवार्तिकालङ्कारादि (?) महाग्रन्थकर्तृणां श्रीपूज्यपाददेवानाम् ॥७॥

सम्यग्दर्शनगुणगणमण्डितश्रीगुणनन्दिगणीन्द्राणाम् ॥८॥

परवादिपर्वतवज्रायमानश्रीवज्रनन्दियतीश्वराणाम् ॥९॥

सकलगुणगणाभरणभूषितश्रीकुमारनन्दिभट्टारकाणाम् ॥१०॥

निखिलविष्टपकमलवनमार्तण्डतपःश्रीसंजातप्रभादूरीकृतदिगन्धकारसिद्धान्तपयोधिशशधरमिथ्यात्वतमोविनाशनभास्करपरवादिमतेभकुम्भस्थलविदारणसिंहानां श्रीलोकचन्द्रप्रभाचन्द्रनेमिचन्द्रभानुनन्दिसिंहनन्दियोगीन्द्राणाम् ॥११॥

आचाराङ्गादिमहाशास्त्रप्रवीणताप्रतिबोधितभव्यजननिकरस्याद्वादसमुद्रसमुत्थसदुपन्यासकल्लोलाधःपातितसौगत-सांख्य-शैव-वैशेषिक - भाट्टचार्वाकादिगजेन्द्राणां श्रीमद्वसुनन्दिवीरनन्दिरत्ननन्दिमाणिक्यनन्दिमेघचन्द्रशान्तिकीर्तिमेरुकीर्तिमहाकीर्तिविष्णुनन्दिश्रीभूषणशीलचन्द्रश्रीनन्दिदेशभूषणानन्तकीर्तिधर्मनन्दिविद्यानन्दिरामचन्द्ररामकीर्तिनिर्भयचन्द्रनागचन्द्रनयनन्दिहरिचन्द्रमहीचन्द्रमाधवचन्द्रलक्ष्मीचन्द्रगुणचन्दवासवचन्द्रगणीन्द्राणाम् ॥१२॥

जैनेन्द्र महाव्याकरण और श्लोकवार्तिकालंकार (?) आदि महान् ग्रन्थोंके रचयिता श्रीपूज्यपाददेवके ॥७॥

सम्यक्दर्शनकी गुणराशिसे भूषित श्रीगुणनन्दो गणीन्द्रके ॥८॥

परवादीरूप पर्वतोंके लिए वज्रके समान श्रीवज्रनन्दी यतीन्द्रके ॥९॥

सकलगुणसमूहरूपी आभरणोंसे अलंकृत श्रीकुमारनन्दी भट्टारकके ॥१०॥

सम्पूर्ण संसार-रूप कमलवनको विकसित करनेमें सूर्यके समान, तपस्याकी छविसे उत्पन्न प्रभाद्वारा सभी दिशाओंके अन्धकारको दूर करनेवाले, सिद्धान्त-समुद्रकी पुष्टि करनेमें चन्द्रमास्वरूप, मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर करनेके

लिये सूर्य तुल्य, परवादियोंके सिद्धान्तरूपी हाथीके मस्तकको विदीर्ण करनेमें सिंहके समान श्री लोकचन्द्र, प्रभाचन्द्र, नेमिचन्द्र, भानुनन्दी और सिंहनन्दी योगीन्द्रोंके ॥११॥

आचारांग आदि महाशास्त्रोंकी प्रवीणता द्वारा भव्यजनोंको प्रतिबोधित करनेवाले, स्याद्वादरूपी समुद्रकी उत्ताल तरंगरूपी सद्युक्ति द्वारा सौगत सांख्य-शैव-वैशेषिक-भाट्ट (मीमांसक) और चार्वाक आदि गजेन्द्रोंको नीचे गिरानेवाले श्री वसुनन्दी, वीरनन्दी, रत्ननन्दी, माणिक्यनन्दी, मेघचन्द्र, शान्तिकीर्ति, मेरुकीर्ति, महाकीर्ति विष्णुनन्दी, श्रीभूषण, शीलचन्द्र, श्रीनन्दी, देशभूषण, अनन्तकीर्ति, धर्मनन्दी, विद्यानन्दी, रामचन्द्र, रामकीर्ति, निर्भयचन्द्र, नागचन्द्र, नयनन्दी, हरिचन्द्र, महीचन्द्र, माधवचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, गुणचन्द्र, वासवचन्द्र और लोकचन्द्र गणीन्द्रोंके ॥१२॥

सुरासुरखेचरनरनिकरर्चचितचरणाम्भोरुहाणां श्रुतकीर्तिभावचन्द्रमहाचन्द्र-मेघचन्द्रब्रह्मनन्दिशिवनन्दिविश्वचन्द्रस्वामिभट्टारकाणाम् ॥१३॥

दुर्धरतपश्चरणवज्राग्निदग्धदुष्टकर्म्मकाष्ठानां श्रीहरिनन्दिभावनन्दिस्वर-कीर्तिविद्याचन्द्ररामचन्द्रमाघनन्दिज्ञाननन्दिगङ्गकीर्तिसिंहकीर्तिहेमकीर्तिचारुकीर्ति-नेमिनन्दिनाभिकीर्तिनरेन्द्रकीर्तिश्रीचन्द्रपद्मकीर्तिपूज्यभट्टारकाणाम् ॥१४॥

सकलतार्किकचूडामणिसमस्तशाब्दिकसरोजराजितरणिनिखिलागमनिपुण-श्रीमदकलङ्कचन्द्रदेवानाम् ॥१५॥

ललितलावण्यलीलालक्षितगात्रत्रैविद्याविलासविनोदितत्रिभुवनोदरस्थविबुध-कदम्बचन्द्रकरनिकरसन्निभयशोभरसुधारसधवलितदिग्मण्डलानां श्रीललितकीर्त्ति-केशवचन्द्रचारुकीर्त्यभयकीर्तिसूरिवर्याणाम् ॥१६॥

देवता, राक्षस, खेचर और मनुष्यों द्वारा पूजित चरणकमलवाले श्रुतिकीर्ति, भावचन्द्र, महाचन्द्र, मेघचन्द्र, ब्रह्मनन्दी, शिवनन्दी और विश्वचन्द्र स्वामी भट्टारकोंके ॥१३॥

अत्यन्त कठिन तपस्यारूपी वज्राग्नि द्वारा बुरे कर्मरूपी काष्ठको जला चुकनेवाले हरिनन्दी, भावनन्दी, स्वरकीर्त्ति, विद्याचन्द्र, रामचन्द्र, माघनन्दी, ज्ञाननन्दी, गङ्गकीर्त्ति, सिंहकीर्त्ति, चारुकीर्त्ति, नेमिनन्दी, नाभिकीर्त्ति, नरेन्द्र-कीर्त्ति, श्रीचन्द्र और पद्मकीर्ति पूज्य भट्टारकोंके ॥१४॥

सभी तार्किकोंके शिरोभूषण, समस्त वैयाकरणरूपी कमलोंके लिए सूर्य और सम्पूर्ण आगममें निपुण श्रीअकलङ्कचन्द्रदेवके ॥१५॥

मञ्जुल लावण्यपूर्ण शरीरवाले, तीनों विद्याओंके विलाससे त्रिभुवनके विद्वानोंको आनन्दित करनेवाले और चन्द्रकिरणोंके समान स्वच्छ यश:पुञ्ज-रूपी सुधारससे दिशाओंको समुज्ज्वल करनेवाले श्री ललितकीर्त्ति, केशवचन्द्र, चारुकीर्त्ति और अभयकीर्त्ति आचार्यवरोंके ॥१६॥

जाग्रज्जिनेन्द्रसिद्धान्तसमशत्रुमित्रप्रेयोरसाकुलितसिंहगजादिसेव्यानां श्रीवसन्त-कीर्त्तिश्रीवादिचन्द्रविशालकीर्त्तिशुभकीर्तियतिराजानाम् ॥१७॥

राजाधिराजगुणगणविराजमानश्रीहम्मीरभूपालपूजितपादपद्मसैद्धान्तिकसंयम-समुद्रचन्द्रश्रीधर्मचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥१८॥

तत्पदाम्बुजभानुस्याद्वादवादिवादीश्वरश्रीरत्नकीर्तिपुण्यमूर्तीनाम् ॥१९॥

महावादवादीश्वरवादिपितामह-प्रमेयकमलमार्तण्डाद्यनेकग्रन्थविधायक-श्रीमहा-पुराणस्वयम्भूसप्त(?)भक्तिपरमात्मप्रकाशसमयसारादिसूत्रव्याख्यानसर्ज्जनसंजात-कोविदसभाकीर्त्तिभट्टारकाणां श्रीमत्प्रभाचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२०॥

अनेकाध्यात्मशास्त्रसरोजषण्डविकासनमार्तण्डमण्डलयथाख्यातचारित्रसुविधा-नसन्तोषिताखण्डलानां श्रीपद्मनन्दिदेवभट्टारकाणाम् ॥२१॥

त्रैविद्यविद्वज्जनशिखण्डमण्डलीभवत्कायधर(?)कमलयुगलावन्तीदेशप्रतिष्ठो-पदेशकसप्तशत-कुटुम्ब-रत्नाकरज्ञातिसुश्रावकस्थापकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिशुभकीर्ति-भट्टारकाणाम् ॥२२॥

श्री जिनेन्द्रके सिद्धान्तोंको जाग्रत करनेवाले, शत्रु, मित्र और उदासीन सबको प्रीतिरससे वशीभूत करनेवाले एवं सिंह, हाथी आदिसे सेव्य श्रीवसन्त-कीर्ति, श्रीवादिचन्द्र, विशालकीर्त्ति और शुभकीर्ति यतिवरोंके ॥१७॥

राजाओंके राजा और गुणोंसे अलंकृत श्री हम्मीरराजा द्वारा पूजितचरण-कमलवाले और सिद्धान्तसम्बन्धी संयमरूपी समुद्रको सम्वृद्ध करनेवाले चन्द्रमाके समान श्री धर्मचन्द्र भट्टारकके ॥१८॥

उनके पदाब्जोंको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यस्वरूप, स्याद्वाद-वादियोंके प्रमुख पुण्यमूर्त्ति रत्नकीर्त्तिके ॥१९॥

महावाद-वादीश्वर, वादि-पितामह, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता, श्रीमहापुराण, स्वयम्भू, सप्त (?) भक्ति, परमात्मप्रकाश और समय-सार आदि सिद्धान्त-ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेवाले परम शास्त्रज्ञ सभाकीर्त्ति भट्टारक (?) और श्रीप्रभाचन्द्र भट्टारकके ॥२०॥

अनेक अध्यात्मशास्त्ररूपी कमलसमूहको विकसित करनेवाले सूर्यस्वरूप, यथाख्यातचारित्रके विधान द्वारा देवेन्द्रको प्रसन्न करनेवाले श्रीपद्मनन्दिदेव भट्टारकके ॥२१॥

तीनों विद्याओंके ज्ञाताओंमें शिरोभूषण-स्वरूप, मण्डलाकार परिवेष्टित संसारियोंद्वारा सेवित युगल (चरण) कमलवाले (?), अवन्तीदेशकी (मूर्त्ति) प्रतिष्ठामें उपदेश देनेवाले सातसौ परिवार-रूपी समुद्रके अन्तर्गत ज्ञाति-सुश्रावकोंके उद्धारक श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति और शुभकीर्त्ति भट्टारकोंके ॥२२॥

तत्पट्टोदयसूर्याचार्यवर्यनवविधब्रह्मचर्यपवित्रचर्यामन्दिरराजाधिराजमहामण्डलेश्वरवज्रांगगंगजयसिंहव्याघ्रनरेन्द्रादिपूजितपादपद्मानां, अष्टशाखाप्राग्वाटवंशावतंसानां, षड्भाषाकविचक्रवर्त्तिभुवनतलव्याप्तविशदकीर्त्तिविश्वविद्याप्रासादसूत्रधारसद्ब्रह्मचारिशिष्यवरसूरिश्रीश्रुतसागरसेवितचरणसरोजानां, श्रीजिनयात्राप्रतिष्ठाप्रासादोद्धरणोपदेशनैकदेशभव्यजीवप्रतिबोधकानां, श्रीसम्मेदगिरिचम्पापुरीउज्जयन्तगिरिअक्षयवटआदीश्वरदीक्षासर्वसिद्धक्षेत्रकृतयात्राणां, श्रीसहस्रकूटजिनबिम्बोपदेशकहरिराजकुलोद्योतकराणां, श्रीरविनन्दिपरमाराध्यस्वामिभट्टारकाणाम् ॥२३॥

तत्पट्टोदयाचलबालभास्करप्रवरपरवादिगजयूथकेसरिमण्डपगिरिमन्त्रवादसमस्याप्तचन्द्रपुर्विकटवादिगोपदुर्गमेधाकर्षणभविकजनसस्यामृतवाणिवर्षणसुरेन्द्रनागेन्द्रादिसेवितचरणारविन्दानां, मालवमुलतानमगधमहाराष्ट्रगौडगुर्ज्जरांगवंगतिलंगादिविविधदेशोत्थभव्यजनप्रतिबोधनपटुवसुन्धराचार्यग्यासदीनसभामध्यप्राप्तसम्मानश्रीपद्मावत्युपासकानां श्रीमल्लिभूषणभट्टारकवर्य्याणाम् ॥२४॥

उनके पट्ट पर उदित सूर्यके समान, आचार्यप्रवर, नौ प्रकारके ब्रह्मचर्य द्वारा चारित्ररूपी मन्दिरको पवित्र करनेवाले, राजाधिराज महामण्डलेश्वर-वज्रांग, गंग और जयसिंह इन श्रेष्ठ राजाओं द्वारा पूजित चरणकमलवाले, अष्टशाख प्राग्वाट् वंशमें उत्पन्न, छः भाषाओंमें कविसम्राट्, पृथ्वीतलपर विस्तृत स्वच्छ कीर्त्तिवाले; अखिल विद्याओंके प्रासादके सूत्रधार, पूर्ण ब्रह्मचारी शिष्य-श्रेष्ठ सूरी श्री श्रुतसागरजी द्वारा सेवित चरणकमलवाले, श्री जिन-यात्रा, प्रतिष्ठा और मन्दिरोद्धारके उपदेशों द्वारा मुख्य मुख्य देशोंके भव्य जीवोंको उद्बोधित करनेवाले, श्रीसम्मेदगिरि, चम्पापुरी, उज्जयंतगिरि, आदीश्वरदीक्षास्थान, अक्षयवट, और सभी सिद्धक्षेत्रोंकी यात्रा करनेवाले, श्री सहस्रकूट जिनबिंबोपदेशक एवं हरिवंशको उद्भासित करनेवाले श्रीरविनन्दी नामक परम-आराध्य स्वामी भट्टारकके ॥२३॥

उनकी पट्ट (गद्दी) रूपी उदयाचलपर उगनेवाले प्रातःकालिक सूर्यके समान, अत्यन्त श्रेष्ठ अन्यमतवादीरूपी हाथियोंके समूहके लिए सिंहस्वरूप, मण्डपगिरि (मांडलगढ़) के मन्त्रवाद समस्यामें चन्द्रमाको पवित्रता प्राप्त करनेवाले, विकट परवादीरूप गोपोंके (अजेय) दुर्गको अपनी प्रखर बुद्धिसे वशमें करनेवाले, भव्यजनरूपी फसलपर अमृत समान वाणीकी वर्षा करनेवाले, देवेन्द्र और नागेन्द्रसे सेवित चरणकमलवाले, मालव-मुलतान-मगध-महाराष्ट्र-सौराष्ट्र-गौड-अंग-बंग-आन्ध्र आदि विविध देशोंके भव्यजनोंको उपदेश देनेमें निपुण, भूमण्डल भरके आचार्य, गयासुद्दीनकी सभामें सम्मान प्राप्त करनेवाले और श्रीपद्मावतीदेवीके उपासक श्रीमल्लिभूषण महाभट्टारकके ॥२४॥

तत्पट्टकुमुदवनविकासनशरत्सम्पूर्णचन्द्राणां, जैनेन्द्रकौमारपाणिन्यमरशाकटायनमुग्धबोधादिमहाव्याकरणपरिज्ञानजलप्रवाहप्रक्षालितानेकशिष्यप्रशिष्यशेमुखीसंस्थितशब्दाज्ञानजम्बालानामनेकतपश्चरणकरणसमुत्थकीर्त्तिकलापकलितरूपलावण्यसौभाग्यभाग्यमण्डितसकलशास्त्रपठनपाठनपण्डितविविधजीर्णनूतनस्फुटितप्रासादविधायकश्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रबिम्बप्रतिष्ठादिमहामहोत्सवकारकाणां तिमल-(?) तौलवतिलंगकन्नड (?) कर्णाटभोटादिदेशोत्पन्ननरेन्द्रराजाधिराजमहाराजराजराजेश्वरमहामण्डलेश्वरभैरवरायमल्लिरायदेवरायबंगरायप्रमुखाष्टादशनरपतिपूजितचरणकमलश्रुतसागरपारंगतवादवादीश्वरराजगुरुवसुन्धराचार्यभट्टारकपदप्राप्तश्रीवीरसेनश्रीविशालकीर्त्तिप्रमुखशिष्यवरसमाराधितपादपद्मानां, श्रीमल्लक्ष्मीचन्द्रपरमभट्टारकगुरूणाम् ॥२५॥

उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिए शरदृतुके पूर्ण चंद्रमाके समान जैनेन्द्र, कौमार, पाणिनि, अमर, शाकटायन, मुग्धबोध आदि महाव्याकरणके परिज्ञानरूपी जल-प्रवाहसे अनेक शिष्य-प्रशिष्योंकी बुद्धिमें स्थित शब्दसम्बन्धी अज्ञानरूपी पंकको धो देनेवाले, विविध तपस्याओंके द्वारा प्रसारित यशःसमूहवाले और रूपलावण्यसे भूषित तथा सौभाग्यसे मण्डित, सभी शास्त्रोंके पठन-पाठनमें पंडित, अनेक पुराने तथा नये टूटे-फूटे मन्दिरोंके उद्धारक श्रीजिनेन्द्रकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा आदि बड़े-बड़े उत्सवोंके करनेवाले, तौलव-आन्ध्र-कर्णाट-लाट-भोट आदि देशोंके नरेन्द्र-राजाधिराज-महाराज-राजराजेश्वर-महामण्डलेश्वर भैरवराय-मल्लिराय-देवराय-बंगराय इत्यादि अठारह राजाओंसे पूजित चरणकमलवाले, शास्त्ररूपी सागरके पारंगत, वादियोंके ईश्वर, राजाओंके गुरु, भूमण्डलके आचार्य, भट्टारकपदको प्राप्त श्रीवीरसेन, श्रीविशालकीर्त्ति प्रभृति शिष्यों द्वारा आराधित चरणकमलवाले श्रीलक्ष्मीचन्द परम भट्टारकके ॥२५॥

तद्वंशमण्डनकन्दर्पसर्पदर्पदलनविश्वलोकहृदयरञ्जनमहाव्रतिपुरन्दराणां, नवसहस्रप्रमुखदेशाधिराजाधिराजमहाराजश्रीअर्जुनजीयराजसभामध्यप्राप्तसम्मानानां, षोडशवर्षपर्यन्तशाकपाकपक्वान्नशाल्योदनादिघृतप्रभृतिसरसाहारपरिवर्जितानां, दुस्चारादिसर्वगर्वपर्वतचूरीकरणवज्रायमानप्रथमवचनखण्डनपण्डितानां, व्याकरणप्रमेयकमलमार्तण्डछन्दोलंकृतिसारसाहित्यसंगीतसकलतर्कसिद्धान्तागमशास्त्रसमुद्रपारंगतानां, सकलमूलोत्तरगुणमणिमण्डितविबुधवरश्रीवीरचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२६॥

तत्पट्टोदयाद्रिदिनमणिनिखिलविपश्चिच्चक्रचूडामणिसकलभव्यजनहृदयकुमुदवनविकासनरजनीपतिपरमजैनस्याद्वादनिष्णातशुद्धसम्यक्त्वजनजातगताभिमानिमिथ्यावादिमिथ्यावचनमहीधरशृङ्गशातनप्रचण्डविद्युद्दण्डानां, संस्कृताद्यष्टमहाभाषाजलधरकरणछटासन्तर्पितभव्यलोकसारंगाणां, चतुरशितिवादविराजमानप्रमेयकमलमार्तण्डन्यायकुमुदचंद्रोदयराजवार्त्तिकालंकारश्लोकवार्त्तिकालंकाराप्तपरीक्षापरीक्षामुखपत्रपरीक्षाष्टासहस्री-प्रमेयरत्नमालादिस्वमतप्रमाणशशधरमणिकण्ठकिरणावलीवरदराजीचिन्तामणिप्रमुखपरमतप्रकरणेन्द्रचान्द्रमाहेन्द्रजैनेन्द्रकाशकृत्स्नकालापकमहाभाष्यादिशब्दागमगोम्मटसारत्रैलोक्यसारलब्धिसारक्षपणसारजम्बूद्वीपादिपंचप्रज्ञप्तिप्रभृतिपरमागमप्रवीणानामनेकदेशनरनाथनरपतितुरंगपतिगजपतियवनाधीशसभासम्प्राप्तसम्मानश्रीनेमिनाथतीर्थंकरकल्याणपवित्रश्रीउज्जयन्तशत्रुंजयतुंगीगिरिचूलगिर्य्यादिसिद्धक्षेत्रयात्रापवित्रीकृतचरणानामंगवादिभंगशील-कलिंगवादिकपूंरकालानलकाश्मीरवादिकदलीकृपाण-नेपालवादिशापानुग्रहसमर्थ-गुर्जरवादिदत्तदण्ड-गौडवादिगण्डमेरुदण्डदत्तदण्ड-हम्मीरवादिब्रह्मराक्षस-चोलवादिहल्लकल्लोलकोलाहल-द्राविडवादित्राटनशील-तिलंगवादिकलंककारि-दुस्तरवादिमस्तकशूल-कोंकणवादिवरोत्पातमूल-व्याकरणवादिमर्दित-मरट्टतार्किकवादिगोधूमघरट्ट-साहित्यवादिसमाजसिंहज्योतिष्कवादिभूर्णी (?) तर्लिहमन्त्रवादियन्त्रगोत्रतन्त्रवादिकलप्रकुचकुम्भनिवोल (?) रत्नवादियत्नकारसमस्तानवद्यविविधविद्याप्रासादसूत्रधाराणां, सकलसिद्धान्तवेदिनिर्ग्रन्थाचार्यवर्यशिष्यश्रीसुमतिकीर्त्तिस्वपरदेशविख्यातशुभमूर्त्तिश्रीरत्नभूषणप्रमुखसूरिपाठकसाधुसंसेवितचरणसरोजानां, कलिकालगौतमगणधराणां, श्रीमूलसंघसरस्वतीगच्छशृंगारहाराणां, गच्छाधिराजभट्टारकवरेण्यपरमाराध्यपरमपूज्यभट्टारकश्रीज्ञानभूषणगुरूणाम् ॥२७॥

उनके वंशके भूषण, कामदेवरूपी सर्पके गर्वको चूर करनेवाले, अखिल लोकके हृदयको आनन्दित करनेवाले, महाव्रतिश्रेष्ठ, नवसहस्र प्रधान देशोंके अधिपतियोंके अधिपति महाराज श्रीअर्जुनकी राजसभामें सम्मान पानेवाले,

सोलह वर्ष तक शाक-पाक, पक्वान्न, शालीका भात और घी आदि रसयुक्त आहारको छोड़नेवाले, दुस्वारादि (?) के सम्पूर्ण गर्वरूपी पर्वतको चूर्ण करनेमें वज्रके सदृश, प्रथम-वचनकाखंडन करनेमें पंडित, व्याकरण-प्रमेयकमलमार्तण्ड-छंद-अलङ्कार-सार-साहित्य-संगीत-सम्पूर्ण-तर्क-सिद्धान्त और आगमशास्त्ररूपी समुद्रके पारंगत, सम्पूर्ण मूलोत्तरगुणरूपी मणियोंसे भूषित, विद्वानोंमें श्रेष्ठ श्रीवीरचन्द्र भट्टारकके ॥२६॥

उनके पट्ट (गद्दी) रूपी उदयाचलपर उदित सूर्यके समान, सम्पूर्ण विद्वन्मण्डलीके चूड़ामणि, सभी भव्यजनोंके हृदयरूपी कुमुद-वनको विकसित करनेके लिए रजनीपति, परम जैन स्याद्वादमें निष्णात, शुद्ध सम्यक्त्वको प्राप्त, जात और मृत (?) अभिमानी मिथ्यावादियोंके मिथ्यावचनरूपी महीधरों (पर्वतों) के श्रृंगको तोड़नेमें प्रचंड विद्युत्दण्डके सदृश, संस्कृत आदि आठ महाभाषारूपी जलधरहेतुक छटाद्वारा भव्यजनरूपी मयूरादि पक्षियोंको तृप्त करनेवाले, चौरासी वादियोंमें विराजमान, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड-न्यायकुमुदचन्द्रोदय-राजवार्त्तिकालंकारश्लोकवार्त्तिकालंकार-आप्तपरीक्षा-परीक्षामुख-पत्रपरीक्षा-अष्टसहस्री- प्रमेयरत्नमाला आदि अपने मतके प्रमाणरूपी चन्द्रमणिको कण्ठमें धारण करनेवाले, किरणावली-वरदराज-चिंतामणि प्रभृति परमतमें, ऐन्द्र, चान्द्र, माहेन्द्र, जैनेन्द्र काश,कृत्स्न, कापालक और महाभाष्यादि शब्दशास्त्रमें, गोम्मटसार, त्रैलोक्यसार, लब्धिसार, क्षपणसार और जम्बूद्वीपादि पंचप्रज्ञप्ति-प्रभृति परम आगमशास्त्रोंमें प्रवीण, अनेक देशोंके नरनाथ, नरपति, अश्वपति, गजपति और यवन अधिपतियोंकी सभाओंमें सम्मान प्राप्त करनेवाले, श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरके कल्याणसे पवित्र किये हुए, श्री उज्जंयन्त, शत्रुंजय, तुंगीगिरि, चूलगिरि आदि सिद्धक्षेत्रोंकी यात्रासे अपने चरणोंको पवित्र किये हुए, अंगदेशके वादियोंको भग्न करनेवाले, कलिंग देशके वादीरूपी कपूरके लिए भयंकर अग्निके समान, काश्मीरके वादीरूपी कदलीके लिए तलवारके समान, नेपालके वादियोंको शाप और अनुग्रह करनेकी शक्ति रखनेवाले, गुजरातके वादिओंको दण्ड देनेवाले, गौड़ (बंगालका हिस्सा) के वादीरूपी गंडभेरुदण्ड पक्षीको दण्ड देनेवाले, हम्मीर (राजा) के वादियोंके लिए ब्रह्मराक्षसके सदृश, चोलके वादियोंमें महान् कोलाहल मचानेवाले, द्रविड़ वादियोंको त्राटन देनेवाले, तिलंगवादियोंको लांछित करनेवाले, दुस्तर (कठिन) वादियोंके लिए मस्तकशूल रोगके समान, कोंकण देशके वादियोंके लिये उत्कट वातमूल रोगके समान, व्याकरण शास्त्रके वादियोंको चकनाचूर करनेवाले, तर्कशास्त्रके वादियोंको गेहूँका आटा बनानेवाले, साहित्यके वादि-समाजके लिए सिंहसदृश, ज्योतिषके वादियोंको भूमिसात् करनेवाले, मंत्रवादियोंको यन्त्र (कोल्हू) में डालनेवाले,

तंत्रवादियोंकी छाती विदीर्ण करनेवाले, रत्नवादियोंका यत्न करनेवाले, सम्पूर्ण निर्दोष विविध विद्यारूपी प्रासाद (भवन) के सूत्रधार, सभी सिद्धान्तोंको जाननेवाले, जैनाचार्यप्रवर, शिष्य श्री सुमतिकीर्त्ति, अपने और दूसरे देशोंमें प्रसिद्ध शुभमूर्त्ति श्रीरत्नभूषण प्रभृति सूरि, पाठक और साधुओंसे सेवित चरण-कमलवाले तथा कलिकालके लिए गौतम गणधर-स्वरूप, श्रीमूलसंघ सरस्वतीगच्छके शृङ्गारहार-सदृश गच्छाधिराज भट्टारकोंमें श्रेष्ठ, परम आराध्य और परम पूज्य भट्टारक श्री ज्ञानभूषण गुरुवरके ॥२७॥

तत्पट्टकुमुदवनविकासनविशदसम्पूर्णपूर्णिमासारशरच्चन्द्रायमानानां कविगमकवादिवाग्मिचतुर्विधविद्वज्जनसभासरोजिनीराजहंससन्निभानां, सारसामुद्रिकशास्त्रोक्तसकललक्षणलक्षितगात्राणां, सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमण्डितानां, चतुर्विधश्रीसंघहृदयाह्लादकराणां, सौजन्यादिगुणरत्नरत्नाकराणां, संघाष्टकभारधुरंधराणां, श्रीभद्रायराजगुरुवसुन्धराचार्यमहावादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिवकुडीकुडीयमाण (?) परगृहविक्रमादित्यमध्याह्नकल्पवृक्षबलात्कारगणविरुदावलीविराजमानडिल्लीगुर्जरादिदेशसिंहासनाधीश्वराणां-श्रीसरस्वतीगच्छश्रीबलात्कारगणाग्रगण्यपाषाणघटितसरस्वतीवादनश्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वयभट्टारकश्रीविद्यानन्दिश्रीमल्लिभूषणश्रीमल्लक्ष्मीचन्द्रश्रीवीरचन्द्रसाम्प्रतिकविद्यमानविजयराज्ये श्रीज्ञानभूषणसरोजचञ्चरीकश्रीप्रभाचन्द्रगुरूणाम् ॥२८॥

तत्पट्टकमलबालभास्करपरवादिगजकुम्भस्थलविदारणसिंह-स्वदेशपरदेशप्रसिद्धानां, पंचमिथ्यात्वगिरिशृंगशातनप्रचण्डविद्युद्दण्डानां, जंगमकल्पद्रुमकलिकालगौतमावताररूपलावण्यसौभाग्यभाग्यमण्डितजिनवचनकलाकौशल्यविस्मापिताखण्डलमहावादवादीश्वरराजगुरुवसुन्धराचार्यहुवडकुलशृंगारहारभट्टारकश्रीमद्वादिचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥२९॥

उनके पट्टरूपी कुमुदवनको विकसित करने लिए स्वच्छ शरद्कालीनपूर्णिमाके चन्द्रमाके समान, कवि-गमक-वादी-वाग्मिक इन चारों प्रकारके विद्वानोंकी सभारूपी सरोजिनीके राजहंसके सदृश, सामुद्रिक शास्त्रमें कथित सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त शरीरवाले, सम्पूर्ण मूलोत्तर गुण-मणियोंसे अलंकृत, चारों प्रकारके संघोंके हृदयाह्लादक, सौजन्य आदि गुणरत्नोंके सागर, संघाष्टकके भारकी धुरीको धारण करनेवाले, श्रीमान् राय (?) के राजगुरु, भूमंडलके आचार्य, महावादियोंके पितामह, अखिल विद्वज्जनोंके चक्रवर्त्ती (वकुडी कुडीयाण ?)…………शत्रुगृहके लिए विक्रमादित्य, मध्याह्नके लिए कल्पवृक्ष, बलात्कारगणकी विरुदावलीमें विराजमान, दिल्ली, गौर्जर (गुर्जर) आदि देशोंके सिंहासनाधीश्वर, श्रीमूलसंघ-श्रीसरस्वतीगच्छ-श्रीबलात्कारगणमें अग्र-

गण्य, पत्थरकी बनी सरस्वतीको बुलवानेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके वंशमें भट्टारक श्रीविद्यानंदी, श्रीमल्लिभूषण, श्रीलक्ष्मीचन्द्र और श्रीवीरचन्द्रके, संप्रति विद्यमान विजयराज्यमें श्रीज्ञानभूषणरूपी सरोजके लिए चंचरीक भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्र गुरुके ॥२८॥

उनके पट्टरूपी कमलके लिए बालसूर्य, परमतवादीरूपी गजके मस्तकको विदीर्ण करनेमें सिंहके समान, स्वदेश और परदेशमें ख्यातिप्राप्त, पाँच मिथ्यात्वस्वरूप पर्वतके शिखरको नष्ट-भ्रष्ट करनेमें प्रचंड विजलीके समान, चलते-फिरते कल्पवृक्ष-स्वरूप, कलिकालमें गौतमावतार रूप, लावण्य और सौभाग्यसे युक्त, अपने वचनकी चातुरीसे इन्द्रको विस्मयमें डालनेवाले, महावाद-वादीश्वर, राजगुरु, भूमण्डलके आचार्य, हुंबडकुलके शृंगारहार, भट्टारक श्रीवादिचन्द्रके ॥२९॥

तत्पट्टैकसम्पूर्णचन्द्रस्वराद्धान्तविद्योत्कटपरवादिगजेन्द्रगर्वस्फोटनप्रबलेन्द्रमृगेन्द्राणां, कृत्स्नाद्वयशब्दश्रुतछंदोलंकृतिकाव्यतर्कादिपठनपाठनसामर्थ्यप्रोत्थकीर्त्तिवल्ल्याच्छादितबंगांगतिलंगगुर्जरनवसहस्रदक्षिणवागवरादिदेशमण्डपानां, महावादीश्वरश्रीमन्मूलसंघशृंगारहारश्रीमद्वादिचन्द्रपट्टोदयाद्रिबालदिवाकराणां, त्रिजगज्जनाह्लादनप्रकृष्टप्रज्ञाप्रागल्भ्याभिनववादीन्द्रसकलमहत्तममहतीमहीमहतामहस्क (?) महन्महीपतिमहितश्रीमहीचन्द्रभट्टारकाणाम् ॥३०॥

तत्पट्टोदयाद्रिबालविभाकरविद्वज्जनसभामण्डनमिथ्यामतखण्डनपण्डितानाम्, परवादिप्रचण्डपर्वतपाटनपवीश्वराणां, भव्यजनकुमुदवनविकाशनशशधरधर्म्मामृतवर्षणमेघानां, लघुशाखाहुबडकुलशृंगारहारडिल्लीगुर्ज्जरसिंहासनाधीशबलात्कारगणविरुदावलीविराजमानभट्टारकश्रीमेरुचन्द्रगुरूणाम् ॥३१॥

सकलसिद्धान्तप्रतिबोधितभव्यजनहृदयकमलविकाशनैकबालभास्कराणां, दशविधधर्मोपदेशनवचनामृतवर्षणतर्प्पितानेकभव्यसमूहानां, श्रीमन्मेरुचन्द्रपट्टोद्धरणधीराणां, श्रीमच्छ्रीमूलसंघ-सरस्वतीगच्छबलात्कारगणविरुदावलीविराजमानभट्टारकवरेण्यभट्टारकश्रीजिन-चन्द्रगुरूणां, तपोराज्याभ्युदयार्थं भव्यजनैः क्रियमाणे श्रीजिननाथाभिषेके सर्वे जनाः सावधानाः भवन्तु ॥३२॥

उनके पट्टको (सुशोभित करनेके लिए एकमात्र पूर्णचन्द्र, अपने सिद्धान्तकी विद्यामें उत्कट, परमतवादी-रूपी गजेन्द्रके गर्वको फोड़नेवाले प्रबल मृगेन्द्र सदृश, अखिल अद्वय (अद्वैत) शब्दको सुने हुए, छन्द-अलंकार-काव्या-तर्क आदिके पठन-पाठनकी सामर्थ्य रखनेके कारण फैली हुई कीर्त्तिलतासे बंग-अंग-तैलंग-गुर्जर-नवसहस्र दक्षिण, वागवर आदि देशरूपी मंडपको आच्छादित करनेवाले (?) महा-

वादीश्वर श्रीमूलसंघके शृंगारहार, श्रीवादिचन्द्रके पट्टरूपी उदयाचलपर बालसूर्य-के समान, त्रिभुवनके जनोंको आह्लादित करनेवाले, प्रखरबुद्धि और निपुणताके कारण एक नवीन वादिश्रेष्ठ, सम्पूर्ण पृथ्वीके बड़े-से-बड़े भूभागके महान् मही-पतियोंसे पूजित श्रीमहीचन्द्र भट्टारकके ॥३०॥

उनके पट्टस्वरूप उदयगिरिपर (उदित) बालभास्कर, विद्वानोंकी सभाके भूषण, मिथ्यामतके खण्डनमें पण्डित, परमतके वादीरूपी, प्रचण्ड पर्वतको तोड़नेमें श्रेष्ठ वज्रके समान, भव्यजनरूपी कुमुदवनको विकसित करनेके लिये चन्द्रमा, धर्मस्वरूप अमृतको बरसानेमें मेघतुल्य', लघु शाखाके हुंबड कुलके शृंगारहार, दिल्ली और गुजरातके सिंहासनाधीश, बलात्करगणकी विरुदावलीमें विराजमान भट्टारक श्रीमेरुचन्द्र गुरुके ॥३१॥

सम्पूर्ण सिद्धान्तों द्वारा ज्ञानवान बनाये गये भव्यजनोंके हृदयकमलको विकसित करनेमें एकमात्र बालसूर्य, दशविध धर्मोंके उपदेश-वचनामृतकी वृष्टि-से अनेक भव्यसमूहको तृप्त करनेवाले श्रीमेरुचन्द्रके पट्टका उद्धार करनेमें धीर, श्रीमूलसंघ सरस्वती गच्छ बलात्कारगणकी विरुदावलीमें विराजमान, भट्टा-रकोंमें श्रेष्ठ, भट्टारक श्रीजिनचन्द्र गुरुके तपोराज्यके अभ्युदयके लिए भव्यजनों द्वारा किये जानेवाले श्रीजिननाथके अभिषेकमें सभी लोग सावधान होवें ॥३२॥

नन्दिसंघकी पट्टावलिके आचार्योंकी नामावलि

(इण्डियन एन्टीक्वेरीके आधारपर)

१. भद्रबाहु द्वितीय (४), २. गुप्तिगुप्त (२६), ३. माघनन्दी (३६), ४. जिन-चन्द (४०), ५. कुन्दकुन्दाचार्य (४९), ६. उमास्वामी (१०१), ७. लोहाचार्य्य (१४२), ८. यशःकीर्ति (१५३), ९. यशोनन्दी (२११), १०. देवनन्दी (२५८) ११. जयनन्दी (३०८), १२. गुणनन्दी (३५८), १३. वज्रनन्दी (३६४), १४. कुमार-नन्दी (३८६), १५. लोकचन्द (४२७), १६. प्रभाचन्द्र (४५३), १७. नेमचन्द्र (४७८), १८ भानुनन्दी (४८७), १९. सिंहनन्दी (५०८), २०. श्रीवसुनन्दी (५२५), २१. वीरनन्दी (५३१), २२. रत्ननन्दी (५६१), २३. माणिक्यनन्दी (५८५), २४. मेघचन्द्र (६०१), २५. शान्तिकीर्ति (६२७), २६. मेरुकीर्ति (४४२)।

ये उपर्युक्त छब्बीस आचार्य दक्षिण देशस्थ भद्दिलपुरके पट्टाधीश हुए।

२७ महाकीर्ति (६८६), २८. विष्णुनन्दी (७०४), २९. श्रीभूषण (७२६), ३०. शीलचन्द्र (७३५), ३१. श्रीनन्दी (७४९), ३२. देशभूषण (७६५), ३३. अनन्तकीर्ति (७६५), ३४. धर्म्मनन्दी (७८५), ३५. विद्यानन्दी (८०८), ३६. रामचन्द्र (८४०),

३७. रामकीर्ति (८५७), ३८. अभयचन्द्र (८७८), ३९. नरचन्द्र (८९७), ४०. नागचन्द्र (९१६), ४१. नयनन्दी (९३९), ४२. हरिनन्दी (९४८), ४३. महीचन्द्र (९७४), ४४. माघचन्द्र (९९०)।

उल्लिखित महाकीर्तिसे लेकर माघचन्द्र तकके अट्ठारह आचार्य उज्जयिनीके पट्टाधीश हुए।

४५ लक्ष्मीचन्द्र (१०२३), ४६. गुणनन्दीं (१०३७); ४७. गुणचन्द्र (१०४८), ४८. लोकचन्द्र (१०६६)। ये उल्लिखित चार आचार्य्य चन्देरी (बुन्देलखण्ड) के पट्टाधीश हुए।

४९. श्रुतकीर्ति (१०७९), ५० भावचन्द्र (१०९४), ५१. महाचन्द्र (१११५),

उल्लिखित तीन आचार्य्य भेलसे [भूपाल सी० पी०]के पट्टाधीश हुए। ५२ माघचन्द्र (११४०)।

यह आचार्य कुण्डलपुर (दमोह) के पट्टाधीश हुए।

५३. ब्रह्मनन्दी (११४४), ५४. शिवनन्दी (११४८), ५५. विश्वचन्द्र (११५५), ५६. हृदिनन्दी (११५६), ५७. भावनन्दी (११६०), ५८. सूरकीर्ति (११६७), ५९. विद्याचन्द्र (११७०), ६०. सूरचन्द्र (११७६), ६१. माघनन्दी (११८४), ६२. ज्ञाननन्दी (११८८), ६३. गंगकीर्ति (११९९), ६४. सिंहकीर्ति (१२०६)।

उपर्युक्त बारह आचार्य बारांके पट्टाधीश हुए।

६५. हेमकीर्त्ति (१२०९), ६६. चारुनन्दी (१२१६), ६७. नेमिनन्दी (१२२३), ६८. नाभिकीर्ति (१२३०), ६९. नरेन्द्रकीर्ति (१२३२), ७०. श्रीचन्द्र (१२४१), ७१. पद्म (१२४८), ७२. वर्द्धमानकीर्त्ति (१२५३), ७३. अकलंकचन्द्र (१२५६), ७४. ललितकीर्ति (१२५७), ७५. केशवचन्द्र (१२६१), ७६. चारुकीर्ति (१२६२), ७७. अभयकीर्ति (१२६४), ७८. बसन्तकीर्ति (१२६४)।

इण्डियन ऐण्टिक्वेरीकी जो पट्टावली मिली है उसमें उपर्युक्त चौदह आचार्योंका पट्ट ग्वालियरमें लिखा है, किन्तु वसुनन्दीश्रावकाचारमें इनका चित्तौड़में होना लिखा है, पर चित्तौड़के भट्टारकोंकी अलग भी पट्टावली है। जिनमें ये नाम नहीं पाये जाते हैं। सम्भव है कि ये पट्ट ग्वालियरमें हों। इनको ग्वालियरकी पट्टावलीसे मिलानेपर निश्चय होगा।

७९. प्रख्यातकीर्ति (१२६६), ८०. शुभकीर्ति (१२६८), ८१. धर्म्मचन्द्र (१२७१), ८२. रत्नकीर्ति (१२९६), ८३. प्रभाचन्द्र (१३१०)।

ये उल्लिखित ५ आचार्य अजमेरमें हुए हैं।

८४. पद्मनन्दी (१३८५), ८५. शुभचन्द्र (१४५०), ८६. जिनचन्द्र (१५०७), ये तीन आचार्य दिल्लीमें पट्टाधीश हुए हैं।

इनके बाद पट्ट दो भागोंमें विभक्त हुआ। एक नागौरमें गद्दी स्थापित हुई और दूसरी चित्तौड़में। निम्नलिखित आचार्योंके नाम चित्तौड़ पट्टके हैं। प्रभाचन्द्रजीसे चित्तौड़का पट्ट प्रारम्भ होता है। ८७. प्रभाचन्द्र (१५७१), ८८. धर्म्मचन्द्र (१५८१), ८९. ललितकीर्ति (१६०३), ९०. चन्द्रकीर्ति (१६२२), ९१. देवेन्द्रकीर्ति (१६६२), ९२. नरेन्द्रकीर्ति (१६९१), ९३. सुरेन्द्रकीर्ति (१७२२), ९४. जगत्कीर्ति (१७३३), ९५. देवेन्द्रकीर्ति (१७७०), ९६. महेन्द्रकीर्ति (१७९२), ९७. क्षेमेन्द्रकीर्ति (१८१५), ९८. सुरेन्द्रकीर्ति (१८२२), ९९. सुखेन्द्रकीर्ति (१८५९), १००. नयनकीर्ति (१८७९), १०१. देवेन्द्रकीर्ति (१८८३), १०२. महेन्द्रकीर्ति (१९३८)।

नागौरके भट्टारकोंकी नामावली

१. रत्नकीर्ति (१५८१), २. भुवनकीर्ति (१५८६), ३. धर्म्मकीर्ति (१५९०), ४. विशालकीर्ति (१६०१), ५. लक्ष्मीचन्द्र, ६. सहस्रकीर्ति, ७ नेमिचन्द्र, ८' यशकीर्ति, ९. भुवनकीर्ति, १० श्रीभूषण, ११. धर्म्मचन्द्र, १२ देवेन्द्रकीर्ति, १३. अमरेन्द्रकीर्ति, १४. रत्नकीर्ति, १५. ज्ञानभूषण, १६. चन्द्रकीर्ति, १७. पद्मनन्दी, १८. सकलभूषण, १९. सहस्रकीर्ति, २०. अनन्तकीर्ति, २१. हर्षकीर्ति, २२. विद्याभूषण, २३. हेमकीर्ति। यह आचार्य १९१० माघ शुक्ल द्वितीया सोमवार को पट्टपर बैठे।

इनके बाद क्षेमेन्द्रकीर्ति हुए, इनके पट्ट पर मुनीन्द्रकीर्ति हुए और अब नागौरकी गद्दीपर श्रीकनककीर्ति महाराज विराजमान हैं।

●

कविवर नवलशाह

कविवर नवलशाहकी हिन्दीमें एक महत्वपूर्ण सचित्र रचना 'वर्धमान पुराण' उपलब्ध है। उन्होंने इस ग्रंथके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है, उस प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि ये गोलापूर्व जातिमें उत्पन्न हुये थे। इनका बैंक चन्देरिया और गोत्र बड़ था। इनके पूर्वज भीषमसाहू भेलसी (बुन्देलखण्ड) ग्राममें रहते थे। उनके चार पुत्र थे—वहोरन, सहोदर, अहमन और रतनशाह। एकदिन भीषण साहूने अपने पुत्रोंको बुलाकर उनसे परामर्श किया कि कुछ धार्मिक कार्य करना चाहिये। हमें जो राज-सम्मान और धन प्राप्त है उसका सदुपयोग करना चाहिये। सबके परामर्शपूर्वक दीपावलीके शुभ मुहूर्तमें उन्होंने पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाका आयोजन किया, जिसमें दूर-दूर देशसे धार्मिकजन आकर सम्मिलित हुये। उन्होंने जिनबिम्ब बिराजमान किया। तोरण-ध्वजा-छत्रादिसे मन्दिरको सुशोभित किया। आगत साधर्मीजनोंका सत्कार किया। और चारसंघको दान दिया, फिर रथयात्राका उत्सव किया। चार संघने मिलकर इनका टीका किया। और एकमत होकर इन्हें 'सिघंई' पदसे विभूषित किया। यह बिम्बप्रतिष्ठा वि० सम्वत् १६५१ के अगहन मासमें हुई थी। उस समय बुन्देलखण्डमें महाराज जुझारका राज्य था।

इनके पूर्वजोंने भेलसीको छोड़कर खटोला गांवमें अपना निवास बनाया। इनके पिताका नाम सिंघई देवाराय और माताका नाम प्रानमती था। सिंघई देवारायके चार पुत्र थे—नवलशाह, तुलाराम, घासीराम और खुमानसिंह। नवलशाह ही प्रस्तुत कविवर हैं। कविवरने वर्धमानपुराणकी रचना महाराज छत्रसालके पौत्र और सभासिंहके पुत्र हिन्दुपत्तिके राज्यमें की थी। कविवरने लिखा है कि उन्होंने और उनके पुत्रने मिलकर आचार्य सकलकीर्तिके वर्धमान-पुराणके आधारसे अपने 'वर्धमानपुराण'की रचना की है। ग्रंथके अध्ययनसे कविवरकी काव्य-प्रतिभा और सिद्धान्त-ज्ञानका अच्छा परिचय मिलता है। वे चारों अनुयोगोंके विद्वान थे, कवि तो थे ही।

समय-निर्णय

इनका समय निश्चित है। इन्होंने वर्धमानपुराणकी समाप्ति विक्रम सम्वत्

१८२५ फागुन शुक्ला पूर्णमासी बुधवारको हुई है[1]। इससे इनका समय विक्रमकी १८वीं शतीका अन्तिम पाद और १९वीं शताब्दीका प्रथम पाद निश्चित होता है अर्थात् इनका समय विक्रम संवत् १८२५ है।

रचना-परिचय

इनकी एकमात्र रचना वर्धमानपुराण प्राप्त है। इसमें भगवान् महावीरके पूर्व भवों और वर्त्तमान जीवनका विशद एवं विस्तृत परिचय दिया गया है। इसकी भाषासे अवगत होता है कि उस समय हिन्दीकी खड़ी बोलीका आरम्भ हो गया था। कविने अपनी यह रचना प्रायः अपने समयकी हिन्दीकी खड़ी बोलीमें की है। रचना सरस और सरल है।

ग्रंथमें १६ अधिकार दिये गये हैं। प्रथम अधिकारमें मङ्गलाचरणके अनन्तर वक्ता और श्रोताके लक्षण दिये गये है।

दूसरे अधिकारमें भगवान महावीरके पूर्व भवोंमेंसे पुरुरवा भीलके भवमें उसके द्वारा किये गये मद्य-मांसादिकके परित्यागका वर्णन करते हुये उसके सौधर्म स्वर्गमें देवपदकी प्राप्ति वर्णित है। तीसरे भवमें भरत चक्रवर्तीके पुत्रके रूपमें मरीचिकी पर्याय-प्राप्ति और उसके द्वरा मिथ्या मतकी प्रवृत्ति, फिर ब्रह्मस्वर्गमें देवपर्यायकी प्राप्ति, वहाँसे चलकर जटिल तपस्वीकी पर्याय, तत्पश्चात् सौधर्म स्वर्गकी प्राप्ति, फिर अग्निसह नामक परिव्राजककी पर्याय, फिर तृतीय स्वर्गमें देवपद-प्राप्ति, वहांसे आकर भारद्वाज ब्राह्मणकी पर्याय, फिर पांचवें स्वर्गमें देवपर्याय, फिर असंख्य वर्षों तक अनेक योनियोंमें भ्रमणादि-का कथन किया गया है।

तृतीय अधिकारमें स्थावर ब्राह्मण, माहेन्द्र स्वर्गमें देव, राजकुमार विश्व-नन्दि, दशवें स्वर्गमें देव, त्रिपृष्ठनारायण, सातवें नरकमें नारकी इन भवोंका वर्णन है। चतुर्थ अधिकारमें सिंह पर्याय और चारण मुनियों द्वारा सम्बोधन प्राप्त करनेपर सम्यक्त्वकी प्राप्ति, फिर सौधर्म स्वर्गमें देवपर्याय, राजकुमार कनकोज्वल, सातवें स्वर्गमें देव, राजकुमार हरिषेण, दशवें स्वर्गमें देवपर्यायका कथन है।

पाँचवें अधिकारमें प्रियमित्र चक्रवर्तीके भवका तथा बारहवें स्वर्गमें देव-पदकी प्राप्तिका वर्णन है।

छठवें अधिकारमें राजा नन्दके भवमें तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध तथा सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्र पदकी प्राप्तिका वर्णन है।

---

१. वर्धमान पुराण १६।३३०-३३३।

सातवें अधिकारमें कुण्डपुरनरेश सिद्धार्थके महलोंमें कुबेर द्वारा तीर्थंकर-जन्मसे पूर्व रत्नोंकी वर्षा, माता द्वारा सोलह स्वप्नोंका दर्शन और महावीरका गर्भकल्याणक वर्णित है।

आठवें और नौवें अधिकारमें भगवानके जन्मकल्याण-महोत्सवका विस्तृत वर्णन किया गया है।

दशवें अधिकारमें भगवान्‌के बाल्यजीवन, किशोरावस्था, युवावस्था, वैराग्य और दीक्षा, कूलराजा द्वारा भगवानको प्रथम आहार, चन्दनाके हाथोंसे आहार लेनेपर चन्दनाकी कष्टनिवृत्ति, तपश्चर्याकालमें विविध उपसर्गोंका सहन और केवलज्ञानप्राप्तिका वर्णन है।

ग्यारहवें अधिकारमें देवों द्वारा भगवानका केवलज्ञानकल्याणक-महोत्सव मनाने और कुबेर द्वारा रचित समवशरणका वर्णन है।

बारहवें अधिकारमें गौतम इन्द्रभूतिका समवशरणमें आना, उसके द्वारा भगवानकी स्तुति करना और भगवानसे जैनेन्द्री दीक्षा लेने आदिका वर्णन है।

तेरहवेंसे पन्द्रहवें अधिकार तक गौतम गणधर द्वारा किये गये प्रश्नों और प्रश्नोंके समाधानस्वरूप भगवानकी दिव्यध्वनिमें निरूपित तत्त्व-निरूपण बतलाया गया है।

सोलहवें अधिकारमें भगवानका विभिन्न देशोंमें विहार गौतम गणधर द्वारा श्रेणिकके तीन पूर्वभव, अन्तमें विहार करते हुए भगवानका पावामें निर्वाण, गौतमस्वामीको केवलज्ञानकी प्राप्ति और उनका धर्मविहार, धर्म उपदेश आदिका वर्णन करते हुए अधिकारके अन्तमें अपना विस्तृत परिचय देकर ग्रन्थको समाप्त किया है।

कविने इस काव्य-ग्रन्थमें दोहा, छप्पय, चौपाई, सवैया, अड़िल्ल, गीतिका, सोरठा, करखा, पद्धरि, चाल, जोगीरासा, कवित्त, त्रिभंगी और चर्चरी छन्दोंका प्रयोग किया है, जिनकी संख्या सब मिलाकर ३८०६ है।

१९वीं शताब्दीकी यह हिन्दी रचना बहु प्रचलित रही है। इसका एक बार प्रकाशन सूरतसे हो चुका है। वह अब अनुपलब्ध है।

●

परिशिष्ट

१. ग्रन्थकारानुक्रमणिका

इन्द्रनन्दि प्रथम (इन्द्रनन्दि योगीन्द्र)	ई० १०वीं शतीका आदि	३।१७७
इलंगोवडिगल	—	४।३१४
उग्रादित्याचार्य	वि० ८वीं शती संभवत:	३।२५०
उच्चारणाचार्य	ई० २-३ शती	२।९२
उदयचन्द्र	ई० १२वीं शती	४।१८४
उदयादित्य	ई० ११५०	४।३११
ऋषिपुत्र	ई० ६-७वीं शती	२।२६२
एलाचार्य	ई० १ली शती	४।३१२
एलाचार्य	८-९वीं शती	२।३१९
ओड्डय्य	ई० ११७०	४।३०८
कनकनन्दि	वि० ११वीं शती	२।४५२
कनकामर मुनि	वि० १२वीं शती	४।१५९
कमलभव	ई० १२३५	४।३११
कर्ण पार्य	ई० १२वीं शती	४।३०९
कल्याणकीर्ति	ई० १४३९	४।३११
कान्ति देवी	ई० १२वीं शती	४।३०८
काणभिक्षु	ई० ९वीं शती	२।४५२
कामराज	—	४।३२१
किशनसिंह	सं० १८वीं शती	४।२८०
कीर्तिवर्मा	११२५ ई०	४।३११
कुंगवेल	—	४।३१६
कुन्दकुन्द	ई० १ली शती	२।९८
कुमार या कुमारस्वामी (कार्तिकेय)	वि० २-३री शती	२।१३३
कुमारनन्दि	ई० ९वीं शती	२।४४७
कुमारसेन	वि० ८वीं शती	२।४४९
कुमुदेन्दु	१२७५ ई०	४।३११
कुंवरपाल	वि० १७वीं शती	४।२६२
केशवराज	११५० ई०	४।३१०
कोटेश्वर	१५०० ई०	४।३११
खड्गसेन कवि	वि० सं० १८वीं शती	४।२८०
खुशालचन्द काला	वि० सं० १८वीं शती	४।३०३
गणधरकीर्ति	वि० १२वीं शती	३।२४३
गुणचन्द्र	वि० १६१३-१६५३	३।४२२

देवेन्द्रकीर्ति	वि० १८वीं शती	३।४४८
देवेन्द्रकीर्ति	—	४।३२१
देवेन्द्रमुनि	१२०० ई०	४।३११
दोड्डय्य	वि० १६वीं शती	४।७५
दौलतराम कासलीवाल	वि० सं० १७४५	४।२८१
दौलतराम द्वितीय	वि० सं० १८५५-१८५६	४।२८८
द्यानतराय कवि	वि० सं० १७३३	४।२७६
धनञ्जय महाकवि	ई० ८वीं शती करीब	४।६
धनपाल	वि० १०वीं शती	४।११२
धनपाल द्वितीय	वि० १५वीं शती	४।२११
धनसागर	सं० १८वीं शती	३।४५२
धरसेन	ई० सन् ७३	२।४३
धर्मकीर्ति	वि० १७वीं शती	३।४१२
धर्मधर	वि० १६वीं शती	४।५७
धर्मसेन	—	४।३१२
धवल कवि	शक सं० १०-११वीं शती	४।११६
नथमल विलाला	वि० १९वीं शती	४।२८१
नयनन्दि	वि० ११-१२वीं शती	३।२९०
नयसेन	११२१ ई०	३।२६४
नयसेन	११२५ ई०	४।३०८
नरसेन (नरदेव)	वि० १४वीं शती	४।२२३
नरेन्द्रसेन	ई० सन् १७३०	३।४२४
नरेन्द्रसेन	वि० १२वीं शती मध्य	२।४३३
नागचन्द्र (अभिनव पम्प)	११०० ई०	४।३०८
नागदेव	वि० सं० १५७३ के पूर्व	४।६२
नागवर्म	ई० ९९०	४।३१०
नागवर्मा द्वितीय	ई० ११४५	४।३१०
नागहस्ति	वी० नि० सं० ७वीं शती	२।७१
नागेन्द्रकीर्ति	—	४।३२२
नागोआया	—	४।३२१
नृपतुंग	ई० सन् ८१४	४।३११
नेमिचन्द्र	१३वीं शती	४।३०९
नेमिचन्द्र कवि	१५वीं शती	४।२४३

बाहुबली	ई० १५६०	४।३११
बुधजन	१९वीं शती मध्य	४।२९८
बुलाकीदास	—	४।२६३
ब्रह्म कृष्णदास	वि० १७वीं शती	४।८४
ब्रह्मगुलाल	वि० १७वीं शती	४।३०४
ब्रह्मज्ञानसागर	वि० १७वीं शती	३।४४२
ब्रह्मजयसागर	वि० १८वीं शती	४।३०२
ब्रह्मजिनदास	वि० सं० १४५०-१५२५	३।३३८
ब्रह्मजीवन्धर	वि० १६वीं शती	३।३८७
ब्रह्मदेव	ई० १२वीं शती	३।३१०
ब्रह्मनेमिदत्त	वि० १६वीं शती	३।४०२
ब्रह्म साधारण कवि	वि० १५वीं शती	४।२४२
भगवतीदास	वि० १७वीं शती	४।२३८
भट्टवोसरि	ई० ११वीं शती अन्त	३।२४५
भट्टाकलङ्क	ई० १६०४	४।३११
भागचन्द	१९-२०वीं शती	४।२९६
भारामल	वि० सं० १८-१९वीं शती	४।३०४
भावसेन त्रैविद्य	ई० १३वीं शती मध्य	३।२५६
भास्कर	ई० १४२४	४।३११
भास्करनन्दि	वि० सं० १६वीं शती	३।३०७
भुवनकीर्ति भट्टारक	वि० सं० १५०८-१५२७	३।३३६
भूतबलि	ई० ८७के करीब	२।५५
भूधरदास	वि० १८वीं शती	४।२७२
भूधरमिश्र	—	४।३०६
भैया भगवतीदास	वि० १८वीं शती	४।२६३
मंगरस	ई० १५०८	४।३१०
मंगराज	ई० १५५०	४।३११
मधुर	ई० १३८५	४।३११
मनरंगलाल	वि० १९वीं शती	४।३०६
मनोहरलाल (मनोहरदास)	सं० १८वीं शती	४।२८०
मलयकीर्ति	वि० १५वीं शती	३।४२८
मल्लिभूषण भट्टारक	वि० १६वीं शती	३।३७३
मल्लिषेण	ई० ११वीं शती	३।१६९

वीरचन्द्र	वि० सं० १५५६-१५८२	३।३७४
वीरदास (पासकीर्ति)	शक सं० १६वीं शती	४।३२०
वीरनन्दि	ई० ९५०-९९९	३।५३
वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती	ई० १२वीं शती मध्य	३।२९९
वीरसेनाचार्य	ई० ८१६	२।३२१
बोम्मरस	ई० १४८५	४।३११
वृन्दावन दास	वि० सं० १८४२	२।२९९
शाकटायन (पाल्यकीर्ति)	ई० १०२५के पूर्व	३।१६
शान्त (शान्तिषेण)	वि० ७वीं शती	२।४५१
शान्तिकीर्ति	ई० १५१९	४।३११
शाह ठाकुर कवि	वि० १७वीं शती	४।२३३
शिरोमणिदास	वि० सं० १७वीं शती	४।३०३
शिवार्य	ई० प्रथम शती	२।१२२
शुभकीर्ति	वि० १५वीं शती	३।४११
शुभचन्द्र	ई० १२००	४।३११
शुभचन्द्र	वि० ११वीं शती	३।१४८
शुभचन्द्र	सं० १५३५-१६२०	३।३६४
श्रीचन्द	ई० ११वीं शती	४।१३१
श्रीदत्त	वि० ४-५वीं शती	२।४४८
श्रीधर तृतीय	वि० १३वीं शती	४।१४९
श्रीधर द्वितीय	वि० १३वीं शती	४।१४५
श्रीधर देव	ई० १५००	४।३११
श्रीधर प्रथम (विबुध श्रीधर)	वि० १२वीं शती	४।१३७
श्रीधरसेन	ई० १३-१४वीं शती	४।६०
श्रीधराचार्य	ई० ८-९वीं शती	३।१८७
श्रीधराचार्य	ई० १०४६	४।३११
श्रीपाल	वि० ९वीं शती	२।४५२
श्रीभूषण	वि० १७वीं शती	३।४३९
श्रुतकीर्ति भट्टारक	वि० १६वीं शतो	३।४३०
श्रुतमुनि	ई० १३वीं शती उत्तरार्द्ध	३।२७२
श्रुतसागर सूरि	वि० १६वीं शती	३।३९१
सकलकीर्ति भट्टारक	वि० सं० १४४३-१४९९	३।३२६

२. ग्रन्थानुक्रमणिका

कृपणजगावनचरित	ब्रह्म गुलाल	४।३०४
केवलभुक्तिप्रकरण	शाकटायन	३।२४
कोइल-पंचमी-कहा	ब्रह्म साधारण	४।२४२
कोमुइ-कहा-पबंधु	रइधू	४।२०१
क्रियाकलाप	आशाधर	४।४५
क्रियाकलाप-टीका	प्रभाचन्द्र	३।५१
क्रियाकोश	किशनसिंह	४।२८०
क्रियाकोषभाषा	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
क्षत्रचूड़ामणि	वादीभसिंह	३।३१
क्षपणासार	नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	२।४३३
क्षपणासार-वचनिका	टोडरमल	४।२८६
क्षेत्रगणित	राजादित्य	४।३११
क्षेत्रपाल-गीत	शुभचन्द्र	३।३६६
क्षेत्रपाल-पूजा	गंगादास	३।४४८
क्षेत्रपाल-स्तोत्र	जिनसागर	३।४५०
खगेन्द्रमणिदर्पण	मंगराज	४।३११
खटोल्ना-गीत	रूपचन्द्र	४।२५९
खटोला-रास	ब्रह्मजीवन्धर	३।३८८
खातिकाविशेष	तारणस्वामी	४।२४४
खिण्डीरास	भगवतीदास	४।२३९
गणधरवलयपूजा	शुभचन्द्र	३।३६५
,,	सकलकीर्त्ति भट्टारक	३।३३०
गणितसार (त्रिशतिका)	श्रीधर	३।१९२
गणितसारसंग्रह	महावीराचार्य	३।२६
गद्यकथाकोश	प्रभाचन्द्र	३।५०
गद्यचिन्तामणि	वादीभसिंह	३।३३
गन्धहस्तिमहाभाष्य (अनुपलब्ध)	समन्तभद्र	२।१९८
गरुडपञ्चमी-कथा	महीचन्द्र	४।३२१
गिरिनार-यात्रा	मेघराज	४।३२०
गीतपरमार्थी (परमार्थगीत)	रूपचन्द	४।२५८
गीतवीतराग	अभिनव चारुकीर्त्ति	४।८७
गुणमञ्जरी	भगवतीदास	४।२७२

पार्श्वनाथपुराण	सकलकीर्ति	३।३३४
पार्श्वनाथपूजा	चन्द्रकीर्ति	३।४४२
,,	ब्रह्मज्ञानसागर	३।४४३
,,	छत्रसेन	३।४४६
पार्श्वनाथभवान्तर	गंगादास	३।४४८
पार्श्वनाथस्तवन	श्रुतसागरसूरि	३।३९४
पार्श्वनाथस्तोत्र	जिनसागर	३।४५०
,, (लक्ष्मीस्तोत्र)	पद्मप्रभमलधारिदेव	३।१४७
पार्श्वनाथाष्टक	सकलकीर्ति	३।३३०
पार्श्वपञ्चकल्याणक	जयसागर	४।३०२
पार्श्वपुराण	वादिचन्द्र	४।७२
,,	भूधरदास	४।२७३
पार्श्वाभ्युदय	जिनसेन	२।३४०
पासणाहचरिउ	श्रीधरप्रथम	४।१४०
,,	देवचन्द्र	४।१८२
पासणाहचरिउ	रइधू	४।२०२
,,	असवाल कवि	४।२२९
,,	मुनि पद्मनन्दि	३।२०९
पासपुराण	तेजपाल	४।२११
पाहुडदोहा (बारहखड़ी दोहा)	महनन्दिमुनि	३।४२०
पिङ्गलशास्त्र	राजमल्ल	४।८१
पुण्यपच्चीसिका	भगवतीदास	४।२७२
पुण्याश्रवकथा	रइधू	४।२०१
पुण्याश्रवकथाकोश	रामचन्द्र मुमुक्षु	४।७१
पुण्याश्रववचनिका	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
पुष्फंजलीकहा	गुणभद्र	४।२१८
पुरत्नानुरुकवितासंग्रह	—	४।३१७
पुरन्दरविधानकथा	ललितकीर्ति	३।४५३
पुरन्दरव्रतकथा	देवेन्द्रकीर्ति	३।४५२
पुराणसारसंग्रह	सकलकीर्ति	३।३३४
पुरुदेवचम्पू	अर्हद्दास	४।५३
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	अमृतचन्द्र सूरि	२।४०५

विक्रमार्जुनविजय (अपरनामभारत)	आदि पम्प	४।३०७
विजयकीर्तिछन्द	शुभचन्द्र	३।३६९
वित्तसार	रइधू	४।२०५
विद्यानन्दमहोदय	विद्यानन्द	२।३५९
विनती	गुणचन्द्र	३।४२३
विमलपुराण	जयसागर	४।३०२
विवाहपटल	ब्रह्मदेव	३।३१३
विवेकविलास	दौलतराम कासलीवाल	४।२८२
विश्वतत्त्वप्रकाश	भावसेन त्रैविद्य	३।२६१
विश्वलोचनकोश (मुक्तावलीकोश)	श्रीधरसेन	४।६०
विषापहार-पूजा	देवेन्द्रकीर्ति	३।४४९
विषापहारस्तोत्र	धनञ्जय	४।८
विहरमानतीर्थङ्कर-स्तुति	धनसागर	३।४५२
वीतरागस्तोत्र	भट्टारक पद्मनन्दि	३।३२३
वीरजिनिन्दगीत	भगवतीदास	४।२४०
वीरविलासफाग	वीरचन्द्र	३।३७५
वृन्दावनविलास	वृन्दावनदास	४।३०१
वृषभदेवपुराण	चन्द्रकीर्ति	३।४४२
वैद्यसांगत्य	साल्व	४।३११
वैद्यामृत	श्रीधरदेव	४।३११
वैराग्यपंचाशिका	भगवतीदास	४।२७२
वैराग्यसार	सुप्रभाचार्य	४।१९७
व्यवहारगणित	राजादित्य	४।३११
व्यवहारपच्चीसी	द्यानतराय	४।२७७
व्यवहाररत्नलीलावती	राजादित्य	४।३११
व्रतकथा	जिनदास	३।३४०
व्रतकथाकोश	सकलकीर्ति	३।३३४
व्रतकथाकोश	श्रुतसागर सूरि	३।४००
,,	खुशालचन्द काला	४।३०३
व्रतकथासंग्रह	जिनसागर	४।३२२
शतअष्टोत्तरी	भगवतीदास	४।२६७
शब्दमणिदर्पण	केशवराज	४।३१०

आभार

परिशिष्टकी दोनों अनुक्रमणिकाएँ डॉ० सुदर्शनलालजी जैन प्राध्यापक काशी हिन्दूविश्वविद्यालयने तैयार की हैं, इसके लिए उन्हें हृदयसे धन्यवाद हैं।



डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, एम.ए.,पी.एच.डी.डी.लिट.
उदय . पौषकृष्णा द्वादसी सन् १९१५. बासरपुर (राज.)
अवसान : माघकृष्णा द्वितीया सन् १९७४, पटना (बिहार)

जटिल संघर्षों में से उभरता व्यक्तित्व, शैशव में पितृ-वियोग । नाना के संरक्षण में राजाखेड़ा में प्रारंम्भिक शिक्षा ।तत्पश्चात स्वयंपाठी और स्वावलंबी जीवन । लगभग तीस वर्षों तक ज्ञानार्जन में सतत संलग्न ।

शताधिक शोध-निबंधों के प्रणेता । व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष और समीक्षा-शास्त्र से लेकर पुरा-कथाओं और भक्ति-साहित्य तक को विषय बनाकर सेंतीस पुस्तकों के यशस्वी लेखक । हिन्दी - संस्कृत की अनेक पुस्तकों/ पत्रिकाओं के सफल सम्पादक ।मरणोपरान्त अनेक अप्रकाशित शोध-निबंधों का दो खण्डों में प्रकाशन ।

उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश शासन, श्रमण-संघ और विद्वत्परिषद द्वारा सम्मानित । अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या सम्मेलन में "जैन-विद्या विभाग" के अध्यक्ष । अनेकों सामाजिक, शैक्षणिक और धार्मिक संस्थाओं से सम्बद्ध । एक दर्जन से अधिक शोध-छात्रों के पी.एच.डी. उपाधि हेतु निदेशक ।

चर्चित कृतियाँ : भारतीय ज्योतिष / मंगलमंत्र णमोकार / आदिपुराण में प्रतिपादित भारत / संस्कृत-काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान / प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास / हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन / तथा यह "तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा"/ आदि ।

प्रथम खण्ड : ग्यारह परिच्छेद

तीर्थंकर परम्परा और महावीर / जन्म–जन्म की साधना / समसामयिक परिस्थितियाँ / विचारक एवं सम्प्रदाय / महावीर की जन्म–भूमि / जन्म एवं किशोरावस्था / युवावस्था : संघर्ष एवं संकल्प / तपश्चरण और कैवल्य प्राप्ति / गणधर / समवसरण / प्रभावित राजन्यवर्ग / निर्वाण / निर्वाण–स्थली/ देशना–ज्ञेय तत्व / ज्ञानतत्व / धर्म और आचार / समाज – व्यवस्था आदि।

प्रत्येक विषय का विशद और साधार प्रतिपादन । महावीर की जन्म–भूमि वैशाली और निर्वाण–भूमि मध्यमा पावा पर विस्तृत विवेचना और देशना के अंतर्गत "दिव्यध्वनि" और "अर्द्ध–मागधी"क वैज्ञानिक विवेचन।

द्वितीय खण्ड : दो परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद में महावीर के पश्चातवर्ती तीन केवली और पाँच श्रुतकेवली भगवन्तों के साथ अंगधारी श्रुतधर आचार्यों का इतिहास–सम्मत परिचय । आचार्य कुन्दकुन्द का विस्तृत इतिवृत्त ।

दूसरे परिच्छेद में आचार्य समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि–पूज्यपाद, पात्रकेसरी, अकलंक, विद्यानन्दि, वीरसेन और जिनसेन द्वितीय आदि ।

तृतीय खण्ड : दो परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद में प्रबुद्धाचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व का सविस्तार प्रतिपादन । जिनसेन प्रथम, गुणभद्र, पाल्यकीर्ति, वादीभसिंह, महावीराचार्य, अनन्तवीर्य, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, लघु अनन्ततवीर्य, वीरनन्दि आदि प्रायः पचास तथा द्वितीय परिच्छेद में वृहत् प्रभाचन्द्र, पाश्र्वदेव, भुवनकीर्ति, ब्रम्हजिनदास, सोमकीर्ति, भास्करनन्दि, अभिनव धर्मभूषण आदि लगभग पचास परम्परा–पोषक आचार्यों / ग्रन्थकारों का सप्रमाण परिचय ।

चतुर्थ–खण्ड : चार परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद में संस्कृत भाषा के कवि–परमेष्ठी, धनंजय, असग, हरिचन्द्र, चामुण्डराय, अजितसेन, विजयवर्णी, आशाधर, अर्हदास, आदि।

द्वितीय परिच्छेद में अपभ्रंस भाषा के चतुर्मुख, स्वयंभूदेव, त्रिभुवन स्वयंभूदेव, पुष्पदन्त, धनपाल आदि पेंतालीस कवियों का इतिहास ।

तृतीय परिच्छेद में हिन्दी तथा उसकी सहयोगी अन्य देशज भाषाओं, मराठी, तमिल और कन्नड़ के कवियों और लेखकों के कृतित्व की चर्चा।

चतुर्थ परिच्छेद में आचार्यपरम्परा की उपलब्ध पट्टावलियाँ ।

इस प्रकार तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा का समग्र, संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करने का एक आचार्यकल्प विद्वान का सफल प्रयास ।